UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186263

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 370.
J26 B

Accession No. H 3144

Author जौहरी, वी. पी. और पाठक, पी. डी.

Title भारतीय शिक्षा का इतिहास (आधुनिक काल)
1960.

This book should be returned on or before the date last marked below.

भारतीय शिक्षा का इतिहास



• जौहरी

• पाठक

भारतीय शिक्षा का इतिहास

(आधुनिक काल)

लेखक

श्री बी० पी० जौहरी

प्रिंसिपल

आर० ई० आई० टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज

दयालबाग़, आगरा

एवं

श्री पी० डी० पाठक

लेक्चरार इन ऐजुकेशन

आर० ई० आई० टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज

दयालबाग़, आगरा



विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक—
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रथम संस्करण
सन्—१९६०
मूल्य ८)

मुद्रक :
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस
बागमुजफ्फरखाँ, आगरा

भूमिका

स्वतन्त्र भारत के जनतांत्रिक आदर्शों के अनुसार देश में शिक्षा का पुन-स्संगठन करके और उसका विस्तार करके सभी नागरिकों को शिक्षा का समान अवसर प्रदान किये जाने का प्रयास किया जा रहा है। आज भारत में शिक्षा एक ऐसा महत्त्वपूर्ण विषय है जिसकी समस्याओं पर देश के नेताओं और शिक्षा-विदों द्वारा गम्भीर चिन्तन एवं विचार-विमर्श किया जा रहा है। ऐसी परि-स्थिति में शिक्षा के इतिहास के छात्रों और शिक्षा-नौका के कर्णधार के रूप में अध्यापकों के लिए शिक्षा की विभिन्न समस्याओं और उसके क्रमिक विकास का विवेचनात्मक अध्ययन अनिवार्य हो गया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'भारतीय शिक्षा का इतिहास' प्रस्तुत किया जा रहा है।

यों तो शिक्षा के इतिहास पर अनेकों सुन्दर और उपयोगी पुस्तकें प्रका-शित की जा चुकी हैं, परन्तु गत कुछ वर्षों से हमें एक ऐसी पुस्तक का अभाव खटक रहा था जो भारतीय दृष्टि से देश की शिक्षा के विकास का विवेचन तथा मूल्याङ्कन करते हुए, प्रशिक्षण-महाविद्यालयों के छात्राध्यापकों के लिये उपयोगी सिद्ध हो सके। इसी विचार विन्दु को समक्ष रख कर प्रस्तुत पुस्तक की रचना की गई है। हमें आशा है कि छात्राध्यापकों के लिये यह पुस्तक सुविधाजनक और लाभप्रद सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के लेखन में हमें श्री रघुनन्दन सिंह चौहान, एम० ए० एवं विशेष रूप से श्री वी० के० अग्रवाल, एम० ए० से जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिये हम उनके सदैव आभारी रहेंगे।

दयालबाग
१. ६. '६०

बी० पी० जौहरी
पी० डी० पाठक

विषय-सूची

अध्याय १

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत की प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था २, मुस्लिम-युग में शिक्षा-व्यवस्था ३, सारांश ४

अध्याय २

भारतीय शिक्षा का रूप

(१९वीं शताब्दी के आरम्भ में)

प्राथमिक शिक्षा : मद्रास ६, बम्बई ८, बंगाल ९, उच्च शिक्षा : बंगाल ११ मद्रास १२, बम्बई १२, देशी शिक्षा-व्यवस्था : एक टिप्पणी १२, देशी शिक्षा की अवनति के कारण १३, ब्रिटिश शिक्षा-नीति की समीक्षा १४, सारांश १५, टेस्ट क्वेश्चन्स १७

अध्याय ३

आधुनिक शिक्षा का बीजारोपण

भारत में विदेशी व्यापारिक कम्पनियाँ १८, आधुनिक शिक्षा का प्रारम्भ १९, मिशनरियों के शिक्षा-प्रयास : पुर्तगाली १९, फ्रान्सीसी २०, डच २१, डेन २१, अँग्रेज २२, मिशनरियों के शिक्षा-कार्य की समीक्षा २२, सारांश २३, टेस्ट क्वेश्चन्स २४

अध्याय ४

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शिक्षा-प्रयास

(१६००-१८१३)

कम्पनी की प्रारम्भिक नीति (१६००-१७६५) : दान-आश्रित विद्यालय २६, मद्रास २६, बम्बई २७, कम्पनी की शिक्षा-नीति (१७६५-१८१३) : कलकत्ता मदरसा २८, बनारस संस्कृत कॉलिज २९, फोर्ट विलियम कॉलिज ३०, व्यक्तिगत शिक्षा-कार्य ३०, मिशनरियों के शिक्षा एवं धर्म-प्रचार के कार्य ३१, चार्ल्स ग्रांट ३२, १७९३ का आज्ञा-पत्र, भारतीय शिक्षा में प्राच्यवादी नीति ३४, १८१३ का आज्ञा-पत्र ३४, सारांश ३५, टेस्ट क्वेश्चन्स ३६

अध्याय ५

शिक्षा की अनिश्चित नीति

(१८१३-३३)

विवाद के विषय ३७, संचालकों का शिक्षा-आदेश ३८, कम्पनी के उच्च अधिकारियों का मत ३९, तत्कालीन इङ्गलैंड की सामाजिक दशा का प्रभाव ४०, राजकीय शिक्षा-प्रयास (१८१३-३३) : बंगाल ४०, बम्बई ४२, मद्रास ४३, कम्पनी की शिक्षा-नीति की समीक्षा ४५, मिशनरी शिक्षा-प्रयास (१८१३-३३) : बंगाल ४६, बम्बई ४६, मद्रास ४७, अन्य स्थान ४७, मिशनरियों का शिक्षा कार्य : एक टिप्पणी ४७, गैर-मिशनरी शिक्षा-प्रयास (१८१३-३३) : बंगाल ४८, बम्बई ४९, मद्रास ५०, उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली ५०, १८३३ का आज्ञा-पत्र ५०, सारांश ५१, टेस्ट क्वेश्चन्स ५२

अध्याय ६

प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा-विवाद एवं निस्यन्दन-सिद्धान्त

(१८३३-५३)

प्राच्यवादी ५३, पाश्चात्यवादी ५४, मैकॉले का विवरण-पत्र ५४, बैंटिक की स्वीकृति ५७, भारतीय शिक्षा के इतिहास में मैकॉले का स्थान ५८, ऑकलैंड का विवरण-पत्र एवं प्राच्य-पाश्चात्य विवाद का अन्त ६०, ऐडम-योजना की अस्वीकृति ६१, निस्यन्दन-सिद्धान्त ६२, सारांश ६४, टेन्ट क्वेश्चन्स ६५

अध्याय ७

शिक्षा की प्रगति (१८३३-५३)

बंगाल ६६, बम्बई ६८, मद्रास ७१, पश्चिमोत्तर प्रान्त ७२, पंजाब ७४, उच्च शिक्षा ७४, व्यावसायिक शिक्षा : चिकित्सा-शिक्षा ७५, इंजीनियरिंग की शिक्षा ७६, कानून की शिक्षा ७७, अन्य शिक्षा-संस्थायें ७७, उपसंहार ७८, सारांश ७९, टेस्ट क्वेश्चन्स ८०

अध्याय ८

वुड का शिक्षा-घोषणा-पत्र (१८५४)

कम्पनी का नया आदेश-पत्र ८१, घोषणा-पत्र में विवाद-ग्रस्त विषयों का सिंहावलोकन ८२, घोषणा-पत्र की सिफारिशें ८२, घोषणा-पत्र का मूल्यांकन : गुण ९०, दोष ९२, निष्कर्ष ९५, सारांश ९६, टेस्ट क्वेश्चन्स ९८

अध्याय ९

शिक्षा की प्रगति (१८५४-१८८२)

शासन-सत्ता का हस्तान्तरण ९९, इस काल के मुख्य अभिलेख : ऐलेनबरा का आदेश-पत्र १००, स्टैनले का आदेश-पत्र १००, शिक्षा-प्रसार के साधन: शिक्षा-विभागों का संगठन १०१, सहायता-अनुदान प्रणाली १०३, शिक्षा-प्रसार के साधनों का भारतीयकरण १०४, प्राथमिक शिक्षा १०५, प्राथमिक शिक्षा पर व्यय १०८, प्राथमिक शिक्षा के लिए कर १०८, प्राथमिक शिक्षा: एक टिप्पणी १०९, माध्यमिक शिक्षा ११०, उच्च शिक्षा ११२, व्यावसायिक-शिक्षा ११६, विशिष्ट शिक्षा : स्त्रियों की शिक्षा १२०, प्राथमिक शिक्षा १२०, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा १२१, स्त्री प्रशिक्षण १२१, पाठ्य-क्रम १२३, मुसलमानों की शिक्षा १२३, पिछड़ी जातियों एवं हरिजनों की शिक्षा १२५, आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा १२६, सारांश १२६, टेस्ट क्वेश्चन्स १२८

अध्याय १०

भारतीय शिक्षा-आयोग (हन्टर कमीशन) (१८८२-१८८३)

आयोग की नियुक्ति के आधारभूत कारण १३०, आयोग की नियुक्ति १३१, आयोग का कार्य-क्षेत्र एवं उद्देश्य १३१, आयोग की सिफारिशें और सुझाव १३२, प्राथमिक शिक्षा १३३, देशी शिक्षा १३६, माध्यमिक शिक्षा १३७, उच्च शिक्षा १३८, शिक्षा विभाग १३९, सहायता-अनुदान-प्रणाली १४०, शिक्षा के साधनों का भारतीयकरण १४२, मिशनरी प्रयास १४३, धार्मिक शिक्षा १४४, मुस्लिम शिक्षा १४५, स्त्री-शिक्षा १४७, हरिजनों तथा पिछड़ी जातियों की शिक्षा १४९, आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा १४९, भारतीय शिक्षा-आयोग का मूल्यांकन १५०, सारांश १५२, टेस्ट क्वेश्चन्स १५३

अध्याय ११

शिक्षा की प्रगति (१८८२-१९०२)

प्राथमिक शिक्षा १५५, माध्यमिक शिक्षा १५७, उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालय एवं कॉलिज) १५८, स्त्रियों की शिक्षा १६२, मुसलमानों की शिक्षा १६४, हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों की शिक्षा १६४, आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा १६६, व्यावसायिक शिक्षा १६७, सारांश १७१, टेस्ट क्वेश्चन्स १७२

अध्याय १२

लार्ड कर्जन की शिक्षा-नीति (१८९९-१९०५)

कर्जन का भारत आगमन १७३, शिमला-शिक्षा-सम्मेलन १७४, विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षा १७५, भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (१९०२) १७६, भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम (१९०४) १७७, शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (१९०४) १८१, कर्जन और माध्यमिक शिक्षा १८३, कर्जन और प्राथमिक शिक्षा १८६, कर्जन के अन्य शिक्षा-कार्य १८९, भारतीय शिक्षा को कर्जन की देन १९३, सारांश १९५, टेस्ट क्वेश्चन्स १९६

अध्याय १३

राष्ट्रीय आन्दोलन एवं शिक्षा की प्रगति (१९०५-१९२१)

राष्ट्रीय शिक्षा का विकास (१९०५-२१) १९८, राष्ट्रीय शिक्षा की रूप रेखा २००, राष्ट्रीय विद्यालयों का निर्माण २०३, १९२१-२२ में राष्ट्रीय स्कूल और कॉलेज २०६, राजकीय शिक्षा प्रयास (१९०५-२१) २०६, शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (१९१३) २०७, कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (१९१७) २१०, आयोग के सुझाव २११, शिक्षा की प्रगति (१९०५-१९२१) : उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालय एवं कॉलेज) २१६, माध्यमिक शिक्षा (१९०५-१९२१) २१९, प्राथमिक शिक्षा (१९०५-२१) २२२, प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के प्रयास (१९१७-२१) २२३, प्राथमिक शिक्षा की स्थिति (१९०५-१९२१), स्त्रियों की शिक्षा (१९०५-१९२१) २३१, मुसलमानों की शिक्षा (१९०५-१९२१) २३४, हरिजनों की शिक्षा (१९०५-१९२१) २३५, आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा २३८, अपराधी जातियों की शिक्षा २३८, व्यवसायिक शिक्षा (१९०५-१९२१) २३९, सारांश २३९ टेस्ट क्वेश्चन्स २४२।

अध्याय १४

द्वैध शासन में शिक्षा की प्रगति (१९२१–१९३७)

मांटेग-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट २४३, द्वैध-शासन की स्थापना २४४, शिक्षा मंत्रियों की कठिनाइयाँ २४४, हर्टाग समिति २४६, उच्च शिक्षा (१९२१-१९३७) २४७, माध्यमिक शिक्षा (१९२१–३७) २५२, प्राथमिक शिक्षा (१९२१–१९३७) २५६, व्यावसायिक शिक्षा (१९२१–१९३७) २६२, स्त्रियों की शिक्षा (१९२१-१९३७) २६७, बालिका-विद्यालयों एवं छात्राओं की संख्या २६८, मुसलमानों की शिक्षा (१९२१–१९३७) २७०, हरिजनों की शिक्षा (१९२१—१९३७) २७१, अन्य पिछड़ी जातियों की शिक्षा २७३, राष्ट्रीय शिक्षा (१९२१—१९३७) २७४, प्रौढ़-शिक्षा (१९२१—१९३७), २७५, सारांश २७७, टेस्ट क्वेश्चन्स २७९

अध्याय १५

प्रान्तीय स्व-शासन में शिक्षा की प्रगति

(१९३७—१९४७)

प्रान्तीय स्व-शासन की स्थापना २८१, केन्द्रीय सरकार के शिक्षा कार्य (१९३७—४७) २८२, ऐवट व वुड रिपार्ट (१४३६—३७) २८४, उच्च शिक्षा (१९३७—१९४७) २८७, माध्यमिक शिक्षा (१९३७—१९४७) २८८, प्राथमिक शिक्षा (१९३७—१९४७) २९०, व्यावसायिक शिक्षा (१९३७—१९४७) २९२, स्त्रियों की शिक्षा (१९३७—१९४७) २९४, मुसलमानों की शिक्षा (१९३७—१९४७) २९४, हरिजनों की शिक्षा (१९३७-१९४७) २९५, प्रौढ़-शिक्षा (१९३७—१९४७) २९६, सारांश ३०१, टेस्ट क्वेश्चन्स ३०३

अध्याय १६

प्राथमिक शिक्षा की नवीन योजनायें

[विद्या-मन्दिर, बालंटरी स्कूल व बेसिक शिक्षा]

(१९३७—१९४७)

विद्या-मन्दिर योजना ३०५, वालंटरी स्कूलों की योजना ३०६, बेसिक शिक्षा की योजना : महात्मा गांधी के शिक्षा-विषयक विचार ३०७, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन ३०९, जाकिर हुसेन समिति ३०९, योजना की रूपरेखा ३१०, पाठ्य-क्रम ३११, अध्यापन विधि ३१२, अध्यापक ३१२, नामकरण के कारण ३१३, बेसिक शिक्षा के उद्देश्य ३१४, बेसिक-शिक्षा की विशेषतायें ३१६, बेसिक शिक्षा के दोष ३१७, उपसहार ३१८, बेसिक शिक्षा का इतिहास (१९३७—१९४७) : बेसिक शिक्षा (१९३७—४०) ३१९, बेसिक शिक्षा (१९४०—४५) ३२०, बेसिक शिक्षा (१९४५—४७) ३२१, बेसिक शिक्षा एवं केन्द्रीय सरकार ३२१, सारांश ३२३, टेस्ट क्वेश्चन्स ३२४

अध्याय १७

युद्धोत्तर शिक्षा-प्रगति

(सार्जेन्ट-योजना, १९४४)

सार्जेन्ट-रिपोर्ट की सिफारिशें ३२६, सार्जेन्ट-योजना का मूल्यांकन ३३१. सार्जेन्ट योजना एवं केन्द्रीय सरकार ३३५, सारांश ३३६, टेस्ट क्वेश्चन्स ३३७

अध्याय १८

अँग्रेजी शासन-काल में शिक्षा

(सिंहावलोकन)

अंग्रेजी शिक्षा के लाभ ३३९, अंग्रेजी शिक्षा की हानियाँ ३४१, राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विकास में असफलता ३४३, सारांश ३४७, टेस्ट क्वेश्चन्स ३४७

अध्याय १९

प्राथमिक एवं बेसिक शिक्षा

(१९४७—१९५९)

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा ३४९, प्राथमिक शिक्षा पर विहंगम दृष्टिपात ३४९, बेसिक शिक्षा ३५०, बेसिक शिक्षा की प्रगति : पंचवर्षीय योजनाओं में प्रगति ३५१, केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रगति में योग ३५२, राज्यों में प्रगति ३५२, बेसिक शिक्षा-प्रसार के आधार भूत तत्व ३५४, बेसिक शिक्षकों का प्रशिक्षण ३५४, प्रथम पंचवर्षीय योजना में बेसिक अध्यापकों का प्रशिक्षण ३५५, बेसिक शिक्षा की समस्यायें व कठिनाइयाँ ३५६, बेसिक शिक्षा का विहंगावलोकन ३६०, सारांश ३६१, टेस्ट क्वेश्चन्स ३६२

अध्याय २०

माध्यमिक शिक्षा एवं उसके दोष

(१९४७—१९५९)

माध्यमिक विद्यालयों के प्रकार ३६४, केन्द्रीय सरकार एवं माध्यमिक

शिक्षा ३६४, पंचवर्षीय योजनाओं में माध्यमिक शिक्षा ३६५, माध्यमिक शिक्षा का विहंगावलोकन ३६५, माध्यमिक शिक्षा के दोष ३६६, सारांश ३७१, टेस्ट क्वेश्चन्स ३७१

अध्याय २१

माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५२—५३)

(मुदालियर कमीशन)

आयोग की नियुक्ति ३७४, आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य ३७४, आयोग के विचार एवं सुझाव ३७५, माध्यमिक शिक्षा-आयोग का मूल्यांकन ३८५, आयोग के सुझावों का कार्यान्वयन ३८७, सारांश ३८८, टेस्ट क्वेश्चन्स ३८९

अध्याय २२

विश्वविद्यालय-शिक्षा (१९४७—१९५९)

विश्वविद्यालयों के प्रकार ३९०, भारत के विश्वविद्यालय ३९१, विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग (१९५३) ३९३, विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा ३९४, त्रि-वर्षीय डिग्री पाठ्य-क्रम ३९५, विश्वविद्यालय-शिक्षा के दोष ३९५, विभिन्न परीक्षाओं के फल (१९५५-५६) ३९७, विश्वविद्यालय शिक्षा की प्रमुख समस्यायें ४०२, सारांश ४०३, टेस्ट क्वेश्चन्स ४०३

अध्याय २३

विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग (१९४८—४९)

(राधाकृष्णन कमीशन)

आयोग की नियुक्ति ४०५, आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य ४०५, आयोग के विचार एवं सुझाव ४०५, राधाकृष्णन कमीशन का मूल्यांकन ४२३, सारांश ४२४, टेस्ट क्वेश्चन्स ४२६

अध्याय २४

शिक्षा के अन्य क्षेत्र

(१९४७–१९५९)

ग्रामीण उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालय व कॉलेज) ४२७, प्रौढ़ अथवा समाज

शिक्षा (१९४७—५९) ४३०, स्त्री शिक्षा (१९४७–५९) ४३३, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा (१९४७–५९) ४३५, विकलाङ्गों की शिक्षा (१९४७–५९) ४३५, प्राविधिक शिक्षा (१९४७–५९) ४३६, चिकित्सा-शिक्षा (१९४७-५९) ४३८, कृषि-शिक्षा (१९४७-५९) ४३९, शिक्षा की नवीनतम गतिविधियाँ ४४०, सारांश ४४३, टेस्ट क्वेश्चन्स ४४४ ।

अध्याय २५

प्रथम पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

लोकतन्त्र में शिक्षा उद्देश्य ४४५, तत्कालीन भारतीय शिक्षा की स्थिति ४४६, शिक्षा पुनर्गठन के लिए सुझाव ४४८, शिक्षा पर व्यय ४४७, प्राथमिकता ४४७, योजना के शिक्षा-लक्ष्य ४४८, योजना का कार्य-क्रम ४४८, शिक्षा-योजना पर आलोचनात्मक दृष्टि ४५४, सारांश ४५६, टेस्ट क्वेश्चन्स ४५७

अध्याय २६

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

शिक्षा योजना के उद्देश्य ४५८, शिक्षा पर व्यय ४५९, शिक्षा-योजना के लक्ष्य ४५९, प्राथमिक शिक्षा ४६१, बेसिक शिक्षा ४६३, माध्यमिक शिक्षा ४६४, विश्वविद्यालय-शिक्षा ४६६, प्राविधिक शिक्षा ४६७, समाज-शिक्षा ४६९ उच्चतर ग्राम शिक्षा ४६९, अध्यापक ४७०, छात्रवृत्तियाँ ४७०, सांस्कृतिक एवं अन्य कार्य-क्रम ४७१, शिक्षा-योजना पर आलोचनात्मक दृष्टि ४७१, सारांश ४७३, टेस्ट क्वेश्चन्स ४७५

परिशिष्ट

उत्तरप्रदेश में शिक्षा (१९३९-१९५९)

सिंहावलोकन ४७७, प्रथम आचार्य नरेन्द्रदेव समिति (१९३९) ४७८,

पूर्व प्राथमिक अथवा शिशु शिक्षा ४८०, प्राथमिक एवं बेसिक शिक्षा ४८१, जूनियर माध्यमिक शिक्षा ४८४, शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना ४८५, माध्यमिक शिक्षा ४९३, उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना ४९३, द्वितीय आचार्य नरेन्द्रदेव समिति (१९५२–५३) ४९६, उच्च शिक्षा ५०३, शिक्षक-प्रशिक्षण ५०५, प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा ५०७, प्रौढ़ एवं समाज-शिक्षा ५०८, स्त्री-शिक्षा ५१०, विकलांगों की शिक्षा ५११, सारांश ५१२, टेस्ट क्वेश्चन्स ५१४

—: o :—

अध्याय १

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

शिक्षा व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिये अनिवार्य है। भारतवासियों ने शिक्षा के इस गहन महत्त्व को समझ लिया था। इसी के फलस्वरूप भारत के सुदूर अतीत में भी शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली ने विशाल वैदिक साहित्य को सुरक्षित रखा और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में मौलिक विचारकों एवं विद्वानों को जन्म दिया, जिनसे इस देश का मस्तक आज भी यश और गौरव से उन्नत है। "ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम का इतने प्राचीन समय में प्रारम्भ हुआ हो, या जिसने इतना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो। वैदिक युग के साधारण कवियों से लेकर आधुनिक युग के बंगाली दार्शनिक तक, शिक्षकों और विद्वानों का एक निर्विघ्न क्रम रहा है।"[1]

1. "There has been no country where the love of learning ahd so early an origin or has exercised so lasting and powerful an influence. From the simple poets of the Vedic Age to the Bengali philosopher of the present day there has been uninterrputed succession of teachers and scholars." F. W. Thomas : *The History and Prospects of British Education in India*, p. 1.

भारत की प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था

वेदों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि सुदूर अतीत में भी भारत में संगठित रूप में गुरुओं द्वारा शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वेद में कुछ इस प्रकार का संकेत मिलता है, जिससे पाठशाला के समान किसी संस्था का अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि एक स्थान पर यह बताया गया है कि विद्यार्थी दादुरों की भाँति पढ़ते थे। छान्दोग्य उपनिषद् से ज्ञात होता है कि बालक गुरु-गृह में रहकर विद्याध्ययन करते थे। वैदिक साहित्य में इस बात का उल्लेख मिलता है कि वैदिक युग में संघ, परिषद्, चरण, मठ, गुरुकुल एवं आश्रम स्थापित हो गये थे, जहाँ गुरु वैयक्तिक रूप से स्वयमेव शिष्यों को शिक्षा दिया करते थे। ग्रामों में प्राथमिक पाठशालायें भी थीं, जिनका प्रारम्भ श्री मथाई ने ग्रामों के संगठन के समय से माना है।

बौद्ध युग में अनेकों विशाल महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ। बौद्ध-विहारों में शिक्षण-कार्य प्रारम्भ कर दिया गया था, जिसके फल-स्वरूप जन-साधारण को अत्यधिक लाभ हुआ। ब्राह्मणों के घर एवं जैन साधुओं के निवास-स्थान भी शिक्षा के छोटे-छोटे केन्द्र थे।

प्राचीन भारत में पाँचवीं-छठी शताब्दी ईसा तक समाज या राज्य की ओर से शिक्षा प्रदान करने के लिये आधुनिक समय के समान सुसंगठित शिक्षा-संस्थाओं का अभाव था। इस प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं का विकास सर्वप्रथम बौद्ध विद्वानों द्वारा किया गया। नालन्दा इस प्रकार का प्रथम विश्वविद्यालय था।[1] सम्भवतः इसी का अनुकरण करके हिन्दू-मन्दिरों के साथ शिक्षा संस्थाओं का विकास हुआ। बौद्ध-विहारों ने शिक्षा का कार्य लगभग ५०० ई० से प्रारम्भ कर दिया था, पर हिन्दू-मन्दिरों के उच्च शिक्षा के केन्द्र बनने के निश्चित प्रमाण १० वीं शताब्दी से मिलते हैं।

कुछ स्थानों पर विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिये विशिष्ट शिक्षा-संस्थायें थीं। शिक्षा के ऐसे केन्द्र प्रधान रूप से पाँच प्रकार के थे—**राजधानियाँ, तीर्थ-स्थान, बौद्ध-विहार, हिन्दू-मन्दिर और अग्रहार ग्राम।**

वैदिक युग एवं महाभारत-काल में वेद, पुराण, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, कला आदि विषयों का अध्ययन किया जाता था। इनके अतिरिक्त, श्रम-विभाजन पर आधारित समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने वर्ग के अनुसार भी शिक्षा दी जाती थी। उदाहरणार्थ, ब्राह्मणों को धर्म-कर्म की, क्षत्रियों को युद्ध-विद्या

1. B. G. Gokhale : *Ancient India*, p. 142.

और राजनीति की, वैश्यों को वाणिज्य और कृषि-विज्ञान की तथा शूद्रों को विविध साधारण कलाओं और हस्त-कार्य की।

जातक कथाओं से विदित होता है कि बौद्ध-काल में ब्राह्मण और क्षत्रिय युवकों को तीनों वेदों और अठारह शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी। नवविकसित विषय जैसे पुराण, व्याकरण, न्याय, तर्क-शास्त्र, ज्योतिष, साहित्य आदि के अध्ययन पर विशेष रूप से बल दिया जाता था। कालान्तर में चित्र-कला, भवन-निर्माण-कला एवं शिल्प-कला की भी शिक्षा दी जाने लगी थी। इस प्रकार अध्ययन के अनेक विषय थे, पर अध्ययन का आधार धर्म और उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति थी। डा० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार भारत के समस्त युगों में ज्ञान का सम्मान और अनुसरण केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिये नहीं किया गया, अपितु इसको धर्म का एक अङ्ग माना गया। ज्ञान की खोज इसलिये की गई, जिससे कि धर्म के मार्ग पर अग्रसर होकर मोक्ष की प्राप्ति हो सके, और मोक्ष ही जीवन का सर्वोच्च ध्येय था।[1]

मुस्लिम-युग में शिक्षा-व्यवस्था

जिस समय हिन्दू और बौद्ध शिक्षा अपने चरम उत्कर्ष पर थी, भारत पर यवनों के आक्रमण हुए। प्रारम्भिक आक्रमणकारियों ने भारत की प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली। मुहम्मद गोरी प्रथम सुल्तान था जिसने पाठशालाओं को विध्वंस करके मकतबों तथा मदरसों का निर्माण किया।[2] उसके दास, कुतुबुद्दीन ने विक्रमशिला के विश्वविद्यालय को धराशायी कर दिया। उस समय से लेकर सम्राट अकबर के शासन-काल तक मुस्लिम शासकों की शिक्षा की कोई व्यवस्थित प्रणाली नहीं रही। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि प्राचीन शिक्षा-पद्धति अस्त-व्यस्त हो गई, मकतब और मदरसे खुल गये, उनमें कुरान का अध्ययन किया जाने लगा, संस्कृत का स्थान अरबी और फ़ारसी ने ले लिया तथा हिन्दू जनता की शिक्षा के लिये कोई व्यवस्था न रह गई।

मुस्लिम शासन-काल में शिक्षा-संस्थायें प्रधान रूप से दो प्रकार की थीं—**मकतब** और **मदरसे**। प्रायः प्रत्येक मसजिद के साथ एक मकतब या प्रारम्भिक विद्यालय होता था, जहाँ शिक्षक बालकों और बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा देते थे। इन मकतबों में लिखना पढ़ना, गणित, कुरान, प्रसिद्ध धर्मोपदेशकों एवं

1. Radha Kumud Mukerji : *Ancient Indian Education* Prologue XXI.
2. T. N. Siqueira : *The Education of Indin*, p. 10.

सन्तों की जीवन-गाथाएँ तथा ऐतिहासिक कहानियाँ पढ़ाई जाती थीं। मदरसे उच्च शिक्षा-संस्थायें थीं, जिनमें व्याकरण, साहित्य, फ़ारसी, अरबी, रेखागणित, अर्थ-शास्त्र, इतिहास एवं मुस्लिम धर्म की शिक्षा दी जाती थी।[1]

मुस्लिम युग की यह शिक्षा-व्यवस्था औरंगजेब की मृत्यु (१७०७) तक चलती रही। उसके उपरान्त राजसिंहासन के लिये उत्तराधिकारियों में संघर्ष प्रारम्भ हो गया, प्रान्तीय शासकों ने विद्रोह के झण्डे खड़े कर दिये और नादिर-शाह तथा अहमदशाह के विनाशकारी आक्रमण हुए। फलस्वरूप देश में अशांति और अराजकता फैल गई। मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं को राज-कोष से मिलने वाली आर्थिक सहायता बन्द हो गई, जिससे उन पर तीव्र कुठाराघात हुआ। यही दशा हिन्दुओं की शिक्षा-संस्थाओं की हुई, जो मुगल-काल में नागरिक तथा ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यार्थियों के हितार्थ कार्य कर रही थीं।[2] फिर भी मौलवी और पंडित लोग कुछ शिक्षा-संस्थाओं को चलाते रहे, पर धनाभाव के कारण वे उत्तरोत्तर अवनति को प्राप्त हो रही थीं।

सारांश में, १८वीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की काया पर्याप्त रूप से जीर्ण और जर्जर हो गई थी। इसके विपरीत, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से बोझिल आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था पनपने लगी थी।

सारांश

भारत की प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था—प्राचीन भारत में शिक्षा व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिये आवश्यक समझी जाती थी।

वैदिक युग में संघ, परिषद्, चरण, मठ, गुरुकुल एवं आश्रम स्थापित हो गए थे। बौद्ध-युग में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ, बौद्ध-विहारों में भी शिक्षण-कार्य होता था।

पाँचवीं-छठी शताब्दी से सुसंगठित शिक्षा-संस्थाओं का विकास बौद्ध विद्वानों द्वारा किया गया। विभिन्न विशिष्ट स्थानों पर विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिये प्रबन्ध था। शिक्षा के ऐसे केन्द्र पाँच थे—राजधानियाँ, तीर्थ-स्थान, बौद्ध-विहार, हिंदू-मन्दिर और अग्रहार ग्राम।

मुस्लिम-युग में शिक्षा-व्यवस्था—अकबर के समय तक मुस्लिम शासकों

1. Nadvi : *Muslim Thought and Its Source*, p. 117.
2. Mujumdar, Raychaudhari and Datta :*An Advanced History of India* p. 578.

की कोई व्यवस्थित शिक्षा-प्रणाली नहीं थी। आक्रमणकारियों के आगमन से प्राचीन शिक्षा-पद्धति अस्त-व्यस्त हो गई। मुस्लिम शासन-काल में शिक्षा-संस्थायें दो प्रकार की थीं—मकतब और मदरसे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् होने वाले विप्लव एवं बाह्य आक्रमणों के फलस्वरूप शिक्षा का पतन होने लगा।

अध्याय २

भारतीय शिक्षा का रूप

(१९ वीं शताब्दी के आरम्भ में)

१८ वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा का क्या रूप था, इसका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिये उपयुक्त साधन उपलब्ध नहीं है। १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजों द्वारा प्रचलित देशी शिक्षा-व्यवस्था की जाँच की गई। केवल मद्रास, बंगाल और बम्बई प्रान्तों में जाँच किये जाने के कारण, इस का सम्बन्ध भारत के अल्पांश से है; तथापि इतिहास के विद्यार्थी के लिये इसका महत्त्व कम नहीं है। अतः हम इस पर नीचे प्रकाश डाल रहे हैं।

प्राथमिक शिक्षा

मद्रास

देशी शिक्षा सम्बन्धी सर्व प्रथम जाँच मद्रास के गवर्नर, सर टामस मुनरो (Sir Thomas Munro) द्वारा १८२२ में करवाई गई। इस जाँच का विवरण स्वयं मुनरो ने दिया है,[1] जिसे हम संक्षेप में नीचे दे रहे है : —

1 *Selections frm the Records of the Governmen' of Madras* No. II, Appendix E. Quoted by Nurullah and Naik: *A History of Education in India*, p. 4.

विद्यालयों एवं छात्रों की संख्या—इतिहासकार मिल के अनुसार मद्रास के प्रत्येक गाँव में एक प्राइमरी स्कूल था[1]। परन्तु इन स्कूलों में छात्रों की संख्या बहुत कम थी। बिल्लारी और कनाड़ा जिलों के स्कूलों में छात्रों की औसत संख्या १२ थी। विद्यार्थियों की संख्या कम होने का कारण यह था कि अनेकों बच्चे घर पर पढ़ते थे। केवल मद्रास नगर में उनकी संख्या २६,९०३ थी, जो विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वालों की अपेक्षा पाँच गुने से भी अधिक थी।

विद्यालयों के प्रकार—सभी विद्यालयों का पाठ्य-क्रम समान नहीं था। कुछ विद्यालय तामिल, तैलगू, कन्नड़, मराठी, अरबी, फारसी आदि की शिक्षा देते थे। २३ विद्यालय ऐसे थे जिनमें संस्कृत की और १ ऐसा था जिसमें अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी।

पाठ्य-विषय—प्राथमिक विद्यालयों के मुख्य पाठ्य-विषयों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं था। इन विषयों में रोचक कविताओं और उपदेशात्मक कहानियों को स्मरण करना, पांडुलिपियों को पढ़ना, दस्तावेज तैयार करना, और गणित के साधारण प्रश्नों का हल करना था।

विद्यालय-प्रवेश एवं शिक्षा-काल—बालक पाँच वर्ष की आयु में विद्यालय में प्रवेश करता था, और १४ या १५ वर्ष की आयु में उसे छोड़ता था। वहाँ जाने से पूर्व उसके घर पर गणेश जी की पूजा की जाती थी और एक समारोह का आयोजन किया जाता था। जब बालक विद्यालय में प्रथम बार पहुँचता था तब उसके हाथ पर विद्या की देवी सरस्वती का नाम लिखा जाता था। उसके बाद वह पढ़ना प्रारम्भ करता था।

विद्यालयों का कार्य-क्रम एवं दण्ड-विधान—विद्यालयों का कार्य-क्रम ६ बजे प्रातः प्रारम्भ होता था। सब बालकों के आ जाने पर सरस्वती-वन्दना होती थी। उसके बाद विद्यार्थी अध्ययन-कार्य में जुट जाते थे। विद्यालयों का दण्ड-विधान बहुत कठोर था। अपराधी बालकों के लिये दण्ड निश्चित थे। इनमें कोड़े लगाना, बेंत मारना, हाथ से लटकाना तथा बैठक कराना था। देर से आने वाले विद्यार्थी को स्वास्थ्य-वर्धक दण्ड मिलता था।

शिक्षण-विधि—शिक्षण-विधि का प्रमुख आधार बालवर-प्रणाली (Monitorial system) थी। विद्यालय के समस्त विद्यार्थियों को, उनकी योग्यतानुसार वर्गों में बाँट दिया जाता था। कम योग्य बच्चों को अधिक योग्य बच्चे पढ़ाते थे। बालक सर्व प्रथम लिखना सीखता था। वह पहिले बालू पर अक्षरों को उँगली से लिखने का अभ्यास करता था। उसके बाद वह उन्हें

2. Mill : *History of British India*, Vol. I, p. 562.

पत्तों पर, और फिर तख्ती पर लिखने का अभ्यास करता था। अक्षरों का बोध हो जाने के बाद, वह मात्रायें, संयुक्त अक्षर, स्वर और व्यंजन का ज्ञान प्राप्त करता था, तथा पशुओं, स्थानों, व्यक्तियों आदि के नाम लिखने का अभ्यास करता था। लिखने और पढ़ने का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद, वह गणित सीखता था। पहाड़े, पौवे, अद्धे और सवैये आदि को विद्यार्थी एक साथ बोल-बोल कर याद करते थे।

शिक्षकों की दशा—शिक्षक निर्धन, अयोग्य और अशिक्षित थे। परिणाम स्वरूप शिक्षा का स्तर निम्न था। योग्य व्यक्ति शिक्षक नहीं बनना चाहते थे, क्योंकि उन्हें साधारणतः ६ या ७ रुपये मासिक वेतन मिलता था। यह वेतन इतना कम था कि इसमें उन्हें जीवन निर्वाह करना कठिन हो जाता था।

बम्बई

बम्बई के गवर्नर एल्फिस्टन (Elphinstone) ने १० मार्च १८२४ को प्रान्त के समस्त ज़िलाधीशों को आदेश दिया कि वे देशी शिक्षा की जाँच करके अपनी रिपोर्ट भेजें। ये रिपोर्टें १८२४-२५ में प्राप्त हुईं, पर उनसे प्रान्त की शिक्षा का पूर्ण ज्ञान न हो सका। अतः १८२९ में जिला-न्यायाधीशों से दूसरी रिपोर्ट माँगी गई। इन रिपोर्टों के आधार पर बम्बई प्रान्त की प्राथमिक शिक्षा का विवरण नीचे दिया जा रहा है[1] :—

विद्यालयों एवं छात्रों की संख्या—विद्यालयों और छात्रों की संख्या बहुत कम थी। पूरे प्रान्त की ४६,८१,७३५ जनसंख्या के लिये केवल १,७०५ विद्यालय थे, जिनमें ३५,१५३ विद्यार्थी पढ़ते थे। प्रत्येक विद्यालय में छात्रों की औसत संख्या १५ थी; और न्यूनतम २, तथा उच्चतम १५० थी। इन आँकड़ों में उस समय घर-घर प्रचलित व्यक्तिगत शिक्षा के आँकड़े सम्मिलित नहीं थे।

गवर्नर की कौंसिल के एक सदस्य, प्रेण्डरगस्ट के मतानुसार ऐसा कोई भी छोटा या बड़ा गाँव नहीं था, जहाँ कम से कम एक स्कूल नहीं था। बड़े गाँवों में उससे अधिक तथा नगरों में और भी अधिक स्कूल थे, जिनमें लिखने, पढ़ने और गणित की सस्ती शिक्षा दी जाती थी।[2]

1. For a detailed study of the Reports, please refer to R.V. Parulekar : *A Source Book of History of Education in the Bombay Province*, Part I, Survey of Indigenous Education (1820–30)

2. G. L. Prendergast's Evidence of 1832.

विद्यालयों के भवन—विद्यालयों के लिए प्रायः पृथक् भवन नहीं थे। शिक्षण-कार्य मन्दिरों, शिक्षकों के गृहों, या सम्मानित पुरुषों के निवास-स्थानों पर किया जाता था।

शिक्षकों की दशा—अधिकांश शिक्षक ब्राह्मण थे। वे अध्यापन-कार्य परम्परागत सम्मान के कारण, न कि आर्थिक लाभ के लिये करते थे। उनका मासिक वेतन ३ रुपये से ५ रुपये तक था। इस कम वेतन की पूर्ति कुछ सीमा तक अन्य प्रकार से हो जाती थी। अपनी जाति के सहभोजों में उन्हें आमन्त्रित किया जाता था। त्यौहारों पर उन्हें उपहार, और अपने विद्यार्थियों के विवाह अवसरों पर दक्षिणा मिल जाती थी। शिक्षक साधारणतः अयोग्य थे।

विद्यालयों के विद्यार्थी एवं शिक्षा-काल—हरिजनों के अतिरिक्त सभी जातियों के विद्यार्थी विद्यालयों में पढ़ सकते थे। विद्यालयों में ब्राह्मण छात्रों की संख्या लगभग ३० प्रतिशत थी। शिक्षा का काल बालकों की ६ वर्ष की आयु से लेकर १४ वर्ष की आयु तक होता था।

पाठ्य-विषय एवं दण्ड-विधान—पाठ्य-विषयों में लिखना, पढ़ना और साधारण गणित सम्मिलित थे। विद्यार्थियों को पहाड़े, अद्धे आदि रटने पड़ते थे जिससे कि वे गणित के प्रश्नों को मौखिक रूप से कर सकें। दण्ड-विधान कठोर था। छात्रों को अनुशासन में रखने के लिये प्रायः कठोर दण्ड दिया जाता था।

शिक्षण-विधि एवं शिक्षण-सामग्री—पुस्तकों का सर्वथा अभाव था। अतः शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी। मद्रास के समान बम्बई में भी बालचर-प्रणाली प्रचलित थी। विद्यालयों की आर्थिक दशा अच्छी न होने के कारण शिक्षण-सामग्री का अभाव था। फलस्वरूप शिक्षण-कार्य सफलतापूर्वक नहीं हो पाता था, और शिक्षण का स्तर निम्न होना स्वाभाविक था।

बंगाल

बंगाल प्रान्त में शिक्षा सम्बन्धी जाँच राज-कर्मचारियों द्वारा न की जाकर, विलियम ऐडम (William Adam) नामक एक मिशनरी द्वारा की गई थी। इस विदेशी धर्म-प्रचारक को संस्कृत और बंगला का अध्ययन करने, तथा राजा राममोहनराय के सम्पर्क में आने से भारतीय शिक्षा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। लार्ड विलियम बेंटिक (William Bentinck) से उसने इस देश की शिक्षा-व्यवस्था की जाँच करने की आज्ञा प्राप्त की, और १८३५ से १८३८ तक उसने तीन रिपोर्टें[1] सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। इन रिपोर्टों का संक्षिप्त

1. *Adam's Reports*—Calcutta Edition.

वर्णन नीचे दिया जा रहा है :—

ऐडम की प्रथम रिपोर्ट—ऐडम की प्रथम रिपोर्ट संक्षिप्त है, और उसमें शिक्षा सम्बन्धी समस्त उपलब्ध आँकड़े दिये गये हैं। इस रिपोर्ट के आधार पर बसु ने लिखा है : "प्राथमिक शिक्षा जनसाधारण के लिये थी। यह एक ऐसा विशाल आयोजन था, जिसमें असंख्य प्रचलित पाठशालायें देश भर में फैली हुई थीं। प्रायः प्रत्येक ग्राम में अपना स्कूल या पाठशाला थी। कहा जाता है कि १८३५ के आस-पास, केवल बंगाल में इस प्रकार की एक लाख पाठशालायें थीं।"[1]

ऐडम की रिपोर्ट में दिये हुये आँकड़ों के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। सर फिलिप हरटॉग (Sir Philip Hartog) ने इनको केवल कल्पना माना है। इसके विपरीत वार्ड (Ward), प्रांजपे (Pranjpe) और पारूलेकर के मतानुसार ये आंकड़े पूर्ण रूप से सत्य है।

ऐडम की द्वितीय रिपोर्ट—ऐडम की द्वितीय रिपोर्ट अधिक विस्तृत है। इसमें राजशाही जिले में थाना नटौर की शिक्षा सम्बन्धी जाँच का वर्णन है। इस थाने की जनसख्या १,९५,२९६, और ग्रामों की संख्या ४८५ थी। इतनी विशाल जनसंख्या के लिये केवल २७ प्राइमरी स्कूल थे, जिनमें २६२ विद्यार्थी पढ़ते थे। इन स्कूलों में बंगला के १०, फ़ारसी के ४, अरबी के ११ और बंगला तथा फ़ारसी के २ स्कूल थे। पाठशालाओं की शिक्षा की अपेक्षा व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देने का प्रचार कहीं अधिक था, क्योंकि २३८ ग्रामों में १,५८८ परिवार ऐसे थे जो बच्चों को घर पर ही शिक्षा देते थे। बालक साधारणतः ८ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक पाठशालाओं में पढ़ते थे। अध्यापकों का औसत मासिक वेतन ५ रुपया ८ आना था। स्त्री शिक्षा का पूर्ण अभाव था।

ऐडम की तृतीय रिपोर्ट—ऐडम की तृतीय रिपोर्ट प्रथम दो रिपोर्टों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें मुर्शिदाबाद, वीरभूम, बर्दवान, दक्षिणी बिहार और तिरहुत जिलों के शिक्षा सम्बन्धी आंकड़े दिये गये हैं। इन जिलों मे २,५६७ विद्यालय थे, जिनमें बंगला, हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी और अरबी की

1. The elementary system was intended for the masses. It was a widespread system consisting of numerous primary schools scattered all over the countryside. Practically every village had its primary school, its pathshala. In Bengal alone, it is said, there were about the year 1835 a hundred thousand such pathshalas." A. N. Basu : *Education in Modern India* p. 5.

शिक्षा दी जाती थी। इनमें ८ विद्यालय अंग्रेजी की शिक्षा और ६ बालिकाओं शिक्षा के लिये थे, जिनमें क्रमशः २४२ लड़के और २१४ लड़कियाँ पढ़ रही थीं।

विद्यालयों के पास आय के निश्चित साधन नहीं थे। जो कुछ धन इन्हें ज़मींदारों, ताल्लुकेदारों आदि से मिल जाता था, उसी से ये चलते थे। कुछ धनी व्यक्ति अपने घरों पर ही पाठशालायें खुलवा देते थे। हिंदू विद्यार्थी प्रायः बंगला, हिन्दी और संस्कृत का, तथा मुसलमान फ़ारसी और अरबी का अध्ययन करते थे। स्त्री-शिक्षा का प्रचार केवल कुछ उदार विचार वाले और धनी हिन्दू परिवारों में था। मुसलमानों में स्त्री-शिक्षा को अशुभ समझा जाता था।

उच्च शिक्षा

बंगाल

ऐडम की तृतीय रिपोर्ट में बंगाल में उच्च शिक्षा का उल्लेख किया गया है। बर्द्धवान जिले में संस्कृत की उच्च शिक्षा के लिये १६० विद्यालय थे, जिनमें १,३५८ विद्यार्थी पढ़ते थे। इन विद्यालयों में से दो को बर्दवान के राजा का संरक्षण प्राप्त था। शेष विद्यालय ग्रामों के सम्मानित व्यक्तियों से चन्दा प्राप्त करके या स्वयं शिक्षकों द्वारा अपने निवास-स्थानों पर चलाये जाते थे।

इन विद्यालयों में व्याकरण, शब्द-कोष-रचना, अलङ्कार-शास्त्र, औषधि-शास्त्र, तर्क-शास्त्र, साहित्य, कानून, वेदान्त, पुराण और ज्योतिष की शिक्षा दी जाती थी। एक विद्यालय में एक ही शिक्षक होता था। शिक्षक ब्राह्मण तथा अन्य जातियों के भी थे। उनकी आर्थिक दशा शोचनीय थी, क्योंकि उनका वार्षिक वेतन लगभग ६३ रुपया ४ आना और ५ पाई था।

संस्कृत विद्यालयों के समान फ़ारसी और अरबी की उच्च शिक्षा के लिये भी विद्यालय थे। ऐडम के अनुसार दक्षिणी बिहार जिले में इस प्रकार के २६१ विद्यालय थे, जिनमें १,४८६ विद्यार्थी (८६७ हिन्दू और शेष मुसलमान) पढ़ते थे। इन विद्यालयों में से २७६ में फ़ारसी और १२ में अरबी की शिक्षा दी जाती थी। केवल २ फ़ारसी और २ अरबी के विद्यालयों के लिये भवन थे; शेष सम्मानित व्यक्तियों या शिक्षकों के मकानों की चौपालों या बरामदों में लगा करते थे।

जितनी संख्या विद्यालयों की थी, उतनी ही अध्यापकों की थी। एक हिन्दू अध्यापक के अतिरिक्त शेष सब मुसलमान थे। दो शिक्षक अवैतनिक रूप से कार्य करते थे और दो अपने विद्यार्थियों के लिये भोजन का भी प्रबंध करते थे। शेष शिक्षक विद्यार्थियों से शुल्क एवं अन्य व्यक्तियों से भोजन तथा

उपहार प्राप्त करके अपने जीवन का निर्वाह करते थे। शिक्षकों की औसत मासिक आय ५ रु० ८ आ० थी। ये सभी अध्यापक योग्य थे और इनमें से कुछ लेखक भी थे।

मद्रास

मद्रास के उच्च शिक्षा के विद्यालयों की रूप-रेखा भिन्न थी। इनमें एक निश्चित स्तर तक शिक्षा-प्राप्त विद्यार्थियों को ही प्रवेश मिलता था। इन विद्यालयों के शिक्षक सेवा-भावना से प्रेरित होकर, न कि आर्थिक लाभ के लिये, अध्यापन-कार्य करते थे। कुछ विद्यालय जमींदारों और ताल्लुकेदारों के संरक्षण में चलते थे। वे अध्यापकों को उनके जीवन-निर्वाह के लिये दानस्वरूप कुछ भूमि दे देते थे।

पाठ्य-विषयों में साहित्य, अलंकार-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र और ज्योतिष के अध्ययन को प्रधानता दी जाती थी। उच्च शिक्षा के अधिकारी ब्राह्मण और व्यवसायिक व्यक्ति ही समझे जाते थे। ब्राह्मणों और उच्च जातियों में स्त्री-शिक्षा का प्रचार नहीं था।

बम्बई

शिक्षा-सम्बन्धी जाँच की रिपोर्टों के अनुसार बम्बई प्रान्त में उच्च शिक्षा का समुचित प्रबन्ध था। हिन्दुओं को उच्च शिक्षा देने के लिये अहमदनगर में १६ और पूना नगर में १६४ विद्यालय थे। अन्य स्थानों में भी इस प्रकार के विद्यालय थे।

मुसलमानों की उच्च शिक्षा के लिये सूरत में एक प्रसिद्ध विद्यालय था। इसको चलाने में ३२,००० रुपया वार्षिक व्यय होता था, जो दानस्वरूप प्राप्त होता था। इसकी स्थापना बोहरा जाति के लड़कों को अरबी की शिक्षा देने के लिये की गई थी। जाँच के समय इसमें १२५ बोहरा छात्र तथा भारत के विभिन्न भागों से आने वाले अन्य जातियों के विद्यार्थी भी पढ़ रहे थे। "इस विद्यालय पर न केवल बोहरा लोग, अपितु पश्चिमी भारत के समस्त व्यक्ति अभिमान करते थे।"[1]

देशी शिक्षा-व्यवस्था : एक टिप्पणी

देशी शिक्षा-व्यवस्था के उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्राथमिक और उच्च शिक्षा का उचित प्रबन्ध था और वह इस देश की प्राचीन परम्पराओं पर आधारित थी। प्रारम्भिक शिक्षा के विद्यालय अति विशाल संख्या में सम्पूर्ण देश में फैले हुए

1. R. V. Parulekar : *op. cit.*, p. xxiv.

थे। वे किसी वर्ग-विशेष के लिये न होकर जन-साधारण की शिक्षा की माँग की पूर्ति कर रहे थे। यही बात उच्च शिक्षा के विद्यालयों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। यद्यपि उनकी संख्या प्राथमिक विद्यालयों के अनुपात में कम थी, तथापि वे विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा सफलतापूर्वक प्रदान कर रहे थे। दोनों प्रकार के विद्यालयों में कुछ बातें समान थीं :—उनकी और उनके शिक्षकों की आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी; उनके पास अपने भवन नहीं थे; उनमें शिक्षण-सामग्री का अभाव था; उनमें से अधिकांश की शिक्षा का स्तर निम्न था; और उनकी उत्तरोत्तर अवनति हो रही थी।

देशी शिक्षा की अवनति के कारण

१९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में देशी शिक्षा की उत्तरोत्तर अवनति के कारण निम्नलिखित थे :—

१—१८२३ तक भारत के अधिकांश भाग पर अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हो चुकी थी और उन्हें अपने राज्य का संचालन करने के लिये अंग्रेजी जानने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ने लगी थी। अतः उन्होंने देशी शिक्षा के प्रति ध्यान न देकर, अँग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहित करने का अथक प्रयास किया। देशी शिक्षा के प्रति शासकों की उदासीनता का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि देशी शिक्षा पतन की ओर अग्रसर हो गई।

२—भारत की निर्धन जनता ने अँग्रेजी के अध्ययन में अपना प्रत्यक्ष हित देखा। इसका अध्ययन करके राजपद प्राप्त हो सकता था और जीविकोपार्जन की समस्या को भी हल किया जा सकता था। अतः लोगों ने अंग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

३—अंग्रेजी शिक्षा-प्रसार के प्रारम्भिक वर्षों में ऐसे अनेक विद्यालय थे, जहाँ निःशुल्क शिक्षा के साथ-साथ, पाठ्य-पुस्तकों आदि की भी सुविधा दी जाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि निर्धन भारतवासी अंग्रेजी शिक्षा के प्रति आकर्षित होने लगे।

४—उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने से असंख्यों कारीगर बेकार हो गये थे। अपनी आर्थिक दुर्दशा में उन्होंने अंग्रेजी की निःशुल्क शिक्षा से लाभ उठाया, जिससे कि उनके बच्चे धनोपार्जन करके अपने जीवन का निर्वाह कर सकें।

५—अनेकों देशी राज्यों के समाप्त होने से देशी शिक्षा-संस्थाओं को आर्थिक सहायता मिलनी बन्द हो गई। फलस्वरूप उनका पतन अवश्यम्भावी हो गया।

६—न्यून वेतन के कारण योग्य व्यक्ति देशी शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षक का कार्य नहीं करते थे। परिणामस्वरूप शिक्षा का स्तर निम्न हो गया और जनता को ऐसी शिक्षा के प्रति कोई रुचि न रह गई।

७—अदीक्षित होने के कारण देशी शिक्षा-संस्थाओं में अध्यापक शिक्षण-कार्य को कुशलतापूर्वक नहीं कर पाते थे। इसके विपरीत, अंग्रेजों ने प्रशिक्षण-विद्यालय खोले और छात्रवृत्तियाँ देकर योग्य व्यक्तियों को उनमें अध्ययन करने के लिये प्रोत्साहित किया।

८—उच्च वर्ग के व्यक्तियों ने कई कारणों से अपने बच्चों को अंग्रेजी की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। जनसाधारण ने उनका अनुकरण किया। फलस्वरूप देशी शिक्षा-संस्थाओं में विद्यार्थियों की संख्या कम होने लगी।

९—औद्योगिक क्रान्ति के कारण जनता विज्ञान के नवीन विषयों की ओर आकर्षित होने लगी थी। अंग्रेजी शिक्षा-संस्थाओं ने अपने पाठ्य-क्रमों में इन विषयों को स्थान दिया, पर देशी शिक्षा-संस्थाओं ने अपनी रूढ़िवादिता के कारण ऐसा नहीं किया। परिणामस्वरूप जनता देशी शिक्षा-संस्थाओं से असंतुष्ट हो गई।

ब्रिटिश शिक्षा-नीति की समीक्षा

उपरोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, हम सरलता पूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि देशी शिक्षा का पतन ब्रिटिश शिक्षा नीति के परिणामस्वरूप हुआ। अंग्रेजों की स्वार्थ-परायणता, धन-लोलुपता एवं व्यापारिक एकाधिकार और राजनीतिक स्वामित्व को चिरस्थायी बनाये रखने की अभिलाषा ने, आर्थिक संकटों से आवृत्त देशी शिक्षा का गला घोंट दिया। यदि तत्कालीन देशी-शिक्षा को राज्य का संरक्षण मिल जाता, तो निस्संदेह उसमें नव-जीवन का संचार हो जाता। सुलभ और सस्ती होने के कारण, वह पहले की ही तरह जनसाधारण की आवश्यकताओं की पूर्ति करती रहती। इतना ही नहीं, अपितु उसके अवशेषों पर राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के भवन का निर्माण करना भी सम्भव हो जाता।

बसु के मतानुसार देशी शिक्षा-संस्थायें अपने दीर्घकालीन अस्तित्व के कारण व्यक्तियों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की अंग बन गई थीं।[1] ऐडम ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि देशी शिक्षा-संस्थायें ही भारतवासियों

1. A. N. Basu : *op. cit.*, p. 2.

के चारित्रिक उत्थान के लिये सब से अधिक उपयुक्त साधन हैं। उसने इस बात की सिफारिश की थी कि भारत में शिक्षा की उन्नति के समस्त प्रयास तत्कालीन देशी शिक्षा-संस्थाओं की उन्नति पर आधारित होने चाहिये। मुनरो एल्फिस्टन, टॉमसन (Thomason) और लेटनर (Leitner) ने देशी शिक्षा-संस्थाओं के पुनरुत्थान के लिये अनेक योजनायें तैयार कीं, पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के डाइरेक्टरों और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। "यदि किसी देश को दास रखना है, तो उसके साहित्य और संस्कृति का विनाश कर देना चाहिये।" अपनी शिक्षा-नीति के निर्माण में भारत के अंग्रेज़ शासकों ने इस सिद्धान्त का अक्षरशः पालन किया। देश के लिए इस के परिणाम कितने विनाशकारी सिद्ध हुए, यह सर्व विदित है।

सारांश

१९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजों द्वारा प्रचलित देशी शिक्षा-व्यवस्था की जांच मद्रास, बंगाल और बम्बई प्रान्तों में की गई।

प्राथमिक शिक्षा—मिल के अनुसार मद्रास के प्रत्येक ग्राम में एक प्राइमरी स्कूल था। मुनरो के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के विद्यालयों में छात्र-संख्या बहुत कम थी। बालक पाँच वर्ष की आयु में विद्यालय में प्रवेश करता था। दण्ड-विधान कठोर था। बालक पहिले बालू और फिर लकड़ी की पट्टी पर लिखना सीखते थे। पाठ्य-विषयों में कवितायें, कहानियाँ, साधारण गणित आदि थे। कुछ विद्यालयों में तामिल, तैलगू, संस्कृत, मराठी, ज्योतिष, अर्थ-शास्त्र, तर्क-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र की भी शिक्षा दी जाती थी। शिक्षक अयोग्य और अदीक्षित थे। उनका वेतन ५ या ७ रुपये मासिक था।

बम्बई में विद्यालयों और छात्रों की संख्या बहुत कम थी। विद्यालयों के प्रायः पृथक् भवन नहीं थे। अधिकांश शिक्षक ब्राह्मण थे और उनका वेतन ३ रुपये से ५ रुपये तक था। शिक्षक साधारणतः अयोग्य थे। पाठ्य-विषयों में लिखना, पढ़ना और गणित सम्मिलित थे। दण्ड-विधान कठोर था। शिक्षण सामग्री का अभाव था।

ऐडम की प्रथम रिपोर्ट के अनुसार बंगाल में प्रत्येक १०० व्यक्तियों के लिये एक ग्रामीण पाठशाला थी। ऐडम की द्वितीय रिपोर्ट में थाना नटौर की शिक्षा का वर्णन है। वहाँ २७ प्राथमिक पाठशालायें थीं। कुछ परिवार अपने घरों पर ही बच्चों को शिक्षा देते थे। अध्यापकों का

औसत मासिक वेतन ५ रुपया ८ आना था। ऐडम की तृतीय रिपोर्ट में मुर्शिदाबाद, वीरभूम, वर्दवान, दक्षिणी बिहार और तिरहुत के शिक्षा सम्बन्धी आँकड़े दिये गये हैं। इन पाँचों स्थानों में २,५६७ विद्यालय थे, जिनमें बंगला, हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी, और अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी।

उच्च शिक्षा—बंगाल में हिन्दुओं की उच्च शिक्षा के लिये बर्दवान में १९० विद्यालय थे। जिनमें १,३५८ विद्यार्थी पढ़ते थे। अध्यापकों का वार्षिक वेतन लगभग ६३ रुपया ४ आना और ५ पाई था। अधिकांश विद्यालय सम्मानित व्यक्तियों से प्राप्त चन्दे से चलते थे। मुसलमानों की उच्च शिक्षा के लिये दक्षिणी बिहार जिले में २९१ विद्यालय थे। अधिकांश शिक्षक अपना जीवन-निर्वाह विद्यार्थियों से शुल्क और अन्य व्यक्तियों से भोजन तथा उपहार प्राप्त करके करते थे। अध्यापकों की औसत मासिक आय ५ रुपया ८ आना थी।

मद्रास में हिन्दुओं को उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों की संख्या पर्याप्त थी। मुसलमानों की उच्च शिक्षा-संस्थाओं का कोई उल्लेख नहीं है।

बम्बई में हिन्दुओं को उच्च शिक्षा देने के लिये अहमदनगर में १६ और पूना नगर में १६४ विद्यालय थे। बोहरा जाति के मुसलमान बालकों को शिक्षा देने के लिये सूरत में एक विद्यालय था।

देशी शिक्षा की अवनति के कारण—(१) अंग्रेजों की देशी शिक्षा के प्रति उदासीनता; (२) शासकों का अंग्रेजी को प्रोत्साहन देना; (३) जनसाधारण का निर्धनता और बेकारी के कारण अंग्रेजी की निःशुल्क शिक्षा की ओर आकर्षित होना; (४) देशी नरेशों के संरक्षण की समाप्ति; (५) अंग्रेजी स्कुलों की अपेक्षादेशी शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षा का निम्न स्तर; (६) देशी विद्यालयों के अदिक्षित शिक्षकों की अपेक्षा अंग्रेजी स्कूलों के शिक्षकों का अधिक योग्य होना; (७) अध्यापकों की दयनीय आर्थिक स्थिति; (८) देश के नेताओं का अंग्रेजी शिक्षा को अपनाना; (९) औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ।

ब्रिटिश शिक्षा-नीति—देशी शिक्षा-व्यवस्था का पतन ब्रिटिश शिक्षा-नीति के कारण हुआ। अंग्रेजों ने अपनी भाषा की शिक्षा को प्रोत्साहित किया और देशी शिक्षा को संरक्षण नहीं दिया, जिससे वह अपनी मौत मरने के लिये बाध्य हो गई। देशी शिक्षा-व्यवस्था में राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति का स्थान ग्रहण करने की क्षमता थी। ऐडम, मुनरो, एल्फिस्टन, टॉमसन और लेटनर के देशी शिक्षा के पुनरुत्थान के प्रस्तावों पर ध्यान नहीं दिया गया। भारत को देशी शिक्षा और इसके फलस्वरूप उसके साहित्य और संस्कृति का विनाश करके ही अंग्रेज इस देश पर अपनी राजनीतिक सत्ता को चिरस्थायी रख सकते थे। अतः उन्होंने ऐसा ही किया।

TEST QUESTIONS

1. Give a brief account of the character and extent of the indigenous system of education in India at the beginning of the nineteenth century.
2. "It is a common belief among Western scholars that the indigenous system of education in India had hardly anything of value in it ; and that the British officers were fully justified in allowing it to die." Discuss.
3. What were the causes of the decay of the indigenous system of education in India ? How far was the British educational policy responsible for it ?

अध्याय ३

आधुनिक शिक्षा का बीजारोपण

भारतीय कला की कृतियाँ अनादि काल से पश्चिमी देशों की मंडियों में सुविख्यात थीं। ये कृतियाँ प्राचीन स्थल-व्यापार-मार्गों से यूरोप पहुँचती थीं, पर तुर्कों की दक्षिण-पश्चिम एशिया और दक्षिण-पूर्वी-यूरोप-विजय के फल-स्वरूप व्यापारिक यातायात के ये प्राचीन मार्ग बन्द हो गये। इसका यूरोप की मंडियों पर बुरा प्रभाव पड़ा। अतः भारत तक पहुँचने वाले जल-मार्ग की खोज आवश्यक हो गई। इस कार्य में पुर्तगाली लोगों ने अगुवाई की और मई १४९८ में वास्को ड गामा (Vasco da Gama) ने भारत पहुँच कर कालीकट के समुद्र तट पर लंगर डाला।

भारत में विदेशी व्यापारिक कम्पनियाँ

पुर्तगालियों ने भारत के साथ व्यापार करने के एकाधिकार का निर्विघ्न उपभोग लगभग सौ वर्ष तक किया। उनके व्यापारिक लाभ ने यूरोप के अन्य देशवासियों के हृदय में उसमें साझीदार बनने की अभिलाषा को जन्म दिया। फलस्वरूप भारत से व्यापार करने के लिए १७ वीं शताब्दी में अनेकों कम्पनियों का निर्माण हुआ। इनमें इङ्गलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी, डच ईस्ट इण्डिया

कम्पनी और फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी प्रमुख थीं। डेन भी व्यापार के विचार से भारत आये।

इन सब कम्पनियों का उद्देश्य समान होने के कारण, इनमें संघर्ष होना स्वाभाविक था। यह संघर्ष त्रिमुखी था। पुर्तगालियों तथा डचों के बीच, पुर्तगालियों तथा अंग्रेजों के बीच और डचों तथा अंग्रेजों के बीच।[1] इस संघर्ष से हमारा सरोकार नहीं है। केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि अन्त में अंग्रेज विजयी हुए।

आधुनिक शिक्षा का प्रारम्भ

यूरोप के व्यापारियों के कुछ समय पश्चात् वहाँ के ईसाई मिशनरियों ने इस देश में प्रवेश किया। इन मिशनरियों का प्रमुख उद्देश्य यहाँ के निवासियों में अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार करना था, न कि शिक्षा-संस्थायें स्थापित करना। फिर उन्होंने ऐसा क्यों किया? ऐलेन (Allen) के अनुसार इसके दो कारण थे। प्रथम, यहाँ के निवासियों को शिक्षित करके मिशनरी उन्हें अपने धार्मिक सिद्धान्तों से पूर्ण रूप से परिचित करा सकते थे। द्वितीय, शिक्षा-संस्थायें उन्हें भारतवासियों से सम्पर्क स्थापित करने और धर्म का प्रचार करने का अवसर देती थीं।[2] अतः मिशनरियों ने शिक्षा-संस्थायें स्थापित कीं और उनमें यूरोपीय ढंग पर शिक्षा की व्यवस्था की।

मिशनरियों के शिक्षा-प्रयास

पुर्तगाली

पुर्तगाली मिशनरियों में सन्त फ्रान्सिस ज़ेवियर (St. Francis Xavier) और राबर्ट डी नोबिली (Robert de Nobili) के नाम उल्लेखनीय हैं। ज़ेवियर १५४२ में और नोबिली उसके कुछ समय बाद आया। ज़ेवियर ने पूर्ण तन्मयता से ईसाई धर्म-प्रचार-कार्य किया। उसने गाँव-गाँव में ईसाई धर्म की पुस्तकें रखवा दीं। वह घंटी बजाता हुआ पैदल घूमता था और भारतवासियों को ईसा का अनुयायी बनने के लिये आमंत्रित करता था। उसने शिक्षा-प्रसार की दिशा में भी सराहनीय कार्य किया। आज भी उसका नाम इस देश की कुछ शिक्षा-संस्थाओं से सम्बन्धित है। नोबिली का कार्य भी कुछ कम प्रशंसनीय नहीं था। वह अपने को पश्चिम का ब्राह्मण बताता था और

1. P. E. Roberts : *British Kalin Bhart Ka Itihas*, p. 22.
2. R. G. Wilder : *Mission Schools in India* pp. 36–37.

कहता था कि वह खोये हुए वेदों को भारत वापिस लाया है। उसकी वेष-भूषा हिंदू सन्यासियों की सी होती थी। वह अपने मस्तक पर तिलक लगाता था, केवल ब्राह्मणों को अपना सेवक रखता था और शुद्ध तथा सात्विक भोजन उसका आहार था।[1]

पुर्तगाली मिशनरियों ने गोआ, डामन, ड्यू, कोचीन, लंका, हुगली और चटगाँव में प्रारम्भिक विद्यालय खोले। इनमें पुर्तगाली भाषा, कुछ स्थानीय भाषाओं, थोड़ी सी कारीगरी और कृषि, गणित तथा रोमन कैथोलिक धर्म की शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयों में उन बच्चों की निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध था, जिनके अभिभावक ईसाई धर्म का आलिंगन कर चुके थे। निर्धन बच्चों को भोजन, पुस्तकों और वस्त्रों की भी सुविधा दी जाती थी।

इन मिशनरियों ने उच्च-शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। १५७५ में चॉल में प्रथम जेसुइट (Jesuit) कालेज खोला गया जिसमें ३०० से अधिक विद्यार्थी पढ़ते थे। सेन्ट ऐन (St. Anne) नामक एक दूसरा कालेज बन्दोरा में स्थापित किया गया। गोआ, बेसीन और कुछ अन्य स्थानों में कालेज खोले गये। इन कालेजों में लेटिन, ईसाई-धर्म, तर्क-शास्त्र, व्याकरण और संगीत की शिक्षा दी जाती थी।[2] बर्नियर (Bernier) ने आगरे में भी एक जेसुइट कालेज का उल्लेख किया है।

पुर्तगालियों के शिक्षा सम्बन्धी कार्य प्रायः उनकी बस्तियों तक ही सीमित रहे और उनका व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु यह कहना अत्युक्ति न होगी कि भारत में आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था के बीजारोपण का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। १५६५ में पुर्तगाली शक्ति के ह्रास के साथ-साथ पुर्तगाली शिक्षा-संस्थाओं का भी ह्रास प्रारम्भ हो गया और कालान्तर में वे केवल गोआ, डामन और ड्यू तक ही सीमित रह गईं।

फ्रांसीसी

फ्रांसीसियों ने अपनी बस्तियों—पांडिचेरी, माही, यनाम, कारीकल और चन्द्रनगर—में प्रारम्भिक विद्यालय खोले। इनके द्वार सब भारतीय बच्चों के लिये खुले हुये थे। इनमें भारतीय शिक्षकों द्वारा स्थानीय भाषाओं में शिक्षा दी जाती थी। ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य थी। इस कार्य के लिये प्रत्येक विद्यालय में एक धर्म-प्रचारक रहता था। निर्धन भारतीय बच्चों को भोजन, वस्त्रों, पुस्तकों आदि का प्रलोभन देकर पढ़ने के लिये आकर्षित किया जाता

1. K. S. Vakil : *Education in India*, p. 2.
2. Bhagwan Dayal : *The Development of Modern Indian Education*, p. 30.

था। पांडिचेरी में एक माध्यमिक विद्यालय भी था जिसमें फ्रांसीसियों और कम्पनी के भारतीय कर्मचारियों के बच्चों को फ्रांसीसी भाषा की शिक्षा दी जाती थी।

भारत में फ्रांसीसी अँग्रेजों के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी थे। इस देश पर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिये इन दोनों जातियों ने दीर्घ काल तक प्राणप्रण से चेष्टा की। कर्नाटक के युद्धों (१७४६-६३) के पश्चात् फ्रांसीसी वास्तव में सब कुछ खो बैठे। कुछ बस्तियों को छोड़कर सभी पर अंग्रेजों का अधिकार होगया और फलस्वरूप वहाँ के विद्यालयों पर भी। अँग्रेजों ने उनकी शिक्षा-व्यवस्था में परिवर्तन करके उन्हें नये साँचे में ढालना प्रारम्भ कर दिया

डच

डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आधिपत्य लंका, मद्रास तट पर नागापट्टम और बंगाल में चिनसुरा प्रदेश पर था। अँग्रेजों के प्रबल विरोध के कारण डचों की स्थिति कभी महत्वपूर्ण नहीं रही। १७५९ में बेदरा नामक स्थान पर अँग्रेजों से परास्त होकर, उनका सौभाग्य-सूर्य सदैव के लिये निस्तेज हो गया।

व्यापार करने के साथ-साथ डचों ने कुछ विद्यालय भी स्थापित किये। इनमें कम्पनी के कर्मचारियों एवं अन्य भारतीयों के बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध था। पुर्तगालियों के समान डचों के सिर पर धर्म-प्रचार का भूत सवार नहीं था। अतः उन्होंने अपने विद्यालयों को धर्म-प्रचार का केन्द्र एवं साधन नहीं बनाया। डा० प्रिडे (Prideaux) के अनुसार डचों ने उच्च शिक्षा के लिये लङ्का में एक कालेज खोला था।[1]

डेन

डेनों के कारखाने ट्रानक्यूबर और सीरामपुर में थे। इन लोगों ने भारत पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा नहीं की। १८४५ में उन्होंने अपनी बस्तियाँ अंग्रेजों को बेचकर इस देश से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया।

अन्य देशों के मिशनरियों के समान डेन मिशनरियों ने भी धर्म-प्रचार का कार्य किया। परन्तु डेन्मार्क से समय पर धन प्राप्त न होने के कारण उनका कार्य अविराम रूप से नहीं चल पाता था। उन्हें इङ्गलैन्ड की धर्म प्रचारक समिति (Society for Promoting Christian Knowledge) से आर्थिक सहायता लेनी पड़ती थी, पर यह धन उनके लिये पर्याप्त नहीं होता था।

1. *Ibid*, p. 33.

इन कठिनाइयों के होते हुए भी उन्होंने ५०,००० भारतवासियों को ईसाई बनाया।

डेन मिशनरियों में सर्व प्रथम ज़ीगेनबल्ग (Zigenbalg) और प्लूशो (Plutschu) १७०६ में ट्रानक्यूबर पहुँचे। अपने धर्म-प्रचार-कार्य में सफलता प्राप्त करने लिये उन्होंने तामिल भाषा का अध्ययन किया। अपनी प्रखर बुद्धि के कारण ज़ीगेनबल्ग को यह समझने में देर न लगी कि ईसाई-धर्म का व्यापक प्रचार करने में लिये तामिल भाषा ही सर्वोत्तम होगी। अतः उसने बाइबिल का तामिल भाषा में अनुवाद किया। उसने तामिल भाषा की एक व्याकरण लिखी और एक तामिल शब्द-कोष भी तैयार किया। १७१६ में ज़ीगेनबल्ग के असामयिक निधन के कारण डेन मिशनरियों के कार्य को भारी धक्का लगा, पर ग्रन्डलर (Grundler), कायरेन्डर (Kierander) एवं श्वार्ज (Schwartz) उसके कार्य को चलाते रहे।

डेन मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा का पथ-प्रदर्शक माना जाता है। उन्होंने स्थानीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम रखा। मुसलमानों से अपने धर्म-प्रचार-कार्य मे सहयोग पाने के लिये उन्होंने उनके बच्चों की शिक्षा को प्राथमिकता दी और अनेक प्रारम्भिक विद्यालय खोले। ज़ीगेनबल्ग के जीवन-काल में ही १७१६ में ट्रानक्यूबर में अध्यापकों की दीक्षा के लिये एक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोल दिया गया था। वहाँ के प्रशिक्षित अध्यापकों को प्रारम्भिक स्कूलो में नियुक्त किया जाता था। ग्रन्डलर ने मद्रास में दो विद्यालय स्थापित किये। कायरेन्डर ने फ़ोर्ट सेन्ट डेविड मे और उसके आस-पास तथा श्वार्ज ने त्रिचनापली और तंजौर में स्कूल खोले। इन विद्यालयों की विशेषता यह थी कि इनमे अँग्रेजी पढ़ाई जाती थी और ईसाई-धर्म की प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा नहीं दी जाती थी।[1]

अंग्रेज

अँग्रेज मिशनरियो के शिक्षा-सम्बन्धी कार्यो का विवरण इङ्गलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शिक्षा-प्रयासों के साथ देना ही अधिक उपयुक्त होगा। अतः अगले अध्याय में इनका वर्णन किया जायगा।

मिशनरियों के शिक्षा-कार्य की समीक्षा

ऊपर जिन पाश्चात्य मिशनरियों का वर्णन किया गया है उनमें से अधिकांश का स्थान भारतीय शिक्षा के इतिहास में अति गौरवपूर्ण है। यह केवल

1. N. N. Law : *Promotion of Learning by Early European Settlers*, p. 68.

इसलिये नहीं कि उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया, अपितु इसलिये भी कि उन्होंने आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था का सूत्रपात किया और भारत के भावी भाग्य-विधाताओं के समक्ष शिक्षा का भार वहन करने का आदर्श उपस्थित किया। इन कार्यों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य था, जन-साधारण में ज्ञान का प्रसार करना। यवनों के आतङ्क से हिंदू शिक्षा-व्यवस्था की नींव डगमगा चुकी थी। अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच पली मुस्लिम शिक्षा-पद्धति सामान्य जनता के ज्ञान-मार्ग को प्रशस्त नहीं कर सकी थी। इस दिशा में इन विदेशी मिशनरियों ने निःशुल्क शिक्षा की योजना बनाकर और भारी संख्या में व्यक्तियों को ज्ञान का रसास्वादन कराकर पथ-प्रदर्शक का कार्य किया।

सारांश

भारत तक पहुँचने के जल-मार्ग की खोज वास्को ड गामा ने की। उसके कुछ समय उपरान्त से ही पुर्तगाली भारत से व्यापार करने लगे। १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजों, फ्रांसीसियों और डेनों ने भी व्यापार करने के उद्देश्य से भारत से सम्बन्ध स्थापित किये। समान उद्देश्य होने के कारण इनमें संघर्ष प्रारम्भ हो गया, जिसमें अन्त में अंग्रेज विजयी हुए।

यूरोप के व्यापारियों के कुछ समय पश्चात् वहां के मिशनरी भी भारत आए। उनका उद्देश्य भारतवासियों को ईसाई बनाना था। इस कार्य को सुगमता पूर्वक करने के लिये उन्होंने भारतवासियों को शिक्षा देने के लिये विद्यालय स्थापित किये।

पुर्तगाली मिशनरियों में जेवियर और राबर्ट डी नोबिली ने शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किए। पुर्तगाली बस्तियों में प्राथमिक विद्यालय स्थापित किए गये। चौल और बन्दोरा आदि स्थानों में उच्च शिक्षा के लिए कालेज खोले गये। इन विद्यालयों में अन्य विषयों की शिक्षा के साथ-साथ ईसाई धर्म की भी शिक्षा दी जाती थी।

फ्रांसीसी विद्यालयों में भी धार्मिक शिक्षा अनिवार्य थी। विद्यार्थियों को उनमें पढ़ने के लिये भोजन, वस्त्र, पुस्तक आदि की सुविधा का प्रलोभन दिया जाता था।

डचों ने प्राथमिक विद्यालयों के अतिरिक्त लंका में उच्च शिक्षा के लिये एक कालेज खोला। इन लोगों ने अपनी शिक्षा-संस्थाओं को ईसाई धर्म प्रचार का केन्द्र एवं साधन नहीं बनाया।

डेन धर्म-प्रचारकों ने शिक्षा-क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण कार्य किया। जीगेन-

बल्ग ने बाइबिल का तामिल भाषा में अनुवाद किया। उसके जीवन-काल में ट्रानक्यूवर में अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये एक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोला गया। ग्रंडलर ने मद्रास में विद्यालय खोले, श्वार्ज़ ने त्रिचनापली और तंजौर में स्कूल खोले।

पाश्चात्य-मिशनरियों का स्थान भारतीय शिक्षा के इतिहास में अति महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने भारत में आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था का सूत्रपात किया, जन-साधारण में ज्ञान का प्रसार किया और निःशुल्क शिक्षा की योजना बनाई।

TEST QUESTIONS

1. "The beginnings of the present system of education in India can be traced to the efforts of the Christian missionaries." Discuss.
2. Write a short essay on the educational activities of the early European settlers.
3. "The missionaries used education, not as an end in itself, but as a means to enangelization." Elucidate.

अध्याय ४

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शिक्षा-प्रयास

(१६००–१८१३)

१५९९ में लन्दन के व्यापारियों ने इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का निर्माण किया और उनकी प्रार्थना पर महारानी ऐलिजाबेथ (Elizabeth) प्रथम ने ३१ दिसम्बर, १६०० को इस कम्पनी को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिये एक आज्ञा-पत्र (Charter) प्रदान किया।

कम्पनी की प्रारम्भिक नीति (१६००-१७६५)

कम्पनी के व्यापारियों ने १६११ में मछलीपट्टम में प्रथम, और १६१३ में सूरत में द्वितीय कारखाना स्थापित किया। भारत में अपने प्रतिद्वन्द्वी पाश्चात्य व्यापारियों का अनुकरण करके उन्होंने भी अपने प्रोटेस्टेन्ट मिशनरियों को इस देश में बुलाया। ऐसा करने में उनके तीन उद्देश्य थे :- -जिन स्थानों में अंग्रेज आकर बसे थे, वहाँ से पुर्तगाल के रोमन कैथोलिक मिशनरियों का प्रभाव समाप्त करना; अपनी कम्पनी के कर्मचारियों की धार्मिक शिक्षा द्वारा आध्यात्मिक उन्नति करना और भारतवासियों में अप्रत्यक्ष रूप से ईसाई धर्म का प्रचार करना।[1]

1. Law : *op. cit.*, pp. 7–8.

प्रारम्भ में कम्पनी का ध्यान व्यापार एवं धर्म-प्रचार-कार्य पर केन्द्रित था। धर्म-प्रचार-कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये १६१४ से ही कम्पनी ने भारत-वासियों को अपने देश में प्रोटेस्टेण्ट धर्म का प्रचार करने के लिये प्रशिक्षित करना प्रारम्भ किया। कुछ भारतीय ईसाइयों को धार्मिक दीक्षा प्राप्त करने के लिये इंगलैंड भी भेजा गया।[1] १६३६ में आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में आर्च-बिशप लॉड (Archbishop Laud) ने अरबी शिक्षा का विभाग स्थापित किया जिसमें भारत आने वाले मिशनरियों को अरबी भाषा की शिक्षा दी जाती थी।

१६५९ के आदेश-पत्र (Despatch) में कम्पनी के संचालकों ने भारत-वासियों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने की और इस उद्देश्य से प्रत्येक जहाज़ पर मिशनरियों को भेजने की इच्छा व्यक्त की। इस समय तक कम्पनी के कर्मचारी भारतवासियों की धार्मिक भावनाओं से कुछ परिचित हो चुके थे। अतः उन्होंने संचालकों की इच्छा की ओर ध्यान न देकर धार्मिक तटस्थता की नीति को अपनाना ही उत्तम समझा।

जब १६९८ में कम्पनी का आज्ञा-पत्र दोहराया गया, तब उसकी एक धारा के अनुसार कम्पनी को अपने किलों, नगर-रक्षक सेनाओं तथा बड़े कार-ख़ानों में विद्यालय स्थापित करने का आदेश दिया गया। यहीं से भारत में अंग्रेजी की शिक्षा का सूत्रपात होता है। उसका प्रारम्भ अंग्रेजी बस्तियों में हुआ और अंग्रेजी राज्य-प्रसार के साथ-साथ उसका रूप परिवर्तित होता चला गया।

दान-आश्रित विद्यालय

१६९८ के आज्ञा-पत्र के आदेशानुसार मद्रास और बम्बई में कुछ दान-आश्रित विद्यालय (Charity Schools) खोले गये। उनका व्यय-भार कम्पनी, उसके कर्मचारियों एवं चन्दे से वहन किया जाता था। इन विद्यालयों का उद्देश्य-अंग्रेजों, ऐंग्लोइण्डियनों, ईसाईयों, कम्पनी के कर्मचारियों एवं जनसाधारण के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देना था। इनमें प्रवेश की प्राथमिकता प्रोटेस्टेन्ट धर्म के अनुयायियों को मिलती थी। इनमें लिखना, पढ़ना, गणित और ईसाई धर्म की शिक्षा दी जाती थी।

मद्रास

यहाँ १६७३ में प्रथम माध्यमिक विद्यालय खोला जा चुका था। इसमें अंग्रेजों, पुर्तगालियों, ऐंग्लो-इंडियनों तथा कम्पनी के कुछ भारतीय कर्म-चारियों के बच्चे पढ़ते थे। इसमें शिक्षा का माध्यम पुर्तगाली भाषा थी।

1. *Ibid.*

शिक्षक का कार्य प्रिंगल (Pringle) नामक पादरी करता था, जिसे कम्पनी ५० पौन्ड वार्षिक वेतन देती थी। १७१५ में कम्पनी की अध्यक्षता में स्टीवेन्सन (Rev. W. Stevenson) ने मद्रास नगर में 'सेन्ट मेरीज़ चेरिटी स्कूल' नामक प्रथम दान-आश्रित विद्यालय स्थापित किया। इसमें कंम्पनी के प्रोटेस्टेन्ट यूरोपियनों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। १७१७ में भारतीय बच्चों के लिये इसी प्रकार का एक एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल कडलौर में खोला गया। १८१२ में नगर सेना के पादरी ने भारतीय सैनिकों एवं नगर निवासियों के बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिये एक 'मण्डे स्कूल' खोला।

बम्बई

मद्रास के प्रथम दान-आश्रित विद्यालय के सिद्धान्तों के आधार पर रिचार्ड कॉब (Rev. Richard Cobbe) ने निर्धन प्रोटैस्टेन्ट यूरोपियन बच्चों के लिये बम्बई में १७१९ में एक स्कूल खोला। १८०७ तक यह विद्यालय चन्दे से प्राप्त धन से चलता रहा, पर उस वर्ष कम्पनी ने इसे अपने संरक्षण में ले लिया। इसके अतिरिक्त, बम्बई में केवल एक विद्यालय और था जिसे पुर्तगालियों ने १७९० में स्थापित किया था।[1]

कम्पनी की शिक्षा-नीति (१७६५-१८१३)

उत्तर-पूर्व में अंग्रेज़ व्यापारियों ने १६३३ में प्रवेश किया और हरिहरपुरा तथा बालासोर में अपने कारख़ाने स्थापित किये। इस प्रदेश में अनेकों वर्षों तक कम्पनी का व्यापार अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में से होकर गुजरता रहा। धीरे-धीरे किस प्रकार यह कम्पनी भारत पर अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित करने में सफल हुई, इसका शिक्षा के इतिहास से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। अतः हम इसे यहाँ केवल यह लिखकर छोड़ते हैं कि १७५७ में प्लासी के युद्ध की विजय के उपरान्त, या अधिक निश्चित रूप से १७६५ में सम्राट शाह आलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करके कम्पनी का सौभाग्य-सूर्य उदय हुआ और उसने राज्य-प्रसार के पथ पर अपना अभियान प्रारम्भ किया।

१७६५ के पश्चात् जब कम्पनी को भारत में राजनीतिक शक्ति प्राप्त हो गई, तब उसकी शिक्षा-नीति में परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। वह अनुभव

1. J. M. Sen : *A History of Elementary Education in India* p. 61.

करने लगी कि उसे भारतवासियों के लिये कुछ करना है। उसे हिन्दू एवं मुसलमान शासकों के राज्य उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे। इन शासकों ने अनेक प्रकार से शिक्षा को प्रोत्साहित किया था—पाठशालायें और मदरसे स्थापित किये थे, विद्वान पंडितों और मौलवियों को उपाधियों से विभूषित किया था और उनको आजीविका चलाने के लिये जागीरें दी थीं। कम्पनी ने विचार किया कि इन परम्पराओं को जारी रख कर ही भारतवासियों की सद्भावना प्राप्त की जा सकती है। यहीं से कम्पनी की नवीन शिक्षा-नीति का श्रीगणेश होता है।

इस नीति को निर्धारित करने में दो अन्य तत्वों ने भी योग दिया। प्रथम, १७७३ के रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act) के अनुसार कलकत्ते में एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया गया। १७८१ के 'संशोधित कानून' (Supplementary Act) के अनुसार यह निश्चय किया गया कि भारत-वासियों के मुक़दमों का निर्णय उनके धर्म, रीति-रिवाजों और रहन-सहन के आधार पर किया जाय। क्योंकि अंग्रेज न्यायाधीश इन बातों से अनभिज्ञ थे, अतः उनकी सहायता के लिये भारतवासियों को शिक्षित करना आवश्यक हो गया। द्वितीय, कम्पनी प्रभावशाली भारतवासियों के पुत्रों को सरकारी पदों पर कार्य करने के लिए भी शिक्षित करना चाहती थी और इस प्रकार उच्च वर्गों का विश्वास तथा सहयोग प्राप्त करके भारत में अपने नव-स्थापित राज्य को सुदृढ़ बनाना चाहती थी। इन सब बातों को ध्यान में रख कर कम्पनी ने हिंदुओं और मुसलमानों के लिये उच्च शिक्षा के कुछ केन्द्र स्थापित किये। इनमें कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत कॉलेज सब से अधिक महत्त्वपूर्ण थे।

कलकत्ता मदरसा

कलकत्ता मदरसा को स्थापित करने वाला बङ्गाल का गवर्नर वारेन हेस्टिंग्ज़ (Warren Hastings) था। १७८० में नगर के कुछ लब्धप्रतिष्ठ मुसलमानों ने उससे प्रार्थना की कि उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिये कलकत्ते में एक मदरसा स्थापित किया जाय और मुर्दागद उद्दीन नामक, एक विदेशी विद्वान की सेवाओं से लाभ उठाया जाय।[1] उसने तत्काल मुर्दागद उद्दीन को बुलवाया, उसे मदरसे का प्रधानाचार्य नियुक्त किया और अक्टूबर १७८० में, कलकत्ता मदरसा शिक्षण-कार्य में लग गया। कम्पनी के संचालकों से मदरसे

1. W. H. Sharp : *Selections from Educational Records*, Vol. I, pp. 7–8.

व्यय के लिये धन-प्राप्ति में विलम्ब होने की आशंका से हेस्टिंग्ज़ ने उसके व्यय का भार अपने ऊपर ले लिया।

प्रारम्भ में इस मदरसे में ४० छात्रों के लिये निःशुल्क शिक्षा, भोजन, छात्रावास एवं पुस्तकों की व्यवस्था की गई थी। परन्तु मुर्दागद उद्दीन की ख्याति के कारण जनवरी, १७८१ में ही काश्मीर, गुजरात एवं कर्नाटक से छात्र आने लगे। अतः छात्रों की संख्या को ४० से बढ़ा कर १०० करना पड़ा। व्यय अधिक हो जाने के कारण हेस्टिंग्ज़ ने कम्पनी के संचालकों से मदरसे को अपने संरक्षण मे लेने की प्रार्थना की। उन्होंने न केवल इसकी स्वीकृति दी अपितु हेस्टिंग्ज़ द्वारा व्यय किया हुआ धन भी उसे लौटा दिया। प्राचीन प्रथा के अनुसार १७८५ में संचालकों ने २९,००० रुपये की वार्षिक राजस्व की भूमि मदरसे के पोषण के लिये दी। उचित प्रबन्ध न हो सकने के कारण इस भूमि को १८१९ में वापिस ले लिया गया और ३०,००० रुपया वार्षिक, राजकोष से दिया जाने लगा। मदरसे के प्रबन्ध का भार एक अंग्रेज़ सेक्रेटरी को सौंप दिया गया।

मदरसे के पाठ्य-विषयों में पदार्थ-विज्ञान-शास्त्र, कुरान के धर्म-सिद्धान्त, कानून, ज्योतिष, ज्यामिति, गणित, तर्क-शास्त्र, अलङ्कार-शास्त्र एवं व्याकरण मुख्य थे। शिक्षा-काल सात वर्ष और शिक्षा का माध्यम अरबी था। शिक्षकों के अतिरिक्त क़ुरान पढ़ाने के लिये एक ख़ातिब और नमाज़ पढ़ने के लिये एक मुअज़्ज़िन था। मुस्लिम-प्रथा के अनुसार प्रार्थना एवं पूजा-पाठ के लिये शुक्रवार को अवकाश रहता था।

बनारस संस्कृत कॉलेज

कलकत्ता मदरसा के समान बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना का कारण भी राजनीतिक था। इस कॉलेज का शिलान्यास १७९१ में बनारस राज्य के रेज़ीडेन्ट जोनेथन डंकन (Jonathan Duncan) ने किया था। जिस प्रकार कलकत्ता मदरसा में मुस्लिम धार्मिक सिद्धान्तों और क़ानूनों की शिक्षा देकर मुसलमान नवयुवकों को अंग्रेज़ न्यायाधीशों को सहायता देने के लिये तैयार किया जाता था, उसी प्रकार बनारस संस्कृत कॉलेज में हिंदू नवयुवकों को हिंदू धर्म-शास्त्रों एवं क़ानून की व्याख्या करने के लिये दीक्षित किया जाता था। प्रथम वर्ष इस कालेज को १४,००० रुपया अनुदान के रूप में दिया गया, पर १७९२ में इस धन-राशि को बढ़ाकर २०,००० रुपया वार्षिक कर दिया गया।[1] प्रारम्भ में इस कॉलेज का प्रबन्ध पंडितों ने किया, पर

1. B. D. Basu : *History of Education in India*, p. 33.

उनकी असफलता को देखकर कुछ समय बाद एक अंग्रेज़ सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त कर दिया गया।

कॉलिज के पाठ्य-विषयों में हिंदू धार्मिक सिद्धान्त, तर्क-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र, गणित, सङ्गीत, इतिहास, कविता और क़ानून सम्मिलित थे। कॉलेज का समस्त प्रबन्ध धर्म-शास्त्रों के नियमों पर और शिक्षा मानव-धर्म (Institutes of Manu) पर आधारित थी।[1]

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज

इस कॉलिज की स्थापना १८०० में लार्ड वेलेज़ली (Wellesley) ने कलकत्ते में की थी। इसका प्रमुख उद्देश्य कम्पनी के तरुण कर्मचारियों को हिंदू और मुस्लिम क़ानूनों, भारतीय इतिहास, अरबी, फारसी, संस्कृत और भारतीय भाषाओं की शिक्षा देना था। इसने बङ्गला साहित्य और अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में अति सराहनीय योग दिया और उनसे सम्बन्धित पुस्तकें प्रकाशित कीं। इस कॉलेज में डा० गिलक्राइस्ट (Gilchrist), डा० केरे (Carey), कोलब्रुक (Colebrook) और पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ऐसे विद्वान शिक्षक थे। एक विशेष उद्देश्य के लिये स्थापित किये जाने के कारण भारतीय शिक्षा के इतिहास में इस कॉलेज का स्थान अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।[2] (१८१८ में कम्पनी ने मद्रास में फ़ोर्ट सेन्ट जार्ज नामक कॉलेज अंग्रेज कर्मचारियों को भारतीय भाषायें सीखने के लिये खोला।)

व्यक्तिगत शिक्षा-कार्य

राजकीय प्रयत्नों के अतिरिक्त, विद्यालयों की स्थापना के लिये कुछ व्यक्तिगत प्रयास भी किये गये। १७८७ में श्रीमती कैम्पबेल (Campbell) ने मद्रास में एक महिला-आश्रम (Female Orphan Asylum) खोला। उसी वर्ष डा० ऐन्ड्रयू बेल (Andrew Bell) ने एक ऐसा ही आश्रम बालकों के लिये एगमोर में स्थापित किया। यह संस्था शिक्षा के इतिहास में चिर-स्मरणीय रहेगी, क्योंकि डा० बेल ने यहीं प्रथम बार बालचर-प्रणाली (Monitorial System) का परीक्षण किया था। इन दोनों विद्यालयों को समय-समय पर कम्पनी से कुछ आर्थिक सहायता मिल जाती थी। इनमें केवल यूरोपियन कर्मचारियों की वैध संतानें और अनाथ बच्चे ही पढ़ सकते थे।

१७६५ के बाद अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों की बढ़ती हुई माँग के कारण कलकत्ता नगर में बहुत से विद्यालय स्थापित हुए। सर्व प्रथम ब्राउन (Brown)

1. Siqueira : *op. cit.*, p. 25.
2. *Ibid*, p. 26.

ने हिंदू बालकों के लिये एक अंग्रेजी स्कूल खोला। इसके बाद एराटून (Aratoon), पीटर्स (Peters), शेरबोर्न (Sherbourne), कृष्ण मोहन बोस एवं शिवदत्त ने भी इस प्रकार के विद्यालयों का निर्माण किया। श्रीमती पिट (Pitt), श्रीमती लासेन (Lawson), श्रीमती कौपलैन्ड (Copeland) एवं कुछ अन्य महिलाओं ने बालिकाओं के लिये ६ से अधिक विद्यालयों का प्रबंध किया। बालकों और बालिकाओं की इन शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। इन्होंने अंग्रेजी भाषा को लोकप्रिय बनाने में प्रशंसनीय कार्य किया।

मिशनरियों के शिक्षा एवं धर्म-प्रचार के कार्य

मद्रास और बम्बई के समान बङ्गाल में भी कुछ दान-आश्रित विद्यालयों की स्थापना हुई। इन विद्यालयों का मुख्य उद्देश्य यूरोपियनों के अनाथ एवं परित्यक्त बच्चों को शिक्षा देना था। इस प्रकार के दो विद्यालय कलकत्ते में थे। 'कलकत्ता चेरिटेबिल स्कूल', जिसकी स्थापना ऐंग्लिकन (Anglican) मिशनरियों ने १७२९ में की थी, थोड़े से अशिष्ट बच्चों पर अत्यधिक धन व्यय करके ज्यों-त्यों १७८७ तक चलता रहा। उस वर्ष इस विद्यालय का कार्य-भार एक बोर्ड को सौंप दिया गया। दूसरा विद्यालय 'फ्री स्कूल' था, जिसकी स्थापना १७८९ में फ्री स्कूल सोसाइटी ने की थी। इन दो विद्यालयों के अतिरिक्त, कलकत्ते से १३ मील दूर डेनों के उपनिवेश सीरामपुर में 'बेनीवोलेन्ट इन्सटिट्यूशन' (Benevolent Institution) नामक एक दान-आश्रित शिक्षा-संस्था और थी। इसकी स्थापना अंग्रेज बेप्टिस्ट मिशनरियों ने भारतीय एवं ऐंग्लो इंडियन बच्चों को शिक्षा देने के लिये की थी।

सीरामपुर के बेप्टिस्ट मिशनरियों के तीन नेता थे—केरे (Carey), वार्ड (Ward) और मार्शमैन (Mahslman)। उन्हें 'सीरामपुर त्रिमूर्ति' (Serampore Trio) कहा जाता था। उनके प्रयास के फलस्वरूप सीरामपुर, कलकत्ता और अन्य स्थानों में बालकों तथा बालिकाओं के लिये १८१७ तक ११५ विद्यालय खोले गये।

'सीरामपुर त्रिमूर्ति' का धर्म-प्रचार का कार्य कहीं अधिक उत्साह-पूर्ण था। उन्होंने १८०० में एक मुद्रणालय खोला, बाइबिल को अनेकों देशी भाषाओं में अनुवादित करके मुद्रित किया और निःसंकोच भाव से अपनी धार्मिक पुस्तकें जनता में बाँटी। कुछ ही वर्षों में उनका धार्मिक उत्साह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच कर सीमा का उल्लंघन कर गया। १८०८ से उन्होंने 'हिंदुओं और मुसलमानों के नाम संदेश' (Addresses to Hindus and Muslims)

नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसमें मुहम्मद साहब को झूठा पैगम्बर बताया गया और हिंदू-धर्म की निंदा की गई। इससे हिंदुओं और मुसलमानों में इतनी उत्तेजना फैली कि उसे शान्त करने के लिये लार्ड मिंटो (Minto) ने मिशनरियों का प्रेस जब्त कर लिया और उनको बन्दी करवा के कलकत्ता बुला लिया।

मिशनरियों को कम्पनी की दमन-नीति से बहुत असन्तोष हुआ। भारत में इसका विरोध करने में अपने को असमर्थ पाकर, उन्होंने अपने समर्थकों के द्वारा इङ्गलैंड में आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन का नेता चार्ल्स ग्रांट (Charles Grant) था।

चार्ल्स ग्रांट

चार्ल्स ग्रांट कम्पनी के कर्मचारी और व्यवसायी के रूप में भारत में २३ वर्ष रह चुकने के कारण यहाँ की परिस्थितियों से पूर्णतया परिचित था। इङ्गलैण्ड लौटने पर उसने 'ग्रेट ब्रिटेन की एशियाई प्रजा की सामाजिक दशा का निरीक्षण'[1] नामक पुस्तिका लिखकर भारतवासियों की स्थिति पर प्रकाश डाला। "यूरोप के सब से खराब भागों में निस्सन्देह अनेक मनुष्य हैं, जो सच्चे ईमानदार और शुद्ध-हृदय वाले हैं। बंगाल में तो सच्चा और ईमानदार मनुष्य अलभ्य है; मुझे भय है कि जीवन में सब प्रकार से पवित्र आचरण वाला मनुष्य अप्राप्य है। हिंदुस्तान के निवासी को दी गई शक्ति सदैव अत्याचारपूर्ण रीति से प्रयोग की जाती है या अन्याय के कार्य में लगाई जाती है। सभी स्थितियों में सभी प्रकार के पदों का प्रयोग धनोपार्जन के लिये किया जाता है। न्याय सामान्य रूप से व्यापार की वस्तु हो गया है।[2]

भारतवासियों की नैतिकता का यह चित्र अतिरंजित है। एल्फिंस्टन, मुनरो और मेटकॉफ़ ने उनके निकट सम्पर्क में रहकर भी इस प्रकार के विचार कभी व्यक्त नहीं किये। परन्तु ग्रान्ट क्षम्य है, क्योंकि उसका एकमात्र उद्देश्य शिक्षा-प्रसार द्वारा भारतवासियों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना और उनका पुनरुत्थान करना था। यह सत्य है कि उन दिनों भारतीय समाज पतनोन्मुख हो रहा था। उसमें अनैतिकता, भ्रष्टाचार और अज्ञान की वृद्धि हो रही थी। ग्रांट

1. "Observations on the State of Society among the Asiatic Subjects of Great Britain."
2. M. R. Pranjpe : *A Source Book of Modern Indian Education*, p. viii.

का विश्वास था कि पाश्चात्य शिक्षा और ईसाई धर्म द्वारा भारतवासियों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है, और उनकी अज्ञानता को दूर किया जा सकता है। "अज्ञानता को दूर करने का वास्तविक उपचार ज्ञान का प्रसार है। हिंदू इसीलिये गलती करते हैं, क्योंकि वे अज्ञान हैं और उनकी गलतियों को उचित प्रकार से कभी भी उनके समक्ष नहीं रखा गया है। उनको हमारे प्रकाश और ज्ञान का दिया जाना ही उनके लिये सर्वोत्तम उपचार सिद्ध होंगे।"[1]

भारतवासियों में ज्ञान का प्रसार करने के लिये ग्रांट ने अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का उपयुक्त माध्यम बताया। उसका कहना था कि योग्य शिक्षकों से अंग्रेजी साहित्य, विज्ञान, दर्शन और धर्म की शिक्षा पाकर भारतवासियों की विचारधारा परिवर्तित हो जायगी। ग्रांट की प्रायः सभी बातों को भविष्य में मान लिया गया। वस्तुतः भारत में अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति की अग्रिम रूप-रेखा का निर्माण उसी ने किया। इसीलिये उसको 'भारत में आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता' (Father of modern education in India) कहा जाता है।

१७९३ का आज्ञा-पत्र

ग्रांट के विचारों से ब्रिटिश लोक सभा का सदस्य विल्बरफोर्स (Wilberforce) अत्याधिक प्रभावित हुआ। जब १७९३ में कम्पनी का आज्ञा-पत्र पुनर्शोधन के लिये संसद में आया, तब विल्बरफोर्स ने उसमें शिक्षा-सम्बन्धी एक धारा जोड़ने के विचार से निम्नलिखित प्रस्ताव किया :—

"ब्रिटिश व्यवस्थापिका का यह विशेष तथा अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह समस्त उचित एवं विवेकपूर्ण साधनों द्वारा भारत में ब्रिटिश राज्य के हित और समृद्धि के लिये कार्य करे; और इन उद्देश्यों को प्राप्ति के लिये ऐसे साधनों को अपनाये जिनमे भारतियों के ज्ञान, धर्म और नैतिकता का स्तर ऊँचा उठे।"[2]

कम्पनी के संचालकों ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा : "हिंदुओं की अपने धर्म और नैतिकता की इतनी ही उत्तम प्रणाली है, जितनी कि अधिकांश व्यक्तियों की है; और उनके धर्म-परिवर्तन का प्रयास करना या उनको अधिक ज्ञान देना पागलपन होगा।[3]" लोक सभा के सदस्य रेन्डल

1. *Ibid.*
2. J. A. Richter : ***A History of Missions in India,*** p. 149.
3. W. H. Sharp : *op. cit.*, Vol. I, p. 17.

जेक्सन (Randle Jackson) का मत था : "हमने अमेरिका के उपनिवेशों को अपनी भाषा का प्रसार करने का कारण खो दिया। अतः हमें भारत में ऐसी मूर्खता नहीं करनी चाहिए।" फलस्वरूप पार्लियामेण्ट ने विल्बरफोर्स का प्रस्ताव रद्द कर दिया।

भारतीय शिक्षा में प्राच्यवादी नीति

जिस समय इङ्गलैंड में यह आन्दोलन चल रहा था कि भारतवासियों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो और उनमें ईसाई-धर्म का प्रचार किया जाय उसी समय भारत में कम्पनी के कुछ पदाधिकारी इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि भारतवासियों को भारतीय पद्धति द्वारा शिक्षा दी जाय और उनके धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाय। कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत कॉलेज का निर्माण करके वे शिक्षा में प्राच्यवादी नीति के विचार को व्यक्त कर चुके थे। वे इस बात पर बल दे रहे थे कि इस प्रकार की अन्य शिक्षा-संस्थाओं का प्रबन्ध करके प्राच्य शिक्षा-प्रणाली को प्रोत्साहित किया जाय। इस प्रकार दोनों देशों में दो विरोधी विचारधारायें कार्य कर रही थीं।

भारत में कम्पनी का सर्वोच्च अधिकारी लार्ड मिंटो भारतीय साहित्य एवं विज्ञान का प्रशंसक तथा प्राच्यवादी नीति का समर्थक था। उसने ६ मार्च, १८११ के अपने विवरण-पत्र (Minute) में भारतीय शिक्षा की दयनीय दशा का चित्र अंकित करके कम्पनी के संचालकों को प्रेषित किया। उसने लिखा—"भारत के निवासियों में विज्ञान और साहित्य का उत्तरोत्तर पतन हो रहा है। विद्वानों की संख्या न केवल कम हो गई है, अपितु उनके ज्ञान की परिधि भी संकीर्ण होती जा रही है। इस स्थिति का तात्कालिक परिणाम है अनेक अमूल्य ग्रन्थों का प्रयोग न किया जाना और उनका विनाश। इस बात का भय है कि यदि सरकार ने शीघ्र ही सहायता प्रदान न की तो ग्रन्थों और उनकी व्याख्या करने वाले व्यक्तियों के अभाव में शिक्षा का पुनरुद्धार असम्भव हो जायगा।"[1]

१८१३ का आज्ञा-पत्र

इन दोनों नीतियों के प्रतिपादकों ने भारतीय शिक्षा के प्रश्न को विवादास्पद बना दिया। परिणामतः जब १८१३ में कम्पनी का आज्ञा-पत्र पुनर्शोधन के लिये पार्लियामेन्ट में आया, तब महान् विचार-विमर्श के पश्चात् उसमें दो नवीन धारायें जोड़कर दोनों दलों को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया गया। प्रथम धारा के अनुसार मिशनरियों को भारत में धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता दे

1. *Ibid*, p. 19.

दी गई। दूसरी धारा में शिक्षा को कम्पनी का कर्त्तव्य बताया गया और कहा गया कि प्रति वर्ष कम से कम एक लाख रुपया भारतीय साहित्य के पुनरुत्थान एवं विज्ञानों के प्रसार में व्यय किया जाय। इस धारा ने भारत में राज्य-शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया। शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरियों के प्रयासों को देखकर कुछ भारतवासियों के हृदय में स्पर्धा की भावना जागृत हुई और उन्होंने भी शिक्षा-संस्थायें स्थापित कीं। इस प्रकार राजकीय प्रयत्नों के साथ-साथ व्यक्तिगत रूप से भी विद्यालयों का निर्माण प्रारम्भ हुआ और देश में अर्वाचीन भारतीय शिक्षा का शिलान्यास हुआ।

सारांश

कम्पनी की प्रारम्भिक नीति—प्रारम्भ में कम्पनी का उद्देश्य व्यापार और धर्म प्रचार करना था। धर्म-प्रचार कार्य के लिये १६१४ से भारतवासियों को प्रशिक्षित करना प्रारम्भ किया गया। १६५६ के प्रेषित-पत्र में कम्पनी के संचालकों ने भारतवासियों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने की इच्छा व्यक्त की। १६६८ के आज्ञा-पत्र में किलों, नगर-रक्षक सेनाओं और बड़े कारखानों में विद्यालय खोलने का आदेश दिया गया।

दान-आश्रित विद्यालय—१६६८ के आज्ञा पत्र के अनुसार मद्रास और बम्बई में दान-आश्रित विद्यालय खोले गये। मद्रास में १६७३ में प्रथम माध्यमिक विद्यालय खोला जा चुका था। १७१५ में सेन्ट मेरीज़ चेरिटी स्कूल यूरोपियन बच्चों की शिक्षा के लिये स्थापित किया गया। १७१७ में भारतीय बच्चों के लिये कडलौर में एंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूल का निर्माण हुआ। सण्डे स्कूल १८१२ में प्रारम्भ हुआ। बम्बई में प्रथम दान-आश्रित विद्यालय १७१९ में स्थापित हुआ।

कम्पनी की शिक्षा-नीति (१७६५–१८१३)—१७६५ के बाद जब कम्पनी को राजनीतिक शक्ति प्राप्त हुई, तब उसकी शिक्षा-नीति में परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। १७८० में कलकत्ता मदरसा और १७९१ में बनारस संस्कृत कॉलेज का निर्माण करके कम्पनी ने मुसलमानों और हिंदुओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। कम्पनी के तरुण कर्मचारियों को शिक्षा देने के लिए १८०० में फोर्ट विलियम कॉलेज का शिलान्यास हुआ।

व्यक्तिगत शिक्षा-कार्य—१७८७ में श्रीमती कैम्पबेल ने मद्रास में महिला आश्रम और ऐन्ड्रयू बेल ने ऐसा ही आश्रम बालकों के लिये एगमोर में स्थापित किया। अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने के लिये कलकत्ते में बालकों और बालिकाओं के लिये स्कूल खोले गये।

मिशनरियों के कार्य—सीरामपुर के बेप्टिस्ट मिशनरियों ने सीरामपुर,

कलकत्ता आदि में १८१७ तक ११५ विद्यालयों का प्रबन्ध किया। केरे, वार्ड और मार्शमैन ने अति उत्साह से धर्म-प्रचार का कार्य किया। उनकी पुस्तिका 'हिंदुओं और मुसलमानों के नाम संदेश' ने भारतवासियों में उत्तेजना फैला दी। अतः कम्पनी ने मिशनरियों के विरुद्ध दमन-नीति अपनाई। इङ्गलैण्ड में इस नीति की कटु आलोचना हुई।

चार्ल्स ग्रांट—चार्ल्स ग्रांट ने अपने 'आवज़रवेशन्स' में भारतवासियों की अनैतिकता का वर्णन किया। उसने अँग्रेजी माध्यम से शिक्षा देकर और धर्म प्रचार के द्वारा उनके नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने का सुझाव रखा।

भारतीय शिक्षा में प्राच्यवादी नीति—भारत में कम्पनी के कुछ पदाधिकारी भारतीय शिक्षा में प्राच्यवादी नीति के समर्थक थे। लार्ड मिंटो ने इस देश के साहित्य एवं विज्ञान के पुनरुद्धार के लिये कम्पनी के संचालकों से प्रार्थना की।

१८१३ का आज्ञा-पत्र—१८१३ के आज्ञा-पत्र के अनुसार मिशनरियों को भारत में धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता देदी गई और भारतीय साहित्य एवं विज्ञानों के पुनरुत्थान के लिए प्रतिवर्ष एक लाख रुपया व्यय किये जाने का निश्चय हुआ। इसी धारा ने अर्वाचीन भारतीय शिक्षा का शिलान्यास किया।

TEST QUESTIONS

1. Give a brief account of the proselytizing and educational activities of the East India Company from 1600 to 1765.
2. Discuss briefly the educational policy of the East India Company between 1765 and 1813.
3. Write short notes on :-(a) Charity Schools, (b) Calcutta Madarassah. (c) Banaras Sanskrit College, and (d) Serampore Trio.
4. "Charles Grant is described as the father of modern education in India." How far do you agree with this statement ?
5. "The Charter Act of 1813 forms a turning point in the history of Indian education." Discuss.

अध्याय ५

शिक्षा की अनिश्चित नीति

(१८१३-३३)

१८१३ के आज्ञा-पत्र के अनुसार शिक्षा का भार कम्पनी पर आ गया था और भारतीय साहित्य एवं विज्ञानों के प्रसार के लिये एक लाख रुपये की धन-राशि निश्चित कर दी गई थी। परन्तु आज्ञा-पत्र में इस धन को व्यय करने की विधि का स्पष्टीकरण नहीं किया गया था। परिणामतः शिक्षा के प्रश्न पर विवाद उठ खड़ा हुआ।

विवाद के विषय

विवाद मुख्यतः निम्नलिखित विषयों पर था :—

१. **उद्देश्य** (Aim)—जनसाधारण के लिये प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय अथवा थोड़े से व्यक्तियों के लिये उच्च शिक्षा की।

२. **लक्ष्य** (Object)—प्राच्य ज्ञान का संरक्षण और विकास किया जाय अथवा पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानों को प्रारम्भ करके उनकी उन्नति की जाय।

३. **साधन** (Agency)—शिक्षा का उत्तरदायित्व सरकार पर होना चाहिये अथवा उसे व्यक्तिगत प्रयासों पर छोड़ देना चाहिये।

४. **माध्यम** (Medium)—शिक्षा, संस्कृत, अरबी और फारसी भाषाओं द्वारा दी जाय अथवा देशी भाषाओं द्वारा या अंग्रेजी द्वारा।

इन प्रश्नों को लेकर देश में तीन दल बन गये :—

(१) एक दल का कहना था कि संस्कृत, फारसी और अरबी को शिक्षा का माध्यम बना कर पाश्चात्य विज्ञानों और विचारों का भारत में प्रसार किया जाय। इसके समर्थकों में हेस्टिंग्ज़ और मिन्टो की शिक्षा-नीति के अनुगामी थे। इनका जोर मुख्य रूप से बंगाल में रहा।

(२) कुछ लोगों का मत था कि देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। इनमें मद्रास का गवर्नर मुनरो और बम्बई का गवर्नर एल्फिस्टन प्रमुख थे।

(३) कम्पनी के नवयुवक अधिकारी एवं मिशनरी इस विचार के थे कि अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाकर पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार किया जाय।

यहाँ यह लिख देना अनुपयुक्त न होगा कि इन दलों में केवल कम्पनी के ही कर्मचारी थे। भारतवासियों के मत का उस समय कोई मूल्य नहीं था।

संचालकों का शिक्षा-आदेश

उपर्युक्त विवाद का अन्त करने के अभिप्राय से कम्पनी के संचालकों ने ३ जून, १८१४ को अपना प्रथम शिक्षा-आदेश जारी किया। १८१३ के आज्ञा-पत्र के शिक्षा सम्बन्धी धारा का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा : "यह धारा दो विभिन्न समस्यायें विचारार्थ उपस्थित करती है; प्रथम, भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहन एवं साहित्य का पुनरुत्थान तथा प्रगति; द्वितीय, भारतीयों में विज्ञानों का प्रचार तथा उन्नति।"[1] परन्तु इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये संचालकों ने अंग्रेजी ढंग के विद्यालयों की स्थापना का विरोध किया तथा प्राच्य-शिक्षा प्रणाली पर बल दिया। उन्होंने लिखा : "हम समझते हैं कि जिस विधि से विद्वान हिन्दुओं को इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये हम अपने समान विचारों का बना सकते हैं, यह है कि उन्हें अपनी चिरकालीन परम्परा द्वारा शिक्षा प्राप्त करने दिया जाय और उनकी योग्यताओं को विकसित करने के लिये उन्हें प्रोत्साहन दिया जाय तथा इस प्रकार के प्रोत्साहन के लिये उन्हें सम्मान-सूचक उपाधियाँ और समय-समय पर आर्थिक सहायता दी जाय।"[2]

भारतीय शिक्षा-प्रणाली और साहित्य की सराहना करते हुए संचालकों

1. Sharp : *op. cit.*, pp. 23-4.
2. *Ibid.*

ने लिखा : "हमें विदित हुआ है कि संस्कृत भाषा में आचार-शास्त्र एवं कानून के अनेक उत्तम ग्रन्थ हैं, जिनका अध्ययन उन भारतवासियों के लिए लाभप्रद हो सकता है, जिन्हें सरकारी न्याय-विभाग में कार्य करने का अवसर प्राप्त होगा। ज्योतिष तथा गणित के भी उत्तम ग्रन्थ हैं, जिनमें ज्यामिति और बीजगणित सम्मिलित हैं। इनसे यूरोपीय विज्ञानों की भले ही वृद्धि न हो, पर ये भारतवासियों एवं हमारे उन कर्मचारियों में सम्पर्क स्थापित करेंगे जो हमारी वेधशाला तथा इंजीनियरी-विभाग में कार्य करते हैं। हमारा निश्चय है कि उन कर्मचारियों को जो संस्कृत भाषा का अध्ययन करना चाहते हैं, उचित प्रोत्साहन दिया जाय।"[1]

सारांश में अपने शिक्षा-आदेश में कम्पनी के संचालकों ने केवल हिन्दू शिक्षा-व्यवस्था को प्रोत्साहित करने का विचार व्यक्त किया। उन्होंने अंग्रेजी और मुस्लिम शिक्षा का कहीं उल्लेख भी नहीं किया। वस्तुतः इस आदेश-पत्र को लिखते समय उन्होंने केवल अपने राजनीतिक हितों का ही ध्यान रखा। वे भारतीय विद्वानों को सम्मान-सूचक उपाधियाँ, थोड़ी सी आर्थिक सहायता और भारतीयों से घनिष्टता बढ़ाने के लिये अपने कर्मचारियों को संस्कृत के अध्ययन के लिये प्रोत्साहन देने से अधिक कुछ नहीं करना चाहते थे। उनकी इस नीति से भारतीय शिक्षा में प्रगति की आशा करना व्यर्थ था। "इस आदेश-पत्र से अधिक निराशाजनक लेख की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।"[2]

कम्पनी के उच्च अधिकारियों का मत

भाग्यवश कम्पनी के उच्च अधिकारी संचालकों के विचारों से सहमत नहीं हुए। उनका दृढ़ विश्वास था कि भारतवासियों को शिक्षित करना इङ्गलैंड का कर्त्तव्य है। उदाहरणार्थ भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज (Marquess of Hastings) ने २ अक्टूबर, १८१५ के अपने विवरण-पत्र में प्रस्ताव किया कि एक लाख रुपये की धन-राशि को विद्यालयों के पुनरुद्धार एवं नवनिर्माण में व्यय करके शिक्षा को जन-साधारण के लिए सुलभ बनाया जाय। उसने लिखा : "अंग्रेजों के लिये यह श्रेय की बात होगी कि यह लाभदायक क्रान्ति उनके शासन-काल में हो। भारत की विशाल जनसंख्या के लिये वरदानों का साधन होना एक ऐसी महत्त्वाकांक्षा है, जो हमारे देश को शोभा

1. *Ibid.*

2. "A more disappointing document than this could hardly be imagined." Nurrullah and Naik : *op. cit.*, p. 88.

देती है।"[1] लार्ड हेस्टिंग्ज का दृढ़ विश्वास था कि भारतीय जनता को शिक्षित करके ही कम्पनी के शासन को सबल बनाया जा सकता है। शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के लिये उसने प्रस्ताव किया कि प्रत्येक जिले में दो स्कूल होने चाहिये—एक हिन्दुओं और एक मुसलमानों के लिये।

सर चार्ल्स मेटकाफ (Sir Charles Matcalfe) के भारतीय शिक्षा-सम्बन्धी विचार और भी अधिक उदार थे। ४ सितम्बर, १८१५ की अपनी दिल्ली प्रदेश की 'राजस्व विज्ञप्ति' में उसने लिखा : "भारतवासियों को शिक्षा देने के विरुद्ध तर्क दिये गये हैं पर ऐसे तर्कों पर ध्यान देना एक उदार सरकार के लिये कितनी अयोग्यता की बात होगी। यदि हम अपने इस कर्त्तव्य को करेंगे, तो भविष्य में चाहे जो भी परिवर्तन हों, हमें समस्त युगों में भारतवासियों की कृतज्ञता प्राप्त होगी। परन्तु यदि हम अपने स्वार्थ एवं भावी सङ्कटों के भय से अपनी प्रजा को अच्छी बातों से बंचित रखेंगे, तो हमें अपना राज्य रखने का कोई अधिकार नहीं होगा।"[2]

तत्कालीन इङ्गलैंड की सामाजिक दशा का प्रभाव

१९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इङ्गलैंड की सामाजिक दशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। दण्ड-विधान में सुधार हुआ, दास-व्यापार समाप्त कर दिया गया, प्रौढ़-शिक्षा को प्रोत्साहन मिला और लन्दन विश्वविद्यालय का शिलान्यास हुआ।[3] इस सुधारवादी भावना से भारत भी अछूता न बचा। कम्पनी के कर्मचारी एवं संचालक अपने शिक्षा-कर्त्तव्य के प्रति जागरूक हो गये और १८२३ के उपरान्त विभिन्न प्रान्तों में राजकीय शिक्षा-प्रयास दृष्टिगोचर होने लगे।

राजकीय शिक्षा-प्रयास (१८१३–३३)

बंगाल

गवर्नर जनरल के १७ जुलाई, १८२३ के प्रस्तावानुसार "जनता को अधिक उत्तम शिक्षा देने, उसमें लाभप्रद ज्ञान का प्रसार एवं उसकी नैतिकता का उत्थान करने के लिये"[4] एक लोक-शिक्षा-समिति (General Committee of Public Instruction) का निर्माण हुआ। एक लाख रुपये की धन-राशि

1. Sharp : *op. cit.*, pp. 28-29.
2. *Adam's Reports* : p. 406.
3. G. M. Trevelyan : ***English Social History***, pp. 479-495.
4. Vakil, *op. cit.*, p. 55.

को व्यय करने का अधिकार भी इस समिति को दे दिया गया। समिति में दस सदस्य थे और इनमें से अधिकांश प्राच्य साहित्य के महान् प्रशंसक थे। इनमें एच० एच० विल्सन (H. H. Wilson) और एच० टी० प्रिन्सेप (H. T. Prinsep) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १८३३ तक इस समिति ने निम्नलिखित शिक्षा कार्य किये—

१. कलकत्ता मदरसा एवं बनारस संस्कृत कालेज का पुर्नगठन किया।
२. १८२४ में प्राच्य शिक्षा के लिये कलकत्ता, आगरा और दिल्ली में कालेज स्थापित किये।
३. इसी वर्ष 'कलकत्ता शिक्षा प्रेस' का निर्माण किया।
४. संस्कृत, अरबी तथा फ़ारसी के ग्रन्थ प्रकाशित किये।
५. यूरोप की अनेकों विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों का प्राच्य भाषाओं में अनुवाद करा कर प्रकाशित किया।
६. इन पुस्तकों को पाठ्य-क्रम में स्थान दिया।
७. प्राच्य भाषाओं के विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दीं।

समिति की प्राच्यवादी नीति का भारतवासियों ने स्वागत नहीं किया। उनमें राष्ट्रीय चेतना का आविर्भाव हो चुका था। अपनी कूपमंडूकता का अन्त करने के लिये वे पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता समझ चुके थे। बङ्गाल में राजा राममोहन राय अंग्रेजी-शिक्षा-प्रसार के लिये आन्दोलन कर रहे थे। ११ दिसम्बर, १८२३ को उन्होंने गवर्नर जनरल लार्ड एम्हर्स्ट (Amherst) को एक प्रार्थना-पत्र भेजा। इसमें उन्होंने कलकत्ते में प्रस्तावित संस्कृत कॉलेज की स्थापना का विरोध किया, और लिखा कि सरकार एक अधिक उदार एवं बुद्धिमतापूर्ण शिक्षा-पद्धति को प्रोत्साहित करे जिसमें गणित, प्राकृतिक दर्शन, रसायन शास्त्र, विज्ञान एवं अन्य लाभदायक विज्ञान सम्मिलित हों।[1] राजा राममोहन राय की प्रार्थना पर कोई ध्यान न देकर संस्कृत कॉलेज की योजना पूर्ण कर दी गई।

कम्पनी के संचालकों से भी समिति की प्राच्यवादी नीति को समर्थन नहीं मिला। १८ फरवरी, १८२४ के अपने आदेश-पत्र में उन्होंने लिखा कि समिति हिन्दू या मुस्लिम साहित्य की शिक्षा देने के लिये संस्थायें स्थापित करके, उस साहित्य की शिक्षा देना चाहती है, जिसका अधिकांश भाग निरर्थक है। उन्होंने समिति के कार्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया और आदेश दिया कि प्राच्य ज्ञान के स्थान पर पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान का प्रसार किया जाय। परिणामस्वरूप

1. Sharp : *op. cit.*, p. 101

समिति ने कलकत्ता मदरसा, कलकत्ता संस्कृत कालेज, बनारस संस्कृत कॉलेज एवं आगरा कॉलेज में अंग्रेज़ी कक्षाओं का प्रबन्ध कर दिया और दिल्ली तथा बनारस में जिला अंग्रेज़ी स्कूलों का निर्माण कराया, किन्तु इनसे जनता की माँग पूर्ण न हुई।

बम्बई

१८१८ में अन्तिम पेशवा की पराजय के उपरान्त बम्बई प्रेसीडेन्सी बनी और १८१९ में एल्फिंस्टन वहाँ का गवर्नर नियुक्त हुआ। उसने पेशवा के ५ लाख रुपये के वार्षिक दक्षिणा-फंड में से १८२१ में पूना संस्कृत कालेज का निर्माण किया। दक्षिण के प्रभावशाली ब्राह्मणों को प्रसन्न करने के लिये यह एक चतुर राजनीतिक युक्ति थी। १८२३ तक शिक्षा की दिशा में अन्य कोई कार्य नहीं किया गया। उस वर्ष बम्बई भारतीय-शिक्षा-समिति (Bombay Native Educational Society) ने सरकार से शिक्षा-अनुदान की प्रार्थना की। फलतः १३ दिसम्बर, १८२३ को एल्फ़िंस्टन ने अपना प्रसिद्ध शिक्षा-विवरण-पत्र लिखा, जिसमें उसने शिक्षा-प्रसार के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये :—

१. "भारतीय विद्यालयों में शिक्षण-विधि का सुधार एवं विद्यालयों की संख्या में वृद्धि करना;
२. विद्यालयों के लिये पाठ्य-पुस्तकों का प्रबन्ध करना;
३. निम्न वर्ग के भारतीयों को शिक्षा से लाभ उठाने के लिये प्रोत्साहित करना;
४. यूरोपीय विज्ञानों एवं उच्च शिक्षा की शाखाओं की उन्नति करने के लिये विद्यालय स्थापित करना;
५. भारतीय भाषाओं में नैतिक तथा भौतिक विज्ञान की पुस्तकें लिखवाने तथा प्रकाशित करवाने का प्रबन्ध करना;
६. ऐसे लोगों को अंग्रेजी भाषा की शिक्षा देने के लिये विद्यालय स्थापित करना, जो उसके उच्च अध्ययन एवं यूरोपीय अनुसंधानों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसे साधन बनाने के इच्छुक हैं; एवं
७. भारतीयों को ज्ञान की अन्तिम शाखाओं का अध्ययन करने के लिये प्रोत्साहित करना।"[1]

इस प्रकार एल्फ़िंस्टन जनसाधारण की शिक्षा के पक्ष में था। परन्तु उसने इस कार्य के लिये राजकीय एवं व्यक्तिगत प्रयासों में सहकारिता की आवश्य-

1. Elphinstone's *Minute on Education*, Para 7.

कता बताई, क्योंकि केवल सरकार इस महान् उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में असमर्थ थी। जनशिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये उसने दो सुझाव दिये—सरकार द्वारा विद्यालयों का निर्माण एवं शिक्षा-समितियों को अनुदान। फलतः शिक्षा-अनुदान-प्रणाली (Grant-in-aid System) प्रारम्भ हुई और शिक्षा पर सरकार का नियंत्रण हो गया।

एल्फ़िंस्टन के विवरण-पत्र का उसके कौंसिल के सदस्य वार्डन (Warden) ने घोर विरोध किया। २३ दिसम्बर, १८२३ के अपने विवरण-पत्र में उसने लिखा कि जन-साधारण को भारतीय भाषाओं द्वारा शिक्षा देने की अपेक्षा उच्च वर्ग के कुछ व्यक्तियों को अंग्रजी भाषा द्वारा शिक्षित करना अधिक उत्तम होगा। वार्डन के इस विरोध के फलस्वरूप कुछ समय बाद 'एंग्लो-वर्नाक्यूलर विवाद' (Anglo-Vernacular Controversy) प्रारम्भ हो गया। कम्पनी के संचालकों ने भी एल्फ़िंस्टन के सब प्रस्तावों को मान्यता नहीं दी। केवल 'बम्बई-भारतीय-शिक्षा-समिति को ६०० रुपये मासिक का अनुदान दिया गया, और उसे बम्बई प्रान्त में शिक्षा का संगठन करने के लिये सरकारी संस्था मान लिया गया। इस कूटनीति को अपना कर कम्पनी ने शिक्षा का भार अपने ऊपर न आने दिया और १८३३ तक स्वयं शिक्षा के लिये कुछ न किया।

मद्रास

मुनरो द्वारा मद्रास प्रान्त में शिक्षा की जांच का वर्णन अध्याय २ में किया जा चुका है। इस जांच से उसने यह निष्कर्ष निकाला था कि शिक्षा की अवनति के कारण शिक्षकों की अयोग्यता, व्यक्तियों की निर्धनता एवं सरकार की अवहेलना थे। इन कारणों को दूर करने के लिये उसने १० मई, १८२६ के अपने विवरण-पत्र में प्रस्ताव किया कि प्रान्त के २० जिलों में उच्च कोटि के दो-दो स्कूल —एक हिन्दुओं और एक मुसलमानों के लिये—अंग्रेजी शिक्षा देने के लिये, ३०० तहसीलों में एक-एक वर्नाक्यूलर स्कूल एवं शिक्षकों की दीक्षा के लिये एक प्रशिक्षण स्कूल खोला जाय। उसने शिक्षकों को अधिक वेतन देने एव पाठ्य-पुस्तकें छापे जाने की सिफ़ारश की। अपनी इस शिक्षा-योजना को कार्यान्वित करने के लिए उसने कम्पनी के संचालकों से ४८ हजार रुपये की वार्षिक सहायता माँगी। १८२८ में संचालकों ने अपनी स्वीकृति दे दी, पर मद्रास का दुर्भाग्य था कि १८२७ में मुनरो की मृत्यु हो चुकी थी।

इस योजना को पूर्ण करने का भार लोक-शिक्षा-समिति पर पड़ा, जिसका निर्माण १८२६ में हो चुका था। परन्तु इसके सदस्यों में मुनरो की कल्पना एवं सद्भावना का अभाव था। फलतः योजना की प्रगति निराशाजनक रही। शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये मद्रास में एक नार्मल स्कूल तो खुल गया, पर

१८३० तक केवल ६१ तहसीली स्कूल एवं ९ जिला स्कूल स्थापित हुए।[1] इन्हें भी शिक्षकों के अल्प वेतन तथा उचित निरीक्षण न होने के कारण पर्याप्त सफलता न मिली।

मुनरो की शिक्षा-योजना को कुछ पाश्चात्य लेखकों ने दोष-पूर्ण बताया है। हेम्पटन के अनुसार मुनरो जन-शिक्षा को संगठित करने के कार्य की विशालता को नहीं समझ सका एवं जो धन उसने संचालकों से माँगा वह पूर्णतया अपर्याप्त था।[2] आरबथनॉट का मत है कि मुनरो की "योजना का उद्देश्य सार रूप में दोषपूर्ण था और उसकी असफलता अवश्यम्भावी थी।"[3] यदि इन दोषों को स्वीकार कर लिया जाय, तो भी यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मुनरो की योजना में प्रतिपादित विचार उस युग के न होकर बहुत आगे के थे। जिस अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उसने इस योजना की रूप-रेखा बनाई थी, वह अति महान् था और आज भी वह मुनरो को गौरवान्वित कर रहा है। "हमें भारत पर अपना शासन अल्प काल के लिये न समझ कर उस समय तक के लिये स्थाई समझना चाहिये, जब तक कि भारतवासी भविष्य में अपने अन्ध-विश्वासों एवं पूर्व द्वेषों का परित्याग न कर दें, तथा अपने लिये व्यवस्थित सरकार के संगठन, संचालन तथा संरक्षण के लिये पर्याप्त रूप से शिक्षित न हो जायें। जब कभी ऐसा समय आये, तब दोनों देशों के लिये सब से अधिक हितकर यही होगा कि भारत पर से ब्रिटिश सत्ता को धीरे-धीरे हटा लिया जाय।[4]"

धन एवं राजसत्ता के मद से उन्मत्त व्यापारियों को ऐसी शिक्षा से क्या प्रयोजन हो सकता था जिससे भारत की सोने की चिड़िया उनके हाथ से निकल जाय। शिक्षा तो वे केवल इसलिये देना चाहतेथे जिससे कि एक ऐसा वर्ग तैयार हो जाय, जो उनके शोषण-कार्य में उन्हें सहायता दे सके। इसके लिये उच्च वर्ग ही उपयुक्त था। बंगाल में उन्हीं की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। वैसा ही मद्रास में होना आवश्यक था। परिणामतः अभी मुनरो की

1. J. M. Sen : *op. cit.*, p. 99.
2. H. V. Hampton : *Biographical Studies in Modern Indian Education*, p. 142.
3. Alexander Arbuthnot: *Major General Sir Thomas Munro-A Memoir*, p. 154.
4. G. R. Gleig : *Life of Sir Thomas Munro*, p. 316.

योजना पूर्ण रूप से कार्यान्वित भी न हो पाई थी कि संचालकों ने २९ सितम्बर १८३० के अपने आदेश-पत्र में लिख भेजा कि मद्रास में प्रारम्भिक शिक्षा का कार्य पर्याप्त हो गया है, जबकि उच्च शिक्षा के लिये किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं किया गया है। अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि मद्रास की सरकार अपनी शिक्षा-नीति में परिवर्तन करे। इस आदेश-पत्र ने मद्रास में जन-शिक्षा की प्रगति पर रोक लगा दी।

कम्पनी की शिक्षा-नीति की समीक्षा

१८१३ के आज्ञा-पत्र के फलस्वरूप विवादों के उठ खड़े होने से इस काल में भारतीयों को शिक्षित करने के लिये किसी निश्चित नीति का अनुसरण नहीं किया गया। एल्फ़िस्टन और मुनरो भारतीय भाषाओं की उन्नति, हेस्टिंग्ज़ और मिन्टो के समर्थक तथा बंगाल की लोक-शिक्षा-समिति अरबी, फ़ारसी और संस्कृत के प्रोत्साहन एवं वार्डन अंग्रेजी भाषा द्वारा उच्च वर्गों की शिक्षा के पक्ष में थे। कम्पनी के संचालकों की शिक्षा-नीति में भी समय-समय पर परिवर्तन होता रहा। १८१४ में उन्होंने प्राच्य शिक्षाप्रणाली एवं संस्कृत के अध्ययन पर बल दिया; १८२४ में पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान के प्रसार का प्रस्ताव किया; १८२८ में मुनरो की भारतीय भाषाओं द्वारा जन-शिक्षा की योजना स्वीकार की, और १८३० में इस कार्य पर अंकुश लगा दिया। यदि वे अपनी शिक्षा-नीति का स्पष्टीकरण कर देते, तो कम्पनी के अधिकारियों का मतभेद समाप्त हो जाता और शिक्षा की प्रगति के लिये ठोस कदम उठाना सम्भव हो जाता। परन्तु इसका दोषारोपण संचालकों पर करना उचित न होगा। वस्तुतः अपने कर्मचारियों की प्रत्येक शिक्षा-नीति का समर्थन एवं खंडन करके, वे 'प्रयत्न एवं भूल' (Trial and Error) की साधारण विधि का प्रयोग कर रहे थे, जिससे कि वे अन्त में एक उचित शिक्षा-नीति का प्रतिपादन कर सकें।

मिशनरी शिक्षा-प्रयास (१८१३-३३)

१८१३ के आज्ञा-पत्र ने मिशनरियों को भारत में धर्म-प्रचार की स्वतंत्रता दे दी थी। फलतः थोड़े ही समय में प्रायः समस्त देश में मिशनरियों का जाल बिछ गया। उनका प्रमुख उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार करना एवं भारतवासियों को अपने धर्म में दीक्षित करना था। शिक्षा को साधन बना कर वे भारतीयों से सम्पर्क स्थापित कर सकते थे। उन्हें अपने धर्म-प्रचार-कार्य के लिये शिक्षित भारतीयों की भी आवश्यकता थी। अतः मिशनरियों के लिये शिक्षा का प्रबन्ध करना आवश्यक हो गया। प्रारम्भ में उन्होंने देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया और इन भाषाओं में पाठ्य-पुस्तकों, शब्द-कोषों,

व्याकरणों आदि की रचना की। उनके इस कार्य ने भारत में शिक्षा-प्रसार में महान् योग दिया। उनके द्वारा विभिन्न प्रान्तों में किये गये शिक्षा-कार्य पर नीचे प्रकाश डाला जा रहा है।

बंगाल

हम अध्याय ४ में सीरामपुर में बेप्टिस्ट मिशनरियों के कार्य का वर्णन कर चुके हैं। इन मिशनरियों ने १८१७ में 'सीरामपुर कालेज' का शिलान्यास किया। इसका प्रत्यक्ष उद्देश्य भारतीयों को पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान की शिक्षा देना था, पर वास्तव में इसमें भारतीय तथा ऐंग्लो-इंडियन युवकों को धर्म-प्रचार की दीक्षा दी जाती थी। १८१८ में 'समाचार-दर्पण' नामक बंगाल भाषा का प्रथम समाचार-पत्र प्रकाशित किया गया।

बंगाल में 'लन्दन मिशनरी सोसाइटी' एवं 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' भी कार्य कर रही थीं। प्रथम ने १८१४ से १८१८ तक चिन्सुरा और उसके समीपवर्ती प्रदेश में ३६ स्कूल खोले, जिनमें ३,००० बच्चे पढ़ते थे। द्वितीय ने बर्दवान और उसके आस-पास १० वर्नाक्यूलर स्कूल खोले, जिनमें १,००० बच्चे पढ़ते थे। बरहमपुर और भवानीपुर में भी स्कूलों का निर्माण हुआ। इन दोनों सोसाइटियों ने बालिकाओं की शिक्षा के लिये भी १८२४ तक २७ स्कूल खोले, जिनमें लगभग ५०० लड़कियाँ पढ़ती थीं। १८२० में शिवपुर में बिशप कालेज (Bishop's College) का निर्माण हुआ।

१८३० में अलेक्ज़ेन्डर डफ़ (Alexander Duff) नामक स्काटलैन्ड के एक तरुण चौबीस-वर्षीय मिशनरी के बंगाल आने से वहाँ के धर्म-प्रचारकों के कार्य को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। वह कहता था कि भारतवासियों को केवल 'पश्चिम और विशेष रूप से बाइबिल' की कृपा से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। उसने १८३० में कलकत्ते में 'स्काटिश चर्च कालेज' स्थापित किया, जिसमें अंग्रेजी के माध्यम द्वारा पाश्चात्य शिक्षा दी जाती थी तथा बाइबिल का पढ़ना अनिवार्य था।

बम्बई

बंगाल की अपेक्षा बम्बई में मिशनरियों का शिक्षा कार्य कम व्यापक था। अमेरिकन मिशन ने १८१५ में बम्बई में लड़कों के लिये एक स्कूल एवं १८२४ से १८२६ तक लड़कियों के लिये ६ स्कूल, तथा १८३१ में अहमदनगर में लड़कियों के लिये दो स्कूल खोले।[1] डा० विल्सन (Wilson) ने १८२६ में

1. J. A. Richey : *Selections from Education Records* : Vol. II, p. 50.

बम्बई में लड़कियों के लिये ६ स्कूल एवं १८३२ में लड़कों के लिये एक स्कूल स्थापित किया। 'आयरिश प्रेस्बिटेरियन मिशनरी सोसाइटी' ने काठियावाड़ में अंग्रेजी एवं वर्नाक्यूलर स्कूलों का निर्माण किया। चर्च मिशनरी सोसाइटी ने बम्बई, थाना, बेसीन एवं नासिक में लड़कों एवं लड़कियों के स्कूल खोले।

मद्रास

१८१७ में ह्यो (Hough) ने इंगलैण्ड की 'धर्म-प्रचारक-समिति' की सहायता से मद्रास में ६ स्कूल खोले। 'वेसलियन मिशन' ने १८१६ एवं १८२३ में मद्रास तथा नागापट्टम में दो-दो स्कूलों की स्थापना की। 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' ने मद्रास प्रान्त में १०७ स्कूलों का प्रबन्ध किया, जिनमें २,८८२ विद्यार्थी पढ़ते थे। इनके अतिरिक्त मिशनरियों ते तिनावेली, कुम्भकोणम्, चित्तूर, सेलम कोयम्बटूर, विशाखापट्टम्, कड़पा एवं बिल्लारी में भी स्कूल खोले।

अन्य स्थान

मिशनरी सोसाइटियों ने १८२३ तक अजमेर में ४ स्कूल 'लंकास्ट्रियन प्रणाली' (Lancastrian System) पर खोले। इसी प्रकार मिशनरियों ने आगरा, मेरठ, बनारस, आजमगढ़, जौनपुर, बर्दवान, मथुरा, लुधियाना आदि स्थानों में भी स्कूलों का निर्माण किया।

मिशनरियों का शिक्षा कार्य : एक टिप्पणी

१८१३ से १८३३ तक मिशनरियों ने अनेकों शिक्षा-संस्थायें स्थापित कीं, जिनमें अधिकांश संख्या प्रारम्भिक स्कूलों की थी। इन स्कूलों की विशेषतायें निम्नलिखित थीं :—

१. शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषायें थीं।
२. बाइबिल की शिक्षा अनिवार्य थी।
३. पाठ्य-क्रम विस्तृत था एवं उसमें व्याकरण, इतिहास तथा भूगोल सम्मिलित थे। पाठ्य-पुस्तकें छपी हुई थीं।
४. स्कूल नियमित रूप से चलते थे, शिक्षा के घंटे नियत थे एवं रविवार को अवकाश रहता था।
५. अधिकांश स्कूलों में विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थियों को आधुनिक ढंग पर विभिन्न शिक्षकों द्वारा शिक्षा दी जाती थी।

इस प्रकार मिशनरियों ने शिक्षा के संगठन को एक नवीन रूप प्रदान किया। इस देश की शिक्षा-पद्धति पर उसका प्रभाव पड़ा एवं मिशन स्कूलों के समान आधुनिक ढंग के विद्यालयों की स्थापना प्रारंभ होगई।

ग़ैर-मिशनरी शिक्षा-प्रयास (१८१३-३३)

बंगाल

शिक्षा के प्रति मिशनरियों के उत्साह का प्रभाव अन्य व्यक्तियों पर भी पड़ा। इनमें राजा राममोहन राय, डेविड हेयर (David Hare) एवं सर एडवर्ड हाइड ईस्ट (Sir Edward Hyde East) उल्लेखनीय हैं।

राजा राममोहन राय अपने युग के प्राच्य भाषाओं के सबसे बड़े ज्ञाताओं में से एक थे, पर उनका विश्वास था कि भारत की प्रगति केवल उदार शिक्षा के द्वारा होगी, जिसमें पाश्चात्य विद्या तथा ज्ञान की सभी शाखाओं की शिक्षण-व्यवस्था हो। वे प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने भारत में अंग्रेजी भाषा तथा पश्चिमी विज्ञानों के अध्ययन का समर्थन और आरम्भ किया। नन्दलाल चटर्जी के अनुसार, "राजा राममोहन राय अविनष्ट भूतकाल तथा उदित हुए भविष्य, स्थिर अनुदारता तथा क्रान्तिकारी सुधार, अन्ध परम्परागत पृथकता तथा प्रगतिशील एकता के मध्य मानव-सम्बन्ध स्थापित करने वाले थे।" संक्षेप में, वे प्रतिक्रिया तथा प्रगति के मध्य बिन्दु और प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति में सामंजस्य तथा समन्वय स्थापित करने वाले थे। पाश्चात्य शिक्षा, ज्ञान तथा विज्ञानों को प्रोत्साहित करके भारत में जागरण प्रारम्भ करने का श्रेय उन्हीं को है।

राजा राममोहनराय का मित्र डेविड हेयर कलकत्ते का एक धनी घड़ीसाज़ था। उसका विश्वास था कि हिन्दू-समाज के पुनरुत्थान के लिये अंग्रेजी भाषा एवं अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान आवश्यक है। इन दोनों मित्रों को अपने स्वप्न को साकार बनाने में बंगाल के मुख्य न्यायाधीश हाइड ईस्ट से बहुत सहयोग मिला। १४ मार्च, १८१६ को हाइड ईस्ट के निवास-स्थान पर एक सार्वजनिक सभा की गई। इसमें "सम्मानित हिन्दुओं के पुत्रों को अंग्रेजी की उत्तम शिक्षा देने के लिये" एक हिन्दू-कालेज की स्थापना पर विचार विमर्ष हुआ और तत्काल ही लगभग ५० हजार रुपया एकत्रित होगया। २० जनवरी, १८१७ को इस कालेज का शिलान्यास हुआ। पाश्चात्य पद्धति पर उच्च शिक्षा देने के लिये यह प्रथम कालेज था, जिसका किसी धर्म से सम्बन्ध नहीं था। इसमें अंग्रेजी, नीति-शास्त्र, व्याकरण, बंगला, इतिहास, भूगोल, गणित और ज्योतिष की शिक्षा दी जाती थी। परन्तु पाठ्यक्रम में संस्कृत तथा फ़ारसी को स्थान न देने से विद्यार्थियों में अपनी संस्कृति के प्रति स्वाभाविक घृणा उत्पन्न हो गई एवं प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृतियों के सम्मिश्रण का अवसर भी नष्ट हो गया।

शिक्षा-प्रसार के लिये अन्य कार्य भी हुए। १८१७ में 'कलकत्ता स्कूल-पुस्तक समिति' की स्थापना भारतीयों में प्रारम्भिक ज्ञान का प्रसार करने के लिये हुई। इस समिति ने १८२१ तक किशोर साहित्य एवं पाठ्य-पुस्तकों की १,२६,४४६ प्रतियाँ बिना मूल्य या नाम-मात्र के मूल्य पर वितरित कीं। १८१९ में 'कलकत्ता स्कूल समिति' की स्थापना कलकत्ता एवं उसके समीपवर्ती स्थानों में स्कूलों का निर्माण करने के लिये हुई। १८२१ तक इस समिति ने ११५ प्राइमरी स्कूल स्थापित किये एवं विद्यार्थियों के लिये पुस्तकों का प्रबन्ध किया।

बम्बई

बम्बई में भी शिक्षा-प्रसार की दिशा में व्यक्तिगत प्रयास किये गये। १८१५ में चर्च ऑफ इंगलैण्ड के सदस्यों ने 'बम्बई शिक्षा-समिति' की स्थापना की, जिसका प्रमुख उद्देश्य ऐंग्लो-इण्डियन एवं यूरोपियन बच्चों को शिक्षा देना था। इस समिति द्वारा स्थापित किये गये स्कूलों में भारतीय बच्चों का प्रवेश वर्जित न होने एवं धार्मिक शिक्षा के वैकल्पिक होने के कारण अनेकों हिन्दू, मुसलमान तथा पारसी छात्र उनमें पढ़ने लगे। समिति ने भारतीय बच्चों के लिये भी १८२० तक ४ स्कूल खोले, जिनमें से २ बम्बई में, १ गिरगाँव में, एवं १ मज़गाँव में था। १८२० में एल्फ़िंस्टन के सभापतित्व में इस समिति ने 'भारतीय शिक्षालय एवं पाठ्य-पुस्तक समिति' का निर्माण किया। १८२२ में यह 'बम्बई भारतीय शिक्षा-समिति' के नाम से कार्य करने लगी। यह समिति प्रान्तीय देशी शिक्षा-व्यवस्था की जाँच करके इस निष्कर्ष पर पहुँची कि उसमें पुस्तकों, उचित शिक्षण-विधि, शिक्षकों तथा धन का अभाव है। इस समिति ने 'बम्बई शिक्षा-समिति' से सिफ़ारश की कि पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित की जायँ एवं ६ बुद्धिमान भारतीयों को मराठी, गुजराती, कन्नड़ एवं उर्दू भाषाओं में दीक्षित करके स्कूलों के निरीक्षण के लिये नियुक्त किया जाय। योजना को पूर्ण करने के लिये 'बम्बई शिक्षा समिति' ने सरकार से आर्थिक सहायता माँगी। इस पर ऐल्फ़िंस्टन ने अपना शिक्षा-विवरण-पत्र प्रस्तुत किया। फलस्वरूप 'बम्बई शिक्षा-समिति' को ६०० रुपये मासिक अनुदान दिया गया एवं पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन का भार सरकार ने अपने ऊपर ले लिया। सहायता पाकर समिति की शिक्षा-प्रसार-कार्य की गति तीव्र हो गई। १८२६ में इसने कोंकण एवं गुजरात के राजकीय प्राइमरी स्कूलों के लिये २४ दीक्षित अध्यापक दिये; १८२९ में बम्बई में चिकित्सा तथा इंजीनियरी की कक्षायें खोलीं;

अनेकों प्राइमरी स्कूल तथा ४ अंग्रेजी स्कूल बम्बई, थाना, पनवल एवं पूना में स्थापित किये; तथा १८३३ तक २ लाख रुपये व्यय करके लगभग ५० हजार पुस्तकें प्रकाशित कीं।[1]

मद्रास

इस प्रान्त में शिक्षा के लिये व्यक्तिगत प्रयास बहुत ही कम हुआ। बंगलौर के अंग्रेजी स्कूल को मैसूर के राजा से ३५० रुपये वार्षिक सहायता मिलती थी। 'मद्रास शिक्षालय समिति' को सरकार ६ हजार रुपये वार्षिक अनुदान देती थी। पचयप्पा मुदालियर (Pachayappa Mudaliar) नामक एक धनी हिन्दू ने अपनी मृत्यु के पश्चात् ४ लाख रुपये की सम्पत्ति दान के लिये छोड़ी। इसका उपयोग निर्धन विद्यार्थियों को अंग्रेजी, विज्ञान, तामिल और तेलगू की निःशुल्क शिक्षा देने के लिये मद्रास में १८४२ में एक स्कूल खोल कर किया गया।[2]

उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली

उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली के कुछ दानवीर अपने शिक्षा-कार्य के लिये चिरस्मरणीय रहेंगे। १८१८ में बनारस के एक धनी बङ्गाली जयनारायण घोषाल से प्राप्त २० हजार रुपये से जयनारायण स्कूल खोला गया। इसमें हिन्दू और मुसलमान विद्यार्थियों को अंग्रेजी, फारसी, हिन्दुस्तानी एवं बंगला की शिक्षा दी जाती थी। निर्धन विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा, छात्रवृत्तियों, भोजन एवं वस्त्रों का प्रबन्ध था। १८२५ में जयनारायण घोषाल के पुत्र ने इस स्कूल को २० हजार रुपये दान स्वरूप और दिये। १८२४ में पंडित गंगाधर शास्त्री द्वारा दान दी गई डेढ़ लाख रुपये की सम्पत्ति से आगरा के संस्कृत कालेज का आगरा कालेज के नाम से संगठन किया गया। दिल्ली में भूमि-कर बोर्ड के सदस्य डबल्यू० फ्रेजर (W.Fraser) ने ज़मीदारों एवं कृषकों के बच्चों के लिये चार स्कूल खोले। १८२९ में नवाब इस्लाम-उद-दौला ने दिल्ली कालेज को १ लाख ७० हजार रुपये दान दिये।[3]

१८३३ का आज्ञा-पत्र

१८३३ में कम्पनी के आज्ञा-पत्र का पुनः शोधन हुआ। इसमें भारतीयों के सुख-समृद्धि को बढ़ाने के लिये एक भी परोपकारी धारा नहीं जोड़ी गई।

1. Bhagwan Dayal : *op. cit*,. p. 60.
2. B. D. Basu : *op. cit*., pp. 51-52.
3. S. N. Mukerji : *op cit*., p. 61.

परन्तु १ लाख रुपये की धन-राशि को बढ़ा कर दस गुना कर दिया गया, क्योंकि उस समय भारत के मानचित्र में एक विस्तृत भूभाग लाल रंग से रंगा जा चुका था। इस आज्ञा-पत्र की मुख्य बातें निम्नलिखित थीं :—

१. भारत के सिंहद्वार समस्त देशों के मिशनरियों के लिये खुले रहेंगे।
२. बंगाल की सरकार का प्रभुत्व अन्य प्रान्तों की सरकारों पर होगा। बंगाल का गर्वनर-जनरल अन्य प्रान्तीय सरकारों से अपनी नीतियों का पालन करा सकेगा।
३. कोई भारतीय धर्म, वंश एवं वर्ण के आधार पर कम्पनी की नौकरी के लिये अयोग्य न ठहराया जायगा।
४. गर्वनर-जनरल की कौंसिल में एक कानून सदस्य की वृद्धि होगी। (इस पद को सर्व प्रथम मैकाले (Macaulay) ने ग्रहण किया, जिसने भारतीय शिक्षा के इतिहास में नवीन अध्याय प्रारम्भ किया।)

सारांश

शिक्षा-सम्बन्धी विवाद—१८१३ के आज्ञा-पत्र में १ लाख रुपये की धन राशि को व्यय करने की विधि का स्पष्टीकरण न होने के कारण विवाद उठ खड़ा हुआ। विवाद के विषय थे—जनसाधारण को प्रारम्भिक शिक्षा दी जाय या उच्च वर्गों को उच्च शिक्षा; प्राच्य ज्ञान की अथवा पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान की उन्नति की जाय; शिक्षा का उत्तरदायित्व सरकार पर हो या अन्य व्यक्तियों पर; शिक्षा का माध्यय संस्कृत, अरबी एवं फारसी अथवा देशी भाषायें या अंग्रेजी हो।

इन प्रश्नों को लेकर तीन दल बने—पहिला संस्कृत, फारसी और अरबी को, दूसरा देशी भाषाओं को और तीसरा अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्ष में था। कम्पनी के संचालक भारतीय साहित्य एवं शिक्षा-प्रणाली को प्रोत्साहन देना चाहते थे। संचालक कम्पनी के कर्मचारियों की शिक्षा-नीतियों का समय-समय पर समर्थन तथा खंडन करते रहे। इन सब कारणों से शिक्षा के लिये राजकीय प्रयास बहुत ही कम हुए।

राजकीय शिक्षा-प्रयास—बंगाल में लोक-शिक्षा-समिति ने प्राच्य शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये कलकत्ता, आगरा एवं दिल्ली में कालेज खोले। इसके उपरान्त संचालकों के आदेशानुसार इनमें अंग्रेजी की कक्षायें खोल दी गईं। पूना में संस्कृत कालेज का निर्माण हुआ। मद्रास में १ नार्मल स्कूल, ६१ तहसीली स्कूल और ६ जिला स्कूल खुले।

मिशनरी शिक्षा-प्रयास—बंगाल में 'बेप्टिस्ट मिशनरियों', ने 'सीरामपुर कालेज'; 'लन्दन मिशनरी सोसाइटी' एवं 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' ने बालकों

एवं बालिकाओं के लिये स्कूल खोले एवं डफ़ ने 'स्काटिश चर्च कालेज' खोला। बम्बई में 'अमेरिकन मिशन', 'आयरिश प्रेस्बिटेरियन मिशनरी सोसाइटी', 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' एवं विल्सन ने लड़कों और लड़कियों के लिये स्कूलों का प्रबन्ध किया। मद्रास में हो, 'वेसलियन मिशन' एवं 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' ने स्कूलों का निर्माण किया।

गैर-मिशनरी शिक्षा-प्रयास—बंगाल में राजा राममोहनराय, डेविड हेयर और हाइड ईस्ट के प्रयास से हिन्दू कालेज का शिलान्यास हुआ। 'कलकत्ता स्कूल-पुस्तक समिति' एवं 'कलकत्ता स्कूल समिति' ने शिक्षा को लोकप्रिय बनाया। बम्बई में 'बम्बई शिक्षा-समिति' के प्रयत्नों के फलस्वरूप अध्यापक प्रशिक्षण एवं पुस्तक प्रकाशन का कार्य हुआ। समिति ने प्राइमरी स्कूल तथा चिकित्सा और इंजीनियरी की कक्षायें खोलीं। मद्रास में मैसूर का राजा बंगलौर के स्कूल को आर्थिक सहायता देता था। उत्तरप्रदेश एवं दिल्ली में दान से प्राप्त धन से स्कूलों तथा कालेजों का निर्माण हुआ।

१८३३ का आज्ञा-पत्र—इस आज्ञा-पत्र के अनुसार शिक्षा के लिये १० लाख रुपये की धन राशि निश्चित हुई। गवर्नर जनरल की कौंसिल में एक कानून सदस्य बढ़ा दिया गया। इस पद को मैकाले ने ग्रहण किया, जिसने शिक्षा के इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ किया।

TEST QUESTIONS

1. Give a brief account of the main issues round which controversies arose from 1813 to 1833.
2. How far was the vagueness of the Charter Act of 1813 responsible for the controversies that arose between 1813 and 1833 ?
3. Discuss briefly the official educational enterprise in India between 1813 and 1833.
4. Write short notes on :—(a) Missionary educational enterprise (1813-33) ; (b) Non-missionary educational enterprise (1813-33) ; and (c) General Committee of Public Instruction for the Bengal Presidency.

अध्याय ६

प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा-विवाद एवं निस्यन्दन-सिद्धान्त

(१८३३-५३)

हम अध्याय ५ में इस बात का उल्लेख कर चुके है कि भारतीयों की शिक्षा के सम्बन्ध में कम्पनी के अधिकारियों मे मतभेद था। इस प्रश्न को लेकर दो प्रमुख दल उत्पन्न हो गये थे—प्राच्यवादी (Orientalists) एवं पाश्चात्यवादी (Occidentalists or Anglicists)

प्राच्यवादी

इस दल में कम्पनी के पुराने अधिकारी थे। सर्व प्रथम वारेन हेस्टिंग्ज ने कलकत्ता मदरसा स्थापित करके प्राच्यवादी नीति के विचार को व्यक्त किया था। इसी नीति के अनुसार डंकन ने बनारस संस्कृत कॉलेज का निर्माण किया था। मिन्टो ने भी इसी नीति का समर्थन किया था। बंगाल की लोक-शिक्षा-समिति में प्राच्यवादी नीति के समर्थकों का बहुमत था। इनमें बङ्गाल के शिक्षा-सचिव एवं प्राच्यवादी दल के नेता एच० टी० प्रिन्सेप तथा समिति के मन्त्री एच० एच० विल्सन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १८१३ के आज्ञा-पत्र के अनुसार १ लाख रुपये की धन-राशि को व्यय करने का अधि-

कार इसी समिति को प्राप्त था। समिति में प्राच्यवादी नीति के समर्थकों का बहुमत होने के कारण प्राच्य शिक्षा एवं साहित्य को प्रोत्साहित करने के लिये कॉलेजों का निर्माण किया गया था। विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी गई थीं एवं प्राच्य भाषाओं के ग्रन्थ प्रकाशित किये गये थे। वस्तुतः कूटनीति परायण प्राच्यवादी, संस्कृत, अरबी एवं फारसी पर आधारित शिक्षा देकर भारतीयों को जातियों एवं धर्मों में विभक्त रखना चाहते थे जिससे कि नव-निर्मित ब्रिटिश राज्य को क्षति न पहुँचे। प्रिंसेप का मत था कि भारतीय अंग्रेजी भाषा पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकते हैं। विल्सन नहीं चाहता था कि भारतीय, अंग्रेजी पढ़ कर उसके देशवासियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर एक धरातल पर खड़े हो सकें।[1] कुछ प्राच्यवादियों का मत था कि पाश्चात्य ज्ञान एवं विचारों के सम्पर्क में आने से प्राचीन भारतीय संस्कृति नष्ट हो जायगी। उनका यह भी कहना था कि भारतीय साहित्य में ज्ञान की ऐसी अपार निधि है कि उसका अध्ययन यूरोप-निवासियों के लिये भी आवश्यक है। इस प्रकार के तर्क देकर प्राच्यवादियों ने प्राचीन संस्कृति, साहित्य एवं शिक्षा को सुरक्षित रखना भारतीयों के लिये हितकर बताया।

पाश्चात्यवादी

इस दल में कम्पनी के नवयुवक अधिकारी एवं मिशनरी सम्मिलित थे। उनका कथन था कि प्राच्य शिक्षा-पद्धति मरणासन्न है एवं उसको पुनर्जीवित करना असम्भव है। उनका मत था कि अरबी, फारसी एवं संस्कृत साहित्य में रूढ़िवादी तथा संकुचित विचारों के अतिरिक्त किसी भी लाभप्रद ज्ञान की खोज करना व्यर्थ है। यूरोप में विज्ञान के अध्ययन के कारण औद्योगिक क्रान्ति हो रही थी एवं नवीन आविष्कार किये जा रहे थे। अतः पाश्चात्यवादी भारत की प्रगति के लिये अंग्रेजी शिक्षा द्वारा पाश्चात्य विचारों के प्रसार के पक्ष में थे। इसमें भी एक राजनीतिक चाल थी। अँग्रेजों को अपने व्यापारिक तथा प्रशासकीय कार्यों के लिये 'बाबू वर्ग' की आवश्यकता थी। इस निम्न वर्ग के लिये व्यक्तियों को इङ्गलैंड से न लाकर, भारतीयों को शिक्षित करके तैयार कर लेना ही अधिक विवेकपूर्ण कार्य था।

मैकॉले का विवरण-पत्र

जिस समय प्राच्य-पाश्चात्य विवाद (Oriental-Occidental Controversy) उग्र रूप धारण कर रहा था, उसी समय लार्ड मैकॉले (Macaulay) १० जून, १८३४ को गवर्नर-जनरल की कौंसिल के कानून-सदस्य के रूप में भारत

1. B. D. Basu : *op. cit.* p. 58.

आया। वह अंग्रेजी का प्रकाण्ड विद्वान् था और अपने लेखों तथा व्याख्यानों से लोगों में जीवन का संचार कर देता था। वह उस युग की उपज था, जब अंग्रेज अपने साहित्य एवं संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ समझ कर विश्व-विजय के लिये अपना अभियान प्रारम्भ कर चुके थे। इन्हीं विचारों से ओत-प्रोत मैकॉले ने भारत में पदार्पण किया। तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बैंटिंक (William Bentinck) ने उसे बंगाल की लोक-शिक्षा-समिति का प्रधान नियुक्त किया और उससे १८१३ के आज्ञा-पत्र की शिक्षा सम्बन्धी धारा की व्याख्या करने के लिये तथा १ लाख रुपये की धन-राशि को व्यय करने के विषय में कानूनी सलाह माँगी। २ फ़रवरी, १८३५ को मैकॉले ने अपना विवरण-पत्र (Minute) गवर्नर-जनरल की कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत किया।[1]

इस विवरण-पत्र में मैकॉले ने प्राच्य साहित्य एवं शिक्षा का खंडन तथा अंग्रेजी माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों की शिक्षा का समर्थन किया। हम इस विवरण-पत्र के अन्तर्गत तर्कों का नीचे अध्ययन करेंगे :—

मैकॉले ने सर्व प्रथम 'साहित्य' शब्द को लिया और कहा कि इसका अर्थ 'अंग्रेजी साहित्य' से है, न कि संस्कृत, अरबी एवं फ़ारसी के साहित्य से। इसी प्रकार 'भारतीय विद्वान्' से ऐसे विद्वान् का तात्पर्य है "जो लॉक (Locke) के दर्शन एवं मिल्टन (Milton) की कविता से परिचित हो।" फिर उसने प्राच्यवादियों के प्राच्य-शिक्षा-संस्थाओं को प्रचलित रखने के विचार को लिया और लिखा, "प्राच्य शिक्षा-प्रणाली के प्रशंसकों का तर्क यदि हम मान लें कि वह ठीक है, तो वह परिवर्तनों के विरुद्ध निर्णायक होगा।"[1]

इसके पश्चात् मैकॉले ने शिक्षा के माध्यम के प्रश्न को लिया। उसने देशी भाषाओं के विषय में लिखा : "भारत के निवासियों में प्रचलित देशी भाषाओं में साहित्यिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान-कोष का अभाव है तथा वे इतनी अविकसित और गंवारू हैं कि जब तक उन्हें वाह्य-भंडार से सम्पन्न नहीं किया जायगा, उनमें सुगमता से किसी भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद नहीं हो सकेगा।"

इस प्रकार मैकॉले ने देशी भाषाओं के माध्यम का प्रश्न, वाद-विवाद से अलग कर दिया। तत्पश्चात् उसने संस्कृत, अरबी आदि भाषाओं की अंग्रेजी से तुलना करते हुए निस्संकोच भाव से घोषित किया : "एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी भारत तथा अरब के सम्पूर्ण साहित्य से कम

1. "The admirers of the oriental system of education have used another argument, which, if we admit to be valid, is decisive against all change." *Macaulay's Minute.*

महत्त्वपूर्ण नहीं है।[1] इस विचार को व्यक्त करके मैकॉले ने केवल अपनी अज्ञानता का परिचय दिया। उसने संस्कृत एवं अरबी भाषाओं के अपार साहित्य का कभी अध्ययन नहीं किया था, फिर भी उसने अपना निर्णय दे दिया। उसने संस्कृत साहित्य का परिहास करते हुए लिखा कि उसमें ऐसे 'चिकित्सा-सिद्धांत' पढ़ाये जाते हैं, जिन पर अंग्रेज पशु-चिकित्सकों को लज्जा आवेगी; ज्योतिष ऐसा है जिस पर "स्कूलों की अंग्रेज़ बालिकायें हँस पड़ेंगी"; इतिहास ऐसा है "जिसमें ३० फुट लम्बे राजाओं का वर्णन है" एवं भूगोल ऐसा है "जिसमें शीरे तथा मक्खन के समुद्रों का वर्णन है।"

मैकॉले का प्रस्ताव था कि संस्कृत, अरबी तथा फ़ारसी में लिखे हुए क़ानूनों की अंग्रेज़ी में संहिता (Code) बनवा दी जाय। उसका कथन था कि केवल क़ानूनों की जानकारी के लिये संस्कृत, अरबी तथा फ़ारसी के शिक्षालयों पर धन व्यय करना मूर्खता है। अतः उसने प्रस्ताव किया कि उनको बिल्कुल बन्द कर दिया जाय। अंग्रेज़ी भाषा की प्रशंसा में आकाश-पाताल एक करते हुए उसने लिखा: "यह भाषा पाश्चात्य भाषाओं में भी सर्वोपरि है। जो इस भाषा को जानता है, वह सुगमता से उस विशाल ज्ञान-भंडार को प्राप्त कर सकता है जिसे विश्व की सबसे बुद्धिमान जातियों ने रचा है।"[2] अंग्रेज़ी के पक्ष में मैकॉले ने निम्नांकित तर्क दिये :—

१. अंग्रेज़ी शासकों की भाषा है एवं उच्च वर्ग के भारतीय इसे बोलते हैं।
२. सम्भव है कि अंग्रेज़ी पूर्वी समुद्रों में व्यापार की भाषा बन जाय।
३. आस्ट्रेलिया एवं अफ्रीका में उन्नतिशील यूरोपियनों की भाषा अंग्रेज़ी है और उनका सम्बन्ध भारत से बढ़ रहा है।
४. प्राच्य शिक्षा-संस्थाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता देनी पड़ती है, पर अंग्रेज़ी स्कूलों में पढ़ने के लिये विद्यार्थी स्वयं फ़ीस देने को तैयार है।
५. जिस प्रकार यूनानी एवं लेटिन भाषाओं से इंगलैन्ड में पुनरुत्थान हुआ, उसी प्रकार अंग्रेज़ी से भारत में होगा।

1. A single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia." *Macaulay's Minute.*

2. "It stands pre-eminent even among the languages of of the West. Whoever knows that language, has ready access to all the vast intellectual wealth wihch all the wiset nations of the earth have created." *Macaulay's Minute.*

६. भारतवासी अंग्रेजी पढ़ने के इच्छुक हैं न कि अरबी, फारसी तथा संस्कृत के।

७. भारतवासियों को अंग्रेजी का विद्वान् बनाया जा सकता है और इसके लिये प्रयास करना सरकार का कर्त्तव्य है।

इस प्रकार मैकाले ने अपने विवरण-पत्र में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों की शिक्षा पर बल दिया।

बेंटिक की स्वीकृति

मैकाले के विवरण पत्र पर प्राच्यवादी दल के नेता प्रिन्सेप का मत माँगा गया। १५ फरवरी, १८३५ के अपने परिपत्र में प्रिंसेप ने मैकाले द्वारा प्रतिपादित सभी विचारों के अकाट्य उत्तर दिये तथा प्राच्य साहित्य एवं शिक्षा के जीर्णोद्धार के लिये भी उच्च कोटि के तर्क उपस्थित किये। परन्तु प्रिंसेप का परिपत्र (Prinsep's Note) प्रगतिशील सुधारक एवं अंग्रेजी भाषा के समर्थक लार्ड विलियम बेंटिक को प्रभावित करने में असफल रहा। परिणामतः बेंटिक ने मैकाले के प्रस्तावों को स्वीकृति प्रदान करके, १८१३ के प्रारम्भ होने वाले शिक्षा-विवाद का अन्त कर दिया। ७ मार्च, १८३५ के आज्ञा-पत्र में बेंटिक ने शिक्षा-नीति की घोषणा की, जिसकी रूप-रेखा इस प्रकार थी :—

१. ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य भारतवासियों में यूरोपीय साहित्य एवं विज्ञान का प्रचार करना है। अतः केवल इसी कार्य के लिये शिक्षा-सम्बन्धी समस्त धन राशि व्यय की जायगी।

२. प्राच्य शिक्षालयों का बहिष्कार तथा उन्मूलन नहीं किया जायगा। उनके अध्यापकों तथा छात्रों को पूर्ववत वेतन एवं छात्रवृत्तियाँ दी जावेंगी।

३. भविष्य में प्राच्य विद्या सम्बन्धी पुस्तकों का मुद्रण तथा प्रकाशन नहीं होगा क्योंकि इनमें अत्यधिक धन व्यय किया जा चुका है।

४. इन सुधारों से बचा हुआ समस्त धन भारतीयों में अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा अंग्रेजी साहित्य एवं विज्ञान का प्रसार करने में व्यय किया जायगा।[1]

भारत सरकार की यह प्रथम घोषणा थी, जिसमें अंग्रेजों की शिक्षा-नीति का स्पष्टीकरण एवं भारतीय शिक्षा के उद्देश्य, साधन तथा माध्यम को स्थायी रूप प्रदान किया गया था। वस्तुतः बेंटिक अंग्रेजी शिक्षा का पक्षपाती था। इस देश की सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में उसे राजा राममोहन राय तथा अन्य अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों से पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ था। अतः उसे दृढ़ विश्वास हो गया था कि अंग्रेजी शिक्षा द्वारा अंग्रेजी विचारों से ही भारतीयों

1. *Prinsep's Note*, pp. 130-131.

में नव जागरण प्रारम्भ होगा। भाग्यवश मैकॉले के प्रस्तावों ने उसे एक साधन प्रदान किया और उसने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम घोषित करके अपना निर्णय दे दिया। संस्कृत, अरबी एवं फारसी में पुस्तकों का मुद्रण तथा प्रकाशन स्थगित करके, उसने प्राच्य साहित्य की उपेक्षा की। परन्तु साथ ही उसने प्राच्य शिक्षालयों को पूर्ववत् चलने दिया एवं अध्यापकों के वेतन तथा विद्यार्थियों की छात्रवृत्तियों को जारी रखा। उसके इस कार्य में उदारता की अपेक्षा कूटनीतिपरायणता की प्रधानता स्पष्ट रूप से झलकती है।

भारतीय शिक्षा के इतिहास में मैकॉले का स्थान

मैकॉले के विवरण-पत्र के फलस्वरूप शिक्षा-क्षेत्र में विवाद-ग्रस्त विषयों का निर्णय हो गया एवं कम्पनी की ढिल-मिल शिक्षा-नीति में स्थिरता आ गई। फिर भी मैकॉले की अति कटु आलोचना की गई है। अतः उसके कार्य के सम्बन्ध में साधारण पर्यावलोकन द्वारा एक निष्कर्ष पर पहुँचना एवं शिक्षा के इतिहास में उसके स्थान का मूल्याङ्कन करना युक्तसंगत होगा।

मैकॉले के सम्बन्ध में प्रमुख धारणायें निम्नलिखित हैं :—

१. कुछ व्यक्तियों द्वारा मैकॉले भारतीय शिक्षा का पथ-प्रदर्शक[1] माना जाता है। यह कथन एक प्रकार से असत्य ही है, क्योंकि वह प्रथम व्यक्ति नहीं था जिसने भारत में अँग्रेजी शिक्षा की ओर पहिला क़दम उठाया था। इसके अतिरिक्त, उसने इस दिशा में भारतीयों की जिज्ञासा को जागृत भी नहीं किया था। उसके आगमन से पूर्व ही मिशनरी एवं राजा राममोहनराय के प्रयासों के कारण भारत मे इस जिज्ञासा का जागरण प्रारम्भ हो गया था। उसको पाश्चात्यवादी दल का जन्मदाता भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इसका अविर्भाव उसके आने से पहिले ही हो चुका था। उसने तो केवल इस क्षेत्र में अँग्रेजी के पक्ष में अपना निर्णय देकर वाद-विवाद को सुलझाने में सहायता दी थी। अतः हम कह सकते हैं कि मैकॉले ने शिक्षा की आधुनिक संरचना का शिलान्यास अवश्य किया, पर वह भारतीय शिक्षा का पथ-प्रदर्शक नहीं था।

२. कुछ लोग मैकॉले पर भारतीय भाषाओं के अपमान एवं अवहेलना का दोषारोपण करते हैं। यह सत्य है कि उसने भारतीय भाषाओं को "अविकसित, असमर्थ, अपर्याप्त एवं गँवारू" कह कर उनकी घोर निन्दा की, परन्तु उस पर उनकी अवहेलना करने का आरोप लगाना सर्वथा अनुचित है। इसके विपरीत, उसने भारतीय भाषाओं के महत्त्व एवं विकास पर विशेष बल दिया। लोक-शिक्षा-समिति के प्रधान के रूप में उसने १८३६ की अपनी रिपोर्ट के

1. Torch-bearer in the path of progress.

अन्तर्गत कहा—"हमें देशी भाषाओं के प्रोत्साहन एव विकास में अत्यधिक रुचि है। हम समझते हैं कि देशी भाषाओं के साहित्य का विकास हमारा अन्तिम उद्देश्य है और हमारे सब प्रयास इस दिशा में लग जाने चाहिये।"[1]

३. कुछ व्यक्ति मैकॉले को राजनीतिक अशान्ति का कारण मानते हैं। यह ऐसा आरोप है जिस पर सम्पूर्ण इंगलैण्ड गर्व कर सकता है। परन्तु इसका समस्त उत्तरदायित्व मैकॉले द्वारा प्रतिपादित अँग्रेजी-शिक्षा की नीति पर नहीं रखा जा सकता हैं। इस नीति की अनुपस्थिति में भी राजनीतिक अशांति हो सकती थी। इसका कारण यह है कि भारतीय पर्याप्त संख्या में मिशन स्कूलों में अँग्रेजी की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उक्त अशान्ति में उन पदाक्रान्त शासकों का भी हाथ था, जिन्हें अँग्रेजों के भारत में आने से महान् क्षति उठानी पड़ी थी।

४. मैकॉले पर अन्तिम दोषारोपण यह है कि वह अंग्रेजी शिक्षा द्वारा एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करना चाहता था, जो "रक्त और वर्ण में भारतीय हो, परन्तु पसन्द, विचार, आचरण एवं विद्वता में अंग्रेज हो।"[2] इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के उपासक-वर्ग का निर्माण करके, वह भारतीयों में फूट का बीजारोपण करना चाहता था, जिससे कि अंग्रेज इस देश का सदैव शोषण कर सकें। परन्तु उसकी यह अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई।

उपरोक्त धारणाओं की इस विवेचना के आधार पर हम निस्संकोच कह सकते हैं कि मैकॉले के सर पर सारा दोष मढ़ना युक्तिसंगत न होगा। वस्तुतः भारत उसका सदैव ऋणी रहेगा। उसने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार का बलपूर्वक समर्थन करके भारतीयों में राजनीतिक जागरण, वैज्ञानिक चेतना एवं आर्थिक विचारधारायें प्रस्फुटित कीं। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारतीय पाश्चात्य देशों के समानता, स्वतन्त्रता एवं बन्धुत्व के सिद्धान्तों से परिचित हुए और उन्होंने राजनीतिक संघर्ष प्रारम्भ करके भारत-माता को दासता की बेड़ियों से मुक्त किया। सारांश में, अपने विवरण-पत्र में अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन करके उसने अनजाने ही भारत की भलाई की। वह नहीं जानता था कि उसका विवरण-पत्र ऐतिहासिक एवं युग-प्रवर्त्तक सिद्ध होगा। निस्सन्देह भारतीय शिक्षा के इतिहास में मैकॉले का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है।

1. C. E. Trevelyan : *On the Education of the People of India*, pp. 22-23.

2. "A class of persons Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect."

ऑकलैंड का विवरण-पत्र एवं प्राच्य-पाश्चात्य विवाद का अन्त

जैसे ही लार्ड विलियम बैंटिक ने १८३५ में त्याग-पत्र देकर स्वदेश के लिये प्रस्थान किया, प्राच्यवादियों ने सरकार के निर्णय के विरुद्ध आवाज उठाई। वे मैकॉले के विवरण-पत्र एवं बैंटिक के आज्ञा-पत्र से असंतुष्ट थे और उन्होंने देशी-भाषा के माध्यम तथा कुछ अन्य बातों पर विवाद आरम्भ कर दिया। जब लॉर्ड ऑकलैन्ड (Auckland) गवर्नर-जनरल नियुक्त होकर भारत पहुँचा, तब उसने स्थिति को पर्याप्त गम्भीर पाया। लगभग ४ वर्ष तक विभिन्न मतों का सतर्कता से अध्ययन करके, वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वादविवाद का आधारभूत कारण आर्थिक सहायता है।[1] उसने विचार किया कि यदि प्राच्यवादियों को शिक्षा-सम्बन्धी व्यय के लिये कुछ अधिक धन दे दिया जाय तो वे शोर-गुल मचाना बन्द कर देंगे। इस बात को दृष्टिकोण में रखते हुए, उसने २४ नवम्बर, १८३९ के विवरण-पत्र में अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया :—

१. प्राच्य शिक्षालयों को पूर्ववत् चलने दिया जाय और उनको उतनी ही आर्थिक सहायता दी जाय, जितनी कि बैंटिक के आज्ञा-पत्र से पूर्व दी जाती थी।
२. प्राच्य शिक्षालय प्राच्य विषयों के शिक्षण-कार्य की उचित पूर्ति करने के पश्चात् अंग्रेजी की कक्षायें खोल सकते हैं।
३. प्राच्य शिक्षालयों में पढ़ने वाले समस्त विद्यार्थियों में से $\frac{1}{4}$ को छात्र-वृत्तियाँ दी जायँ।
४. निश्चित धन-राशि में से लाभप्रद प्राच्य-पुस्तकों का मुद्रण एवं प्रकाशन किया जा सकता है।
५. योग्य अध्यापकों को पर्याप्त वेतन दिया जाय।

इस योजना को पूर्ण करने में ३१ हजार रुपया वार्षिक व्यय बढ़ गया, परन्तु इससे प्राच्य-शिक्षा-समर्थक शान्त हो गये। वस्तुतः उस समय भूमि-कर में पर्याप्त वृद्धि हो गई थी और उसी अनुपात में शिक्षा के व्यय में भी वृद्धि होनी चाहिये थी। परन्तु ऑकलैन्ड ने अल्प धन-राशि देकर ही प्राच्यवादी दल को शान्त कर दिया। दूसरी ओर उसने अंग्रेजी भाषा के द्वारा यूरोपीय

1. "The insufficiency of funds assigned by the State for the purpose of public instruction has been amongst the main causes of the violent disputes." Sharp : *op. cit.*; pp. 148-9.

साहित्य, दर्शन एवं विज्ञानों के प्रचार के लिये १ लाख से भी अधिक रुपया देकर पाश्चात्य-शिक्षा-समर्थकों को प्रसन्न कर दिया।

ऑकलैण्ड का विवरण-पत्र उसके चातुर्य्य एवं दूरदर्शिता का परिचायक है। उसने प्राच्यवादियों को ऐसा मीठा जहर पिलाया कि वे उसकी मीठी बेहोशी में ऑकलैण्ड की नीतिपटुता को न समझ सके। वस्तुतः उसका झुकाव अंग्रेजी शिक्षा की ओर था और उसने ढाका, पटना, बनारस, इलाहाबाद, आगरा, बरेली एवं दिल्ली में अंग्रेजी कॉलेजों का निर्माण करके इसकी अभिव्यक्ति की। इन कॉलेजों की स्थापना से अंग्रेजी शिक्षा को निरन्तर प्रोत्साहन प्राप्त होता गया और वह क्रमशः भारतीय भाषाओं साहित्य एवं संस्कृति पर एक महान् काले बादल के समान फैल गई।

ऐडम-योजना की अस्वीकृति

हम अध्याय २ में इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि लार्ड बैण्टिक ने ऐडम को बंगाल में देशी शिक्षा की व्यवस्था की जांच करने के लिये नियुक्त किया था और इस सम्बन्ध में ऐडम ने तीन प्रतिवेदन (Reports) प्रस्तुत किये थे। ऐडम बेप्टिस्ट मिशन का मान्य सदस्य तथा सच्चा जन-सेवक था। भारतीयों के नैतिक तथा सामाजिक पतन को देखकर उसका हृदय द्रवित हो गया था। वह अन्तःकरण से शिक्षा-प्रसार द्वारा उनका मानसिक विकास एवं चारित्रिक पुर्ननिर्माण चाहता था। अतः उसने शिक्षा-प्रसार एवं शिक्षा-सुधार के साधनों तथा उपायों के सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. देशी भाषाओं में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के सहयोग से पाठ्य-पुस्तकों की प्रक्रम-बद्ध (Graded) माला का मुद्रण, प्रकाशन एवं वितरण किया जाय।
२. शिक्षालयों के अध्यापकों के कार्य के निरीक्षण एवं निर्देशन के लिये प्रत्येक जिले में निरीक्षक नियुक्त किये जायँ।
३. शिक्षकों की दीक्षा के लिये नार्मल स्कूलों का निर्माण किया जाय।
४. परीक्षायें नियमित रूप से एक निर्दिष्ट अवधि के अन्तर्गत ली जायँ।
५. प्रत्येक ग्रामीण विद्यालय को अपना व्यय चलाने के लिये भूमिदान दिया जाय।
६. कृषि-शिक्षा के लिये विभिन्न स्थानों पर प्रयोगात्मक (Experimental) फार्म बनाये जायँ।
७. इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये कुछ जिलों को चुन लिया जाय।

ऐडम को विश्वास था कि उसकी इस योजना को राष्ट्रीय व्यवस्था की आधारभूत योजना बनाया जा सकता है। उसकी इच्छा थी कि सरकार इस योजना पर क्रियात्मक पग उठावे। परन्तु मैकाले ने उसकी सब आशाओं पर पानी फेर दिया। उसने इस योजना के विरुद्ध अति दूषित रिपोर्ट भेजी। परिणामतः जब वह ऑकलैन्ड के समक्ष रखी गई, तो उसने इसे अस्वीकृत कर दिया।

निस्यन्दन-सिद्धान्त

अर्थ— निस्यन्दन सिद्धान्त (Downward Filtration Theory) का अभिप्राय यह था कि शिक्षा समाज के उच्च वर्ग को दी जाय और इस वर्ग से छन-छन कर शिक्षा का प्रभाव जनसाधारण तक पहुँचे। "जन-समूह में शिक्षा ऊपर से छन-छन कर पहुँचनी थी। बूँद-बूँद करके भारतीय जीवन के हिमालय से लाभदायक शिक्षा नीचे को बहे जिससे कि वह कुछ समय में एक चौड़ी एवं विशाल धारा में परिवर्तित होकर शुष्क मैदानों का सिंचन करे।"[1]

समर्थक—भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों का इस सिद्धान्त में विश्वास था। वे समझते थे कि यदि इस देश के सवर्ण हिन्दुओं को ईसाई धर्म में दीक्षित कर दिया जायगा तो निम्न वर्गों को इस धर्म को स्वीकार करने में संकोच नहीं होगा क्योंकि इन वर्गों के व्यक्ति उच्च वर्ग के आदर्शों का अनुकरण करते थे। कम्पनी के कर्मचारियों में बम्बई के गवर्नर की कौंसिल के सदस्य वार्डन (Warden) ने २३ दिसंबर, १८२३ को अपने विवरण-पत्र में यह लिख कर इस सिद्धान्त की ओर संकेत किया था : "जन-साधारण को थोडी सी शिक्षा देने की अपेक्षा उच्च वर्ग के कुछ व्यक्तियों को अधिक शिक्षा देना उपयुक्त होगा।" कम्पनी के संचालकों ने २९ सितम्बर, १८३० के अपने आदेश-पत्र में मद्रास की सरकार को लिखा था : "शिक्षा की प्रगति उसी समय हो सकती है, जब उच्च वर्गों के उन व्यक्तियों को शिक्षा दी जाय, जिनके पास अवकाश है और जिनका अपने देशवासियों पर प्रभाव है।" मैकॉले ने इस सिद्धान्त का समर्थन करते हुए अपने विवरण-पत्र में लिखा था : "हमारी इस शिक्षा द्वारा एक ऐसे वर्ग की सृष्टि होगी जो रक्त एवं वर्ण में भारतीय होगा, परन्तु पसन्द

1. "Education was to permeate the masses from above. Drop by drop from the Himalayas of Indian life useful information was to trickle downwards, forming in time a broad and stately stream to irrigate the thirsty plains." Arthur Mayhew : *The Education of India*, page 92.

विचार, आचरण एवं विद्वता में अंग्रेज होगा। इन्हीं लोगों का यह कार्य होगा कि वे भारतीय भाषाओं को परिष्कृत तथा सम्पन्न करके उन्हें जनता तक ज्ञान पहुँचाने के योग्य बनायें।" मैकॉले के इस विचार का बंगाल की लोक-शिक्षा समिति ने १८३९ में समर्थन किया था। लॉर्ड ऑकलैन्ड ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया और इसे सरकारी नीति के रूप में घोषित करते हुए लिखा : "सरकार को शिक्षा समाज के उच्च वर्ग को देनी चाहिये, जिससे सभ्यता छन-छन कर जनता में पहुँचे।" उस समय से लेकर १८७० तक इस सिद्धान्त का प्रभाव भारतीय-शिक्षा के क्षेत्र में बना रहा।

आधारभूत कारण—इस सिद्धान्त को सरकारी नीति का रूप प्रदान करने के अनेक आधारभूत कारण थे। प्रथम, ब्रिटिश सरकार को प्रारम्भ में ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी, जिनको शिक्षित करके एवं उच्च पद प्रदान करके राज्य को सुदृढ़ बनाया जाय। इसके लिये उच्च वर्ग की शिक्षा ही उपयोगी हो सकती थी, लोक-शिक्षा नहीं। द्वितीय, सरकार के पास इतना धन नहीं था कि वह लोक-शिक्षा का भार अपने ऊपर ले सकती। तृतीय, अंग्रेजी माध्यम द्वारा उच्च वर्ग को शिक्षित करके और उसके रहन-सहन तथा आचार विचार को परिवर्तित करके निम्न वर्गों को सरलता पूर्वक प्रभावित किया जा सकता था। चतुर्थ, कुछ व्यक्तियों को शिक्षित करके जन-साधारण की शिक्षा का भार उनके ऊपर छोड़ा जा सकता था।

परिणाम—इस सिद्धान्त ने भारतीय शिक्षा का रूप निश्चित कर दिया। सरकारी नीति के रूप में इसे अधिकारियों का सक्रिय समर्थन प्राप्त हुआ और उच्च शिक्षा की तीव्र प्रगति होने लगी। १८४४ में लार्ड हार्डिज (Hardinge) की घोषणानुसार अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों को सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता दी जाने लगी। फलस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सरकारी नौकरी प्राप्त करना हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उच्च शिक्षा की प्रगति और भी अधिक तेज होगई। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके भारतीय इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगे। परन्तु सरकार ने जिस विचार से इस सिद्धान्त को अपनाया था, उसमें सफलता नहीं प्राप्त हुई। उच्च वर्ग को शिक्षित करके जन-साधारण तक ज्ञान को नहीं पहुँचाया जा सका, क्योंकि जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके उच्च पदों पर आसीन हो जाते थे, उनका जनता से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता था। इसके अतिरिक्त वे केवल अपने हित का ध्यान रखते थे एवं जन-कल्याण की चिन्ता नहीं करते थे। इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो गया, जो अशिक्षित निर्धन व्यक्तियों से अपने को श्रेष्ठ समझता था एवं उनसे किसी

प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता था। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि इस वर्ग के अनेकों व्यक्ति ब्रिटिश राज्य के स्तम्भ के रूप में अपने देशवासियों के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रबल विरोध करते रहे। इसके विपरीत, कुछ अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों ने देश-प्रेम की ज्योति जलाई एवं अपने देशवासियों में स्वतन्त्रता की भावना कूट-कूट कर भरने का प्रयास किया। इसी के फलस्वरूप राष्ट्रीय जागरण प्रारम्भ हुआ एवं अन्त में भारत विदेशियों के चंगुल से मुक्त हुआ।

सारांश

प्राच्यवादी— इस दल में कम्पनी के पुराने अधिकारी थे। यह दल प्राच्य शिक्षा एवं साहित्य को प्रोत्साहित करना चाहता था।

पाश्चात्यवादी—इस दल में कम्पनी के नवयुवक अधिकारी थे। यह दल अंग्रेजी शिक्षा द्वारा पाश्चात्य विचारों के प्रसार के पक्ष में था।

मैकॉले का विवरण-पत्र—जिस समय प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा-विवाद चल रहा था, उसी समय मैकॉले १८३४ में भारत आया, और लोक-शिक्षा-समिति का प्रधान नियुक्त किया गया। १८३५ के अपने विवरण-पत्र में उसने प्राच्य साहित्य की निन्दा की और अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा का समर्थन किया। अंग्रेजी के पक्ष में उसने अनेकों तर्क दिये।

बैंटिक की स्वीकृति—बैंटिक ने मैकॉले के सभी प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया और ७ मार्च, १८३५ के आज्ञा-पत्र में शिक्षा-नीति की घोषणा की। इसके अनुसार ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य भारतीयों में अंग्रेजी माध्यम द्वारा यूरोपीय साहित्य एवं विज्ञान का प्रचार करना था। प्राच्य विद्यालय बन्द नहीं किये गये परन्तु प्राच्य विद्या सम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। इस प्रकार बैंटिक की घोषणा ने अंग्रेजों की शिक्षा-नीति को स्पष्ट कर दिया।

भारतीय शिक्षा के इतिहास में मैकॉले का स्थान— मैकॉले की अति कटु आलोचना की गई है। उसने प्राच्य शिक्षा और साहित्य की प्रगति पर अंकुश लगा दिया और एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना चाहा जो पसन्द, विचार, आचरण एवं विद्वता में अंग्रेज हो। परन्तु उसने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का समर्थन करके भारतीयों में राजनीतिक जागरण की भावना प्रस्फुटित कर दी। इसके लिये भारत उसका सदैव ऋणी रहेगा। इसीलिये भारतीय शिक्षा के इतिहास में मैकॉले का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है।

प्राच्य-पाश्चात्य विवाद का अन्त—बैंटिक की घोषणा के बाद भी प्राच्य-

पाश्चात्य विवाद चलता रहा। इसका अन्त ऑकलैंड ने १८३९ में किया। उसने ऐडम की प्राच्य-शिक्षा प्रसार की योजना को अस्वीकृत कर दिया।

निस्यन्दन-सिद्धान्त—इसका अभिप्राय यह था कि शिक्षा उच्च वर्ग से छन-छन कर निम्न वर्गों तक पहुँचे। इस सिद्धान्त के समर्थकों में वार्डन, कम्पनी के संचालक मैकॉले और लोक-शिक्षा-समिति थी। ऑकलैण्ड ने इसे स्वीकार किया और सरकारी नीति के रूप में घोषित किया। इस सिद्धान्त को अपना कर सरकार ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना चाहती थी जो उच्च पदों पर कार्य कर सकें और राजभक्त होकर ब्रिटिश साम्राज्य के स्तम्भ बनें। इस सिद्धान्त के अनुसरण से उच्च शिक्षा की तीव्र प्रगति हुई। भारतीयों में अंग्रेजी शिक्षा द्वारा स्वतन्त्रता के विचार उत्पन्न हुए और उन्होंने अपने देश को दासता से मुक्त करने के लिये संघर्ष प्रारम्भ किया।

TEST QUESTIONS

1. Write what you know about the Oriental-Occidental Controversy.
2. Give a critical appraisal of Lord Macaulay's contribution to Indian education. Place yourself in his position and offer a defence of his policy.
3. "Macaulay is a torch-bearer in the path of progress." Do you agree ? Give your arguments in favour of the view you hold.
4. Show that the year 1835 marks a turning point in the educational history of India. Comment on the change brought about.
5. Write a short essay on the "Downward Filtration Theory."

अध्याय ७

शिक्षा की प्रगति (१८३३-५३)

हम पहिले इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में प्राच्यवादी एवं पाश्चात्यवादी दलों में संघर्ष प्रारम्भ हो गया था, जिसका अन्त लॉर्ड ऑकलैण्ड ने १८३९ में किया। उस समय से शिक्षा का मार्ग निश्चित हो गया तथा अंग्रेजी को प्रबल प्रेरणा मिली। फलस्वरूप विभिन्न प्रान्तों में शिक्षा-प्रसार के जो कार्य किये गये उन पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

बंगाल

बैंटिक एवं ऑकलैंड के शिक्षा कार्य—लार्ड बैंटिक ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम घोषित करके बंगाल में अंग्रेजी का पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर दिया। फलतः अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिये विद्यालयों का तीव्रगति से निर्माण हुआ। १८३५ में 'लोक-शिक्षा-समिति' २० विद्यालयों को चला रही थी। १८३७ में इनकी संख्या बढ़कर ४८ हो गई, जिनमें ५,१९६ छात्र पढ़ते थे। लार्ड ऑकलैंड ने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने बंगाल प्रान्त को ९ भागों में विभक्त किया एवं प्रायः प्रत्येक ज़िले में एक 'ज़िला विद्यालय' स्थापित किया। १८४० में इस प्रकार के विद्यालयों की संख्या ४० थी।

हार्डिज के शिक्षा-कार्य—१८४४ में लार्ड हार्डिज (Hardinge) ने घोषणा की कि अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों को सरकारी नौकरियों में प्राथमि-

कता दी जायगी। परिणामतः अंग्रेजी के प्रचार तथा प्रसार को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। उस समय प्राथमिक शिक्षा का पतन प्रारम्भ हो गया था। अतः लार्ड हार्डिज ने उसे प्रोत्साहित करने के लिये १८४४ में १०१ प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण करवाया। इनमें लिखना, पढ़ना, गणित, भूगोल, इतिहास तथा बंगला की शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयों में प्रति विद्यार्थी से एक आना मासिक शुल्क लिया जाता था। परन्तु अंग्रेजी शिक्षा के अभाव में ये विद्यालय लोकप्रिय न बन सके एवं उनकी संख्या निरन्तर कम होती चली गई। १८५२ में उनमें से केवल २६ रह गये थे।[1] १८४७ में लार्ड हार्डिज ने अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये कलकत्ते में एक नार्मल-स्कूल भी खुलवाया।

डलहौजी के शिक्षा-कार्य—लार्ड डलहौजी (Dalhousie) विद्या-प्रेमी था। उसने प्राथमिक, उच्च, व्यावसायिक तथा नारी-शिक्षा में अपनी रुचि प्रदर्शित की। उसने अनुदान-प्रणाली प्रारम्भ करके प्राथमिक विद्यालयों को प्रोत्साहित किया तथा १८५४ में ३३ प्राथमिक विद्यालय खुलवाये, जिनमें १,४०० विद्यार्थी पढ़ते थे। १८४४ में कलकत्ता हिन्दू कॉलेज में इंजीनियरिंग की कक्षा प्रारम्भ की गई।

शिक्षा-परिषद्—१८४२ में 'लोक-शिक्षा-समिति' को भंग करके उसके स्थान पर 'शिक्षा-परिषद्' (Council of Education) की स्थापना की गई।[2] इस परिषद् ने शिक्षा की दिशा में सराहनीय कार्य किया। नार्मल स्कूल की स्थापना हो जाने के कारण विद्यालयों के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव बहुत-कुछ दूर हो गया था। परिषद् ने १८४३ में शिक्षा का पाठ्य-क्रम निश्चित करके पाठ्य-पुस्तकों में सुधार किया। १८४४ में विद्यालय-निरीक्षकों की नियुक्ति करके विद्यालयों की शिक्षा का भार उन्हें सौंप दिया। १८४५ में कलकत्ता में एक विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव किया, पर कम्पनी के संचालकों ने उसे 'असामयिक' कह कर अस्वीकार कर दिया। 'शिक्षा-परिषद्' ने प्राथमिक शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। १८५४ तक परिषद् के अन्तर्गत १५१ शिक्षा-संस्थायें थीं, जिनमें १३,१६३ विद्यार्थी पढ़ते थे एवं जिनका वार्षिक व्यय ५,९४,४२८ रुपया था।[3] इनमें ४७ अंग्रेजी स्कूल, ५ अंग्रेजी कॉलेज, १ मेडिकल कॉलेज तथा ३ प्राच्य कॉलेज थे।

व्यक्तिगत-शिक्षा-कार्य—बंगाल में शिक्षा को, व्यक्तिगत प्रयासों के कारण भी प्रोत्साहन मिला। हाजी मुहम्मद मुहसिन के दानस्वरूप प्राप्त धन से,

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 110.
2. Nurullah and Naik : *op cit.*, p. 95.
3. *Ibid*, p. 96.

हुगली के ज़िला स्कूल को कॉलेज का रूप प्रदान किया गया। १८४९ में 'शिक्षा-परिषद्' के प्रधान, जे० ई० डी० बैथ्यून (J. E. D. Bethune) ने लड़कियों के लिये एक स्कूल खोला एवं उसका समस्त व्यय-भार स्वयं वहन किया। इस कार्य से प्रेरित होकर जयकृष्ण मुकर्जी एवं बारासेत के कुछ निवासियों ने भी स्त्री-शिक्षा का प्रबन्ध किया।

मिशनरियों के शिक्षा-कार्य—मिशनरियों ने भी शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया। उन्होंने १८५३ तक सम्पूर्ण बंगाल में २२ स्कूलों का निर्माण किया। इन स्कूलों को सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं मिलती थी।

शिक्षा का माध्यम—इस काल में शिक्षा के माध्यम का प्रश्न अति विवादास्पद रहा। भारत सरकार अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम घोषित कर चुकी थी। के० एम० बनर्जी (K. M. Banerji) एवं डा० बैलेन्टाइन (Ballantyne) ऐसे विद्वानों ने देशी भाषाओं का पक्ष लिया, परन्तु सरकारी नीति के सामने उनकी कुछ न चली और अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम रखा गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १८३३ से १८५३ तक बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा का बोलबाला रहा। भारतीयों की अंग्रेजी की ज्ञान-पिपासा इतनी अधिक हो गई थी कि अंग्रेजी विद्यालयों में फ़ीस देने वाले विद्यार्थियों को भी प्रवेश पाना कठिन था, जबकि प्राच्य विद्यालयों में छात्रवृत्तियाँ भी विद्यार्थियों को पढ़ने के लिये प्रलोभित नहीं कर पाती थीं।

बम्बई

बम्बई-भारतीय शिक्षा-समिति[1]—इस समिति का निर्माण १८२३ में हुआ था। उसी समय से यह समिति शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रही थी। १८४० तक इसने समस्त प्रान्त में ११५ ज़िला प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों में लिखना, पढ़ना, अङ्कगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, एवं दर्शनशास्त्र की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम द्वारा दी जाती थी। वस्तुतः यह पाठ्य-क्रम वर्तमान समय के माध्यमिक विद्यालयों के समान था। समिति ने चार अंग्रेजी स्कूलों का भी निर्माण बम्बई, थाना, पलवल एवं पूना में किया था। इन स्कूलों का उद्देश्य पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा देना था।

राजकीय प्रयास—बम्बई सरकार ने शिक्षा की ओर यथोचित ध्यान

1. The Bombay Native Education Society.

दिया। १८३७ में ४ लाख रुपया व्यय करके बम्बई प्रान्त के गवर्नर एल्फ़िस्टन के नाम पर 'एल्फ़िस्टन इंसटीट्यूशन' की स्थापना की गई। उसी वर्ष पूना संस्कृत कॉलेज में सभी जातियों के विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति दे दी गई एवं मराठी की कक्षायें भी प्रारंभ कर दी गईं। सरकार पूना जिले के पुरन्दर तालुक्का में देशी विद्यालयों के आधार पर ६३ प्राइमरी स्कूलों का निर्माण कर चुकी थी। इनमें लिखना, पढ़ना एवं गणित की शिक्षा दी जाती थी।

शिक्षा-बोर्ड— १८४० में 'बम्बई-भारतीय शिक्षा-समिति' को भंग करके, उसके स्थान पर 'शिक्षा-बोर्ड' (Board of Education) की स्थापना की गई। इस बोर्ड के ७ सदस्य होते थे, जिनमें से ४ को सरकार मनोनीत करती थी एवं शेष 'बम्बई-भारतीय शिक्षा-समिति' के प्रतिनिधि होते थे। इस बोर्ड ने शिक्षा-कार्य में अत्यन्त दक्षता का परिचय दिया। इसने १८४२ में प्रान्त के समस्त विद्यालयों की गणना करवाई तथा ऐडम की योजना को कार्यान्वित करने का प्रयास किया। परन्तु प्रान्त के निवासियों में पाश्चात्य ज्ञान-पिपासा की उत्तरोत्तर वृद्धि होने के कारण बोर्ड को सफलता न मिली। फलतः बोर्ड ने देशी विद्यालयों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जिससे कुछ समय पश्चात् उनका अन्त हो गया।

प्रान्तीय शिक्षा को सुचारु रूप से चलाने के लिये बोर्ड ने १८४२ में बम्बई को तीन भागों में विभक्त किया एवं शिक्षा की देख-रेख के लिये प्रत्येक भाग में एक यूरोपियन निरीक्षक एवं एक भारतीय उप-निरीक्षक की नियुक्ति की। १ जून १८४३ को बोर्ड ने विद्यालयों के सम्बन्ध में कुछ नियम बना कर उनमें समानता स्थापित करने का प्रयास किया।

शिक्षा का माध्यम—जिस समय बंगाल में प्राच्य तथा पाश्चात्य भाषाओं का विवाद चल रहा था, उस समय बम्बई ने देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम रख कर अपने साहस का परिचय दिया था। परन्तु अंग्रेजी, फ़ारसी तथा संस्कृत की अवहेलना भी नहीं की गई थी, क्योंकि उनको पाठ्य-क्रम में उचित स्थान दिया गया था। इस प्रकार देशीभाषाओं को अपने विकास के लिये सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ था।

दुर्भाग्यवश १८४३ में सर ऐरस्किन पैरी (Sir Erskine Perry) शिक्षा-बोर्ड का सभापति नियुक्त हुआ। उसी समय से देशी भाषाओं के बुरे दिन आ गये। मैकॉले एवं ऑकलैण्ड के समान पैरी भी पाश्चात्य ज्ञान तथा अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा का समर्थक था। उसने प्रस्ताव किया कि अंग्रेजी ग्रन्थों को देशी भाषाओं में अनुवादित कराना व्यर्थ का व्यय है। जनता अंग्रेजी

शिक्षा की माँग कर रही है। अतः शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही होना चाहिये। इस पक्षपातपूर्ण प्रस्ताव पर 'शिक्षा-बोर्ड' में दो दल बन गये। एक दल में पैरी एवं दो अंग्रेज थे, जो अंग्रेजी के पक्ष में थे। दूसरे दल में बम्बई इंजीनियरिंग कॉलेज का प्रिंसिपल, कर्नल जर्विस (Jervis) एवं ३ भारतीय थे जो देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम रखना चाहते थे। जर्विस का मत था : "साधारण शिक्षा उस भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा के माध्यम से नहीं दी जा सकती है, जिससे कि मनुष्य का मस्तिष्क परिचित नहीं है। मैं समझता हूँ कि देशी भाषाओं को प्रोत्साहित करना हमारा सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है। यदि जनता के साहित्य की रक्षा करनी है, तो यह उसका स्वयं का साहित्य होना चाहिये। साहित्य का अधिकांश भाग भले ही पाश्चात्य हो परन्तु उसका देशी भाषाओं से तादात्म्य हो जाना चाहिये एवं उसका स्वरूप एशियाई होना चाहिये।"[1]

१८४८ तक संघर्ष का रूप इतना उग्र हो गया कि सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। सौभाग्यवश ५ अप्रैल १८४८ को सरकार ने यह निर्णय किया कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिये देशी भाषाओं का तथा उच्च शिक्षा के लिये अँग्रेजी का माध्यम होगा। इस निर्णय से कोई भी दल संतुष्ट नहीं हुआ, पर कुछ समय उपरान्त ही बंगाल की केन्द्रीय सरकार ने बम्बई सरकार को परामर्श दिया कि वह अपना ध्यान अँग्रेजी की शिक्षा पर केन्द्रित करे। परिणामतः अँग्रेजी के प्रभाव में वृद्धि होने लगी।

शिक्षा की प्रगति—ऐसी स्थिति में अँग्रेजी स्कूलों का नवनिर्माण स्वाभाविक था। सूरत, रत्नगिरी, अहमदाबाद, धारवार, कोल्हापुर, सतारा, राजकोट आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों पर अँग्रेजी स्कूलों की स्थापना हुई। अहमदाबाद में एक महिला विद्यालय के लिये आर्थिक सहायता का प्रबन्ध किया गया। १८५१ में 'पूना संस्कृत कॉलेज' एवं 'पूना अँग्रेजी स्कूल' को एक में मिला दिया गया। इस नवीन शिक्षा संस्था का नाम 'पूना कालेज' रखा गया। इस कॉलेज में शिक्षकों की दीक्षा के लिए एक 'नार्मल विभाग' भी खोल दिया

1. "General instruction cannot be afforded, except through the medium of a language with which the mind is familiar. I conceive it a paramount duty, on our part, to foster the Vernacular dialects. If the people are to have a literature, it must be their own. The stuff may be, in a great degree, European, but it must be freely interwoven with homespun materials, and the fashion must be Asiatic."
J. A. Richey : *op .cit.*, pp. 11-13.

गया। इसी प्रकार का एक विभाग सूरत के अँग्रेजी स्कूल में प्रारम्भ किया गया। १८५३ में देशी विद्यालयों को थोड़ा सा राजकीय अनुदान दिया गया। १८५४ के आदेश के अनुसार सरकार ने ग्रामों के प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के वेतन का आधा व्यय वहन करने का वचन दिया।

इस प्रकार १८३३ से १८५३ तक बम्बई में शिक्षा-प्रसार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया। १८५४ तक देशी विद्यालयों की संख्या २१६ हो गई थी, जिनमें १२ हजार से अधिक विद्यार्थी पढ़ते थे। उनके साथ-साथ अँग्रेजी विद्यालयों का भी निर्माण हुआ जिससे अँग्रेजी शिक्षा का भी सर्वाङ्गीण विकास हुआ।

मद्रास

राजकीय प्रयास—हम पहिले इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि १८३० में कम्पनी के संचालकों ने मुनरो की जन-शिक्षा-योजना पर रोक लगा दी थी और लिखा था कि प्रारम्भिक शिक्षा के स्थान में उच्च शिक्षा के लिये प्रयत्न किया जाय। संचालकों के इस आदेश ने देशी शिक्षा-व्यवस्था पर सांघातिक प्रहार किया। देशी विद्यालयों को प्रोत्साहन देना समाप्त कर दिया गया। जो तहसीली स्कूल स्थापित हो चुके थे, उन्हें १८३६ में बन्द करके अँग्रेजी स्कूल खोल दिये गये। कारण यह था कि इस प्रान्त के अधिकारी मैकॉले के विवरण-पत्र से प्रभावित होकर अँग्रेजी को उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिये कटिबद्ध हो गये थे। ऐसी दशा में देशी विद्यालयों का जीवित रहना असम्भव था। उनका स्थान अँग्रेजी विद्यालय लेने लगे।

१८४१ में मद्रास नगर में एक हाई स्कूल स्थापित किया गया। जनता निरन्तर अँग्रेजी की उच्च शिक्षा की माँग कर रही थी। अतः जनता को सान्त्वना देने के लिये १८५२ में कॉलेज विभाग खोला गया। मद्रास में एक विश्वविद्यालय की स्थापना का भी प्रस्ताव हुआ, परन्तु उसको अनावश्यक समझकर उस पर विचार नहीं किया गया। एल्फ़िस्टन ने जिस 'विश्वविद्यालय बोर्ड' (University Board) का निर्माण किया था, उसका नाम १८४७ में बदल कर 'शिक्षा-बोर्ड' कर दिया गया। इस बोर्ड को शिक्षा-सम्बन्धी व्यय के लिए १ लाख रुपये की धन-राशि प्रदान की गई, जिससे दो अँग्रेजी स्कूल स्थापित किये गये—एक १८५३ में कडलोर में और दूसरा १८५५ में राजमहेन्द्री में।

मिशनरी एवं व्यक्तिगत प्रयास—मिशनरियों ने प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया। उन्होंने बहुत-से अँग्रेजी स्कूल भी खोले। समस्त प्रान्त में १८५२ में १,१८५ मिशन स्कूल थे, जिनमें ३८,००५ विद्यार्थी

शिक्षा पाते थे। इस प्रकार सरकार की अपेक्षा मिशनरियों के शिक्षा-प्रयास कहीं अधिक सन्तोषजनक थे।

व्यक्तिगत प्रयासों में पच्चप्पा (Pachaiyappa) का नाम स्मरणीय है। इस दानवीर से प्राप्त धन से १८४२ में एक स्कूल स्थापित किया गया।

पश्चिमोत्तर प्रान्त

प्रशासन की सुविधा के लिये १८४२ में उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त को बंगाल से पृथक् कर दिया गया। इस नवनिर्मित प्रदेश का नाम १९०२ में संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध पड़ा, जो अब उत्तर प्रदेश कहा जाता है। १८४२ तक इस विभक्त प्रदेश में आगरा, दिल्ली एवं बनारस में कॉलेज स्थापित किये जा चुके थे एवं सुचारु रूप से कार्य कर रहे थे। १८४३ में जेम्स टामसन (James Thomason) इस प्रान्त का गर्वनर नियुक्त हुआ।

टामसन का निर्णय—१८४५ में टामसन ने अपने प्रान्त के समस्त ज़िलाधीशों को आदेश दिया कि वे अपने ज़िलों में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की जाँच करके अपनी रिपोर्ट भेजें। इस जाँच से उसे ज्ञात हुआ कि अँग्रेज़ी एवं मिशन स्कूलों को छोड़ कर सम्पूर्ण प्रान्त में प्रत्येक प्रकार के कुल ७,९६६ स्कूल थे, जिनमें ७०,८२६ लड़के पढ़ते थे।[1] इससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रान्त में केवल ३.७ प्रतिशत लड़के शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। टामसन को शिक्षा में अभिरुचि थी। अतः उसने जनसाधारण की शिक्षा को प्रोत्साहित एवं देशी विद्यालयों का जीर्णोद्धार करने का निश्चय किया। अपने कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये, उसने ऐडम की शिक्षा-योजना को सर्वोपयुक्त एवं देशी भाषा का संरक्षण उचित समझा। उसी के प्रयासों के फलस्वरूप भारत सरकार ने देशी विद्यालयों को सङ्गठित एवं विकसित करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। टामसन को आधुनिक प्राथमिक शिक्षा का जन्मदाता माना जाता है एवं इस रूप में भारतीय शिक्षा के इतिहास में उसका नाम चिर-स्मरणीय रहेगा।

टामसन की योजनायें—१८४६ में टामसन ने वर्नाक्यूलर शिक्षा को संगठित करने के लिये केन्द्रीय सरकार के समक्ष एक विस्तृत योजना प्रस्तुत की। इस योजना में उसने प्रस्ताव किया कि २०० घरों वाले प्रत्येक ग्राम में एक स्कूल स्थापित किया जाय एवं शिक्षकों के वेतन के लिये जागीरें दी जायँ। कम्पनी के सञ्चालकों ने जनसाधारण की शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकार किया, परन्तु जागीरों के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और टामसन से

1. S. N. Chaturvedi : *History of Rural Education*, p. 73

दूसरी योजना प्रस्तुत करने के लिये कहा। १८४८ में टाममन ने अपनी द्वितीय योजना तैयार की, जिसे सञ्चालकों ने स्वीकार कर लिया। इस योजना के अनुसार देशी विद्यालयों का जीर्णोद्धार तथा प्रत्येक तहसील में आदर्श स्कूल का निर्माण हुआ।

तहसीली स्कूल--प्रत्येक तहसीली स्कूल में एक प्रधान अध्यापक होता था, जिसे १० रु० से २० रु० तक मासिक वेतन मिलता था। पाठ्यक्रम के अन्तर्गत लिखना, पढ़ना, गणित, ज्यामिति, इतिहास एवं भूगोल थे। प्रत्येक ज़िले के स्कूलों के निरीक्षण के लिये एक विज़िटर (Visitor) होता था, जिसे १०० रु० से २०० रु० तक मासिक वेतन मिलता था। उसकी सहायता के लिये परगना-विज़िटर होते थे। इन विज़िटरों के कार्य की देख-भाल के लिए एक विज़िटर-जेनरल (Visitor-General) होता था, जिसका मासिक वेतन १,००० रुपये था। सर्व प्रथम विज़िटर-जेनरल, मैनपुरी का ज़िलाधीश, एच० एस० रीड (H. S. Reid) था। तहसीली स्कूलों की इस योजना का प्रारंभ आठ जिलों में हुआ : बरेली, शाहजहाँपुर, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, आगरा, मथुरा, अलीगढ़ तथा इटावा। कम्पनी के सञ्चालकों ने इन स्कूलों के व्यय के लिये १८४९ में ५० हज़ार रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया। १८५० में इस योजना का श्रीगणेश हुआ। १८५१ में रीड ने आठों जिलों की जाँच कराई। इन ज़िलों में ५० कस्बे एवं १४,५७२ ग्राम थे। स्कूलों की संख्या ३,१२७ थी और उनमें २७,८५३ विद्यार्थी पढ़ रहे थे। इनमें से २० स्कूलों में अंग्रेजी की भी शिक्षा दी जाती थी।

हल्काबन्दी स्कूल—देशी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये तहसीली स्कूलों की योजना के अतिरिक्त टामसन ने यह आवश्यक समझा कि प्राथमिक शिक्षा जनसाधारण के लिये सुलभ कर दी जाय। उसे अपने कार्य में मथुरा के ज़िलाधीश, अलैक्ज़ैण्डर (Alexander) से बहुत सहायता मिली, जिसने 'हल्काबन्दी स्कूल प्रणाली' (Circle School System) के नाम से एक विस्तृत योजना १८५१ में बनाई थी। इस योजना के अनुसार कुछ ग्रामों को मिलाकर एक 'हल्का' या 'क्षेत्र' बना दिया गया और उसमें एक प्रारंभिक विद्यालय खोल दिया गया। यह विद्यालय ऐसे स्थान पर होता था जहाँ से कोई भी ग्राम २ मील से अधिक दूर नहीं था। इन स्कूलों के व्यय के लिये ज़मींदार अपनी मालगुजारी का १ प्रतिशत देते थे। शीघ्र ही यह योजना आगरा, ऐटा, इटावा, बरेली, मैनपुरी एवं शाहजहाँपुर में फैल गई। १८५४ में इस प्रकार के ७५८ विद्यालय थे, जिनमें १७ हज़ार छात्र पढ़ते थे।[1]

1. J. A. Richey : *op. cit.*, p. 231.

पंजाब

पंजाब प्रान्त का निर्माण १८४९ में हुआ था। उस समय तक वहाँ शिक्षा की दिशा में विशेष प्रगति नहीं हुई थी। वहाँ बहुत समय से तीन प्रकार के स्कूल शिक्षा-कार्य में संलग्न थे—हिन्दू, सिक्ख एवं मुसलमान। हिन्दू विद्यार्थियों की एक बहुत बड़ी संख्या मुसलमानों के स्कूलों में पाई जाती थी। लड़कियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध था। पंजाब में उर्दू भाषा प्रचलित होने के कारण अधिकांश हिन्दू एवं सिक्ख बालक इस भाषा का अध्ययन करते थे। अमृतसर के निवासियों ने अँग्रेज़ी सीखने के लिये उत्कट इच्छा व्यक्त की। परिणामस्वरूप १८४९ में वहाँ के स्कूल में अँग्रेज़ी की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया गया। इसी प्रकार का एक स्कूल लाहौर में भी खोला गया। इन स्कूलों में अँग्रेज़ी के अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, अरबी एवं फारसी की शिक्षा भी दी जाती थी।

मई १८४५ में पश्चिमोत्तर प्रान्त की शिक्षा-योजना को पंजाब में भी चालू करने के लिये केन्द्रीय सरकार के समक्ष एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। इस प्रस्ताव में ४ नार्मल स्कूल, ६० तहसीली स्कूल एवं लाहौर में एक कॉलेज स्थापित करने, तथा ५० परगना विज़िटर, १२ ज़िला विज़िटर और एक विज़िटर-जेनरल को नियुक्त करने की प्रार्थना की गई। जून १८५४ में लार्ड डलहौज़ी ने कुछ संशोधन के साथ इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति प्रदान की।

उच्च शिक्षा

पश्चिमोत्तर प्रान्त—उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त की सरकार ने उच्च शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। १८५२ में आगरा में एक नार्मल स्कूल का शिलान्यास हुआ एवं उसी वर्ष सेन्ट जॉन्स कॉलेज, आगरा की स्थापना हुई। १८५० में बरेली हाई स्कूल एवं १८५३ में बनारस के जयनारायण घोषाल स्कूल को कॉलेज बना दिया गया। १८५४ में इस प्रान्त में स्कूलों की संख्या ३,९२० थी, जिनमें ५३ हजार विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। उस वर्ष आगरा, दिल्ली एवं बनारस के राजकीय कॉलेजों में छात्रों की संख्या ९७६ हो गई थी। १८५४ में सरकार शिक्षा पर २ लाख २५ हज़ार रुपया व्यय कर रही थी, जिसमें से कॉलेजों तथा स्कूलों पर १ लाख ८० हज़ार रुपया व्यय होता था।

अन्य प्रान्त—अन्य प्रान्तों में मिशन कालेजों के अतिरिक्त, जिनका वर्णन पहिले किया जा चुका है, कुछ राजकीय कॉलेजों का भी निर्माण किया गया। उदाहरणतः बंगाल में ढाका कॉलेज (१८४१), कृष्णनगर कॉलेज (१८४५) एवं बरहामपुर कॉलेज (१८५३)। बम्बई एवं मद्रास में भी कुछ कॉलेज स्थापित किये गये, पर उनकी संख्या अधिक नहीं थी। १८५७ में भारत में

कॉलेजों की कुल संख्या २३ थी, जिनमें मिशन कॉलेज तथा व्यावसायिक शिक्षा (Professional and Vocational Education) देने वाले कॉलेज सम्मिलित थे।

व्यावसायिक शिक्षा

१८३३ तक भारत में ब्रिटिश राज्य की जड़ें जम चुकी थीं एवं सरकार को विभिन्न व्यवसायों के विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ने लगी थी। अतः सरकार ने भारतवासियों को चिकित्सकों, इंजीनियरों, वकीलों आदि के रूप में शिक्षित करने की ओर ध्यान दिया एवं उनके लिये कॉलेज स्थापित किये। हम इनकी ओर नीचे संकेत कर रहे है :—

१. चिकित्सा-शिक्षा

बंगाल—प्रारम्भ में अंग्रेजों ने प्राच्य शिक्षा को प्रोत्साहित करने की नीति अपनाई थी एवं प्राच्य विद्यालयों तथा कॉलेजों का निर्माण किया था। इसी योजना के अन्तर्गत १८२२ में कलकत्ते में भारतीयों के लिये एक चिकित्सा-विद्यालय स्थापित किया था, तथा १८२६ में कलकत्ता संस्कृत कॉलेज तथा कलकत्ता मदरसा में चिकित्सा-विभाग खोले गये थे। इनमें हिन्दू एवं मुस्लिम ढंग पर चिकित्सा की शिक्षा प्रदान की जाती थी। जो भारतीय यहाँ से चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करके निकलते थे, वे अंग्रेजों की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर पाते थे, क्योंकि वे शल्य-चिकित्सा से अनभिज्ञ होते थे। फलस्वरूप 'लोक-शिक्षा-समिति' ने सरकार के समक्ष प्रस्ताव रखा कि भारतीयों को पाश्चात्य ढंग पर चिकित्सा की शिक्षा प्रदान की जाय। सरकार ने समिति का यह प्रस्ताव जनवरी १८३५ में स्वीकार कर लिया। परिणामतः भारतीय ढंग पर चलने वाला चिकित्सा-विद्यालय एवं चिकित्सा कक्षायें बन्द कर दी गईं तथा १८३५ में कलकत्ता मेडिकल कॉलेज की नींव पड़ी। इसमें पाश्चात्य ढंग पर चिकित्सा की शिक्षा दी जाती थी। १८४४ में इस कॉलेज के चार भारतीय विद्यार्थियों को चिकित्सा में विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये इंगलैण्ड भेजा गया।

मद्रास—यहाँ १८३५ में यूरोपियन एवं भारतीय विद्यार्थियों के लिये एक मेडिकल स्कूल का निर्माण हुआ। इसमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। १८५१ में इस स्कूल को कॉलेज में परिवर्तित कर दिया गया।

बम्बई—१८३७ में बम्बई के तत्कालीन गर्वनर सर राबर्ट ग्रान्ट (Sir Robert Grant) ने एक मेडिकल कॉलेज स्थापित करने का विचार किया। किन्तु दुर्भाग्यवश उसके निधन के कारण योजना पूर्ण न हो सकी।

बम्बई के निवासियों ने सर राबर्ट की स्मृति को चिर स्थायी रखने के विचार से धन एकत्रित करके १८४५ में 'ग्रान्ट मेडिकल कॉलेज' का शिलान्यास किया।

पाश्चात्य चिकित्सा-शिक्षा की प्रारम्भिक कठिनाई—हम ऊपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि प्रारम्भ में कम्पनी ने प्राच्य शिक्षा को प्रोत्साहित करने की नीति को अपनाया था। इसी नीति के अन्तर्गत चिकित्सा की आयुर्वेद तथा यूनानी प्रणालियों को सुरक्षित रखने का विचार किया गया था। किन्तु मैकॉले एवं बैंटिक की पाश्चात्य शिक्षा की नीति ने चिकित्सा-शिक्षा को भी प्रभावित किया एवं बंगाल की सरकार ने पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस नीति के फलस्वरूप भारतीय चिकित्सा-शिक्षा की पूर्ण रूप से अवहेलना की गई जिससे उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गई। इस नीति को अपनाने में अंग्रेजों ने केवल अपने हितों की पूर्ति का ध्यान रखा एवं भारतीयों के हित की उपेक्षा की।

पाश्चात्य चिकित्सा-शिक्षा को प्रारम्भ करने में एक महान् कठिनाई का अनुभव किया गया। भारतीय मृत शरीर का स्पर्श पाप समझते थे और शल्य-चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये मृत शरीर की चीड़-फाड़ आवश्यक थी। इस कठिनाई पर प्रथम भारतीय विद्यार्थी मधुसूदन गुप्त की सहायता से विजय प्राप्त की गई। डा० गुडेव (Goodeve) के साथ उसने एक मृत शरीर की चीड़-फाड़ की। इस दृश्य को देखकर भारतीय विद्यार्थियो के हृदय में मनोवैज्ञानिक तथा क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रारम्भ हुआ एवं वे पाश्चात्य ढंग पर चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करने के लिये अग्रसर हुए। फलतः प्रति वर्ष मेडिकल कॉलेजों में भारतीय छात्रों की संख्या में वृद्धि होने लगी।

२. इञ्जीनियरिंग की शिक्षा

बंगाल—१८५४ में 'शिक्षा-परिषद्' ने प्रेसीडेन्सी कॉलेज, कलकत्ता में एक इंजीनियरिंग स्कूल खोलने का प्रस्ताव सरकार के समक्ष रखा। इसी अवसर पर बंगाल के प्रधान इंजीनियर ने "सार्वजनिक निर्माण-विभाग में सामान्य सुधार करने के लिये" एक इंजीनियरिंग कॉलेज स्थापित करने की माँग की। कम्पनी के संचालकों ने इन दोनों प्रस्तावों पर विचार करके एक इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना की स्वीकृति प्रदान की। फलस्वरूप १८५६ में कलकत्ता में इंजीनियरिंग कॉलेज का शिलान्यास हुआ।

बम्बई—बंगाल की अपेक्षा बम्बई में इंजीनियरिंग की शिक्षा की ओर बहुत पहिले ध्यान दिया गया। १८२४ में 'बम्बई-भारतीय शिक्षा-समिति' ने

मातृभाषा के माध्यम द्वारा इंजीनियरिंग की शिक्षा देने के लिये एक कक्षा प्रारम्भ की थी। १८४४ में 'एल्फ़िस्टन इंस्टीट्यूशन' (Elphinstone Institution) में इंजीनियरिंग की एक कक्षा और खोली गई। विद्यार्थी इस कक्षा की ओर आकर्षित नहीं हुए, क्योंकि इसमें अध्ययन करने के उपरान्त उनको सरकार से अच्छा वेतन नहीं मिलता था। १८५४ में 'सार्वजनिक निर्माण विभाग' (Public Works Department) के लिये पदाधिकारियों को तैयार करने के विचार से पूना में एक इंजीनियरिंग कक्षा तथा एक यंत्रशास्त्र का विद्यालय (Mechanical School) स्थापित किया गया।

मद्रास—इंजीनियरिंग की शिक्षा में यह प्रान्त सब से पीछे रहा। यहाँ १८५७ तक इस शिक्षा के लिये किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं थी। परन्तु १७९३ से 'बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू' (Board of Revenue) के संरक्षण में "पैमाइश करने का एक स्कूल" (A Survey School) चल रहा था।

पश्चिमोत्तर प्रान्त—१८४५ तक इस प्रान्त में इंजीनियरिंग की शिक्षा के लिये कोई प्रबन्ध नहीं था। उस वर्ष सरकार की सिंचाई योजना के लिये योग्य व्यक्तियों को प्राप्त करने के उद्देश्य से सहारनपुर में एक इंजीनियरिंग-कक्षा प्रारम्भ की गई। इस प्रान्त के गवर्नर टामसन के प्रयास के फलस्वरूप १८४७ में इस कक्षा को हटा कर रुड़की ले जाया गया और इसे कॉलिज का रूप दिया गया। टामसन के देहावसान के पश्चात्, १८५४ में उसके नाम को इस कॉलेज से सम्बद्ध कर दिया गया और यह टामसन इंजीनियरिंग कॉलिज के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1]

३. क़ानून की शिक्षा

भारत के अंग्रेज़ शासक अपने शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षों में ही हिन्दू एवं मुस्लिम क़ानून के विशेषज्ञों की आवश्यकता का अनुभव कर चुके थे। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कलकत्ता, मदरसा तथा बनारस संस्कृत कॉलेज का निर्माण किया गया था। साम्राज्य-विस्तार के कारण अधिक विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ी। अतः १८४२ में कलकत्ता हिन्दू विद्यालय में क़ानून की शिक्षा की व्यवस्था एवं क़ानून के एक प्रोफेसर की नियुक्ति की गई।[2] क़ानून की शिक्षा का यह प्रयास सागर में एक बूँद के समान था और वह भारतीयों की क़ानून पढ़ने की जिज्ञासा को तृप्त न कर सका।

४. अन्य शिक्षा-संस्थायें

उपरोक्त व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं के अतिरिक्त भारत में कुछ अन्य

1. Richey : *op. cit.*, pp. 356-7.
2. Nurullah and Naik : *op. cit.*, p. 161.

शिक्षा-संस्थायें अधोलिखित स्थानों पर थीं :—

१. १८४० में मेजर मेटलैन्ड (Major Maitland) ने मद्रास में अस्त्र-सम्बन्धी (Ordinance) शिक्षा के लिये एक औद्योगिक स्कूल (Industrial School) स्थापित किया।

२. १८५० में डा० हन्टर (Hunter) ने मद्रास में एक 'औद्योगिक कला स्कूल' (School of Industrial Arts) का शिलान्यास किया। १८५१ में उसने एक 'औद्योगिक स्कूल' का निर्माण किया। इस स्कूल का उद्देश्य लाभप्रद कारीगरी की शिक्षा देना तथा दैनिक प्रयोग की विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन को उन्नत बनाना था। १८५५ में इन दोनों स्कूलों को मिलाकर एक कर दिया गया और इसका प्रबन्ध सरकार ने अपने हाथ में ले लिया।

३. १८५३ में सर जमशेदजी जीजीभाई (Sir Jamsetjee Jeejeebhoy) ने बम्बई में 'कला एवं उद्योग के स्कूल' की स्थापना के लिये १ लाख रुपया दान दिया। इस धन का उपयोग १८५६ में 'जे० जे० स्कूल ऑफ़ आर्ट' का निर्माण करके किया गया।

उपसंहार

१८३३ से १८५३ तक ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यवसाय, विजय एवं राज्य-संगठन के कार्यों में व्यस्त रही। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उसके संचालकों तथा अधिकारियों को शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान देने एवं उस पर पर्याप्त धन व्यय करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। शिक्षा की दिशा में जो भी राजकीय प्रयत्न किये गये, वे इस देश की जनसंख्या की विशालता तथा निवासियों की निरक्षरता को देखते हुए सागर में कुछ बूंदों के समान थे। १८५५ में जिन शिक्षा-संस्थाओं का प्रबन्ध कम्पनी कर रही थी, उनकी संख्या केवल १,४७४ थी, और उनमें ६७,५६९ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे तथा शिक्षा पर किया जाने वाला कुल व्यय सम्पूर्ण आय का १ प्रतिशत भी नहीं था। इस प्रकार इस काल में शिक्षा की प्रगति संतोषजनक नहीं हुई।

इस काल की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषतायें भी हैं। प्रथम, लार्ड हार्डिज की घोषणा के फलस्वरूप शिक्षा एवं नौकरी के मध्य एकात्मिकता की स्थापना हुई। उसी समय से शिक्षा का चरम लक्ष्य नौकरी माना जाने लगा। परन्तु तात्कालिक स्थिति पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि १८४४ से १८५३ तक की ९ वर्ष की अवधि में केवल १० व्यक्तियों को इस प्रकार

नौकरी मिली। द्वितीय, प्राथमिक शिक्षा का भार विभिन्न समितियों पर होने के कारण शिक्षण-पद्धति में एकरूपता की स्थापना न हो सकी। अध्यापकों को इतना कम वेतन मिलता था कि उनमें शिक्षण-योग्यता की आशा करना व्यर्थ था। कम्पनी ने 'नवीन प्राथमिक शिक्षा' के प्रसार एवं संरक्षण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया, किन्तु फिर भी उसकी गति तीव्र न हुई। अप्रत्यक्ष रूप में देशी एवं नवीन प्राथमिक विद्यालयों में प्रतिद्वन्द्विता की भावना प्रारम्भ हो गई। फलस्वरूप प्राच्य शिक्षा का क्रमिक ह्रास होने लगा। तृतीय, अंग्रेज़ी के माध्यम से माध्यमिक शिक्षा उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही थी। परन्तु कोरे पुस्तक-ज्ञान पर बल देकर शिक्षा के क्षेत्र में अवांछनीय बीज बोया जा रहा था।

सारांश

बंगाल—बैंटिक ने अंग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम घोषित किया। फलतः अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिये विद्यालयों का निर्माण होने लगा। ऑकलैन्ड ने प्रत्येक जिले में एक 'ज़िला विद्यालय' स्थापित किया। हार्डिज ने अंग्रेज़ी स्कूलों एवं प्राथमिक विद्यालयों को प्रोत्साहन दिया। डलहौज़ी ने अनुदान-प्रणाली प्रारम्भ करके प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया। 'शिक्षा-परिषद्' ने पाठ्य-पुस्तकों में सुधार किया, विद्यालय-निरीक्षक नियुक्त किये एवं प्राथमिक शिक्षा की ओर ध्यान दिया। हाजी मुहम्मद मुहसिन से प्राप्त धन से हुगली कॉलेज का निर्माण हुआ। वैथ्यून ने लड़कियों के लिये एक स्कूल का प्रबन्ध किया। मिशनरियों ने १८५३ तक २२ स्कूल निर्मित किये। बनर्जी तथा बैलेन्टाइन के प्रयास करने पर भी देशी भाषायें शिक्षा का माध्यम न बन सकीं।

बम्बई—'बम्बई-भारतीय शिक्षा-समिति', ने १८४० तक ११५ ज़िला प्राथमिक विद्यालय खोले। सरकार ने 'एल्फ़िन्स्टन इन्स्टीट्यूशन' स्थापित किया और पुरन्दर तालुक्का में ६३ प्राइमरी स्कूल खोले। 'शिक्षा-बोर्ड' ने ऐडम की योजना को कार्यान्वित करने का प्रयास किया, परन्तु सफलता न मिली। माध्यम के प्रश्न पर 'शिक्षा-बोर्ड' के सदस्यों के दो दल बन गये। १८४८ में सरकार ने निर्णय किया कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिये देशी भाषाओं तथा उच्च शिक्षा के लिये अंग्रेज़ी का माध्यम होगा। फलस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा को बहुत प्रोत्साहन मिला।

मद्रास—सरकार ने १८४१ में मद्रास नगर में एक हाई स्कूल खोला। १८५२ में उसमें कॉलेज विभाग खोला गया। 'शिक्षा-बोर्ड' ने २ अंग्रेजी

स्कूल स्थापित किये। मिशनरियों ने १८५२ तक १,१८५ स्कूलों का निर्माण किया। पच्चप्पा से प्राप्त धन से १८४२ में एक स्कूल खोला गया।

पश्चिमोत्तर प्रान्त—टामसन के प्रयास के फलस्वरूप तहसीली स्कूल खोले गये एवं परगना विज़िटर, ज़िला विज़िटर तथा विज़िटर-जेनरल की नियुक्ति हुई। मथुरा के ज़िलाधीश अलैक्जैन्डर ने 'हल्काबन्दी स्कूल' की योजना बनाई। १८५४ में इस प्रकार के ७५८ स्कूल थे।

पंजाब—१८४९ में अमृतसर में अंग्रेजी की शिक्षा के लिये सरकार ने एक स्कूल खोला। इसी प्रकार का एक स्कूल लाहौर में भी खोला गया। १८४५ में ४ नार्मल स्कूल एवं ६० तहसीली स्कूल खोलने तथा ५७ परगना विज़िटर, १२ ज़िला विज़िटर एवं १ विज़िटर--जेनराल की नियुक्ति की योजना बनाई गई।

उच्च शिक्षा—१८५० में बरेली हाई स्कूल एवं १८५३ में बनारस के जयनारायण घोषाल स्कूल को कॉलेज बना दिया गया।

चिकित्सा-शिक्षा—१८३५ में कलकत्ता मेडिकल कॉलेज की नींव पड़ी। १८५१ में मद्रास के मेडिकल स्कूल को कॉलेज में परिवर्तित कर दिया गया। १८५४ में बम्बई में 'ग्रान्ट मेडिकल कॉलेज' स्थापित किया गया।

इंजीनियरिंग की शिक्षा—१८५६ में कलकत्ता में एक इंजीनियरिंग कॉलेज का शिलान्यास हुआ। १८५४ में पूना में एक इंजीनियरिंग कक्षा तथा एक यंत्रशास्त्र का विद्यालय स्थापित किया गया। १८५४ में रुड़की में 'टामसन इंजीनियरिंग कॉलेज' का निर्माण हुआ।

कानून की शिक्षा—१८४२ में कलकत्ता हिन्दू विद्यालय में क़ानून की शिक्षा की व्यवस्था की गई। मद्रास एवं बम्बई में कानून की शिक्षा का प्रबन्ध १८५५ में किया गया।

TEST QUESTIONS

1. Write a brief account of the progress of education from 1833 to 1853.
2. Describe briefly Thomason's plan for the development of mass education in the North-Western Provinces.
3. "James Thomason is regarded as the father of elementary education in India." Discuss.
4. Trace the development of professional and vocational Education from 1833 to 1853.

अध्याय ८

वुड का शिक्षा-घोषणा-पत्र (१८५४)

कम्पनी का नया आदेश-पत्र

१८३३ के बाद १८५३ में कम्पनी के आज्ञा-पत्र (Charter) के नवीनकरण का अवसर आया। उस समय तक ब्रिटिश लोकसभा यह अनुभव कर चुकी थी कि भारतीय शिक्षा की उपेक्षा करना उपयुक्त न होगा एवं शिक्षा की एक स्थायी नीति ग्रहण करना आवश्यक है। इन विचारों से प्रेरित होकर लोकसभा ने एक संसदीय समिति (Select Committee of the House of Commons) नियुक्त की। समिति ने १८५३ तक की भारतीय शिक्षा का गहन अध्ययन किया एवं ट्रेवेलियन, पैरी, मार्शमैन, विल्सन, हैलीडे, डफ[1] आदि भारतीय शिक्षा-मर्मज्ञों के विचारों को सुना। अपनी इस जांच के आधार पर समिति ने स्पष्ट रूप से बताया कि भारतीय शिक्षा के प्रश्न को टालना हितकर न होगा एवं उससे ब्रिटिश साम्राज्य को क्षति पहुँचने की कोई आशंका नहीं है। समिति के सुझावों के आधार पर १९ जुलाई १८५४ को कम्पनी के संचालकों ने अपनी भारतीय शिक्षा-नीति की घोषणा की। उस समय चार्ल्स वुड (Charles Wood) कम्पनी के 'बोर्ड ऑफ़ कन्ट्रोल'

1. Trevelyan, Perry, Marshman, Wilson, Halliday, Duff.

का प्रधान था। अतः उसी के नाम पर कम्पनी का यह नया आदेश-पत्र, 'वुड का शिक्षा-घोषणा-पत्र' (Wood's Education Despatch) कहा गया। यह घोषणा-पत्र १०० अनुच्छेदों का एक लम्बा अभिलेख था जिसमें भारतीय शिक्षा के सुधार के लिये एक विशिष्ट योजना का निरूपण किया गया था। घोषणा-पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नवीन उप-काल का श्रीगणेश किया। हम नीचे इस घोषणा-पत्र के शिक्षा-सिद्धान्तों पर प्रकाश डाल रहे हैं :—

घोषणा-पत्र में विवाद-ग्रस्त विषयों का सिंहावलोकन

सर्व प्रथम वुड के घोषणा-पत्र में भारतीय शिक्षा का उत्तरदायित्व कम्पनी के ऊपर बताया गया एवं शिक्षा को एक पुनीत कर्त्तव्य कहा गया। "अनेकों महत्त्वपूर्ण विषयों में से, और कोई भी विषय हमारा इतना ध्यान आकर्षित नहीं कर सकता है, जितना कि शिक्षा। यह हमारा एक पुनीत कर्त्तव्य है।"[1]

इसके उपरान्त घोषणा-पत्र में प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा-विवाद की ओर संकेत किया गया। प्राच्य साहित्य की निन्दा नहीं की गई, परन्तु मैकॉले के समान पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान को भारतवासियों के लिये उपयुक्त बताया गया।

आगे चलकर घोषणा-पत्र में शिक्षा के माध्यम-सम्बन्धी जटिल प्रश्न को हल किया गया। यह बात स्वीकार की गई कि अंग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम बनाने से देशी भाषाओं की प्रगति अवरुद्ध हो गई है। परन्तु इस आरोप का खंडन किया गया कि अंग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम इसलिये बनाया गया कि देशी भाषाओं के विकास में रुकावट डाली जा सके। अन्त में इस बात पर बल दिया गया कि अंग्रेज़ी एवं देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।

इस प्रकार वाद-विवाद-ग्रस्त विषयों का सिंहावलोकन करने के पश्चात् घोषणा-पत्र में कुछ शिक्षा-सम्बन्धी सिफ़ारिशें की गईं जिनका उल्लेख हम नीचे कर रहे हैं।

घोषणा-पत्र की सिफ़ारिशें

१. शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षा के उद्देश्य को भारतवासियों तथा अंग्रेज़ी राज्य के हितों को ध्यान में रखकर निर्धारित किया गया। घोषणा-पत्र में यह बात स्पष्ट कर दी

1. "Among many subjects of importance, none can have a stronger claim to our attention than that of education. It is one of our most sacred duties." *Wood's Despatch.*

गई कि शिक्षा द्वारा भारतीयों की बौद्धिक एवं चारित्रिक उन्नति करने के साथ ही ऐसे व्यक्तियों को उत्पन्न करना था जो राज्य को सुदृढ़ बना सकें और विश्वास के साथ राजपदों पर नियुक्त किये जा सकें।[1]

२. पाठ्यक्रम

पाठ्य-क्रम के लिये भारतीय भाषाओं के साहित्य को ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बताया गया। कानून की दृष्टि से भी इस साहित्य का महत्त्व स्वीकार किया गया। इस प्रकार संस्कृत, अरबी एवं फारसी की उपयोगिता स्वीकार करके उन्हें पाठ्य-क्रम में स्थान दिया गया, परन्तु पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों का अध्ययन ही भारतीयों के लिये उपयुक्त समझा गया। "हम बलपूर्वक घोषणा करते हैं कि जिस शिक्षा का प्रसार हम भारत में करना चाहते हैं, उसका उद्देश्य यूरोपीय उच्च कला, विज्ञान, दर्शन एवं यूरोपीय साहित्य; अर्थात् संक्षेप में, यूरोपीय ज्ञान है।"[2]

३. शिक्षा का माध्यम

घोषणा-पत्र में बताया गया कि देशी भाषाओं में पुस्तकों का अभाव होने के कारण अँग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाना आवश्यक है। परन्तु यह बात स्पष्ट कर दी गई कि अँग्रेजी का माध्यम केवल उन व्यक्तियों के लिये होगा, जो इस भाषा का समुचित ज्ञान रखते हों एव जो इसके द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर सकें। अन्य व्यक्तियों के लिये शिक्षा का माध्यम देशी भाषायें होंगी। इस प्रकार अँग्रेजी तथा देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया गया। "यूरोपीय ज्ञान के प्रसार के लिये हम अँग्रेजी भाषा एवं भारत की देशी भाषाओं की ओर शिक्षा के माध्यम के रूप में देखते

1. "We have always looked upon the encouragement of education as peculiarly important, because calculated not only to produce a higher degree of intellectual fitness, but to raise the moral character of those who partake of its advantages, and so to supply you with servans to whose probity you may with increased confidence commit offices of trust." *Wood's Despatch.*
2. "We must emphatically declare that the education which we desire to see extended in India is that which has for its object the diffusion of the improved Arts, Science, Philosophy and Literature of Europe; in short of European knowledge." *Wood's Despatch.*

हैं, एवं भारत के समस्त स्कूलों में उनको साथ-साथ फलते-फूलते देखने की हमारी अभिलाषा है।"[1]

४. जन-शिक्षा-विभाग

घोषणा-पत्र में आदेश दिया गया कि भारत के प्रत्येक प्रान्त में एक जन-शिक्षा-विभाग (Department of Public Instruction) स्थापित किया जाय और उसका सर्वोच्च अधिकारी जन-शिक्षा-संचालक (Director of Public Instruction) हो। उसकी सहायता के लिए उप-शिक्षा-संचालक, निरीक्षक (Inspector) तथा सहायक निरीक्षक नियुक्त किये जायँ। प्रान्त की शिक्षा की व्यवस्था एवं उसके संचालन का भार शिक्षा-संचालक पर होगा और वह प्रति वर्ष सरकार को शिक्षा-विषयक रिपोर्ट भेजेगा।

५. विश्वविद्यालय

घोषणा-पत्र में कहा गया कि उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिये कलकत्ता, बम्बई एवं यदि आवश्यकता हो, तो मद्रास तथा अन्य स्थानों में विश्वविद्यालय स्थापित किये जायँ।[2] इन विश्वविद्यालयों का निर्माण लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मान कर किया जाय। प्रत्येक विश्वविद्यालय के लिये कुलपति (Chancellor), उपकुलपति (Vice-Chancellor) तथा अभिसदस्य (Fellows) होंगे, जो सरकार के द्वारा मनोनीत किये जायेंगे। इन सब को मिला कर सीनेट (Senate) बनाई जायगी, जो विश्व-विद्यालय के लिये नियम बनायेगी एवं उसका प्रबन्ध करेगी। विश्वविद्यालय अपने से सम्बद्ध कॉलेजों के विद्यार्थियों की परीक्षा लेगा एवं उपाधियाँ प्रदान करेगा। विश्वविद्यालयों में इंजीनियरिंग, कानून, देशी भाषाओं, संस्कृत, अरबी एवं फारसी की शिक्षा का प्रबन्ध करने

1. "We look to the English language and to the vernacular languages of India together as the media for the diffusion of European knowledge, and it is our desire to see them cultivated together in all schools in India." *Wood's Despatch.*
2. "The time is now arrived for the establishment of Universities in India, which may encourage a regular and liberal course of education by conferring academical degrees." *Wood's Despatch.*

के लिये विशेष रूप से उल्लेख किया गया।[1] इस प्रकार घोषणा-पत्र में प्राच्य भाषाओं के विकास की ओर समुचित ध्यान दिया गया, परन्तु अँग्रेजी शिक्षा की माँग होने के कारण उनकी प्रगति न हो सकी।

६. प्रक्रमबद्ध विद्यालयों की स्थापना

घोषणा-पत्र में समस्त भारत में प्रक्रमबद्ध विद्यालयों (Graded schools की योजना पर बल दिया। इस योजना का स्पष्टीकरण करते हुए घोषणा-पत्र में अंकित किया गया कि शिक्षा का ढाँचा इस प्रकार का हो, जिसके आधार में प्राथमिक विद्यालय हों और फिर मिडिल स्कूल, हाई स्कूल, कॉलेज एवं विश्वविद्यालय हों। इस योजना की रूप-रेखा केवल इस अभिप्राय से तैयार की गई थी जिससे ज्ञान के अभिलाषी व्यक्तियों को क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

७. जन-शिक्षा-प्रसार

घोषणा-पत्र में निस्यन्दन-सिद्धान्त के अनुसरण किये जाने पर संतोष प्रकट किया गया और यह स्वीकार किया गया कि जन-साधारण की शिक्षा की पूर्ण रूप से अवहेलना की गई थी। अभी तक कम्पनी के अधिकारियों का ध्यान वर्ग विशेष की शिक्षा की ओर था और उसी पर राज-कोष का अधिकांश भाग व्यय किया जाता था। अतः घोषणा-पत्र में कहा गया कि जन-साधारण को व्यावहारिक एवं लाभदायक शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय। "अब हमारा ध्यान इस अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर जाना चाहिये जिसकी अभी तक अवहेलना की गई है; अर्थात् जीवन के सभी अंगों के लिये लाभदायक एवं व्यावहारिक शिक्षा, उस विशाल जन-समूह को किस प्रकार दी जाय जो किसी सहायता के बिना स्वयं लाभदायक शिक्षा पाने में पूर्णतः असमर्थ है।"[2]

1. "Law is the most important of these subjects. Civil Engineering is another subject. It would generally encourage the cultivation of the vernacular languages of India that professorships should be founded for these languages and perhaps also for Sanskrit, Arabic and Persian." *Wood's Despatch.*
2. "Our attention should now be directed to consideration still more important, and one which has been hitherto neglected, namely, how useful and practical knowledge, suited to every station of life, may be best conveyed to the great mass of the people who are utterly incapable of obtaining any education worthy of the name by their own unaided efforts." *Wood's Despatch.*

हैं, एवं भारत के समस्त स्कूलों में उनको साथ-साथ फलते-फूलते देखने की हमारी अभिलाषा है।"[1]

४. जन-शिक्षा-विभाग

घोषणा-पत्र में आदेश दिया गया कि भारत के प्रत्येक प्रान्त में एक जन-शिक्षा-विभाग (Department of Public Instruction) स्थापित किया जाय और उसका सर्वोच्च अधिकारी जन-शिक्षा-संचालक (Director of Public Instruction) हो। उसकी सहायता के लिए उप-शिक्षा-संचालक, निरीक्षक (Inspector) तथा सहायक निरीक्षक नियुक्त किये जायँ। प्रान्त की शिक्षा की व्यवस्था एवं उसके संचालन का भार शिक्षा-संचालक पर होगा और वह प्रति वर्ष सरकार को शिक्षा-विषयक रिपोर्ट भेजेगा।

५. विश्वविद्यालय

घोषणा-पत्र में कहा गया कि उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिये कलकत्ता, बम्बई एवं यदि आवश्यकता हो, तो मद्रास तथा अन्य स्थानों में विश्वविद्यालय स्थापित किये जायँ।[2] इन विश्वविद्यालयों का निर्माण लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मान कर किया जाय। प्रत्येक विश्वविद्यालय के लिये कुलपति (Chancellor), उपकुलपति (Vice-Chancellor) तथा अभिसदस्य (Fellows) होंगे, जो सरकार के द्वारा मनोनीत किये जायेंगे। इन सब को मिला कर सीनेट (Senate) बनाई जायगी, जो विश्व-विद्यालय के लिये नियम बनायेगी एवं उसका प्रबन्ध करेगी। विश्वविद्यालय अपने से सम्बद्ध कॉलेजों के विद्यार्थियों की परीक्षा लेगा एवं उपाधियाँ प्रदान करेगा। विश्वविद्यालयों में इंजीनियरिंग, क़ानून, देशी भाषाओं, संस्कृत, अरबी एवं फारसी की शिक्षा का प्रबन्ध करने

1. "We look to the English language and to the vernacular languages of India together as the media for the diffusion of European knowledge, and it is our desire to see them cultivated together in all schools in India." *Wood's Despatch.*
2. "The time is now arrived for the establishment of Universities in India, which may encourage a regular and liberal course of education by conferring academical degrees." *Wood's Despatch.*

के लिये विशेष रूप से उल्लेख किया गया।[1] इस प्रकार घोषणा-पत्र में प्राच्य भाषाओं के विकास की ओर समुचित ध्यान दिया गया, परन्तु अँग्रेजी शिक्षा की माँग होने के कारण उनकी प्रगति न हो सकी।

६. प्रक्रमबद्ध विद्यालयों की स्थापना

घोषणा-पत्र में समस्त भारत में प्रक्रमबद्ध विद्यालयों (Graded schools की योजना पर बल दिया। इस योजना का स्पष्टीकरण करते हुए घोषणा-पत्र में अंकित किया गया कि शिक्षा का ढाँचा इस प्रकार का हो, जिसके आधार में प्राथमिक विद्यालय हों और फिर मिडिल स्कूल, हाई स्कूल, कॉलेज एवं विश्वविद्यालय हों। इस योजना की रूप-रेखा केवल इस अभिप्राय से तैयार की गई थी जिससे ज्ञान के अभिलाषी व्यक्तियों को क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

७. जन-शिक्षा-प्रसार

घोषणा-पत्र में निस्यन्दन-सिद्धान्त के अनुसरण किये जाने पर संतोष प्रकट किया गया और यह स्वीकार किया गया कि जन-साधारण की शिक्षा की पूर्ण रूप से अवहेलना की गई थी। अभी तक कम्पनी के अधिकारियों का ध्यान वर्ग विशेष की शिक्षा की ओर था और उसी पर राज-कोष का अधिकांश भाग व्यय किया जाता था। अतः घोषणा-पत्र में कहा गया कि जन-साधारण को व्यावहारिक एवं लाभदायक शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय। "अब हमारा ध्यान इस अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर जाना चाहिये जिसकी अभी तक अवहेलना की गई है; अर्थात् जीवन के सभी अंगों के लिये लाभदायक एवं व्यावहारिक शिक्षा, उस विशाल जन-समूह को किस प्रकार दी जाय जो किसी सहायता के बिना स्वयं लाभदायक शिक्षा पाने में पूर्णतः असमर्थ है।"[2]

1. "Law is the most important of these subjects. Civil Engineering is another subject. It would generally encourage the cultivation of the vernacular languages of India that professorships should be founded for these languages and perhaps also for Sanskrit, Arabic and Persian." *Wood's Despatch.*
2. "Our attention should now be directed to consideration still more important, and one which has been hitherto neglected, namely, how useful and practical knowledge, suited to every station of life, may be best conveyed to the great mass of the people who are utterly incapable of obtaining any education worthy of the name by their own unaided efforts." *Wood's Despatch.*

इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिये हाई स्कूलों, मिडिल स्कूलों एवं प्राथमिक स्कूलों की संख्या में वृद्धि की जाय। घोषणा पत्र में सिफ़ारिश की गई कि निर्धन परन्तु योग्य विद्यार्थियों को शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रवृत्तियाँ दी जायँ जिससे वे शिक्षा प्राप्त करने से बंचित न रह सकें। घोषणा-पत्र में देशी-विद्यालयों को प्रोत्साहन करने की उस नीति की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया जिसका अनुसरण टामसन द्वारा उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त में किया गया था। लार्ड ऑकलैन्ड की नीति के प्रतिकूल देशी प्राथमिक विद्यालयों को प्रोत्साहित करने की नीति का समर्थन किया गया। इन विद्यालयों को शिक्षा का आधार माना गया और उसी पर सम्पूर्ण शिक्षा-भवन का निर्माण करने का प्रस्ताव किया गया।

८. सहायता-अनुदान

जन-शिक्षा-प्रसार की योजना तो उत्तम थी परन्तु उसे कार्यान्वित करने के लिये कम्पनी को अत्यधिक धन व्यय करना पड़ता। अतः घोषणा-पत्र में सहायता अनुदान (Grant-in-aid) का सुझाव दिया गया। इस पद्धति से चिर परिचित होने के कारण भारतीयों को इसे स्वीकार करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं थी। इससे शिक्षित एवं धनी वर्गों की उदारता एवं प्रयासों को प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता था एवं शिक्षा की तीव्र प्रगति भी सम्भव थी।[1] प्रत्येक प्रान्तीय सरकार सहायता-अनुदान सम्बन्धी कुछ नियम बनावे और सहायता-अनुदान उन्हीं शिक्षा-संस्थाओं को दिया जाय, जो निम्नांकित शर्तों को स्वीकार करें :—

१. विद्यालय में बिना किसी भेद-भाव के अच्छी और धर्मनिरपेक्ष लौकिक शिक्षा देना।
२. विद्यालय का स्थानीय व्यक्तियों की प्रबन्धकारिणी समिति के द्वारा कुशलता पूर्वक संचालन किया जाना।
३. विद्यालय के विद्यार्थियों से शुल्क के रूप में कुछ धन लेना।
४. विद्यालय के प्रबन्धकों द्वारा सरकारी निरीक्षण तथा सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियमों का पालन किया जाना।

---

1. "We have, therefore, resolved to adopt in India the system of grant-in-aid which has been carried out in this country with very great success; and we confidently anticipate by thus drawing support from local resources in addition to contribution from the State, a far more rapid progress of education than would follow a mere increase of expenditure by Government." *Wood's Despatch.*

घोषणा-पत्र में उल्लेख किया गया कि प्रान्तीय सरकारें इंगलैण्ड की सहायता-अनुदान प्रणाली का अनुकरण करें और शिक्षकों के वेतन, छात्रवृत्तियों, पुस्तकालयों, वाचनालयों, प्रयोगशालाओं, विज्ञान एवं कला कक्षाओं तथा भवन-निर्माण आदि के लिये अलग-अलग अनुदान देने की व्यवस्था करें। अनुदान सब प्रकार के विद्यालयों को दिया जाय। इस अनुदान-प्रणाली को अपनाकर व्यक्तिगत विद्यालयों की वृद्धि होगी और कुछ समय पश्चात् उनकी संख्या इतनी हो जायगी कि सरकार स्कूलों को चलाने के व्यय-भार से मुक्त हो जायगी। इन सरकारी स्कूलों को या तो स्थानीय स्कूल-प्रबन्धकों को हस्तान्तरित कर दिया जायगा या बन्द कर दिया जायगा।[1] इस प्रकार कम्पनी के संचालक थोड़ा सा धन व्यय करके राजकीय विद्यालयों की स्थापना एवं उनके संचालन के उत्तरदायित्व से बचना चाहते थे।

घोषणा-पत्र में सहायता-अनुदान-प्रणाली पर विशेष रूप से बल दिया गया। सम्भवतः इसका उद्देश्य मिशनरियों के शिक्षा-कार्य को प्रोत्साहित करना था, क्योंकि उस समय व्यक्तिगत रूप में मिशन स्कूलों की ही बहुलता थी। इस शंका का समाधान इस बात से हो जाता है कि घोषणा-पत्र के लेख-बद्ध किये जाने में डफ़ ऐसे मिशनरियों का व्यापक प्रभाव पड़ा। अतः यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि नवीन सहायता-अनुदान-प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य मिशनरियों के शिक्षा कार्य को पहिले से अधिक प्रोत्साहन देना था।[2]

९. अध्यापकों का प्रशिक्षण

वुड के घोषणा-पत्र द्वारा कम्पनी के संचालकों ने इच्छा व्यक्त की कि इंगलैन्ड के ढंग पर भारत के प्रत्येक प्रान्त में अति शीघ्र प्रशिक्षण-विद्यालय

1. "We look forward to the time when any general system of education entirely provided by Government may be discontinued, with the gradual advance of the system of grant-in-aid, and when many of the existing Government institutions, may be safely closed or transferred to the management of local bodies." *Wood's Despatch.*

2. "As missionaries like Dr. Duff had a distinct influence in the shaping of the famous Despatch, it was perfectly clear that the main tendency of the new grant-in-aid system was to encourage the various missions to engage in the very congenial work of elementary education to a larger extent than ever before." Richter : *op. cit.*, p. 180.

निर्मित किये जायँ।[1] औषधि-शास्त्र, इंजीनियरिंग तथा क़ानून आदि में भी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय।

संचालकों ने यह भी आशा प्रकट की कि छात्राध्यापकों को छात्रवृत्तियाँ एवं शिक्षकों को अधिक वेतन देकर शिक्षा-विभाग को उतना ही आकर्षक बनाया जाय जितने कि अन्य राजकीय विभाग थे।[2]

१०. स्त्री-शिक्षा

घोषणा-पत्र में स्त्री-शिक्षा के लिये दान देने वाले व्यक्तियों की सराहना की गई और आदेश दिया गया कि उदारतापूर्ण नीति का अनुसरण करके उनको इस परम पुनीत कार्य के लिये अधिक प्रेरणा दी जाय। यह भी कहा गया कि स्त्री-शिक्षा के विद्यालयों को सहायता-अनुदान दिया जाय। संचालक गर्वनर-जनरल की घोषणा से सहमत थे कि भारत में स्त्री-शिक्षा को सरकार की स्पष्ट एवं मैत्रीपूर्ण सहायता प्राप्त होनी चाहिये।[3]

११. व्यावसायिक शिक्षा

घोषणा-पत्र में व्यावसायिक शिक्षा (Vocational education) की ओर संकेत करते हुए लिखा गया कि ऐसे कॉलेजों और स्कूलों का निर्माण किया जाय जिनमें भारतीय, विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा प्राप्त कर सकें। व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने में संचालकों के दो उद्देश्य थे। इस शिक्षा को प्राप्त करके बेकार व्यक्ति कार्य में लग जायँगे और सरकार का

1. "We desire to see the establishment, with as little delay as possible, of training schools and classes for masters in each Presidency in India." *Wood's Despatch.*
2. "Our wish is that the profession of schoolmaster may, for the future, afford inducements to the natives of India such as are held out in other branches of the public service." *Wood's Despatch.*
3. "The importance of female education in India cannot be overrated;.....and we cannot refrain from expressing our cordial sympathy with the efforts which are being made in this direction. Our Governor-General in Council has declared.....that the Government ought to give to the native female education in India its frank and cordial support; and in this we heartily concur." *Wood's Despatch.*

आभार मानेंगे। व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना से भारतीयों का हित भी सम्भव होगा और सरकार को स्वामिभक्त व्यक्ति भी मिल जायेंगे।

१२. प्राच्य साहित्य को प्रोत्साहन

घोषणा-पत्र में प्राच्य साहित्य को प्रोत्साहन देने की सिफ़ारिश की गई। यह सुझाव दिया गया कि पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान की पुस्तकों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराया जाय। इसके अतिरिक्त देशी भाषाओं में पुस्तकें लिखवाई जायँ और लेखकों को सुन्दर पुरस्कार दिये जायँ।[1]

१३. शिक्षा और रोजगार

घोषणा-पत्र में शिक्षित व्यक्तियों को सरकारी नौकरियाँ देने का आदेश दिया गया। यह बात स्पष्ट कर दी गई कि नियुक्तियाँ करते समय व्यक्तियों की शिक्षा पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय और उन व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जाय जिनकी शिक्षा-योग्यता अन्य व्यक्तियों से अधिक है।[2] इस नीति को अपनाने से न केवल शिक्षा का प्रसार होगा अपितु शिक्षा प्राप्त करके जनता में मानवीय गुणों का विकास होगा, जिसके फलस्वरूप उनका जीवन अधिक सफल होगा।[3]

इस प्रकार वुड के शिक्षा-घोषणा-पत्र में यूरोपीय ज्ञान के प्रसार, अंग्रेजी एवं देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम ; जन-शिक्षा-विभाग, विश्वविद्यालयों और प्रक्रमबद्ध विद्यालयों की स्थापना; जन-शिक्षा-प्रसार, सहायता-अनुदान, अध्यापकों के प्रशिक्षण; स्त्री एवं व्यावसायिक शिक्षा, प्राच्य साहित्य के प्रोत्साहन तथा शिक्षित व्यक्तियों को सरकारी नौकरियाँ देने की सिफ़ारिश की गई।

1. "The best translations of particular books on the best treaties in specified languages should be advertised for and liberally rewarded." *Wood's Despatch.*
2. "What we desire is that, when the other qualifications of the candidates for appointments under Government are equal, a person who has received a good education, irrespective of the place or manner it may have been acquired, should be preferred to one who has not." *Wood's Despatch.*
3. "But however large number of appointments under Government may be, the views of the natives of India should be directed to the far wider and more important sphere of usefulness and advantages which a liberal education lays open to them." *Wood's Despatch.*

घोषणा-पत्र का मूल्यांकन

वुड का घोषणा-पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। इसने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के आवरण को चीर कर उसका नग्न रूप चित्रित किया एवं आधारभूत सिद्धान्तों की व्याख्या करके शिक्षा के भावी स्वरूप को निर्धारित किया। परन्तु इस घोषणा-पत्र की उपादेयता के सम्बन्ध में गहरा मतभेद है। अतः इसके गुण-दोषों का सूक्ष्म विवेचन आवश्यक हो जाता है।

गुण

१. आदेश-पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नवीन प्रकरण प्रारम्भ किया। जेम्स (James) ने इसे "भारत में अंग्रेजी शिक्षा का महाधिकार पत्र" (Magna Charta of English Education in India) कहा है।

२. आदेश-पत्र ने भारतीय शिक्षा के उद्देश्य का स्पष्टीकरण कर दिया और इस प्रकार शिक्षा को एक निश्चित मार्ग की ओर अग्रसर किया।

३. आदेश-पत्र से प्रभावित होकर ब्रिटिश लोक-सभा ने भारतीय शिक्षा की नीति निर्धारित कर दी और उसे वैधानिक रूप देने का प्रयास किया।

४. आदेश-पत्र के द्वारा कम्पनी ने अधिकृत रूप में स्वीकार किया कि जन-साधारण को शिक्षा देना सरकार का एक प्रमुख कर्त्तव्य है।

५. आदेश-पत्र ने प्रथम बार एक विशद शिक्षा-योजना की रूप-रेखा प्रस्तुत की जिसमें प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा को स्थान दिया गया।

६. आदेश-पत्र ने प्रक्रम-बद्ध (Graded) विद्यालयों की स्थापना का सुझाव रख कर शिक्षा-प्रसार के कार्य को सफल बनाने का प्रयास किया।

७. आदेश-पत्र ने निस्यन्दन सिद्धान्त को ठुकरा कर जन-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के सिद्धान्त को मान्यता दी।

८. आदेश-पत्र के द्वारा भारतीय साहित्य के महत्त्व को स्वीकार किया गया और प्राच्य भाषाओं को पाठ्य-क्रम में स्थान दिया गया।

९. आदेश-पत्र ने प्राच्य साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिये भारतीय भाषाओं में पुस्तकें लिखवाने की व्यवस्था की।

१०. आदेश-पत्र ने देशी प्राथमिक विद्यालयों को प्रोत्साहित करने की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया।

११. आदेश-पत्र के द्वारा अंग्रेजी के साथ-साथ देशी भाषाओं को माध्यमिक शिक्षा के माध्यम के रूप में ग्रहण करने पर बल दिया गया।

१२. आदेश-पत्र ने प्रत्येक प्रान्त में जन-शिक्षा-विभाग की स्थापना करके एवं उसमें शिक्षा-संचालक, निरीक्षकों आदि की नियुक्ति करके शिक्षा को राज्य के अन्तर्गत एक सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित रूप प्रदान किया।

१३. आदेश-पत्र के द्वारा शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विद्यालयों का संख्या में पर्याप्त वृद्धि की गई और विश्वविद्यालयों की स्थापना करके उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया गया।

१४. आदेश-पत्र ने व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं का प्रबन्ध कर के बेकारी की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया।

१५. आदेश-पत्र द्वारा स्वीकार किया गया कि स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करना सरकार का स्पष्ट कर्त्तव्य है।

१६. आदेश-पत्र ने निर्धन परन्तु योग्य विद्यार्थियों के लिये छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जिससे कि वे सरलता पूर्वक शिक्षा प्राप्त कर सकें।

१७. आदेश-पत्र ने शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये नार्मल स्कूलों तथा प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की और छात्रवृत्तियाँ देकर योग्य व्यक्तियों को उनमें अध्ययन करने के लिये आकर्षित किया।

१८. आदेश-पत्र द्वारा शिक्षकों को अधिक वेतन देने की सिफ़ारिश की गई और इस प्रकार शिक्षा-विभाग की नौकरियों को आकर्षक बनाया गया।

१९. आदेश-पत्र ने सब प्रकार के विद्यालयों के लिये सहायता अनुदान की प्रणाली प्रचलित की जिससे शिक्षा के विस्तार की गति तीव्र होगई।

२०. आदेश-पत्र ने यह बात स्पष्ट कर दी कि सरकारी नौकरियों में शिक्षित व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जायगी। फलस्वरूप जनसाधारण की शिक्षा में अधिक अभिरुचि होगई।

२१. लार्ड डलहौजी के मतानुसार आदेश-पत्र में समस्त भारत की शिक्षा के लिये एक योजना थी। इस प्रकार की व्यापक एवं विस्तृत योजना की रूप-रेखा प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा कदापि प्रस्तुत नहीं की जा सकती थी।[1]

---

1. Dalhousie was of the opinion that the despatch contained "a scheme of education for all India, far wider and more comprehensive than the Local or the Supreme Government could have even ventured to suggest." Dalhousie's *Minute* of 1854 in Richey : *op. cit.*, p. 394.

२२. जेम्स के कथनानुसार : "१८५४ के घोषणा-पत्र का भारतीय शिक्षा के इतिहास में सर्वोत्कृष्ट स्थान है। जो कुछ इसके पूर्व हुआ वह इसकी ओर संकेत करता है और जो कुछ इसके बाद हुआ वह इससे निकला है।"[1]

२३. बसु के अनुसार, यह घोषणा-पत्र भारतीय शिक्षा का शिलाधार है। भारत में आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का शिलान्यास इसी ने किया।[2]

२४. हेम्पटन का कथन है कि "१८५४ का घोषणा-पत्र एक युग का अन्त करता है—शिक्षा के महान् अग्रदूतों के युग का अन्त करता है।"[3]

दोष

यद्यपि वुड के घोषणा-पत्र ने शिक्षा के जीर्ण कलेवर में अमरता का संचार कर दिया तथापि इसमें कतिपय दोष भी थे, जिनके कारण भारतीय शिक्षा का प्रवाह अक्षुण्ण न रह सका। हम इन दोषों का विश्लेषण नीचे कर रहे हैं :—

१. आदेश-पत्र ने शिक्षा को पूर्णतः राज्य के अधीन कर दिया और उस पर नौकरशाही का आधिपत्य स्थापित कर दिया गया। फलस्वरूप अति प्राचीनकाल से प्रचलित स्वतन्त्र शिक्षण-कार्य का अन्त हो गया।

२. आदेश-पत्र द्वारा माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना दिया गया जिससे प्राच्य भाषाओं का शिक्षण में वह स्थान न रह गया जो पहिले था।

३. आदेश-पत्र ने प्राच्य साहित्य और देशी भाषाओं को संरक्षण तो दिया पर अंग्रेजी को अधिक महत्त्व देकर उनकी प्रगति अवरुद्ध कर दी।

1. "The Despatch of 1854 is the climax in the history of Indian education : what goes before leads up to it; what follows flows from it." H. R. James : *Education and Statesmanship in India.*, p. 42.

2. "This Despatch is said to be the corner-stone of Indian education. It is said to have laid the foundation of our present system of education." A. N. Basu : *op. cit.*, pp. 37-38.

3. "The Despatch of 1854 marks the end of an era—the age of the great educational pioneers." Hampton : *op. cit.*, p. 115.

४. हिन्दू एवं मुस्लिम शिक्षा-पद्धतियों में धर्म का प्रमुख स्थान था। आदेश-पत्र ने धर्म को शिक्षा से अलग करके भारतीय धर्म की जड़ हिला दी।

५. शिक्षा में भारतीय धर्म को स्थान न देकर आदेश-पत्र ने शिक्षा को पूर्ण रूप से लौकिक बना दिया। फलस्वरूप भारतीयों ने अध्यात्मवाद को विस्मृत कर दिया।

६. आदेश-पत्र द्वारा संस्कृत, अरबी और फ़ारसी की उपादेयता तो स्वीकार की गई परन्तु शिक्षा का उद्देश्य पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार बताकर अप्रत्यक्ष रूप से उनके महत्त्व को कम करने का प्रयास किया।

७. आदेश-पत्र द्वारा सरकारी नौकरियों में शिक्षित व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जाने लगी। फलस्वरूप शिक्षा का व्यापक उद्देश्य नष्ट हो गया और वह केवल जीविकोपार्जन तक सीमित रह गई।

८. आदेश-पत्र ने स्पष्ट कर दिया कि केवल अंग्रेज़ी शिक्षित व्यक्तियों को ही राजपदों पर नियुक्त किया जायगा। परिणामस्वरूप देशी विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या में क्रमिक ह्रास होता चला गया।

९. आदेश-पत्र द्वारा शिक्षा का ढाँचा पूर्णतः विदेशी कर दिया गया और विदेशी शिक्षा प्राप्त करने के लिये भारतीयों को नाना प्रकार के प्रलोभन दिये जाने लगे। परिणामतः भारतीयों को देशी शिक्षा-प्रणाली और देशी शिक्षा में किसी प्रकार की रुचि न रह गई।

१०. आदेश-पत्र द्वारा शिक्षा-विभाग की स्थापना एवं शिक्षा-अधिकारियों की नियुक्ति की गई जिससे शिक्षा की उन्मुक्त प्रगति को बड़ा आघात पहुँचा और इस देश की शिक्षा का लचीलापन नष्ट हो गया। शिक्षा-अधिकारी अन्यमनस्क रूप से कार्य करने लगे। शिक्षा-कार्य के प्रति उनमें कोई उत्साह नहीं था। वे अपना कर्त्तव्य केवल राजाज्ञाओं का पालन करना समझने लगे।

११. आदेश-पत्र में विश्वविद्यालयों की स्थापना के लिये लन्दन के विदेशी विश्वविद्यालय का आदर्श रखा गया। इस प्रकार भारत के प्राचीन विश्वविद्यालयों की आदर्श परम्पराओं की अवहेलना की गई और उनके पुनर्स्थापन का प्रयास नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त सीनेट के सभी सदस्यों को सरकार मनोनीत करती थी। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि ऐसे अनेकों व्यक्ति सीनेट के सदस्य हो जाते थे जो शिक्षा से पूर्णतः अनभिज्ञ होते थे।

१२. आदेश-पत्र द्वारा कुछ व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं का निर्माण किया गया। परन्तु इनसे भारतीयों का कोई विशेष हित नहीं हुआ, क्योंकि इनका प्रमुख उद्देश्य भारतीयों को नौकरी देकर स्वामिभक्त बनाना था।

१३. आदेश-पत्र द्वारा विद्यालयों में धर्म-निरपेक्ष लौकिक शिक्षा देने पर बल दिया गया। परन्तु आदेश-पत्र मिशन स्कूलों में दी जाने वाली ईसाई धर्म की शिक्षा के प्रति निष्पक्ष नहीं रहा। आदेश-पत्र में कहा गया कि निरीक्षकों को उन धार्मिक सिद्धान्तों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देना चाहिये जो किसी स्कूल में पढ़ाये जा रहे हों।[1] यह भी लिखा गया कि यह ठीक है कि मिशन स्कूलों में बाइबिल रखी जाती है और लोगों को उसे पढ़ने की सुविधा है। साथ ही यदि कोई छात्र कक्षा से बाहर शिक्षक से ईसाई धर्म के सम्बन्ध में अपनी शंका का समाधान करना चाहे तो हमें कोई आपत्ति नहीं है।[2]

१४. आदेश-पत्र के आधार पर सरकारी नौकरियों के लिये व्यक्तियों को तैयार करने के विचार से अंग्रेजी विद्यालयों का निर्माण तीव्र गति से होने लगा। सरकार उन्हीं पर शिक्षा-सम्बन्धी धन का अधिक भाग व्यय करने लगी। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से सरकार के उद्देश्य की पूर्ति होने लगी, पर उसका कहना यही था कि पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों का प्रसार करके सरकार जनसाधारण का कल्याण कर रही है।

१५. शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी हो जाने से भारतीय विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों का समुचित ज्ञान प्राप्त करने में कठिनाई का अनुभव होने लगा। अतः विद्यार्थियों ने सरल उपाय खोज निकाले। वे बिना समझे हुए विषय-वस्तु को रटने लगे। साथ ही उन्हें इस कार्य में सहायता देने के लिये बाजार में पुस्तकों की टीकाओं तथा कुंजिओं की बाढ़

1. "In their periodical inspection no notice whatsoever should be taken by them of the religious doctrines which may be taught in any school." *Wood's Despatch.*

2. "The Bible is placed in the libraries of colleges and schools and the pupils are able freely to consult it. This is as it should be; and, moreover, we have no desire to prevent, or discourage, any explanations which the pupils may ask from the masters upon the subject of the Christian religion provided that such information be given out of school hours." *Wood's Despatch.*

आ गई।[1] इन सब का विद्यार्थियों की स्वतन्त्र विचार-शक्ति पर अति दूषित प्रभाव पड़ा।

१६. शिक्षा की नवीन प्रणाली में परीक्षाओं का स्थान सर्वोपरि हो गया। विद्यार्थियों का ध्येय ज्ञान-प्राप्ति न रह कर, परीक्षा को पास करना हो गया।

१७. आदेश-पत्र के द्वारा सहायता-अनुदान केवल उन्हीं विद्यालयों को मिल सकता था, जो अपना आधा व्यय स्वयं वहन करें। इस व्यय के लिये अँग्रेजी शिक्षा देने वाले विद्यालयों को तो चन्दा प्राप्त हो जाता था, पर देशी शिक्षा संस्थाओं को नहीं मिलता था। फलतः शिक्षा उसी प्रकार असंतुलित रही जैसी कि वह पहिले थी।

१८. सर फ़िलिप हरटॉग के मतानुसार वुड का घोषणा-पत्र भारत के कल्याण के लिये बुद्धिमत्ता का विकास करने वाली नीति का निर्धारक था।[2] परन्तु परांजपे ने इसका खंडन करते हुए लिखा है कि "उनका उद्देश्य यह नहीं था कि शिक्षा नेतृत्व के लिये हो, शिक्षा भारत के औद्योगिक विकास के लिये हो, शिक्षा मातृभूमि की रक्षा करने के लिये हो; संक्षेप में, ऐसी शिक्षा हो जिसकी आवश्यकता एक स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिकों को हो।"[3]

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह निःशंक होकर कहा जा सकता है कि भारतीय शिक्षा के इतिहास में वुड का घोषणा-पत्र बेजोड़ है। इसने भारतीय

1. "So short-cuts were devised. Unintelligent memory-work and cramming became the order of day, and 'notes' flooded the educational bazar and intellectual market." A. N. Basu : *op. cit.*, p. 46.

2. "As a result of Wood's Despatch an educational policy was evolved as a part of a general policy to Government of India in the interests of India and to develop her intellectual resources to the utmost of her own benefit." P. Hartog : *Some Aspects of Indian Education—Past and Present*, p. 23.

3. "The authors did not aim at education for leadership, education for the industrial regeneration of India, education for the deference of the motherland; in short, education required by the people of a self-governing nation." Paranjpe in *Progress of Education*, Poona, July 1941, pp. 51-2.

शिक्षा की बहुरूपता का अन्त करके उसे एकरूपता प्रदान की। इस घोषणा-पत्र के परिणामस्वरूप कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में विश्वविद्यालयों की नींव पड़ी, सहायता-अनुदान-प्रणाली प्रारम्भ की गई, प्रत्येक प्रान्त में जन-शिक्षा-विभाग स्थापित हुए, छात्रवृत्तियाँ दी जाने लगीं और सरकार शिक्षा पर अधिक धन व्यय करने लगी। परन्तु इन सब प्रशंसनीय कार्यों के विपरीत, घोषणा-पत्र में सर्वव्यापक साक्षरता के आदर्श की कहीं चर्चा भी नहीं की गई। यह घोषणा-पत्र आधुनिक प्रजातन्त्रवादी शिक्षा-मर्मज्ञों को विशेष रूप से कुत्सित प्रतीत होता है, क्योंकि इसने विभिन्न वर्गों की शिक्षा में अन्तर करने वाले रूढ़ि परम्परागत विक्टोरियन आदर्श (Victorian ideal) का प्रतिपादन किया। अतः वुड के घोषणा-पत्र को "भारतीय शिक्षा का महाधिकार-पत्र" कहना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता है।[1] जिस आदर्श को घोषणा-पत्र ने प्रस्तुत किया है, उसका रूप इस समय तक इतना परिवर्तित हो चुका है कि भारत को उसके अनुकरण से रंचमात्र लाभ की भी आशा करना व्यर्थ है। १८५४ में भले ही इस आदेश-पत्र का महत्त्व रहा हो, पर इस समय इसको शिक्षा का घोषणा-पत्र कहना हास्यप्रद प्रतीत होता है।[2]

सारांश

वुड का घोषणा पत्र—१८५३ में कम्पनी के आज्ञा-पत्र का नवीनकरण हुआ। इस अवसर पर संसदीय समिति ने भारत की शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये जिनके आधार पर वुड का शिक्षा-घोषणा-पत्र जारी किया गया।

सिफारिशें—१. शिक्षा का उद्देश्य भारतीयों की बौद्धिक एवं चारित्रिक उन्नति करना तथा राज्य के लिये शिक्षित व्यक्तियों को तैयार करना था। २. पाठ्य-क्रम में प्राच्य साहित्य के साथ-साथ पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों को स्थान दिया जाय। ३. प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम देशी भाषायें और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिये अँग्रेजी का माध्यम हो। ४. प्रत्येक प्रान्त में जन-शिक्षा-विभाग स्थापित किया जाय। ५. लन्दन

1. "We cannot find any justification for the superlative terms in which some historians have described the Despatch, and even called it "The Magna Charta of Indian Education." Nurullah and Naik : *op. cit.*, pp. 215-216.
2. "Whatever were its value in 1854, it would be ridiculous to describe the Despatch as an Educational Charter, in the year 1941." Paranjpe in *Progress of Education*, Poona, July 1941, p. 52.

विश्वविद्याल के आदर्श पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालय खोले जायँ। ६. प्रक्रमवद्ध विद्यालयों का निर्माण किया जाय। ७. जन-शिक्षा-प्रसार के लिये हाईस्कूलों, मिडल स्कूलों और प्राथमिक स्कूलों की संख्या में वृद्धि की जाय। ८. सब प्रकार के विद्यालयों को आर्थिक सहायता देने के लिये सहायता-अनुदान प्रणाली प्रचलित की जाय। ९. अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये महाविद्यालयों का प्रबन्ध किया जाय। १०. स्त्री-शिक्षा को सरकार द्वारा मैत्रीपूर्ण सहायता दी जाय। ११. व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाय। १२. देशी भाषाओं में पुस्तकें लिखवाई जायँ। १३. सरकारी नौकरियों में शिक्षित व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जाय।

गुण—१. भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नवीन प्रकरण का प्रारम्भ; २. शिक्षा के उद्देश्य का स्पष्टीकरण; ३. शिक्षा को वैधानिक रूप देना; ४. जन-साधारण को शिक्षा देना सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य; ५ प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय की शिक्षा की व्यवस्था; ६. प्रक्रमबद्ध विद्यालयों की स्थापना द्वारा शिक्षा-प्रसार-कार्य को सम्पन्न बनाना; ७. निस्यन्दन सिद्धान्त की अस्वीकृति; ८. भारतीय साहित्य का महत्त्व स्वीकार करना; ९. प्राच्य साहित्य को प्रोत्साहन; १०. प्राथमिक विद्यालयों का पुनरुत्थान; ११. अंग्रेजी के साथ-साथ देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना; १२. जन-शिक्षा विभाग की स्थापना करके शिक्षा को सुसंगठित रूप देना; १३. व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध करके बेकारी की समस्या को हल करना; १४. निर्धन विद्यार्थियों के लिये छात्रवृत्तियाँ; १५. अध्यापकों को अधिक वेतन देकर शिक्षा विभाग की नौकरियों को आकर्षक बनाना; १६. घोषणा-पत्र भारतीय शिक्षा का शिलाधार।

दोष—१. शिक्षा का पूर्णतः राज्य के अधीन होना; २. माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से देशी भाषाओं की अवनति; ३.शिक्षा को धर्म से अलग करके भारतीय धर्म पर कुठाराघात करना; ४.अध्यात्मवाद का पतन; ५. शिक्षा का उद्देश्य पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार होने से प्राच्य साहित्य का महत्व कम होना; ६. शिक्षा का व्यापक उद्देश्य नष्ट होकर शिक्षा का अभिप्राय केवल नौकरी प्राप्त करना, ७. नौकरी में अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों को प्राथमिकता देने से देशी विद्यालयों का ह्रास; ८. शिक्षा का ढाँचा पूर्णतः विदेशी होना; ९. शिक्षा-विभाग की स्थापना से शिक्षा के लचीलेपन का नष्ट होना; १०. विश्वविद्यालय की सीनेट में शिक्षा से अनभिज्ञ व्यक्तियों का सदस्य होना; ११. व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं से भार-

तीयों का हित न होकर अंग्रेजों का हित होना; १२. ईसाई धर्म की शिक्षा के प्रति निष्पक्ष न रहना; १३. अंग्रेजी विद्यालयों पर अधिकांश धन का व्यय; १४. अंग्रेजी माध्यम होने से विद्यार्थियों का बिना समझे विषय-वस्तु को रटना; १५. परीक्षाओं का स्थान सर्वोपरि होना।

TEST QUESTIONS

1. What were the main recommendations of the Education Despatch of 1854 ?
2. "Wood's Despatch is called the Magna Charta of Indian Education." Discuss.
3. "Whatever were the value of Wood's Despatch in 1854, it would be ridiculous to describe the Despatch as an Educational Charter, in the year 1960." How far do you agree with this statement ? Give reasons in support of your answer.
4. What, in your opinion, was the importance of Wood's Despatch ?

अध्याय ६

शिक्षा की प्रगति (१८५४-१८८२)

शासन-सत्ता का हस्तान्तरण

वुड के घोषणा-पत्र के आधार पर कम्पनी सरकार ने भारतीय शिक्षा का कार्य आरम्भ किया ही था और उसकी सभी सिफारिशों को कार्यान्वित भी न कर पाई थी कि १८५७ की क्रान्ति फूट पड़ी। फलतः भारतीय शिक्षा के मार्ग में बड़ी बाधा पड़ी। प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम एक वर्ष से अधिक चला। उसकी समाप्ति पर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने कम्पनी की राजनीतिक सत्ता का अन्त करके भारतीय शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। १ नवम्बर, १८५८ को भारत के वाइसराय लार्ड कैनिंग (Canning) ने इलाहाबाद में एक दरबार करके रानी विक्टोरिया (Victoria) को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया। उस समय से भारतीय इतिहास में 'विक्टोरिया का शान्त-काल'[1] प्रारम्भ हुआ। शान्ति के वातावरण में भारतीय शिक्षा को फलने-फूलने के लिये अनुकूल वातावरण मिला और उसकी प्रगति में प्रशंसनीय अभि-वृद्धि हुई।

1. "Victorian Era of peace and tranquillity."

सुविधा के दृष्टिकोण से हम १८५४ से १८८२ तक की शिक्षा की प्रगति का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे :—

१. इस काल के मुख्य अभिलेख (Documents)।
२. शिक्षा-प्रसार के साधन।
३. माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा।
४. व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education)।
५. विशिष्ट शिक्षा (Special Education)।

इस काल के मुख्य अभिलेख

१. ऐलेनबरा का आदेश-पत्र[1]

२८ अप्रैल, १८५८ को 'बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल' के प्रधान लार्ड ऐलेनबरा ने एक आदेश-पत्र जारी किया। ऐलेनबरा ने वुड के घोषणा-पत्र द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-नीति को १८५७ के विद्रोह का कारण ठहराया। अतः उसने एक त्रास-पूर्ण आदेश-पत्र लेखबद्ध करके घोषणा-पत्र की सभी सिफारिशों के विरुद्ध प्रस्ताव दिये। सौभाग्यवश कम्पनी के शासन का अन्त हो गया और ऐलेनबरा के प्रस्ताव कागज़ पर ही लिखे रह गये।

२. स्टैनले का आदेश-पत्र[2]

भारत की शासन-सत्ता ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के हाथों में पहुँच जाने के पश्चात् 'भारत-मन्त्री (Secretary of State for India) के नवीन पद का आविर्भाव हुआ और सर्वप्रथम लार्ड स्टैनले को इस पद पर नियुक्त किया गया। वह यह जानने का इच्छुक था कि १८५७ की क्रान्ति का भारतीय शिक्षा-नीति से क्या सम्बन्ध था। साथ ही वह वुड के घोषणा-पत्र की प्रतिक्रिया भी देखना चाहता था। अतः उसने १८५९ में भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में एक नया आज्ञापत्र जारी किया जो 'स्टैनले का आज्ञा-पत्र' कहलाता है। इसमें वुड के प्रायः सभी सिद्धान्तों का समर्थन किया गया। केवल प्राथमिक शिक्षा के विषय में अधोलिखित परिवर्तन कर दिये गये :—

१. जनसाधारण में शिक्षा का प्रसार करने के लिये प्राथमिक विद्यालयों का सरकार द्वारा संगठन किया जाय।
२. प्राथमिक विद्यालयों को चलाने का उत्तरदायित्व सरकार अपने ऊपर ले और उनका प्रबन्ध स्थानीय समितियों पर न छोड़ा जाय।

---

1. Lord Ellenborough's Despatch of 1858.
2. Lord Stanley's Despatch of 1859.

३. सहायता-अनुदान पद्धति को केवल उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा तक सीमित रखा जाय, क्योंकि उससे प्राथमिक विद्यालयों को कोई लाभ नहीं हो सकता है।

४. आवश्यकता पड़ने पर सरकार प्राथमिक शिक्षा के लिये उसी प्रकार का स्थानीय कर लगा सकती है जिस प्रकार के करों के लिये इंगलैन्ड में आन्दोलन हो रहा है।

५. अध्यापकों के प्रशिक्षण पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय।

इस आदेश-पत्र के द्वारा केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा के उत्तरदायित्व को आंशिक रूप में प्रान्तीय सरकारों को हस्तान्तरित कर दिया। १८७१ में लार्ड मेयो (Mayo) ने शिक्षा-विभागों को प्रान्तीय सरकारों के अधीन कर दिया एवं उन्हें शिक्षा-सम्बन्धी सभी प्रकार के व्यय करने का अधिकार दे दिया। १८८७ में लार्ड लिटन (Lytton) ने प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा के विषय में और भी अधिक व्यापक अधिकार प्रदान किये। इनके अनुसार प्रान्तीय सरकारें कानून एवं आबकारी (Excise) विभागों की आय का कुछ भाग शिक्षा पर व्यय कर सकती थीं। इस प्रकार प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा पर अधिकार प्राप्त हो गया परन्तु सम्पूर्ण देश के लिये शिक्षा-नीति निर्धारित करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार ने अपने ही हाथ में रखा। यह स्थिति १८८२ तक चलती रही।

शिक्षा-प्रसार के साधन

१. शिक्षा-विभागों का संगठन[1]

१८५४ से पूर्व शिक्षा-विभाग जैसी कोई चीज नहीं था। परन्तु जैसा कि हम अध्याय ७ में लिख चुके हैं १८४० में बम्बई में 'शिक्षा-बोर्ड' का और १८४२ में बंगाल में 'शिक्षा-परिषद्' का निर्माण हो चुका था। उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त में भी टामसन ने विजिटर-जेनरल, जिला विजिटर और परगना विजिटर की नियुक्तियाँ करके शिक्षा के निरीक्षण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार इन तीनों प्रान्तों में शिक्षा-विभागों का प्रादुर्भाव हो चुका था। उनको संगठित रूप प्रदान करने का एवं अन्य प्रान्तों में शिक्षा-विभागों के निर्माण करने का श्रेय वुड के घोषणा-पत्र को है। १८५६ के अन्त तक भारत के सब प्रान्तों में शिक्षा-विभागों की स्थापना का कार्य पूर्ण किया जा चुका था और वे शिक्षा-कार्य में व्यस्त हो गये थे। इन प्रान्तीय शिक्षा-विभागों के कार्य निम्न-

1. Organisation of Education Departments.

लिखित थे :—

१. प्रान्तीय सरकार को शिक्षा-सम्बन्धी सब मामलों की सूचना देना और उन पर सुझाव देना।
२. सरकार के अधीन विद्यालयों का संचालन एवं प्रबन्ध करना।
३. प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकारों द्वारा शिक्षा पर व्यय करने के लिये दी गई धनराशि का उचित प्रकार से प्रयोग करना।
४. सरकार से सहायता-अनुदान पाने वाले विद्यालयों का समय-समय पर निरीक्षण करना।
५. प्रान्तीय शिक्षा के सुधार एवं प्रसार के लिये पूर्ण प्रयत्न करना।
६. प्रान्तीय शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध में आवश्यक आँकड़ों सहित वार्षिक रिपोर्ट तैयार करके सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना।
७. विद्यालयों को शिक्षा-सम्बन्धी नवीन नियमों की सूचना देना और उनका पालन करवाना।
८. विद्यालयों के लिये पाठ्य-क्रम निश्चित करना एवं कुछ परीक्षाओं का प्रबन्ध करके उपाधियाँ प्रदान करना।

शिक्षा-विभागों की स्थापना के फलस्वरूप प्रान्तों में शिक्षा की प्रगति तो हुई, परन्तु शिक्षा की समुचित व्यवस्था न की जा सकी। इसका कारण यह था कि प्रान्तीय शिक्षा-विभाग अनेकों दोषों से युक्त थे जिनकी ओर हम नीचे संकेत कर रहे है :—

१. शिक्षा-विभाग के सभी उच्च पदों पर यूरोपियनों की नियुक्तियाँ हुईं। विदेशी होने के कारण वे लोग भारतीय परिस्थितियों से पूर्णतः परिचित नहीं थे। अतः उन्होंने शिक्षा-प्रसार की जिस नीति को अपनाया उससे सर्वाङ्गीण सफलता की आशा नहीं की जा सकती थी। जनता ने शिक्षा-विभाग के भारतीयकरण की माँग की, परन्तु सरकार ने उसकी ओर अल्प मात्र भी ध्यान नहीं दिया।
२. यूरोपियन पदाधिकारियों को न तो सुन्दर वेतन ही दिया जाता था और न उनकी नौकरियों की शर्तें ही आकर्षक थी। अतः इङ्गलैण्ड के योग्य विद्वान भारत आकर शिक्षा-विभाग में सेवा-कार्य करने का विचार ही नहीं करते थे। जो अँग्रेज शिक्षा का भार अपने ऊपर लेते थे उनमें बौद्धिक योग्यता का प्रायः अभाव होता था। फलस्वरूप वे शिक्षा-संचालन के कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने में असफल होते थे।
३. अँग्रेजी की माँग बढ़ने के कारण विद्यालयों और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी, पर उनके निरीक्षण के

लिये शिक्षा-विभाग में निरीक्षकों की संख्या कम थी। सरकार अधिक धन व्यय करके उनकी संख्या की अभिवृद्धि करने के पक्ष में नहीं थी।

४. निरीक्षकों की संख्या कम होने से व्यक्तिगत विद्यालयों पर सरकार का अंकुश ढीला रहा। फलस्वरूप विद्यालय सहायता-अनुदान में प्राप्त धन को बहुत कुछ स्वेच्छा से व्यय करते रहे और शिक्षा प्रदान करने के कार्य को संगठित करने के लिये पूर्ण रूप से क्रियाशील नहीं हुए।

५. निरीक्षकों के अधीन इतने विद्यालय होते थे कि उनके लिये सब विद्यालयों में जाकर निरीक्षण करना असम्भव था। अतः वे एक निर्दिष्ट विद्यालय को अपना केन्द्र बना कर समीपवर्ती विद्यालयों का निरीक्षण वहीं कर लेते थे। ऐसी दशा में उन्हें अपने अधीन सब विद्यालयों की पूर्ण जानकारी नहीं हो पाती थी। साथ ही उनके निरीक्षण से विद्यालयों को कोई लाभ नहीं हो पाता था। निरीक्षण के इस दोष के परिणामस्वरूप शिक्षा की यथोचित प्रगति सम्भव नहीं थी।

२. सहायता-अनुदान प्रणाली[1]

वुड के घोषणा-पत्र के आदेशानुसार शिक्षा-विभागों ने सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियम बनाये और गैर सरकारी स्कूलों को आर्थिक सहायता देनी प्रारम्भ की। फलस्वरूप व्यक्तिगत विद्यालय आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त हो गये और वे एकाग्रचित्त होकर शिक्षा-कार्य में जुट गये। परन्तु यह प्रणाली शिक्षा का सुन्दर क्रमिक विकास न कर सकी क्योंकि उसमें निम्नलिखित दोष थे :—

१. सहायता-अनुदान की धन-राशि इतनी अल्प एवं अपर्याप्त होती थी कि उससे विद्यालयों की आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हो पाती थीं।

२. स्वीकृत धन-राशि निश्चित समय पर दी जाती थी।

३. सहायता-अनुदान देने में मिशन स्कूलों के प्रति अत्यधिक उदारता दिखाई जाती थी।

४. सहायता-अनुदान को अकारण कम या बन्द कर दिया जाता था।

५. सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियम इतने जटिल थे कि उनका पालन करना कठिन था।

६. उपरोक्त नियमों का प्रकाशन न होने के कारण अधिकांश स्कूल प्रबन्धकों को उनकी पूर्ण जानकारी नहीं हो पाती थी।

७. इन नियमों के निर्धारण में व्यक्तिगत शिक्षा-संस्थाओं के प्रबन्धकों से किसी प्रकार का परामर्श नहीं लिया जाता था।

---

1. Grant-in-aid System.

८. बजट में शिक्षा के लिये स्वीकृत धन-राशि का अधिकांश भाग राजकीय विद्यालयों पर व्यय कर दिया जाता था। फलतः सहायता-अनुदान के लिये बहुत कम धन बचता था।

९. ग़ैर-सरकारी स्कूलों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था और उनकी प्रगति में बाधा डाली जाती थी।

१०. शिक्षा-नीतियों के निर्धारण में ग़ैर-सरकारी स्कूलों के प्रबन्धकों का परामर्श नहीं लिया जाता था।

११. गैर-सरकारी स्कूलों के अध्यापकों को साधारणतः परीक्षक नहीं नियुक्त किया जाता था।

१२. छात्रवृत्तियाँ देने में राजकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों को वरीयता (Preference) दी जाती थी।

१८८२ के भारतीय शिक्षा-आयोग(Indian Education Commission) ने इन दोषों पर विचार करके उन्हें दूर करने के अथक प्रयास किये।

३. शिक्षा-प्रसार के साधनों का भारतीयकरण

पिछले अध्यायों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि कम्पनी के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से भी शिक्षा-प्रसार का कार्य किया जा रहा था। ऐसे अनेक अँग्रेज अधिकारी थे जिन्होंने वैयक्तिक रूप से विद्यालयों की स्थापना करके शिक्षा में अपनी रुचि का प्रदर्शन किया था। १८५८ में सत्ता-हस्तान्तरण के उपरान्त अँग्रेज कर्मचारियों की स्थिति पूर्णतः परिवर्तित हो गई। सरकार ने अपने कर्मचारियों के लिये इतने कड़े नियम बना दिये कि उन्हे वैयक्तिक रूप से शिक्षा-प्रसार का कार्य करने की स्वतन्त्रता न रह गई। फलस्वरूप अँग्रेज अधिकारियों ने अपने को शिक्षा-कार्य करने में असमर्थ पाया।

जहाँ तक मिशनरियों का प्रश्न था, १८५४ के घोषणा-पत्र ने उनमें नवीन आशा का संचार कर दिया था। वे उस समय का स्वर्णिम स्वप्न देखने लगे थे जब वुड द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-नीति के अनुसार सरकार अपने विद्यालयों को बन्द कर देगी और मिशन स्कूल सहायता-अनुदान प्रणाली के कारण परिपल्लवित होने लगेंगे। १८५७ की क्रान्ति ने अँग्रेज शासकों की आँखें खोल दीं और वे इस निष्कर्ष पर पहुँच गये कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिये मिशनरियों के धर्म-प्रचार के कार्य पर अंकुश लगाना अनिवार्य है। यद्यपि मिशनरियों ने इस नीति के विरुद्ध आन्दोलन किया तथापि ब्रिटिश संसद सचेत हो चुकी थी और १८५८ की घोषणा के अनुसार यह बात स्पष्ट कर दी गई कि सरकार धार्मिक तटस्थता की नीति का पूर्ण रूप से पालन करेगी।

अँग्रेज अधिकारियों एवं मिशनरियों की चेष्टाओं पर प्रतिबन्ध लगने का परिणाम यह हुआ कि भारतीयों को व्यक्तिगत रूप से शिक्षा-प्रसार का कार्य करने के लिये विस्तृत क्षेत्र मिल गया। उस समय तक भारतीय, शिक्षा के महत्व को समझ चुके थे और विदेशियों के शिक्षा-प्रयासों को देखकर उनमें प्रतिस्पर्द्धा की भावना जागृत हो चुकी थी। शिक्षा द्वारा अपने देशवासियों को अन्धविश्वासों एवं अज्ञानता के गर्त से निकालने के कर्त्तव्य के प्रति वे जागरूक हो चुके थे। भारतीयों में उस समय देश-प्रेम की भावनायें उमड़नी प्रारम्भ हो गई थीं। १८८० के लगभग प्रायः समस्त देश में सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों की लहर फैल चुकी थी। भारतीयों में निश्चय रूप से राष्ट्रीय चेतना आविर्भूत हो रही थी। देश के नेता अपने राष्ट्र का नवनिर्माण करने में जुट चुके थे। परन्तु उन्होंने अनुभव किया कि यह कार्य तभी सम्पन्न हो सकेगा जब देश के नवयुवकों को राष्ट्रीय विद्यालयों में राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कर दिया जायगा। परिणामस्वरूप भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक शिक्षा का विस्तार करने के लिए स्कूलों और कॉलेजों का निर्माण तीव्र गति से किया जाने लगा। सारांश में, देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय-चेतना ने शिक्षा के भारतीयकरण में अद्वितीय योग दिया।

प्राथमिक शिक्षा

हम यह देख चुके हैं कि लार्ड ऑकलैण्ड ने निस्यन्दन सिद्धान्त को स्वीकार करके जन-शिक्षा की ओर से मुँह मोड़ लिया था। इस नीति के फलस्वरूप सरकार का ध्यान उच्च वर्गों की उच्च शिक्षा पर केन्द्रित रहा। अतः प्राथमिक शिक्षा (Primary Education) के लिये कोई क्रियात्मक पग नहीं उठाया गया। १८५४ के घोषणा-पत्र ने निस्यन्दन सिद्धान्त को अनुचित बताकर लोक-शिक्षा को प्रोत्साहित करने का सुझाव दिया। परन्तु फिर भी प्राथमिक विद्यालयों के पुनरुत्थान के लिये कोई प्रयास नहीं किया गया। सरकार प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा करती रही और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के प्रसार में धन व्यय करती रही। यद्यपि घोषणा-पत्र में प्राथमिक विद्यालयों को सहायता-अनुदान देने की व्यवस्था की गई थी, परन्तु अनुदान सम्बन्धी नियम इस प्रकार के थे जिन्हें जनता निभा नहीं सकती थी। फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालय इस प्रणाली से लाभ न उठा सके।

स्टैनले के आदेश-पत्र में जन-साधारण में शिक्षा-प्रसार के सिद्धान्त को तो स्वीकार किया गया, परन्तु प्राथमिक विद्यालयों के सम्बन्ध में नवीन सुझाव देकर एक विवाद खड़ा कर दिया गया। विवाद तीन प्रश्नों पर था—(१) देशी

प्राथमिक विद्यालयों को सहायता अनुदान दिया जाय अथवा नहीं, (२) प्राथमिक शिक्षा के लिये स्थानीय कर लगाये जायँ अथवा नहीं; और (३) प्राथमिक विद्यालयों के प्रति सरकार की नीति क्या होनी चाहिये। दुर्भाग्यवश इन प्रश्नों पर मतैक्यता न हो सकी और सभी प्रान्तों ने एक विभिन्न नीति का अनुसरण किया। ऐसी स्थिति में शिक्षा की जो प्रगति हुई, वह नीचे दिये हुए आँकड़ों से ज्ञात हो जाती है :—

प्राथमिक विद्यालयों की संख्या (१८८१–८२)[1]

प्रान्त	सरकारी	ग़ैर सरकारी अनुदान प्राप्त	ग़ैर सरकारी अनुदान वंचित
मद्रास	१,२६३	१३,२२३	२,८२८
बम्बई	३,८११	७३	३,९५४
बंगाल	२८	४७,३७४	३,२६५
पश्चिमोत्तर प्रांत	५,५६१	२४३	६,७१२
पंजाब	१,५४९	२७८	१३,१०९
मध्यप्रदेश	८९४	३६८	
आसाम	७	१,२५६	४९७
बरार	४६७	२०९	२०७
कुर्ग	५७	३	×

इस तालिका के स्पष्टीकरण के लिये हम विभिन्न प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा पर नीचे दृष्टिपात कर रहे हैं :—

मद्रास—इस प्रान्त मे सरकारी स्कूलों की स्थापना के साथ-साथ सहायता अनुदान देकर प्राथमिक विद्यालयों को भी प्रोत्साहित किया गया। सहायता-अनुदान का आधार विद्यालय का परीक्षा-फल रखा गया था।

बम्बई—बम्बई प्रान्त में देशी विद्यालयों की विरोधी नीति का अनुसरण किया गया। फलस्वरूप उनका पनपना असम्भव हो गया। १८७० में वहाँ के शिक्षा-संचालक, पिले (Peile) ने देशी पाठशालाओं को आर्थिक सहायता देने के लिये कुछ नियम बनाये, पर वे निरर्थक सिद्ध हुए।

बंगाल—यहाँ की सरकार ने देशी विद्यालयों के पुनरुत्थान के लिये प्रशंसनीय कार्य किया। इस सम्बन्ध में प्रान्त के गवर्नर, सर जार्ज कैम्पबेल (Sir George Campbell) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। १८७२ में उसने जन-शिक्षा प्रसार के लिये देशी पाठशालाओं को ४ लाख रुपये की धन-राशि दी। कैम्पबेल की योजना के अनुसार शिक्षकों को प्रोत्साहन देने के लिये

1. Nurullah and Naik : *op. cit.*, pp. 331-334 & p. 358.

उनका वेतन २ रु० से ५ रु० तक बढ़ा दिया गया। सहायता प्राप्त विद्यालयों का निरीक्षण सरकारी निरीक्षकों द्वारा किया जाता था। कैम्पबेल को आशा थी कि शिक्षकों के भोजन, निवास-स्थान आदि की व्यवस्था स्थानीय जनता करती रहेगी। परन्तु शीघ्र ही शिकायतें आने लगीं कि शिक्षकों की वेतन-वृद्धि के फलस्वरूप जनता ने शिक्षकों को दी जाने वाली सहायता में कमी कर दी है। फलस्वरूप शिक्षकों के वेतन-वृद्धि की योजना को स्थगित करके परीक्षा-फल के आधार पर सरकारी सहायता दी जाने लगी। परन्तु इसके साथ ही सरकार ने ४ लाख रुपये की धन-राशि को बढ़ाकर ५ लाख कर दिया। परिणामस्वरूप देशी विद्यालयों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। यहाँ यह कहना युक्ति-युक्त होगा कि बंगाल में 'हल्काबन्दी स्कूल' की प्रथा प्रचलित थी।

पश्चिमोत्तर प्रान्त—बंगाल के समान पश्चिमोत्तर प्रान्त में भी 'हल्का-बन्दी स्कूल' की प्रणाली जारी रखी गई। साथ ही गैर-सरकारी पाठशालाओं को भी सहायता अनुदान दिया गया।

पंजाब—पंजाब ने पश्चिमोत्तर प्रान्त के आदर्श का अनुकरण किया। इस प्रान्त में ऐसे गैर-सरकारी विद्यालयों की संख्या सबसे अधिक थी जिन्हें सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं मिलती थी।

मध्य-प्रदेश—मध्य-प्रदेश ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिये बंगाल को अपना आदर्श माना और देशी पाठशालाओं को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। परन्तु प्रान्त में देशी स्कूलों की पर्याप्त संख्या न होने के कारण सरकार को बहुत से प्राथमिक विद्यालयों का शिलारोपण करना पड़ा।

आसाम—आसाम १८७४ तक बंगाल का भाग रहा था। अतः यहाँ की प्राथमिक शिक्षा की नीति का आधार बंगाल की नीति ही थी। इसीलिये यहाँ देशी पाठशालाओं को प्रोत्साहन नहीं दिया गया। इस प्रान्त में सरकारी स्कूलों की संख्या सब प्रान्तों से कम थी।

बरार—इस प्रान्त ने बम्बई की शिक्षा-नीति का अनुकरण किया। यह अधिकांश रूप में सरकारी विद्यालय ही थे, परन्तु देशी पाठशालाओं को भी प्रोत्साहन दिया गया।

कुर्ग—इस प्रान्त ने भी बम्बई का अनुकरण किया। शिक्षा-विभाग द्वारा प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना तो की गई पर देशी स्कूलों के प्रति उदासीनता व्यक्त की गई।

प्राथमिक शिक्षा पर व्यय

अधोलिखित आँकड़े विभिन्न प्रान्तों में १८८१–८२ में प्राथमिक शिक्षा पर किये गये व्यय को व्यक्त करते हैं।[1]

(रुपयों की सब संख्यायें सहस्रों में हैं)

प्रान्त	प्रान्तीय सरकार से	स्थानीय बोर्ड व नगरपालिका से	शुल्क	अन्य साधन	योग
मद्रास	१,६८	५,०२	३,६८	२,८७	१३,२५
बम्बई	३,४६	७,८७	१,५४	६३	१३,५०
बंगाल	५,६७	१३	१०,७७	४,४५	२१,३२
पश्चिमोत्तर प्रान्त	२,१६	५,४४	५५	८४	८,६६
पंजाब	६७	३,४५	६२	८४	५,८८
मध्यप्रदेश	१,००	१,४५	२२	३३	३,००
आसाम	२४	५७	१७	२०	१,१८
कुर्ग	४	७	१	...	१२
बरार	१,२५	८८	२६	१	२४०
योग	१६,७७	२४,८८	१७,८२	१०,१७	६६,६४

प्राथमिक शिक्षा के लिये कर

स्टैनले के आदेश-पत्र में इस बात का उल्लेख किया गया था कि जन-शिक्षा का व्यय-भार वहन करने के लिये स्थानीय कर (Local rates) लगाये जा सकते हैं। इस आदेश के आधार पर केन्द्रीय सरकार ने न केवल शिक्षा के लिए अपितु जन-कल्याण के अन्य कार्यों के लिये भी स्थानीय कर लगाने का निर्णय किया। स्थानीय करों के सिद्धान्त के प्रबल समर्थक और गर्वनर-जेनरल की कार्यकारिणी समिति के सदस्य, लैन्ग (Laing) ने १८६०-६१ में 'बजट' (Budget) प्रस्तुत करते हुए कहा : "यदि इस विशाल साम्राज्य में सड़कों, स्कूलों, स्थानीय पुलिस एवं सभ्यता के अन्य उपकरणों का प्रबन्ध किया जाना है, जो एक प्रगतिशील देश में होने चाहिये, तो अकेले सरकार द्वारा इन सब बातों के लिये धन का प्रबन्ध करना असम्भव है।"[2] लैन्ग के दृष्टिकोण से

1. *Report of the Indian Education Commission*. pp. 166-67.
2. "If this great empire is ever to have the roads, the schools, the local police and the other instruments of civilization which a flourishing country ought to possess, it is simply impossible that the Imperial Government can find either the money or the management." Howell : *Note on Education in India*. 1866-67, Para 19.

सहमत होकर प्रायः सभी प्रान्तीय सरकारों ने १८६१ से १८७१ तक स्थानीय व्यय के लिये कर लगाये। शिक्षा का व्यय भी इसमें सम्मिलित था, पर यह निश्चित करना कठिन था कि शिक्षा पर कितना धन व्यय किया जाय। बंगाल में 'इस्तमरारी बन्दोबस्त' (Permanent land revenue settlement) होने के कारण कर न लगाया जा सका।

पश्चिमोत्तर प्रदेश में टामसन पहिले ही मालगुज़ारी पर १ प्रतिशत कर लगा चुका था। पंजाब में १८५७ में मालगुज़ारी पर स्थानीय कर लगा दिया गया था। १८६१ में अवध में मालगुज़ारी पर २½ प्रतिशत कर लिया जाता था। इसका १ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय होता था। १८६२ में मध्य प्रान्त में १ प्रतिशत कर लगाया गया। कुछ समय बाद इसे २ प्रतिशत कर दिया गया। १८६३ में बम्बई में ६¼ प्रतिशत स्थानीय कर लगाया गया। इसका ¼ भाग शिक्षा पर व्यय होता था। इसी प्रकार १८६५ में सिंध में, १८६७ में मद्रास में और १८८९ में आसाम में स्थानीय कर लगा दिये गये। इनका कुछ भाग शिक्षा के लिये निश्चित कर दिया गया था।

नगरों में मकानों पर स्थानीय कर लगाया गया और इसको वसूल करने का कार्य नगरपालिकाओं पर छोड़ दिया गया। परन्तु नगरपालिकाओं ने इस कार्य के सम्पादन में अपने को असमर्थ पाया। इसका परिणाम यह हुआ कि नगरों में प्राथमिक शिक्षा का प्रवाह मन्द हो गया। ग्रामों से मालगुज़ारी के साथ इतना कर एकत्रित हो जाता था कि उसे ग्रामीण पाठशालाओं पर व्यय करना असम्भव था। अतः शेष धन को नगरों में उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा में योग देने के लिये व्यय किया जाने लगा। कुछ प्रान्तों में इसका उपयोग अन्य कार्यों के लिये भी किया गया। इस प्रथा को स्थगित करने के लिए १८७१ में निश्चित आदेश प्रदान किये गये। फलस्वरूप समस्त धन को प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किया जाने लगा, जिससे देशी पाठशालाओं की आशातीत अभिवृद्धि हुई। १८७१ में १६,४७३ प्राथमिक विद्यालय थे जिनमें ६½ लाख विद्यार्थी पढ़ते थे। १८८२ में इन विद्यालयों की संख्या ८२,९१६ और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या २१ लाख हो गई।

प्राथमिक शिक्षा : एक टिप्पणी

१८५४ से १८८२ तक के परवशता के काल में भारतीयों ने भले ही उपर्युक्त प्रलोभनकारी आंकड़ों के आधार पर प्राथमिक शिक्षा की समुन्नति अनुपम मान ली हो, परन्तु इस युग के समीक्षक की स्वस्थ चेतना तथा निष्पक्ष

भावना उसके मोह में पड़ना अस्वीकार करती है। आधारभूत तथ्य यह है कि भारत की जनसंख्या को देखते हुए १८८२ में साक्षरता का प्रतिशत केवल १·२ था, जब कि उसी वर्ष इंगलैण्ड का प्रत्येक बच्चा स्कूल में निःशुल्क शिक्षा प्राप्त कर रहा था।[1] भारत में इस नीची साक्षरता के कलंक का टीका उसके विदेशी शासकों के मस्तक पर था। उनकी अनुदारता, उदासीनता एवं असंतुलित गतिविधियों को ही इस नाची साक्षरता के लिये उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा

१८४४ में लार्ड हार्डिज द्वारा सरकारी नौकरियों के लिये अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को वरीयता दी जाने की घोषणा के फलस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार की गति तीव्र हो गई थी। १८५४ के घोषणा-पत्र के आदेशानुसार प्रान्तों में शिक्षा-विभागों की स्थापना हुई जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के संगठन में अदम्य उत्साह दिखाया। १८५९ के आदेश-पत्र ने सहायता-अनुदान को उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के लिये सीमित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education) पर व्यय करने के लिये अधिक धन उपलब्ध होने लगा जिससे इस स्तर पर शिक्षा की आशातीत उन्नति हुई। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में राजकीय प्रयत्नों के साथ-साथ भारतीयों एवं मिशनरियों ने भी सराहनीय कार्य किये। परिणामस्वरूप १८८२ के अन्त तक माध्यमिक विद्यालय अबाध गति से बढ़े। हम इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे हैं :—

राजकीय विद्यालय—१८५४ में राजकीय विद्यालयों की संख्या १६९ थी जिनमें १८,३४५ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। १८८२ में इन विद्यालयों की संख्या १, ६६३ और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या ४४, ६०५ हो गई।

मिशन विद्यालय—१८५७ की क्रान्ति के बाद मिशनरियों के प्रति सरकार का रुख कड़ा हो गया था फिर भी माध्यमिक विद्यालयों के विस्तार में मिशनरियों का योग कम नहीं था। सम्पूर्ण भारत में ६८० मिशन स्कूल थे जिनमें से मद्रास में ४१८, पंजाब में ११८, पश्चिमोत्तर प्रान्त में १०४ तथा बंगाल में ४० विद्यालय थे।

भारतीयों द्वारा संचालित विद्यालय—१८५४ तक भारतीयों ने माध्यमिक शिक्षा की दिशा में बहुत ही कम कार्य किया था। परन्तु १८८२ के अन्त

1. G. K. Gokhale : *Speeches* pp. 593-8.

तक राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत होकर भारतीयों ने अपने समस्त उपलब्ध साधनों को विद्यालयों के निर्माण में जुटा दिया था। फलस्वरूप १८८२ में भारतीयों द्वारा संचालित १,३४१ माध्यमिक विद्यालय थे। इनमें से मद्रास में ६९८, बंगाल में ५८२ और शेष, देश के अन्य भागों में थे।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

इस काल में माध्यमिक शिक्षा की आश्चर्यजनक उन्नति अवश्य हुई, पर वह कुछ दोषों से युक्त थी। हम इन पर नीचे प्रकाश डाल रहे हैं :—

१. मातृभाषाओं की अवहेलना—वुड के घोषणा-पत्र में अंग्रेजी तथा देशी भाषाओं को माध्यमिक शिक्षा का माध्यम बनाने की सिफ़ारिश की गई थी। परन्तु दुर्भाग्यवश भारतीय प्रशासकों ने इस ओर लेश मात्र भी ध्यान नहीं दिया। पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार करके ब्रिटिश सत्ता को सुदृढ़ बनाने के विचार से उन्होंने अंग्रेजी के माध्यम को वरीयता दी। साथ ही भारतीय, राजपद प्राप्त करने के लिये अंग्रेजी में पारंगत होना चाहते थे। परिणामतः भारतवासियों का झुकाव भी अंग्रेजी के माध्यम की ओर हुआ। इस सम्बन्ध में बङ्गाल ने अगुवाई की। १८६२ में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 'मेट्रीकुलेशन' (Matriculation) के छात्रों के लिये सभी विषयों का उत्तर अंग्रेजी में लिखना अनिवार्य कर दिया। इस प्रकार अब तक विद्यार्थियों को मातृ-भाषा के प्रयोग की जो स्वतन्त्रता प्राप्त थी उसका अपहरण किया गया और मातृभाषा की उपेक्षा करके उसे अपमानित भी किया गया। कलकत्ता विश्वविद्यालय की इस नीति का परिणाम यह हुआ कि विद्यार्थियों को 'मेट्रीकुलेशन' कक्षाओं के लिये तैयार करने के विचार से बहुत-से मिडिल स्कूलों ने भी अंग्रेजी के अध्ययन पर बल देना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप भारत में माध्यमिक स्तर पर प्रारम्भ से ही मातृभाषाओं की उपेक्षा की जाने लगी।

२. दीक्षित शिक्षकों का अभाव—यद्यपि १८५४ के घोषणा-पत्र में शिक्षकों की दीक्षा की आवश्यकता बताई गई थी, परन्तु भारत-सरकार ने इसमें कोई रुचि न ली। १८८२ तक सम्पूर्ण देश में केवल दो प्रशिक्षण-विद्यालय थे—एक लाहौर में और दूसरा मद्रास में। इन विद्यालयों में कुल ४१ छात्र-अध्यापक थे जो दीक्षित शिक्षकों की मांग को पूर्ण करने में असमर्थ थे। इसके अतिरिक्त विद्यालयों का प्रशिक्षण निम्न कोटि का था और उनके पास अभ्यास के लिये स्कूल (Practising schools) भी नहीं थे।

३. पुस्तकीय ज्ञान पर बल—माध्यमिक विद्यालयों का उद्देश्य केवल

अपने छात्रों को परीक्षाओं में उत्तीर्ण कराना था। अतः पुस्तकीय ज्ञान पर अत्यधिक बल दिया जाता था। विद्यार्थियों को विचार-स्वातन्त्र्य एवं व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा से सर्वथा वंचित रखा जाता था। परिणामस्वरूप उन्हें सामाजिक जीवन से सामंजस्य स्थापित करने में बड़ी कठिनाई होती थी।

४. **औद्योगिक शिक्षा का अभाव**—माध्यमिक विद्यालयों में औद्योगिक शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया गया। सम्पूर्ण देश में केवल बम्बई के कुछ हाई स्कूल ऐसे थे जिनसे कृषि के आदर्श फ़ार्म (Model farms) सम्बद्ध थे। उन स्कूलों में पढ़ने वाले कुछ कृषक बालकों को ४ रु० मासिक छात्रवृत्ति देकर कृषि का ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता था।[1] औद्योगिक शिक्षा के अभाव के कारण निम्नांकित थे :—

१. उस समय शिक्षा का प्रचार मुख्यतः उच्च वर्गों में था जिनका मुख्य उद्देश्य मेट्रीकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण होकर राजपद प्राप्त करना या विश्वविद्यालय में प्रवेश करना होता था। अतः वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के लिये उपयोगी ज्ञान के प्रति उदासीन रहे।

२. सरकार ने भी माध्यमिक स्कूलों में औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया। इसका एक कारण धन का अभाव था। राजकीय विद्यालयों को आदर्श माना जाता था। अतः व्यक्तिगत रूप में भी औद्योगिक शिक्षा की ओर ध्यान न दिया जा सका।

३. भारत के शासक होकर भी अंग्रेज़ों का ध्यान अपने व्यापार पर केन्द्रित रहा। इस देश में औद्योगिक शिक्षा का विकास होने से इंगलैण्ड के उद्योग-धन्धों को धक्का लगना आवश्यक था। अतः अंग्रेज़ों ने जान-बूझ कर भारत में औद्योगिक शिक्षा का अभाव रखा।

उच्च शिक्षा

१८५४ से १८८२ तक प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के समान उच्च शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया गया। इस अवधि में माध्यमिक शिक्षालयों की संख्या में इतनी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई कि उनमें अध्ययन करने वाले ज्ञान के जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिये उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना अनिवार्य हो गया। उच्च शिक्षा का प्रबन्ध विश्वविद्यालयों एवं कालेजों का शिलारोपण करके किया गया।

विश्वविद्यालयों की स्थापना

भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना का श्रेय वुड के घोषणा-पत्र को

1. *Report of the Indian Education Commission*, p. 219.

प्राप्त है। इस देश के प्रशासकों ने आदेश-पत्र की आज्ञा को शिरोधार्य करके उपयुक्त स्थानों पर विश्वविद्यालयों का निर्माण करने की योजना बनाई। इसमें कुछ समय लगना स्वाभाविक था, परन्तु १८५७ में ही सरकार ने 'विश्वविद्यालय अधिनियम' (University Acts) पारित करके कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालयों का शिलान्यास किया। इन तीन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त १८८१ तक कोई अन्य विश्वविद्यालय स्थापित नहीं किया गया। १८८२ में पंजाब विश्वविद्यालय की आधारशिला रखी गई। इसकी रूप-रेखा अन्य तीनों विश्वविद्यालयों से भिन्न थी। इसकी विशेषताओं की ओर हम नीचे संकेत कर रहे हैं :—

१. मातृ-भाषा के माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान की शिक्षा देना।
२. प्राच्य साहित्य की परीक्षाओं में उर्दू के माध्यम से उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को स्नातक आदि की उपाधियाँ (Degrees) देना।
३. अरबी, फ़ारसी और संस्कृत की परीक्षाओं में सफल होने वाले विद्यार्थियों को प्राच्य साहित्यिक उपाधियाँ (Oriental literary titles) देना।
४ हिन्दू एवं मुस्लिम क़ानून तथा औषधि-शास्त्र के विद्यार्थियों को भारतीय उपाधियाँ (Native titles) देना।
५. देशी भाषाओं की परीक्षाओं की व्यवस्था करना।[1]

इस प्रकार पंजाब विश्वविद्यालय ने देशी भाषाओं एवं प्राच्य-ज्ञान को प्रोत्साहित करने की नीति का अनुसरण किया। इस विश्वविद्यालय का दृष्टिकोण पूर्णतः भारतीय था।

विश्वविद्यालयों का प्रबन्ध

यद्यपि सभी विश्वविद्यालयों की स्थापना विभिन्न अधिनियमों द्वारा की गई थी, तथापि उनके आधारभूत सिद्धान्त प्रायः समान थे। विश्वविद्यालयों का प्रबन्ध सीनेट के द्वारा किया जाता था। सीनेट के सदस्य कुलपति, उपकुलपति और अभिसदस्य होते थे। प्रान्त का गवर्नर कुलपति का स्थान ग्रहण करता था, वह दो वर्ष के लिये उपकुलपति एवं अभिसदस्यों को मनोनीत करता था। अभिसदस्य दो प्रकार के होते थे—(१) पदेन (Ex-officio),

1. *Quinquennial Review of the Progress of Education in India*, 1897-1902, Vol. I, para 153.

एवं (२) साधारण (Ordinary)। प्रथम प्रकार के अभिसदस्यों में मुख्य न्यायाधीश, बिशप (Bishop), गवर्नर की कार्यकारिणी सभा के सदस्य, प्रान्तीय शिक्षा-संचालक एवं राजकीय कॉलेजों के प्रिंसिपल होते थे। साधारण सदस्यों में प्रतिष्ठित भारतीयों को स्थान दिया जाता था। सामान्यतः विश्वविद्यालयों के प्रशासन सम्बन्धी कार्यों का संचालन करने के लिये छोटी सी कार्यकारिणी समिति बना दी जाती थी जिसे 'सिंडीकेट' (Syndicate) कहते थे।

विश्वविद्यालयों के कार्य

वुड के घोषणा-पत्र के अनुसार विश्वविद्यालय, शिक्षा प्रदान करने का कार्य भी कर सकते थे। परन्तु विश्वविद्यालय अधिनियमों में उनको केवल परीक्षा लेने तथा उपाधियाँ वितरण करने का अधिकार दिया। ये विश्वविद्यालय कला, विज्ञान, कानून, चिकित्सा, इंजीनियरिंग आदि की परीक्षाओं की व्यवस्था करते थे और उतीर्ण होने वाले छात्रों को प्रमाण-पत्र देते थे। विश्वविद्यालयों में केवल वे ही छात्र प्रवेश पा सकते थे जो 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा पास कर लेते थे। यह परीक्षा प्रायः सभी विद्यालय स्वयं लेते थे।

विश्वविद्यालयों का आलोचनात्मक अध्ययन

यहाँ पर भारतीय विश्वविद्यालयों के गुण-दोषों का विवेचन करना अनुपयुक्त न होगा। वस्तुतः विदेशी सरकार द्वारा स्थापित किये गये इन विश्वविद्यालयों में केवल दोष ही थे। हम इनका वर्णन नीचे कर रहे हैं:—

१. विश्वविद्यालयों का प्रमुख कार्य शिक्षा प्रदान करना होता है, परन्तु भारतीय विश्वविद्यालय इस महत्वपूर्ण कार्य से वंचित रहे। वे केवल परीक्षा लेने का गौण कार्य कर सकते थे।

२. शिक्षा एवं परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी रखा गया। इससे प्राच्य भाषाओं को ऐसा आघात पहुँचा कि उनका पतन अवश्यम्भावी हो गया। प्रारम्भ में प्राच्य भाषाओं को पाठ्य-क्रम में स्थान भी नहीं दिया गया।

३. प्राच्य भाषाओं की अवहेलना करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि भारतीय छात्रों का उनसे सम्पर्क न रह गया। फलतः वे अपनी सांस्कृतिक विरासत से दूर होने लगे और उसको हेय दृष्टि से देखने लगे।

४. प्राचीन समय में शिक्षा को किसी विशिष्ट प्रयोजन या उपयोगिता के लिये प्राप्त न करके केवल ज्ञान के लिये ही ग्रहीत किया जाता था। परन्तु विश्वविद्यालयों ने शिक्षा ग्रहण करके धन प्राप्ति द्वारा भौतिक सुख-सुविधा का आदर्श उपस्थित किया। फलस्वरूप स्नातकों का चरम लक्ष्य 'सरकारी महकमों' में नौकरी प्राप्त करना हो गया। इससे विश्वविद्या-

लयों के स्वार्थ की पूर्ति हुई क्योंकि उनका उद्देश्य भारतीयों को शिक्षित करके सरकारी मशीन के पुर्ज़े बनाना था।

५. विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रमों में औद्योगिक शिक्षा को स्थान नहीं दिया गया। जिस समय औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के फलस्वरूप इंगलैन्ड में औद्योगिक शिक्षा पर बल दिया जा रहा था, उस समय इस देश में इंगलैन्ड निवासियों द्वारा उसकी उपेक्षा की जा रही थी। विश्वविद्यालयों की शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित रही जिसने भारतीय युवकों को सफ़ेदपोश और आलसी बना कर देश का महान अहित किया।

६. विश्वविद्यालय विदेशी शासन की खूँटी से बंधे होने के कारण अपना स्वाभाविक और उचित विकास न कर सके।

७. विश्वविद्यालयों के निरीक्षण में नौकरशाही की धाक थी। विश्व-विद्यालय इन्हीं निरीक्षकों की दया पर निर्भर रहते थे। अतः उनकी ओर विश्वविद्यालयों की टकटकी लगी रहती थी। इस परवशता ने विश्व-विद्यालयों की प्रगति में बहुत बाधा डाली।

८. विश्वविद्यालय अधिनियमों ने सीनेट सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं की थी। सदस्यों का स्थान उनकी मृत्यु, त्यागपत्र या भारत को सदैव के लिये छोड़ने पर ही रिक्त होता था। इस प्रकार बहुत काल तक सदस्यों में परिवर्तन न होने के कारण विश्वविद्यालयों में भी वांछित परिवर्तन नहीं हो पाता था।

९. अभिसदस्यों की नियुक्ति बिना उनकी शिक्षा-योग्यताओं पर विचार किये हुए की जाती थी। परिणामतः ऐसे अनेक अभिसदस्य होते थे जो शिक्षा के विषय में अल्प मात्र जानकारी भी नहीं रखते थे। ऐसे अभिसदस्यों से विश्वविद्यालय की शिक्षा के लिये किसी उचित कार्य को किये जाने की आशा करना व्यर्थ था।

१०. सीनेट में शिक्षकों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं था। परिणामतः विश्व-विद्यालयों को शिक्षा-विशेषज्ञों का परामर्श नहीं प्राप्त हो पाता था।

कॉलेजों की स्थापना

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय विश्वविद्यालयों का कार्य केवल परीक्षा लेना था। उनमें शिक्षणकार्य नहीं किया जाता था। यह कार्य विश्वविद्यालयों से मान्यता प्राप्त कॉलेजों में होता था। अतः इस अवधि में उच्च शिक्षा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये इस काल के कॉलेजों का विवरण आवश्यक हो जाता है। कॉलेजों के प्रति सरकार ने

उदारता का व्यवहार किया। फलतः कॉलेजों की संख्या में आशातीत अभिवृद्धि हुई। १८५४ में सम्पूर्ण भारत में २३ कॉलेज थे। इनमें से १४ कालेज सरकारी और ९ मिशनरियों के थे। १८८२ में कॉलेजों की संख्या बढ़ कर ७२ हो गई। हम इनमें से कुछ प्रमुख कॉलेजों का वर्णन नीचे कर रहे हैं:—

सरकारी कॉलेज—१८५५ में कलकत्ता प्रेसीडेन्सी कॉलेज की स्थापना हुई। उसी का अनुकरण करके मद्रास हाई स्कूल को मद्रास प्रेसीडेन्सी कॉलेज में परिवर्तित किया गया। १८६९ में लाहौर यूनीवर्सिटी कॉलेज का निर्माण हुआ। १८८२ में इसी कॉलेज ने पंजाब विश्वविद्यालय का रूप धारण किया। १८७२ में पश्चिमोत्तर प्रान्त के गवर्नर सर विलियम म्योर (Sir William Muir) ने किराये के एक भवन में म्योर सेन्ट्रल कॉलेज खोला। इसका शिलान्यास १८७३ में लार्ड नार्थब्रुक (Northbrook) द्वारा किया गया।

ग़ैर-सरकारी कॉलेज—१८५४ तक भारतीयों ने कॉलेजों की स्थापना की दिशा में कोई भी कार्य नहीं किया था। परन्तु उस वर्ष के पश्चात् उन्होंने उच्च शिक्षा में सराहनीय योगदान दिया और कॉलेजों का प्रबन्ध किया। इनमें से कुछ विशेष उल्लेखनीय है। १८६४ में अवध के ताल्लुकेदारों ने लार्ड कैनिंग (Canning) की स्मृति में 'लखनऊ कैनिंग कॉलेज' स्थापित किया। इसमें अंग्रेजी के साथ-साथ प्राच्य साहित्य की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई। १८७५ में सर सैयद अहमद खाँ ने मुसलमानों में अंग्रेजी की उच्च शिक्षा का प्रचार करने के लिये अलीगढ़ में 'मुस्लिम ऐङ्गलो ओरियन्टल कॉलेज' की स्थापना की। कुछ समय बाद यह 'मुस्लिम यूनीवर्सिटी' के रूप में विकसित हुआ। मद्रास में पच्चय्पा एवं विशासापट्टम् स्कूलों को कॉलेजों में परिवर्तित कर दिया गया और १८६१ में तिनावेली कॉलेज का शिलान्यास हुआ। बंगाल में १८७८ में मेट्रोपॉलिटन कॉलेज, १८७९ में सिटी कॉलेज और १८८१ में अलबर्ट कॉलेज, स्कूलों के स्तर से ऊँचे उठ कर कॉलेज बने।

इस अवधि में राजकुमारों को शिक्षा देने के लिये भी कुछ कॉलेजों का निर्माण हुआ—राजकोट कॉलेज (१८७०), अजमेर का मेयो कॉलेज (१८७२) और इन्दौर का डेली कॉलेज (१८७६)।

व्यावसायिक-शिक्षा

१८५४ से पूर्व व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में जो प्रयास सरकार द्वारा किये गये थे वे केवल चिकित्सा, इंजीनियरिंग और क़ानून की शिक्षा तक ही सीमित रहे। इनकी शिक्षा की व्यवस्था भी कम्पनी ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये की थी। अंग्रेजों का प्रमुख ध्येय भारतीयों को विभिन्न राजकीय विभागों

के लिये तैयार करना था। १८५४ के बाद भी इसी उद्देश्य के फलस्वरूप व्यावसायिक शिक्षा के लिये प्रयत्न किये गये। हम उस काल की व्यावसायिक शिक्षा का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे :—

१. चिकित्सा-शिक्षा (Medical Education)
२. क़ानून की शिक्षा (Legal Education)
३. इंजीनियरिंग की शिक्षा (Engineering Education)
४. कृषि की शिक्षा (Agricultural Education)
५. पशु-चिकित्सा-शिक्षा (Veterinary Education)
६. वन-विज्ञान की शिक्षा (Forestry Education)
७. कला की शिक्षा (Art Education)
८. तकनीकी एवं औद्योगिक शिक्षा (Technical and Industrial Education)
९. अध्यापकों का प्रशिक्षण (Training of Teachers)

चिकित्सा-शिक्षा—१८५४ से पूर्व कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में मेडिकल कॉलेज स्थापित किये जा चुके थे। हम इनका वर्णन पहिले कर चुके हैं। १८८० में लाहौर में मेडिकल कॉलेज का निर्माण किया गया। इसका उद्देश्य पंजाब के निवासियों को पाश्चात्य औषधि-शास्त्र की शिक्षा देना था। इन कॉलेजों के अतिरिक्त विभिन्न प्रान्तों में बहुत-से मेडिकल स्कूल भी थे। इस अवधि मे भारतीयों की रूढ़िवादिता के कारण चिकित्सा-शिक्षा लोकप्रिय न हो सकी।

क़ानून की शिक्षा—१८५४ से पूर्व क़ानून की शिक्षा की व्यवस्था केवल हिन्दू विद्यालय, कलकत्ता में की गई थी। भारत के विभिन्न प्रान्तों में न्यायालयों की स्थापना के कारण क़ानून की शिक्षा की माँग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। अत. सरकार ने जनता को संतुष्ट करने के लिये १८५५ में मद्रास एवं बम्बई में क़ानून की शिक्षा का प्रबन्ध किया। विश्व-विद्यालयों की स्थापना के बाद क़ानून की शिक्षा की प्रगति तीव्र हो गई। यह शिक्षा जन-साधारण में लोकप्रिय थी।

इंजीनियरिंग की शिक्षा क़ानून की शिक्षा के समान इंजीनियरिंग की शिक्षा की भी संतोषजनक प्रगति हुई। इसका कारण यह था कि सार्वजनिक निर्माण-विभागों, स्थानीय बोर्डों, नगरपालिकाओं, कारखानों आदि में इंजीनियरों की माँग बढ़ रही थी। १८५० में बंगाल में शिवपुर नामक स्थान पर एक इंजीनियरिंग कॉलेज का निर्माण किया गया। १८५४ में पूना में स्थापित किये गये यंत्रशास्त्र के विद्यालय को कॉलेज का रूप प्रदान किया गया। मद्रास

के 'सर्वे स्कूल' को १८५८ और १८६२ के मध्य कॉलेज का रूप दिया गया।

कृषि की शिक्षा—भारत सदैव से एक कृषि-प्रधान देश रहा है। यहाँ की ७० प्रतिशत से अधिक जनता अपनी आजीविका के लिये कृषि पर निर्भर रहती है। ऐसी दशा में भारतीयों को कृषि की शिक्षा दी जानी अति आवश्यक थी, परन्तु सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। जब १८८० में दुर्भिक्ष पड़ा और कृषि के चौपट हो जाने से सरकार को मालगुज़ारी न मिली तब उसकी आँखें खुलीं। फिर भी कृषि की शिक्षा के लिये संतोषजनक प्रबन्ध नहीं किया गया। १८६४ में सरकार ने मद्रास में सैदपत नामक स्थान पर परीक्षण के लिये कृषि का एक फ़ार्म खोला था। उसको कॉलेज का रूप प्रदान किया गया। १८७९ में पूना कॉलेज में कृषि-विभाग स्थापित किया गया। इन दोनों कॉलेजों में तीन वर्ष तक कृषि की शिक्षा प्राप्त करने के बाद विद्यार्थी परीक्षा में सम्मिलित हो सकते थे।

पशु-चिकित्सा-शिक्षा—भारत ऐसे खेतिहर देश में स्वस्थ पशुओं का होना आवश्यक है। अतः सरकार का पशु-चिकित्सा-शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिये था। परन्तु ऐसा न किया गया। नाम-मात्र के लिये कुछ स्थानों पर इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई थी।

वन-विज्ञान की शिक्षा—भारत में अनेकों बड़े-बड़े वन हैं जिनसे विविध प्रकार की लाभप्रद वस्तुयें प्राप्त होती है। इन वस्तुओं से प्रलोभित होकर भारत सरकार ने १९ वी शताब्दी के मध्य में वन-विभाग स्थापित किया। इस विभाग के लिये भारतीयों को शिक्षित करने के विचार से १८७८ में देहरादून में 'फ़ोरेस्ट स्कूल' खोला गया। पूना कॉलिज में भी वन-विज्ञान की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई।

कला की शिक्षा—मद्रास और बम्बई के कला-स्कूलों का वर्णन किया जा चुका है। १८७५ में लाहौर में 'मेयो स्कूल ऑव आर्ट' स्थापित किया गया। इसका उद्देश्य पंजाब में प्रचलित घरेलू उद्योग-धन्धों से सम्बन्धित कला की शिक्षा प्रदान करना था। इसके अतिरिक्त कला की शिक्षा की दिशा में कोई और क़दम नहीं उठाया गया।

तकनीकी एवं औद्योगिक शिक्षा—इस शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान सर्व प्रथम १८७७-७८ के 'दुर्भिक्षआयोग' (Famine Commission) द्वारा आकर्षित किया गया। फिर भी सरकार ने इस शिक्षा की अवहेलना की। हाँ, मिशनरियों ने कुछ कार्य अवश्य किया। उन्होंने थोड़े-से 'औद्योगिक स्कूल' स्थापित किये जिनमें भारतीय ईसाई बालकों को जीविकोपार्जन के लिये बढ़ई, और लुहार के कार्यों की शिक्षा दी जाती थी। परन्तु इन स्कूलों को 'औद्यो-

गिक स्कूल' न कहकर 'दस्तकारी के स्कूल' (Craft Schools) कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

अध्यापकों का प्रशिक्षण—१८५६ के आदेश-पत्र के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये सरकार ने अदम्य उत्साह से कार्य किया और १८८२ तक प्रत्येक प्रान्त में अनेकों प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित हो गये। १८८२ में बम्बई में ७ प्रशिक्षण विद्यालय पुरुषों के लिये और २ स्त्रियों के लिये थे। इनमें अध्ययन करने वालों की कुल संख्या ५५३ थी। मध्य प्रदेश में प्रशिक्षण विद्यालय थे—३ पुरुषों के लिये १ स्त्रियों के लिये। इनमें पढ़ने वालों की संख्या १८८ थी। १८६२ में बंगाल में 'नार्मल स्कूल प्रणाली' (Normal School System) प्रारम्भ की गई। इसके अनुसार देशी पाठशालाओं के शिक्षकों या उनके सम्बन्धियों को नार्मल स्कूल में भेजा जाता था। प्रत्येक शिक्षक को ५ रु० मासिक छात्रवृत्ति दी जाती थी। १ वर्ष के प्रशिक्षण के बाद अध्यापक को अपने विद्यालय को लौटना पड़ता था। छात्राध्यापकों को शिक्षण-विधि, गणित, भूगोल, इतिहास आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। धनाभाव के कारण 'नार्मल स्कूल प्रणाली' को विस्तृत न किया जा सका और १८७१ तक केवल २,४ ० नार्मल स्कूलों की स्थापना हुई। १८७४ में प्रान्त के गवर्नर, कैम्पबेल ने शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये एक नवीन योजना की रूप-रेखा तैयार की। इसके अनुसार १ लाख ६४ हजार रुपये व्यय करके ४५ नार्मल स्कूलों का निर्माण किया गया। मद्रास में ३२ प्रशिक्षण विद्यालय थे जिनमें प्रशिक्षण प्राप्त करने वालों की संख्या ६२७ थी। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया गया था। १८८२ में सम्पूर्ण भारत में १०६ नार्मल स्कूल थे जिनमें ३,८८६ पुरुषों एवं स्त्रियों को प्रशिक्षित किया जा रहा था। इन स्कूलों का वार्षिक व्यय लगभग ४ लाख रुपया था।[1]

माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण का वर्णन इसी अध्याय में 'माध्यमिक शिक्षा' के अन्तर्गत किया जा चुका है।

विशिष्ट शिक्षा

इस अवधि में विशिष्ट शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया गया। इसका अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत सुविधापूर्वक किया जा सकता है :—

१. स्त्रियों की शिक्षा (Education of Women)
२. मुसलमानों की शिक्षा (Education of Muslims)

1. *Report of the Indian Education Commission*, p. 134.

३. पिछड़ी जातियों एवं हरिजनों की शिक्षा (Education of the Backward Classes and Harijans)

४. आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा (Education of the Aborigi nal and Hill Tribes)

स्त्रियों की शिक्षा

१८५४ के घोषणा-पत्र के आदेशानुसार सरकार ने स्त्रियों की शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया था। नवनिर्मित शिक्षा-विभागों ने स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। और उपयुक्त स्थानों पर बालिका विद्यालयों का निर्माण किया। फलस्वरूप स्त्री-शिक्षा की अबाध रूप से प्रगति होती चली गई। १८८२ में स्त्रियों के लिये सभी प्रकार के विद्यालयों की संख्या २,६९७ थी जिनमें १,२७,०६६ छात्रायें शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। भारत की विशाल जन संख्या को देखते हुए छात्राओं की यह संख्या प्रायः नगण्य थी। इसके आधारभूत कारण निम्नांकित थे :—

१. हिन्दू और मुसलमान दोनों, स्त्री-शिक्षा को अनावश्यक समझते थे। उनके मतानुसार स्त्री का उचित स्थान घर में था। अतः उसके लिये शिक्षा व्यर्थ थी।

२. भारत में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। कम आयु में विवाह हो जाने के कारण स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता था।

३. मुस्लिम शासन-काल में हिन्दुओं और मुसलमानों में पर्दा-प्रथा प्रचलित हो गई थी। अतः एक निश्चित आयु के बाद बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने के लिये घर से बाहर भेजना असम्भव था।

४. रूढ़िवादिता में जकड़े हुए भारतीय इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि स्त्रियाँ भी उच्च शिक्षा प्राप्त करके पुरुषों के समान नौकरियाँ कर सकती है। अतः उन्होंने स्त्रियों की उच्च या माध्यमिक शिक्षा की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया।

प्राथमिक शिक्षा—जहाँ तक बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा का प्रश्न है, उसे कुछ सीमा तक संतोषजनक कहा जा सकता है। प्राथमिक स्कूलों में छात्राओं की संख्या सबसे अधिक थी। १८८२ में १,२७,०६६ शिक्षा प्राप्त करने वाली कुल बालिकाओं में से १२४,४९१ बालिकायें प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ रही थीं। इस अधिक संख्या का एकमात्र कारण यह था कि भारतीय इस समय तक स्त्रियों के लिये प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव कर चुके थे। परन्तु वे माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि इस

शिक्षा का अर्थ था अंग्रेजी का अध्ययन जिससे स्त्रियों के चरित्रहीन होने की आशंका थी।

माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा—स्त्रियों की शिक्षा के प्रति भारतीयों के इस दृष्टिकोण ने उनकी माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की प्रगति में अवरोध डाला। १८८२ में सम्पूर्ण भारत के माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाली बालिकाओं की संख्या २,०५४ थी। इनमें से बंगाल में १,०५१; मद्रास में ३८९; बम्बई में ५३८; पश्चिमोत्तर प्रान्त में ६८; और पंजाब में ८ बालिकायें माध्यमिक शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। इनमें भी अधिकांश लड़कियाँ यूरोपियन, ऐंग्लो इंडियन और पारसी थीं। जहाँ तक उच्च शिक्षा का प्रश्न था सम्पूर्ण भारत में स्त्रियों के लिये केवल १ कॉलेज था—कलकत्ते का बैथ्यून कॉलेज। इसमें भी केवल ६ लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। इस प्रकार इस अवधि में स्त्रियों की माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा अत्यन्त निराशाजनक रही।

स्त्री-प्रशिक्षण—इस काल की एक विशेषता यह थी कि स्त्रियाँ प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापिकाओं का कार्य करने के लिये दीक्षा ले रही थीं। १८८२ में छात्राध्यापिकाओं की संख्या ५१५ थी। प्रशिक्षण-विद्यालयों की स्थापना की ओर सर्व प्रथम मिशनरियों ने ध्यान दिया। इनका निर्माण करने में मिशनरियों के दो ध्येय थे—(१) मिशन बालिका-विद्यालयों के लिये अध्यापिकाओं को दीक्षित करना; और (२) धर्म-परिवर्तित ईसाई स्त्रियों को अध्यापिकायें बना कर उनके जीविकोपार्जन की समस्या को हल करना। परन्तु मिशन प्रशिक्षण-विद्यालय लोकप्रिय न बन सके। सम्भ्रान्त व्यक्ति अपनी लड़कियों को वहाँ नहीं भेजना चाहते थे क्योंकि वहाँ बाइबिल का पढ़ना अनिवार्य था। मिशन प्रशिक्षण-विद्यालयों के अतिरिक्त देश में भारतीयों या सरकार द्वारा संचालित एक भी विद्यालय नहीं था। भारतीयों द्वारा इस दिशा में कार्य न किये जाने का कारण यह था कि भारतीय समाज में ऐसी सुशिक्षित महिलाओं का अभाव था जो प्रधान अध्यापिकाओं एवं अध्यापिकाओं के रूप में कार्य कर सकें। १८५४ के घोषणा-पत्र में अध्यापिकाओं की दीक्षा के लिये आदेश दिये जाने पर भी सरकार ने इस ओर कोई कदम नहीं उठाया था।

स्त्री-शिक्षा के अपने कर्त्तव्य के प्रति सरकार को जागरूक करने का श्रेय एक सुविख्यात समाजसेविका मिस कारपेन्टर (Miss Carpenter) को प्राप्त है। १८६६से १८७६ तक उसने चार बार भारत आकर यहाँ की जनता और सरकार को स्त्री-शिक्षा की नवीन परम्परा को प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा दी। उसी

के प्रयासों के फलस्वरूप भारत में स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी वह प्रतिमान स्थापित हुआ जो अनेक झोंके-झकोरे खाने के बाद भी आज तक अटूट बना हुआ है। अपने भारत-निवास के दौरान में स्त्री-शिक्षा का गहन अध्ययन करने के बाद वह इस परिणाम पर पहुँची कि स्त्री-शिक्षा की प्रक्रिया में गतिशीलता बनाये रखने के लिये अध्यापिकाओं की दीक्षा अति आवश्यक है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये उसने निम्नलिखित सुझाव दिये:—

१. सरकार द्वारा महिला प्रशिक्षण-विद्यालयों की व्यवस्था की जाय।
२. उनमें योग्य अध्यापिकाओं की नियुक्ति की जाय।
३. उन्हें सफल बनाने के लिये लब्धप्रतिष्ठ भारतीयों का सहयोग प्राप्त किया जाय।
४. उनमें अध्ययन करने के लिये छात्राध्यापिकाओं को प्रोत्साहन दिया जाय।

भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल, सर जॉन लारेन्स (Sir John Lawrence) ने मिस कारपेन्टर के प्रस्तावों से प्रभावित होकर तत्काल ही महिला प्रशिक्षण-विद्यालयों की स्थापना के लिये राजकोष से धन देने की घोषणा की। इस प्रकार विद्यालयों के निर्माण की समस्या तो हल हो गई, पर अन्य तीनों समस्याओं का समाधान कठिन था। योग्य अध्यापिकाओं के अभाव में मिस कारपेन्टर ने स्वयं एक विद्यालय का संचालन किया। सौभाग्य-वश कुछ उदार विचार वाले भारतीयों ने उनके साथ कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य किया। फलस्वरूप पतली लीक पर चली आ रही स्त्री-शिक्षा को अब एक प्रशस्त मार्ग मिल गया। वस्तुतः महिला-प्रशिक्षण-क्षेत्र में मिस कार-पेन्टर ने पथ-प्रदर्शक का कार्य किया। उसके इसी कार्य के फलस्वरूप आज भारत में स्त्री-शिक्षा का इतना सर्वाङ्गीण विकास हुआ है।[1]

इन नवनिर्मित प्रशिक्षण-विद्यालयों की विचित्र दशा से अवगत होने के लिये १८७० में स्थापित किये गये 'महिला प्रशिक्षण-विद्यालय', पूना का संक्षिप्त विवरण अनुपयुक्त न होगा। इस विद्यालय में प्रथम वर्ष जिन ८ छात्रा-ध्यापिकाओं ने प्रवेश लिया उनमें से कुछ को अक्षरों का भी ज्ञान नहीं था। क्योंकि उनको प्रशिक्षित किया जाना था, अतः प्रशिक्षण विद्यालय ने पहिले एक साधारण विद्यालय का कार्य किया और उनको साक्षर बनाया। छात्रा-ध्यापिकाओं के अभाव के कारण ८ वर्ष तक प्रवेश पाने के लिये शिक्षा की

1. "She should, therefore, be regarded as the pioneer of women's training colleges which later on became so important an agency to develop the education of women." Nurullah and Naik : *op. cit.*, p. 390.

योग्यता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया। १८७८ में केवल कक्षा ३ पास छात्रायें ही इसमें प्रवेश कर सकती थीं। १८८२ तक इस विद्यालय में दीक्षा लेने वाली छात्राअध्यापिकाओं की संख्या कुल ३४ थी।

पाठ्य-क्रम—१८५४ से १८८२ तक की अवधि की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि बालिकाओं के लिये भिन्न पाठ्य-क्रम की माँग की गई। यह माँग दो आधारों पर की गई। प्रथम, बालकों की अपेक्षा बालिकाओं का अध्ययन-काल कम होता है। अतः बालिकाओं का पाठ्य-क्रम बालकों से भिन्न होना आवश्यक है। द्वितीय, बालिकाओं को सीने-पिरोने के समान ऐसे लाभप्रद विषयों की शिक्षा दी जाय जो जीवन में उनके काम आ सकें। परन्तु शिक्षा विभाग द्वारा इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

मुसलमानों की शिक्षा

अभी तक हमने मुसलमानों की शिक्षा पर कोई प्रकाश नही डाला है। वस्तुतः मुसलमानों ने हिन्दुओं के समान अंग्रेजी की शिक्षा में अभिरुचि नहीं व्यक्त की। १८७२ में मुसलमानों को शिक्षा देने के लिये 'कलकत्ता मदरसा' स्थापित किया गया था। वहाँ पर अंग्रेजी शिक्षा की व्यवस्था की गई पर मुसलमान उसके प्रति उदासीन रहे। इसका कारण यह था कि मुसलमानों का विश्वास था कि अंग्रेजी के अध्ययन से उनके धर्म पर दूषित प्रभाव पड़ेगा। अतः मुसलमान अंग्रेजी शिक्षा से दूर रहे और इसीलिये कम्पनी ने भी उनकी शिक्षा की उपेक्षा की। यह उपेक्षा १८५५ तक प्रान्तीय शिक्षा-विभागों की स्थापना के पश्चात् भी यथावत् बनी रही। १८७१-७२ में लार्ड मेयो (Mayo) ने मुसलमानों की शिक्षा पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और उन्हें शिक्षा देने का बीड़ा उठाया। उसके प्रयास के फलस्वरूप उसी वर्ष भारत सरकार द्वारा एक प्रस्ताव (Resolution) पास किया गया।[1] इसकी प्रमुख बातें निम्नलिखित थीं:—

---

1. "His Excellency in Council believes that secondary and higher education conveyed in the vernacular and rendered more accessible than now, coupled with a more systematic encouragement and recognition of Arabic and Persian literature, would be not only acceptable to the Muhammadan community but would enlist the sympathies of the more earnest and enlightened of its members on the side of education." Syed Mahmood : *History of Education in India*, p. 148.

१. उन क्षेत्रों के अंग्रेजी स्कूलों में जहाँ मुसलमान बहुसंख्या में हैं, अंग्रेजी के मुसलमान शिक्षक नियुक्त किये जायँ।
२. मुसलमानों को अपने स्कूल स्थापित करने के लिये सहायता-अनुदान दिया जाय।
३. माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा, उर्दू के माध्यम से दी जाय।
४. अरबी और फ़ारसी साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय।
५. सभी राजकीय स्कूलों तथा कॉलेजों के पाठ्य-क्रमों में मुस्लिम भाषाओं को उचित स्थान दिया जाय।
६. मुसलमानों को उर्दू साहित्य के सृजन में सरकार द्वारा विशेष सहायता दी जाय।

इस राजाज्ञा का प्रायः सभी प्रान्तों में अक्षरशः पालन किया गया। फल-स्वरूप मुस्लिम-शिक्षा का प्रवाह तीव्र हो गया। यत्र-तत्र विद्यालयों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। उनमें अध्ययन करने के लिये मुस्लिम छात्रों को आधा शुल्क एवं छात्रवृत्तियाँ देकर प्रलोभित किया जाने लगा। विद्यालयों के निरीक्षण के लिये मुस्लिम निरीक्षकों की नियुक्तियाँ की गईं। सरकार विद्यालयों को उदारता पूर्वक आर्थिक सहायता देने लगी। शिक्षण-कार्य केवल योग्य अध्यापकों को सौंपा गया। विश्वविद्यालयों में अरबी और फ़ारसी को सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप १८८१-८२ में सम्पूर्ण भारत में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों में १७.८ प्रतिशत विद्यार्थी मुसलमान थे। जनगणना के अनुसार सम्पूर्ण जनसंख्या में १९·१ प्रतिशत मुसलमान थे। इसका अभिप्राय यह था कि मुस्लिम समाज का प्रायः प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित था। शिक्षा की इस असाधारण प्रगति के बावजूद मुसलमान अधोलिखित बातों में हिन्दुओं से पिछड़े रहे:—

१. मुसलमानों में धार्मिक भावना इतनी प्रबल थी कि मुसलमान विद्यार्थी काफी बड़ी संख्या में सार्वजनिक विद्यालयों की अपेक्षा व्यक्तिगत विद्यालयों में ही पढ़ना अधिक लाभप्रद समझते थे।
२. मुसलमानों ने माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा को इतना ग्रहण नहीं किया जितना कि हिंदुओं ने।
३. मुसलमानों में स्त्री-शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई थी।
४. सरकारी नौकरियों तथा व्यवसायों में मुसलमानों ने हिंदुओं से कहीं कम योग्यता एवं कुशलता का परिचय दिया।

पिछड़ी जातियों एवं हरिजनों की शिक्षा

१८५४ से पूर्व निस्यन्दन-सिद्धान्त को अपनाने के कारण सरकार ने पिछड़ी जातियों की शिक्षा के लिये कोई व्यवस्था नहीं की थी। ऐडम की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि देशी पाठशालाओं में पिछड़ी जातियों और हरिजनों के कुछ बालक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इस प्रकार १८३८ तक निम्न जातियों में शिक्षा प्रचलित हो गई थी, परन्तु विद्यार्थियों की संख्या प्रायः नहीं के बराबर थी। मिशनरियों ने पिछड़ी जातियों तथा हरिजनों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया और कुछ स्कूल भी खोले। इसका एक मात्र कारण यह था कि मिशनरी उनको अपने धर्म का अनुगामी बनाना सरल समझते थे।

वुड के घोषणा-पत्र ने निस्यन्दन सिद्धान्त को अमान्य ठहराया और जन-साधारण में शिक्षा-प्रसार करने का आदेश दिया। परिणामस्वरूप सरकार ने प्रान्तीय शिक्षा-विभागों को जन-शिक्षा के साथ-साथ पिछड़ी जातियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने के लिये कहा। शिक्षा-विभाग इस दिशा में क्रियाशील तो हुए, परन्तु अधोलिखित विचित्र कठिनाइयों का सामना करना पड़ा :—

१. उच्च जातियों के हिन्दू हरिजनों को हेय तथा घृणित समझते थे। अतः उन्होंने हरिजनों के बच्चों को सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ाये जाने का घोर विरोध किया।

२. शताब्दियों से पददलित रहने के कारण स्वयं हरिजनों में शिक्षा प्राप्त करने की तनिक भी अभिलाषा नहीं थी। अतः उनकी शिक्षा के लिये दिये गये प्रलोभन प्रायः व्यर्थ सिद्ध हुए।

३. हरिजनों में शिक्षा का अभाव था। अतः उनमें से शिक्षण कार्य के लिये योग्य व्यक्तियों को प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता था। उच्च वर्ग के हिन्दू पिछड़ी जातियों और हरिजनों के बच्चों के अध्यापक बनना स्वीकार नहीं करते थे।

इन समस्याओं का समाधान करने के लिये हरिजन बालकों को राजकीय विद्यालयों में शिक्षा देने की योजना बनाई गई। सरकार के इस निर्णय ने उच्च वर्गों की क्रोधाग्नि को प्रज्वलित कर दिया। उन्होंने अपने बच्चों को विद्यालय न भेजने की धमकी दी। कैरा जिले में तो बल-प्रयोग भी किया गया। अछूतों के घरों और फ़सलों में आग लगा दी गई और वहाँ के ५ या ६ विद्यालयों को वर्षों बन्द रखा गया। सरकार ने जनता को शान्त करने के लिये अपनी नीति पर पुनर्विचार किया और पिछड़ी जातियो के लिये पृथक् विद्यालयों का निर्माण

करने का निश्चय किया। १८८२ में इस प्रकार के विद्यालय कुल २० थे। इनमें से १६ बम्बई में थे जिनमें ५६४ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे और ४ मध्य प्रदेश में थे जिनमें छात्रों की संख्या १११ थी। इन दो प्रान्तों के अतिरिक्त किसी भी प्रान्त में पिछड़ी जातियों और हरिजनों की शिक्षा की व्यवस्था सरकार द्वारा नहीं की गई थी।

आदिवासियों एवं पहाड़ीजातियों की शिक्षा

१८८२ से पूर्व आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा के लिये सरकार ने कोई व्यवस्था नहीं की थी। केवल बंगाल और आसाम में इस दिशा में सरकार ने कुछ कदम उठाये थे। वस्तुतः इनको शिक्षित बनाने की योजना का श्रेय मिशनरियों को ही प्राप्त है। मिशनरियों ने आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों में अपने धर्म-प्रचार में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की और ईसाई धर्म में परिवर्तित भारतीयों के बच्चों को शिक्षा देने के लिये स्कूलों का निर्माण किया। १८८२ के भारतीय शिक्षा आयोग के अनुसार आदिवासी और पहाड़ी जातियों के छात्रों की संख्या इस प्रकार थी—बम्बई में २,७३८; मध्य प्रदेश में १,४५३ तथा बंगाल और आसाम में १३,०७८। इनके अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में छात्रों की संख्या नगण्य थी क्योंकि वहाँ उनके लिये शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था।[1]

सारांश

शासन-सत्ता का हस्तान्तरण—१८५७ के क्रान्ति के बाद कम्पनी के शासन का अन्त हो गया और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने भारत के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली।

ऐलेनबरा का आदेश-पत्र—इस आदेश पत्र (१८५८) में वुड के घोषणा-पत्र की सभी सिफ़ारिशों के विरुद्ध प्रस्ताव किये गये, क्योंकि घोषणा पत्र में प्रतिपादित शिक्षा-नीति को विद्रोह का कारण माना गया था।

स्टैनले का आदेश-पत्र—इस आदेश-पत्र (१८५९) में वुड की शिक्षा-नीति का समर्थन किया गया और सरकार से प्राथमिक शिक्षा का भार अपने ऊपर लेने के लिये कहा गया।

शिक्षा-विभागों का संगठन—१८५६ के अन्त तक सब प्रान्तों में शिक्षा विभागों का निर्माण हो गया और उनको प्रान्तीय शिक्षा का उत्तरदायित्व दे दिया गया। परन्तु शिक्षा की समुचित व्यवस्था न की जा सकी। इसका कारण यह था कि शिक्षा-विभागों के यूरोपियन अधिकारी भारतीय परिस्थितियों से परिचित नहीं थे। दूसरे, निरीक्षकों की संख्या कम थी।

1. *Report of the Indian Education Commission*. pp. 508-9

सहायता-अनुदान प्रणाली—इस प्रणाली को गैर-सरकारी स्कूलों को आर्थिक सहायता देने के लिये प्रचलित किया गया। परन्तु सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियम जटिल थे, धन-राशि कम थी और वह भी समय पर नहीं दी जाती थी। अतः इस प्रणाली को अधिक सफलता नहीं मिली।

शिक्षा-प्रसार के साधनों का भारतीयकरण—१८५८ के बाद सरकारी कर्मचारियों के लिये इतने कड़े नियम बना दिये गये कि उन्हें वैयक्तिक रूप से शिक्षा-संस्थायें स्थापित करने की स्वतन्त्रता नहीं रह गई। सरकार ने धार्मिक तटस्थता की नीति घोषित की, जिससे मिशनरियों के धर्मप्रचार के कार्य पर अंकुश लग गया। इन दोनों बातों का परिणाम यह हुआ कि भारतीयों को व्यक्तिगत रूप से शिक्षा-प्रसार का कार्य करने के लिये विस्तृत क्षेत्र मिल गया और उन्होंने राष्ट्रीय विद्यालयों का निर्माण किया।

प्राथमिक शिक्षा—स्टैनले के आदेश-पत्र ने प्राथमिक शिक्षा के कई प्रश्नों पर विवाद खड़ा कर दिया। मतैक्यता के अभाव में सभी प्रान्तों ने विभिन्न नीति का अनुसरण किया। फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा की प्रगति तो हुई, परन्तु उसको संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। प्राथमिक शिक्षा के व्यय के लिये स्थानीय कर भी लगाये गये।

माध्यमिक शिक्षा—इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा की आशातीत उन्नति हुई। परन्तु उसमें चार प्रमुख दोष थे—माध्यम के रूप में मातृभाषाओं की उपेक्षा, दीक्षित-शिक्षकों का अभाव, पुस्तकीय ज्ञान पर बल और औद्योगिक शिक्षा का अभाव।

उच्च शिक्षा—उच्च शिक्षा के लिये कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और पंजाब में विश्वविद्यालय स्थापित किये गये। इनका प्रबन्ध सीनेट के द्वारा किया जाता था। सरकार का अत्यधिक हस्तक्षेप होने के कारण विश्वविद्यालयों का स्वाभाविक विकास न हो सका। उच्च शिक्षा के लिये सरकार, मिशनरियों और भारतीयों ने अनेकों कालेजों की स्थापना की।

व्यावसायिक शिक्षा—व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत चिकित्सा, कानून, इंजीनियरिंग, कृषि, पशु-चिकित्सा, वन-विज्ञान, कला और औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये भी प्रबन्ध किया गया। सरकार ने व्यावसायिक शिक्षा की योजना केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये बनाई थी।

विशिष्ट शिक्षा—विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत स्त्रियों और मुसलमानों की शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। स्त्री-शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय कारपेन्टर को है। उसके प्रयास के फल-

स्वरूप महिला प्रशिक्षण-विद्यालयों का भी निर्माण हुआ। मुसलमानों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार ने विशेष आर्थिक सहायता दी और मुस्लिम निरीक्षक नियुक्त किये। पिछड़ी जातियों, हरिजनों, आदिवासियों और पहाड़ी जातियों की शिक्षा की ओर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। परन्तु मिशनरियों ने इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयास किये।

सारांश में इस अवधि में शिक्षा का सर्वांगीण विकास हुआ। सरकार के साथ-साथ भारतीयों ने भी शिक्षा-कार्य में अभिरुचि व्यक्त की।

TEST QUESTIONS

1. Give a brief history of Primary Education in India between 1954 and 1882.
2. What were the defects of the Secondary system of Education ? How could they have been combated ?
3. Trace the history of women's education from 1854 to 1882.
4. Write a short essay on the "Education of Muslims" during the period 1854-1882.
5. Give a brief account of the development of the vocational education from 1854 to 1882.

अध्याय १०

भारतीय शिक्षा-आयोग [हंटर कमीशन]

(१८८२—१८८३)

हम अध्याय ९ में बता चुके हैं कि स्टैनले के आदेश-पत्र ने वुड की शिक्षा-नीति का समर्थन किया था और प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ नये सुझाव दिये थे। १८५९ के पश्चात् भारतीय सरकार ने सिद्धान्त रूप में तो वुड तथा स्टैनले के घोषणा पत्रों में प्रतिपादित शिक्षा-नीति का अनुसरण किया, परन्तु क्रियात्मक पग बहुत कुछ भिन्न ही उठाये। इस प्रकार सिद्धान्त एवं क्रिया में जो विभिन्नता थी, उसकी जाँच की जानी चाहिये थी। परंतु जाँच करता कौन? शासन-सत्ता के हस्तान्तरण से पूर्व कम्पनी का आज्ञा-पत्र प्रत्येक २० वर्ष के पश्चात् संसद में नवीनकरण के लिये आता था। उस अवसर पर भारतीय शिक्षा-नीति का अपरीक्षण हो जाता था। परन्तु अब यह सम्भव नहीं था। फलस्वरूप १८५४ के घोषणा-पत्र की अवहेलना करके भारत-सरकार निस्यन्दन सिद्धान्त पर चलती रही और जन-साधारण की शिक्षा की ओर कोई ठोस क़दम नहीं उठाया गया। १८५९ के आदेश-पत्र में प्राथमिक-शिक्षा पर बल दिया गया था, परन्तु सरकार ने उसके प्रति भी कोई विशेष उत्साह व्यक्त नहीं किया था।

आयोग की नियुक्ति के आधारभूत कारण

१८५४ के उपरान्त सम्पादित कार्य की समुन्नति का सिंहावलोकन करने पर हमें यह बात सहज ही ज्ञात हो जाती है कि स्वयं सरकार द्वारा ही प्राथमिक शिक्षा के प्रसार पर बल देने के पश्चात् भी वास्तविक प्रगति रंच मात्र हीं हुई, क्योंकि सरकार का निस्यन्दन सिद्धान्त में अटल विश्वास था। सहायता-अनुदान-प्राप्त उच्च शिक्षा के विद्यालयों पर सरकार की ओर से १६ लाख रुपया व्यय किया जाता था, परन्तु प्राथमिक एवं मिडिल स्कूलों पर केवल २४½ लाख ही व्यय होता था। अतः अधिकांश लोगों का मत था कि १८५४ के घोषणा-पत्र के उद्देश्य की राज्य ने पूर्ति नहीं की थी। वुड के आदेश-पत्र में आशा व्यक्त की गई थी कि सहायता-अनुदान-प्रणाली का अनुसरण करके एक समय ऐसा आ जायगा जब केवल व्यक्तिगत विद्यालय रह जायेंगे और राजकीय स्कूल बन्द कर दिये जायेंगे। इससे मिशनरियों को बड़ी-बड़ी आशायें थीं। परन्तु १८५८ में धार्मिक तटस्थता की नीति की उद्घोषणा करके सरकार, मिशनरियों पर कड़ी नज़र रखने लगी थी। सहायता-अनुदान देने में राज्य ने उनके प्रति किसी प्रकार की उदारता का व्यवहार नहीं किया। इससे मिशनरियों को बड़ी निराशा हुई। इसके अतिरिक्त सरकार ने उन स्थानों पर राजकीय विद्यालय स्थापित किये, जहाँ मिशन स्कूल थे। सरकार के इस कार्य से मिशनरी और भी अधिक रुष्ट हो गये। वे नहीं चाहते थे कि राजकीय स्कूल मिशन विद्यालयों के प्रतिद्वन्द्वी बनें। मिशन स्कूलों में शिक्षा, धर्म-प्रचार का साधन था साध्य नहीं। इसके विपरीत, राजकीय स्कूलों की शिक्षा में धर्म का कोई स्थान नहीं था। फलस्वरूप मिशनरियों को आशंका होने लगी थी कि कहीं भारतीय, मिशन स्कूलों का पूर्णतः वहिष्कार न कर दें। मिशनरी तो शिक्षा-क्षेत्र में अपना एकाधिकार चाहते थे। अतः उन्होंने विक्षुब्ध होकर आन्दोलन करना प्रारम्भ कर दिया कि भारतीय शिक्षा-नीति वुड के घोषणा-पत्र के प्रतिकूल जा रही है। इस आन्दोलन की लोल लहरों से न केवल भारत, अपितु इंगलैन्ड भी सरावोर हो गया। वहाँ के कुछ उत्साही निवासियों ने 'जनरल काउन्सिल ऑफ़ एजूकेशन इन इंडिया' (General Council of Education in India) नामक एक संस्था स्थापित की। इसमें लार्ड हैलीफ़ेक्स (Halifax) एवं लार्ड लारेन्स (Lawrence) ऐसे सुविख्यात व्यक्ति सम्मिलित थे। जब १८८२ में ब्रिटिश संसद ने भारत के नये गवर्नर-जनरल लार्ड रिपन (Ripon) की नियुक्ति की, तब इस संस्था के कुछ सदस्यों के एक शिष्ट-मंडल ने उससे भेंट की और भारतीय शिक्षा-नीति की जांच करने की

प्रार्थना की । लार्ड रिपन ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा : "१८५४ के घोषणा-पत्र ने वस्तुतः भारतीय शिक्षा-नीति को स्पष्ट एवं ज़ोरदार शब्दों में निर्धारित कर दिया है और मेरी इच्छा भी उसी नीति पर चलने की है । भारत पहुँचने पर मेरा यह कर्त्तव्य होगा कि वहाँ की उपलब्ध सामग्री के आधार पर इस प्रश्न की पूर्ण जाँच करूँ । यदि मैं यह स्वीकार करूँ कि इस समय भी भारत में निर्धनों की प्राथमिक शिक्षा के विकास एवं प्रसार की आपकी इच्छा से मुझे पूर्ण सहानुभूति है, तो इस निर्णय के लिये मेरे ऊपर पक्षपात का दोष लगाया जा सकता है ।"

आयोग की नियुक्ति

भारत पहुँच कर लार्ड रिपन ने ३ फ़रवरी, १८८२ को गर्वनर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य सर विलियम हंटर (William Hunter) की अध्यक्षता में प्रथम 'भारतीय शिक्षा-आयोग'(Indian Education Commission) की नियुक्ति की । इसी आयोग को 'हंटर कमीशन'(Hunter Commmission) भी कहा जाता है । इस आयोग में सर हंटर के अतिरिक्त २० सदस्य और थे । इनमें से ७, भारतीयों के प्रतिनिधि थे—सैयद महमूद, भूदेव मुकर्जी, आनन्द मोहन बोस, के० टी तैलंग, पी० रंगानन्द मुदालियर, महाराजा जीतेन्द्र मोहन टैगोर और हाजी ग़ुलाम । पादरियों के प्रतिनिधि, डा० डब्ल्यू मिलर (W. Miller) थे । मैसूर के शिक्षा-संचालक, बी० एल० राइस (B. L. Rice) इस आयोग के मन्त्री थे ।

आयोग का कार्य-क्षेत्र एवं उद्देश्य

इस आयोग का मुख्य कार्य-क्षेत्र भारत में प्राथमिक शिक्षा की जाँच करना था, क्योंकि सरकार ने वुड के घोषणा-पत्र की अवहेलना करके प्राथमिक शिक्षा की अपेक्षा उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया था । इंगलैण्ड में १८८० में जन-शिक्षा का प्रसार करने के विचार से अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिये 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' (Elementary Education Act) पारित किया जा चुका था । इसी आदर्श से प्रेरित होकर आयोग को प्राथमिक शिक्षा की सूक्ष्म जाँच करने का भार सौंपा गया था । जिस प्रस्ताव द्वारा आयोग की नियुक्ति की गई थी, उसमें आयोग के उद्देश्य को इन शब्दों में अंकित किया गया था : "कमीशन का कर्त्तव्य होगा विशेष रूप से इस बात की जाँच करना कि १८५४ के घोषणा-पत्र के सिद्धान्तों को किस प्रकार कार्या-

न्वित किया गया है और ऐसे उपायों का सुझाव देना जो उस घोषणा-पत्र में निर्धारित नीति को उत्तरोत्तर कार्यान्वित करने के हेतु कमीशन के मतानुसार वांछनीय प्रतीत होते हों।"[1] संक्षेप में कमीशन को अधोलिखित बातों की जाँच करने के लिये कहा गया था :—

१. क्या सरकार ने उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा की ओर अधिक ध्यान देकर प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा की है ?
२. प्रारम्भिक शिक्षा की क्या स्थिति है और उसके विकास के लिये क्या उपाय किये जाने चाहिये ?
३. राजकीय विद्यालयों की क्या स्थिति है और भारतीय शिक्षा के लिये उनकी आवश्यकता है या नहीं ?
४. देश की शिक्षा-व्यवस्था में मिशन स्कूलों का क्या स्थान है ?
५. शिक्षा-क्षेत्र में वैयक्तिक प्रयासों के प्रति सरकार की नीति क्या होनी चाहिये ?

नियुक्ति के उपरान्त आयोग ने ७ सप्ताह कलकत्ते में कार्य किया। तद्-उपरान्त उसने ८ माह तक सम्पूर्ण देश में भ्रमण किया। इस अवधि में उसने साक्षियों से बयान लेकर शिक्षा-सम्बन्धी सामग्री एकत्रित की। आयोग ने प्रान्तीय सरकारों से भी रिपोर्टें माँगीं। इस प्रकार बड़े परिश्रम से लगभग १० माह के पश्चात् मार्च १८८३ में आयोग ने ६०० से अधिक वृहदाकार पृष्ठों की एक रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की।

आयोग की सिफ़ारिशें और सुझाव

अपनी रिपोर्ट में आयोग ने भारतीय शिक्षा पर एक विहंगम दृष्टिपात करने के उपरान्त भावी शिक्षा-प्रसार के लिये अति महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये और शिक्षा के प्रत्येक अङ्ग के सम्बन्ध में अपनी सिफ़ारिशों को लेखबद्ध किया। यहाँ इस बात की ओर संकेत कर देना अनुपयुक्त न होगा कि आयोग ने १८५४ के घोषणा-पत्र की बातों को ही आंशिक परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया। उसने अपनी ओर से कोई नई बात नहीं बताई। शिक्षा के जिन अङ्गों पर आयोग ने अपने विचार प्रकट किये उनका वर्णन क्रम से नीचे किया जा रहा है।

1. "It will be the duty of the Commission to enquire particularly into the manner in which effect has been given to the principles of the Despatch of 1854; and to suggest such measures as it may think desirable in order to the further carrying out of the policy therein laid down." *Resolution appointing the Commission*, 1882.

१. प्राथमिक शिक्षा

आयोग का मुख्य कार्य-क्षेत्र प्राथमिक शिक्षा की जाँच करना था। अतः आयोग ने इसमें सबसे अधिक रुचि व्यक्त की और स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि सरकार वास्तव में जन-शिक्षा का प्रसार करना चाहती है, तो उसे अतीत की अपेक्षा वर्तमान में प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अधिक क्रिया-शील होना आवश्यक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भारतीय शिक्षा-आयोग ने प्राथमिक शिक्षा के प्रत्येक अङ्ग की ओर, जैसे—प्राथमिक शिक्षा की नीति, संगठन, पाठ्य-क्रम, आर्थिक व्यवस्था, अध्यापकों का प्रशिक्षण आदि के सम्बन्ध में अपने सुझाव और सिफारिशें प्रस्तुत कीं।

प्राथमिक शिक्षा की नीति

प्राथमिक शिक्षा की नीति के सम्बन्ध में आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये:—

१. प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य जन-साधारण में शिक्षा का प्रसार करना होना चाहिये न कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये एक साधन मात्र।

२. प्राथमिक शिक्षा में ऐसे विषयों को स्थान देना चाहिये जो जन-सामान्य के व्यावहारिक जीवन में लाभप्रद सिद्ध हों।

३. प्राथमिक शिक्षा का माध्यम देशी भाषायें होनी चाहिये।

४. प्राथमिक शिक्षा को सरकार का पूर्ण संरक्षण प्राप्त होना चाहिये।

५. प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार को निम्न पदों पर नियुक्तियाँ करते समय उन व्यक्तियों को प्राथमिकता देनी चाहिये जिन्हें लिखने-पढ़ने का सामान्य ज्ञान हो।

६. भारत की पिछड़ी हुई जातियों, आदिवासियों आदि की शिक्षा की दिशा में सरकार द्वारा भागीरथ प्रयत्न किये जाने चाहिये।

७. "जन-साधारण की प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था, उसका प्रसार और सुधार भी शिक्षा-क्षेत्र का वह अङ्ग घोषित किया जाय, जिसकी ओर राज्य के सतत प्रयास पहिले से भी अधिकाधिक मात्रा में अब केन्द्रीभूत किये जायँ।"[1]

---

1. "It is desirable, in the present circumstances of the country, to declare the elementary education of the masses its provision, extension, and improvement, to be that part of the educational system to which the strenuous efforts of the State should now be directed in a still larger measure than heretofore." *Indian Education Commission Report.*

संगठन

इङ्गलैण्ड में १८७० एवं १८७६ के 'शिक्षा-अधिनियमों' (Education Acts) के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का भार 'काउण्टी कौंसिल्स' (County Councils) को सौंप दिया गया था। इसी का अनुकरण करके लार्ड रिपन ने भारत में प्राथमिक शिक्षा के संगठन का कार्य नगरपालिकाओं (Municipal Boards) और जिला-परिषदों (District Boards) के हाथ में दे दिया। शिक्षा-सम्बन्धी सभी बातों का दायित्व—प्रबन्ध, विकास, व्यय, निरीक्षण—इन्हीं स्थानीय संस्थाओं को दे दिया गया। यह व्यवस्था करके सरकार ने अपने को जन-साधारण को शिक्षित करने के भार से मुक्त कर लिया।

पाठ्य-क्रम

आयोग ने पाठ्य-क्रम के सम्बन्ध में सभी प्रान्तों को स्वतन्त्रता दे दी। वे अपनी परम्परा के अनुसार पाठ्य-क्रम निर्धारित कर सकते थे। परन्तु आयोग ने कुछ जीवनोपयोगी विषयों को पाठ्य-क्रम में सम्मिलित करने की सिफ़ारिश की, जैसे—भौतिक विज्ञान, क्षेत्रमिति, चिकित्सा, बही-खाता और कृषि।

आर्थिक व्यवस्था

भारतीय शिक्षा-आयोग ने प्राथमिक-शिक्षा के आय-व्यय के विषय में कुछ बहुमूल्य सुझाव दिये। आय के साधनों की ओर संकेत करते हुये आयोग ने कहा कि नगरपालिकायें और ज़िला-परिषदें प्राथमिक शिक्षा के लिये एक पृथक् कोष का निर्माण करें।[1] व्यय की रूप-रेखा निश्चित करते हुए आयोग ने बताया कि ग्रामों तथा नगरों के प्राथमिक विद्यालयों के कोष पृथक् कर दिये जायं, जिससे ग्रामों में व्यय किया जाने वाला धन नगरों में व्यय न हो सके। स्थानीय कोष के सम्बन्ध में आयोग ने सुझाव दिया कि उसे केवल प्राथमिक शिक्षा पर ही व्यय किया जाय। किसी भी दशा में इस कोष के धन को उच्च शिक्षा या अन्य किसी कार्य के लिये व्यय न किया जाय, जैसा कि अब तक किया जा रहा था। आयोग ने प्रान्तीय सरकारों पर भी प्राथमिक शिक्षा का दायित्व रखा और कहा कि प्रान्तीय स्थानीय-कोष का $\frac{1}{2}$ अथवा सम्पूर्ण व्यय

1. "That Primary Education should be declared to be that part of the whole system of Public Instruction which possesses an almost exclusive claim on local funds set apart for education and a large claim on provincial revenues." *Indian Education Commission.*

का $\frac{1}{3}$ भाग सहायता के रूप में प्रदान किया जाय। परन्तु भारत की तत्कालीन विशाल जनसंख्या के लिये यह आर्थिक सहायता अति अल्प थी।

अध्यापकों का प्रशिक्षण

हण्टर कमीशन ने प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये सिफ़ारिश की कि अध्यापकों को दीक्षित किया जाय और इस कार्य के लिये नार्मल स्कूल खोले जायँ। प्राथमिक पाठशालाओं के शिक्षकों को दीक्षित करने के लिये कमीशन ने निम्नांकित सिफ़ारिशें कीं :—

१. प्रशिक्षण विद्यालयों का निर्माण ऐसे स्थानों पर किया जाय, जहाँ से वे समस्त प्राथमिक पाठशालाओं की स्थानीय माँगों की पूर्ति कर सकें। प्रत्येक विद्यालय-निरीक्षक के क्षेत्र में कम-से-कम एक नार्मल स्कूल की स्थापना की जाय।[1]

२. नार्मल स्कूलों को सफल बनाने के लिये यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक निरीक्षक अपने अधीनस्थ प्रशिक्षण-विद्यालय में रुचि ले और उसके कुशल संचालन की व्यवस्था करे।

३. प्रान्तीय सरकारों द्वारा प्राथमिक शिक्षा के लिये स्वीकृत धन-राशि में से प्रारम्भिक विद्यालयों के निरीक्षण तथा नार्मल स्कूलों की स्थापना की उचित व्यवस्था की जाय।[2]

एक टिप्पणी

भारतीय शिक्षा-आयोग ने प्राथमिक शिक्षा के प्रायः सभी अङ्गों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सुझाव दिये। आयोग की हार्दिक अभिलाषा थी कि भारत सरकार प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहन देकर जन-साधारण में शिक्षा का प्रसार करे। प्राथमिक विद्यालयों को नगरपालिकाओं तथा ज़िला-परिषदों को सौंपने

1. "We recommend that the supply of Normal Schools, whether Government or aided, be so localised as to provide for the local requirements of all primary schools, whether Government or aided, within the division under each Inspector." *Indian Education Commission Report.*

2. "We recommend that the first charges on provincial funds assigned for Primary Education be the cost of the direction and the provision of an adequate supply of Normal Schools." *Indian Education Commission Report.*

से शिक्षालयों का बड़ा उपकार हुआ। कारण यह है कि जिस कार्य को करने के लिये सरकार के पास समय नहीं था, उसको स्थानीय संस्थायें सम्पादित कर सकती थीं। इस प्रकार जन-शिक्षा की समस्या के समाधान की आशा दृष्टिगोचर होने लगी। इसके अतिरिक्त,आयोग की सिफ़ारिश के अनुसार स्थानीय-कोष केवल प्राथमिक शिक्षा पर ही व्यय किया जाने लगा। फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हो गया। सरकार ने आयोग के सुझावों को स्वीकार करके प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया।

२. देशी शिक्षा[1]

देशी शिक्षा से आयोग का अभिप्राय उस शिक्षा से था जो देश की प्राचीन परम्पराओं पर आधारित भारतीयों द्वारा संचालित देशी विद्यालयों (Indegenous Schools) में दी जा रही थी। आयोग ने इन विद्यालयों के महत्व को स्वीकार करते हुए सिफ़ारिश की कि सरकार इनको संरक्षण दे और शिक्षा की नवीन संरचना में इनको सम्मिलित करे। कमीशन ने अनुभव किया कि अति दीर्घ काल से कठिनाइयों का सामना करने पर भी इन विद्यालयों का अस्तित्व इस बात का ज्वलन्त प्रमाण था कि वे सजीव तथा लोकप्रिय थे। कमीशन के मतानुसार सरकार से मान्यता तथा आर्थिक सहायता प्राप्त करके देशी पाठशालायें राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकती थीं।[2]

देशी पाठशालाओं के सम्बन्ध में आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये :—

१. सभी देशी पाठशालाओं को सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिया जाय।
२. उनके प्रवेश पाने के लिये छात्रों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया जाय।
३. उनमें पढ़ने वाले निर्धन विद्यार्थियों को छात्र वृत्तियाँ दी जायँ।
४. देशी विद्यालयों के संचालन का भार नगरपालिकाओं तथा ज़िलापरिषदों को सौंपा जाय। परन्तु विद्यालयों को इन संस्थाओं के अन्तर्गत रहने या न रहने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।

---

1. Indigenous Education.
2. "They have survived a severe competition, and have thus proved that they possess both vitality and popularity... The indigenous schools, if recognised and assisted, may be expected to improve their method and fill a useful position in the State System of National Education." *Indian Education Commission Report.*

५. इन पाठशालाओं के पाठ्य-क्रम में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय। पाठ्य-क्रम में लाभप्रद विषयों को सम्मिलित करने के लिये सरकार द्वारा विशेष आर्थिक सहायता दी जाय।

६. देशी शिक्षालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाय।

एक टिप्पणी

आयोग ने देशी शिक्षा के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये, वे वस्तुतः अति प्रशंसनीय थे। परन्तु एक सुझाव ऐसा था जिसे देकर देशी शिक्षा का महान् अहित किया गया। आयोग ने कहा कि देशी विद्यालयों को आर्थिक सहायता परीक्षा-फल (Payment by Results System) के अनुसार दी जाय। आयोग ने इस प्रथा को उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा के लिये अनुपयुक्त बताया, परन्तु इसी को देशी शिक्षा के लिये उचित ठहराया। यद्यपि सरकार ने आयोग के बहुत कम सुझावों को स्वीकृत किया, परन्तु इस सुझाव पर अमल किया। परिणामस्वरूप देशी विद्यालयों की स्वाभाविक प्रगति अवरुद्ध हो गई और कुछ समय उपरान्त वे निष्प्राण हो गये।

३. माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में आयोग ने केवल दो बातों के विषय में अपने सुझाव दिये—(१) माध्यमिक शिक्षा में विस्तार करने के उपाय, और (२) माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करने की विधि।

शिक्षा-प्रसार के सम्बन्ध में आयोग का सुझाव था कि सरकार माध्यमिक शिक्षा को सुयोग्य एवं बुद्धिमान भारतीयों के हाथों में सौंप कर स्वयं उसके उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाय। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सरकार सहायता-अनुदान प्रणाली का अनुसरण करे। यदि किसी क्षेत्र में अंग्रेजी की शिक्षा के लिये माध्यमिक स्कूलों की स्थापना आवश्यक प्रतीत हो, तो उनको सहायता-अनुदान की प्रणाली पर स्थापित किया जाय।[1] आयोग को विश्वास था कि कुशल भारतीयों पर माध्यमिक शिक्षा का भार होने से उसकी प्रगति तीव्र हो जायगी और शीघ्र ही वह जन-साधारण की माँग की पूर्ति कर सकेगी।

अब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि यदि एक क्षेत्र की जनता इतनी धनी नहीं

1. "Secondary Schools for instruction in English be hereafter established by the State preferably on the footing of the System of Grant-in-Aid. *Indian Education Commission Report.*

है कि वह सहायता-अनुदान से माध्यमिक विद्यालय को चला सके, तो क्या किया जाय ? इसके उत्तर में आयोग ने कहा कि ऐसे स्थान पर सरकार स्कूल का निर्माण कर सकती है। परन्तु आयोग ने इस बात पर बल दिया कि ऐसा स्कूल एक ज़िले में एक ही होना चाहिये। इस स्कूल की स्थापना के पश्चात् सरकार को माध्यमिक शिक्षा के प्रसार का कार्य ज़िले के निवासियों पर छोड़ देना चाहिए। यदि वे चाहें तो अपने विद्यालयों को लोकप्रिय बनाने के लिए राजकीय विद्यालयों से कम शुल्क ले सकते हैं।

माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करने की विधि पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कमीशन ने लिखा कि हाई स्कूल की शिक्षा को दो भागों में विभक्त कर दिया जाय—(१) अ-कोर्स, एवं (२) ब-कोर्स। प्रथम कोर्स उन विद्यार्थियों के लिए हो जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश करना चाहते हों। द्वितीय कोर्स अधिक व्यावहारिक हो और उसका उद्देश्य नवयुवकों को व्यावसायिक तथा असाहित्यिक कार्यों के लिए तैयार करना हो।[1]

एक टिप्पणी

आयोग ने शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में भी अपने सुझाव दिये। परन्तु वे अत्यधिक निराशाजनक थे। आयोग ने हाई स्कूल के स्तर पर स्पष्ट रूप से अंग्रेज़ी का पक्ष लिया और मातृभाषा के विषय में मौन रहा। उसने मिडिल स्कूलों के लिए भी शिक्षा का कोई माध्यम निश्चित नहीं किया। इसका निर्णय परिस्थितियों के अनुसार मिडिल स्कूलों के प्रबन्धकों पर छोड़ दिया गया। आयोग की इन ढुल-मुल सिफ़ारिशों का परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक स्तर पर भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जा सका।

४. उच्च शिक्षा

यद्यपि भारतीय शिक्षा-आयोग को उच्चशिक्षा की जाँच करने का आदेश नहीं दिया गया था, परन्तु फिर भी उसने कॉलेज की शिक्षा के विषय में कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये। हम इनकी ओर नीचे संकेत कर रहे हैं :—

१. कॉलेजों को सहायता-अनुदान देते समय शिक्षकों की संख्या, कालेजों के

1. "We, therefore, recommend that in the upper classes of High Schools there be two divisions; one leading to the Entrance Examination of the Universities, the other of a more practical character, intended to fit youths for commercial non-literary pursuits." *Indian Education Commission Report*..

व्यय, उनकी कार्य-क्षमता एवं स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाय।

२. आवश्यकता पड़ने पर कॉलेजों को भवन-निर्माण, फ़र्नीचर, पुस्तकालय और शिक्षण-सामग्री के लिये विशेष सहायता-अनुदान दिया जाय।

३. कॉलेजों के अध्यापकों की नियुक्ति के समय यूरोप के विश्वविद्यालयों में शिक्षित भारतीयों को वरीयता दी जाय।

४. कालेजों में विभिन्न प्रकार के विस्तृत पाठ्य-क्रमों का समावेश किया जाय जिससे कि विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार विषयों का चयन कर सकें।

५. छात्रों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये एक ऐसी पाठ्य-पुस्तक की रचना की जाय जिसमें प्रकृति-धर्म तथा मानव-धर्म के सिद्धान्तों की पूर्ण व्याख्या हो।

६. कॉलेजों के प्रधानाचार्य या अध्यापकों द्वारा एक ऐसी व्याख्यान-माला जारी की जाय जिसमें विद्यार्थियों को मानव तथा नागरिक के कर्त्तव्य बताये जायँ।

७. वैयक्तिक कॉलेजों को राजकीय कॉलेजों से कम शुल्क लेने का अधिकार दिया जाय।

८. कॉलेजों में निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी एक निश्चित संख्या से अधिक न रखे जायँ।

९. योग्य विद्यार्थियों को यूरोप में शिल्प-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करने के लिये छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जायँ।

५. शिक्षा विभाग

१८५४ के घोषणा-पत्र के अनुसार प्रान्तीय शिक्षा-विभागों का निर्माण हुआ था। इन विभागों के दोषों का उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है। शिक्षा-विभागों की जांच के दौरान में आयोग का ध्यान उन दोषों की ओर आकृष्ट हुआ और उनको दूर करने के लिये आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये:—

१. प्रत्येक प्रान्त में निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की जाय जिससे कि समस्त विद्यालयों का निरीक्षण वहाँ जा कर किया जा सके।

२. निरीक्षकों द्वारा ली जाने वाली परीक्षायें प्रत्येक विद्यालय में ली जायँ। इस कार्य के लिये समीपवर्ती विद्यालयों के छात्रों को एक शिक्षालय में एकत्रित न किया जाय।

३. सहायता-अनुदान पाने वाले प्रत्येक विद्यालय का निरीक्षण अनिवार्य रूप से किया जाय।

४. सहायक निरीक्षकों के वेतन में वृद्धि की जाय।
५. जिला-निरीक्षकों के पदों पर यूरोपियनों की अपेक्षा भारतीयों को अधिक संख्या में नियुक्त किया जाय।

शिक्षा-विभागों के सम्बन्ध में आयोग की ये सिफ़ारिशें अत्युत्तम न थीं। परन्तु वे इतने दबे हुए शब्दों में की गई थी कि सरकार ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप शिक्षा-विभागों में वांछित सुधार न हो सका।

६. सहायता-अनुदान-प्रणाली

वुड के घोषणा-पत्र में प्रतिपादित सहायता-अनुदान-प्रणाली को भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित किया गया था, परन्तु सभी प्रान्तों में इसका रूप भिन्न था। उदाहरणतः बम्बई में 'परीक्षा-फल के अनुसार वेतन-प्रणाली' (Payment by Results System), मद्रास में वेतन-अनुदान-प्रणाली (Salary-Grant System), तथा पश्चिमोत्तर प्रान्त, मध्य प्रान्त और कुछ सीमा तक पंजाब में 'नियत कालीन-प्रणाली (Fixed Period System) का प्रचलन था। शिक्षा-आयोग ने इन समस्त प्रणालियों के गुण-दोषों का विवेचन करके निम्नांकित सुझाव दिये—

१. 'परीक्षाफल के अनुसार वेतन-प्रणाली' को उच्च तथा मध्यमिक शिक्षा के लिये प्रयोग न किया जा कर सामान्यतः प्राथमिक शिक्षा के लिये प्रयोग किया जाय। अन्य प्रणालियों का अनुसरण करने के लिये प्रान्तों को पूर्ण स्वतंत्रता रही।
२. प्रान्त के समस्त विद्यालयों की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों को ध्यान में रख कर सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियमों में संशोधन किया जाय।
३. उपर्युक्त नियमों के संशोधन के समय ग़ैर-सरकारी स्कूलों के प्रबन्धकों का परामर्श अनिवार्य रूप से लिया जाय।
४. सहायता-अनुदान के लिये निर्धारित किये गये नियमों को समाचार-पत्रों में प्रकाशित करवा दिया जाय जिससे कि सभी लोग उनसे अवगत हो जायँ।
५. सहायता-अनुदान के नियमों को हिन्दी में अनुवादित कराया जाय और उनको ग़ैर-सरकारी स्कूलों के प्रबन्धकों के पास सूचनार्थ भेज दिया जाय।
६. आर्थिक सहायता देते समय प्रत्येक विद्यालय की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय।
७. जो विद्यालय पिछड़े हुए क्षेत्रों में हैं या जिनको पास आय के साधनों की कमी है, उन्हें आर्थिक सहायता दी जाय।

८. सहायता-अनुदान के सम्बन्ध में विद्यालयों से प्राप्त प्रार्थना-पत्रों पर शिक्षा-विभाग द्वारा गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय। उन विद्यालयों का निरीक्षण किया जाय और तत्पश्चात् उनके पास शिक्षा-विभाग का निर्णय भेज दिया जाय।

९. सहायता-अनुदान देने में किसी प्रकार का पक्षपात न किया जाय। किसी ग़ैर-सरकारी विद्यालय को इसलिये अधिक धन-राशि न दी जाय क्योंकि वह राजकीय विद्यालय के निकट है।

१०. भवन-निर्माण, फ़र्नीचर, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, शिक्षण-सामग्री आदि के लिये विद्यालयों को विशेष सहायता-अनुदान एक निश्चित अवधि तक दिया जाय। इसके सम्बन्ध में भी नियमों का निर्माण किया जाय।

११. विद्यालयों को विशेष आर्थिक सहायता देकर विशिष्ट विषयों के शिक्षण की व्यवस्था की जाय।

१२. सहायता-अनुदान की धन-राशि विद्यालयों को निश्चित समय पर दी जाय और उसे अकारण बन्द या समाप्त न किया जाय।

१३. सहायता-अनुदान सम्बन्धी नियमों को अधिक से अधिक उदार बनाने का प्रयास किया जाय।

१४. आर्थिक सहायता प्राप्त विद्यालयों के आन्तरिक प्रबन्ध में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय।

१५. सहायता-अनुदान प्राप्त शिक्षालयों के प्रबन्धकों को परामर्श देने के लिये विशेष शिक्षा-प्रधिकारियों की नियुक्ति की जाय।

एक टिप्पणी

आयोग के सहायता-अनुदान सम्बन्धी सुझाव अति सराहनीय थे। सरकार ने लगभग इन सभी सुझावों को स्वीकार करके भारतीय शिक्षा का महान् हित किया। ग़ैर-सरकारी स्कूलों को निश्चित समय पर पर्याप्त धन-राशि मिलने लगी, जिससे उनकी रूप-रेखा पूर्णतः परिवर्तित हो गई। शिक्षा के लिये राज-कोष से धन प्राप्त होने के कारण भारतीय, शिक्षा के क्षेत्र में उतर आये और उन्होंने विद्यालयों के नवनिर्माण में विलक्षण उत्साह का परिचय दिया। भारतीय शिक्षा तीव्र वेग से प्रवाहित होने लगी और शिक्षा के जो अवयव अधूरे या उपेक्षित छोड़ दिये गये थे उन्हें अधिक पुष्ट करने की चेष्टा की जाने लगी।

७. शिक्षा के साधनों का भारतीयकरण

१८५४ के घोषणा-पत्र में यह आशा व्यक्त की गई थी कि सरकार सहायता-अनुदान-प्रणाली को प्रचलित करके कुछ समय उपरान्त शिक्षा के क्षेत्र से पृथक् हो जाय। शिक्षा-विभाग के पदाधिकारियों ने इस आदेश की ओर रंच-मात्र भी ध्यान न देकर राजकीय विद्यालयों का निर्माण अति तीव्र गति से किया। मिशनरियों ने सरकार की इस नीति का घोर विरोध किया। उनका कहना था कि राजकीय विद्यालयों को बन्द कर देना चाहिये या उनका प्रबन्ध ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को सौंप देना चाहिये। केवल ऐसी ही दशा में व्यक्तिगत विद्यालयों के प्रति सरकार का व्यवहार निष्पक्ष हो सकेगा। मिशनरियों की इस माँग को ध्यान में रख कर शिक्षा-आयोग से दो बातों पर सुझाव देने के लिये कहा गया—(१) क्या सरकार शिक्षा से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर दे? एवं (२) यदि हाँ, तो किस प्रकार?

प्रथम प्रश्न अत्यधिक जटिल था। इस विषय में दो विचारधारायें प्रवाहित हो रही थीं। प्रथम विचारधारा के व्यक्तियों का कथन था कि सरकार को शिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं रखना चाहिये। द्वितीय विचारधारा के समर्थक इसके विपरीत यह कहते थे कि शिक्षा का प्रसार करना सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य है। दोनों विचारधाराओं का गहन अध्ययन करने के उपरान्त आयोग इस परिणाम पर पहुँचा कि शिक्षा का कार्य भारतीयों को सौंप कर सरकार को इस भार से मुक्त हो जाना ही श्रेयस्कर होगा। अपने इस निर्णय पर पहुँचने के लिये आयोग ने निम्नलिखित दो कारणों का उल्लेख किया :—

१. सरकार के पास धन का अभाव है। अतः वह शिक्षा की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई माँग की पूर्ति करने में असमर्थ है। ऐसी दशा में सहायता-अनुदान-प्रणाली द्वारा ग़ैर-सरकारी शिक्षा-संस्थाओं को प्रोत्साहित करना अधिक विवेकपूर्ण कार्य होगा।
२. राजकीय शिक्षालयों पर अत्यधिक धन व्यय हो जाता है। यदि इन शिक्षालयों को स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया जाय, तो काफ़ी बचत हो सकती है और उस धन से अधिक व्यक्तिगत विद्यालयों को आर्थिक सहायता दी जा सकती है।

इन कारणों को दृष्टिकोण में रखते हुए कमीशन ने अधोलिखित दो सुझाव प्रस्तुत किये :—

१. सरकार को राजकीय विद्यालयों का विस्तार स्थगित कर देना चाहिये।
२. जैसे ही कोई सार्वजनिक या व्यक्तिगत संस्था किसी राजकीय विद्यालय

का भार अपने ऊपर ले ले, वैसे ही सरकार को उस विद्यालय से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर देना चाहिये।

उपरोक्त सुझावों के फलस्वरूप निम्नांकित दो नये प्रश्न उपस्थित हुए :-

१. राजकीय विद्यालयों को किस संस्था को हस्तान्तरित किया जाय ?

२. विद्यालयों को किन शर्तों पर हस्तान्तरित किया जाय ?

मिशनरियों का विरोधी होने के कारण आयोग ने उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर में लिखा :—

१. प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण रूप से स्थानीय परिषदों और नगरपालिकाओं को सौंप कर सरकार अपने को उससे अलग कर ले।

२. उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा को शिक्षा-विभाग के संरक्षण में ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया जाय।

सरकार ने आयोग के प्रथम सुझाव को स्वीकार कर लिया और सभी प्राथमिक विद्यालयों को स्थानीय संस्थाओं के हाथ में सौंप दिया। परन्तु दूसरे सुझाव को सरकार ने स्वीकृत नहीं किया और उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा में अपनी रुचि को यथावत् बनाये रखा।

८. मिशनरी प्रयास

इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि भारतीय शिक्षा-आयोग की नियुक्ति का प्रमुख कारण मिशनरियों का आन्दोलन था। वे लोग आयोग से बड़ी-बड़ी आशायें लगाये बैठे थे। परन्तु आयोग की शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशों से उनकी सभी आशाओं पर तुषारापात हो गया। आयोग ने प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित करने का सुझाव दिया। इसमें मिशनरियों को कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि उन्हें प्राथमिक शिक्षा में कोई विशेष रुचि नहीं थी। मिशनरियों को पूर्ण विश्वास था कि माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा का प्रबन्ध उनके हाथ में आ जायगा। परन्तु ऐसा न हुआ। आयोग ने निःशंक भाव से घोषित किया कि भारत ऐसे विशाल देश की शिक्षा का भार केवल एक दल को सौंप देना उचित न होगा और विशेषतः मिशनरियों को, जो उदार और सच्चे होते हुए भी जन-साधारण की विभिन्न भावनाओं से सहानुभूति रखने में असमर्थ हैं।[1] अतः आयोग ने सिफारिश की कि उच्च तथा

1. "In a country with such varied needs as India, we should deprecate any measure which would throw excessive influence over higher education into the hands of any single agency ; and particularly into the hands of an agency which, however benevolent and earnest, cannot-

माध्यमिक शिक्षा को भारतीय प्रबन्धकों के हाथ में ही सौंपा जाय। आयोग के इस निर्णय ने मिशनरियों की सभी आशाओं तथा अभिलाषाओं को चूर-चूर कर दिया। उन्हें यह विदित हो गया कि उनके शिक्षालयों को भारतीय विद्यालयों से निम्नतर स्थान प्रदान किया गया है। आयोग के इस निर्णय से भारतीयों को आभास हो गया कि उन्हें शिक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना है। ऐसा करके ही वे राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली को पुनर्संगठित करके उसका विकास कर सकेंगे।

६. धार्मिक शिक्षा

मिशनरी सदैव से ही धार्मिक शिक्षा पर बल देते चले आ रहे थे। धार्मिक शिक्षा के पक्ष में उनका दृष्टिकोण निम्नांकित था :—

१. वास्तविक शिक्षा को धर्म से पृथक् नहीं किया जा सकता है। अतः प्रत्येक विद्यालय में धार्मिक शिक्षा का दिया जाना अनिवार्य होना चाहिये।

२. मिशनरियों को अपने स्कूलों में बाइबिल की शिक्षा देने की स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये।

३. सरकार की धार्मिक तटस्थता की नीति भारतीयों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए कल्याणकारी नहीं है।

मिशनरियों के अतिरिक्त ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज ने भी अपने धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा को स्थान देने की माँग की। कट्टर हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने अपने धर्म की शिक्षा के लिये बल दिया। भारतीय शिक्षा-आयोग ने धार्मिक शिक्षा की समस्या पर गम्भीर विचार करने के उपरान्त अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. राजकीय विद्यालयों में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा न दी जाय।

२. ग़ैर-सरकारी स्कूलों में धार्मिक शिक्षा प्रदान की जा सकती है और सरकार उस शिक्षा की ओर कोई ध्यान न दे।

---

on all points be in sympathy with the mass of the community. . . . At the same time we think it well to put on record our unanimous opinion that withdrawal of direct departmental agency should not take place in favour of missionary bodies and that departmental institutions of the higher order should not be transferred to missionarry management." *Indian Education Commission Report*

३. धार्मिक शिक्षा देने वाले विद्यालयों को सहायता-अनुदान देने का आधार उनकी लौकिक शिक्षा होनी चाहिये।

एक टिप्पणी

धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशें अमूल्य थीं। १८१३ से, जब से कम्पनी ने भारतीयों की शिक्षा का दायित्व अपने ऊपर लिया था, धार्मिक शिक्षा पर वाद-विवाद चला आ रहा था। धार्मिक शिक्षा के लिए एक निश्चित नीति निर्धारित करके इस विवाद को समाप्त करने का श्रेय आयोग को ही है। उस समय से लेकर आज तक शिक्षा में धार्मिक तटस्थता की नीति का अनुसरण किया जा रहा है।

१०. मुस्लिम शिक्षा

पिछले अध्याय में मुस्लिम शिक्षा के दोषों पर प्रकाश डाला जा चुका है। हंटर कमीशन ने उन दोषों पर मनन किया और उनको दूर करने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये :—

१. मुस्लिम शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन देने का भार स्थानीय संस्थाओं और प्रान्तों के कोषों पर होना चाहिये।
२. देशी मुस्लिम शिक्षालयों को अपने पाठ्य-क्रमों में पूर्णतः लौकिक विषयों को स्थान देने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।
३. मुस्लिम प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाना चाहिये।
४. उन स्थानों के अतिरिक्त जहाँ की मुस्लिम जनता इस पक्ष में न हो, प्राथमिक एवं मिडिल स्कूलों में शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी होना चाहिये।
५. जिन स्थानों पर हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त अन्य किसी भारतीय भाषा का प्रयोग किया जाता है, वहाँ उस भाषा को प्राथमिक तथा मिडिल स्कूलों के पाठ्य-क्रमों में स्थान दिया जाय।
६. जिन स्थानों में मुसलमानों की जनसंख्या अधिक है, वहाँ के मिडिल और हाई स्कूलों में हिन्दुस्तानी और फ़ारसी की शिक्षा की व्यवस्था की जाय।
७. मुसलमानों को अंग्रेजी की उच्च शिक्षा की आवश्यकता है। अतः इस शिक्षा को समुन्नत करने के लिये उदार आर्थिक सहायता प्रदान की जाय।

८. मुसलमानों में शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये छात्र-वृत्तियाँ देने की योजना बनाई जाय। जो छात्रवृत्तियाँ प्राथमिक विद्यालयों में दी जायँ, वे मिडिल स्कूलों में चलती रहें, जो मिडिल स्कूलों में दी जायँ, वे हाई स्कूलों में समाप्त हों और जो हाई स्कूलों में दी जायँ, वे कॉलेजों में भी मिलें।

९. राजकीय शिक्षालयों में निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों में मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या स्पष्ट रूप से निश्चित कर दी जाय।

१०. जो सम्पत्ति मुसलमानों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये दी गई है और जिसका प्रबन्ध सरकार द्वारा किया जाता है, उसकी आय केवल मुस्लिम शिक्षा के विकास में ही व्यय की जाय।

११. यदि सम्पत्ति का प्रबन्ध व्यक्तियों तथा संस्थाओं के हाथ में है, तो उन्हें उदार सहायता-अनुदान देकर अँग्रेजी विद्यालयों या कॉलेजों की स्थापना के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

१२. मुसलमान अध्यापकों की दीक्षा के लिये नार्मल स्कूलों तथा प्रशिक्षण-कक्षाओं का प्रबन्ध किया जाय।

१३. जिन मुस्लिम स्कूलों में शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी हो, उनमें यथा-सम्भव मुसलमान अध्यापक ही नियुक्त किये जायँ।

१४. मुसलमानों के प्राथमिक विद्यालयों के निरीक्षण के लिये मुसलमान निरीक्षकों की नियुक्ति अधिक संख्या में की जाय।

१५. मुस्लिम-शिक्षा को प्रोत्साहित करने वाली संस्थाओं को सरकार द्वारा मान्यता तथा सहायता दी जाय।

१६. सार्वजनिक शिक्षा की वार्षिक रिपोर्टों में मुसलमानों की शिक्षा का पृथक् वर्णन किया जाय।

१७. शिक्षित मुसलमानों तथा अन्य जातियों के पढ़े-लिखे व्यक्तियों को राजकीय पदों पर नियुक्त करते समय मुसलमानों के उचित अनुपात का ध्यान रखा जाय।

एक टिप्पणी

आयोग की सभी सिफ़ारिशों को केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों ने स्वीकार कर लिया। केवल इस बात की स्वीकृति नहीं दी कि अरबी और फ़ारसी के अध्ययन पर बल दिया जाय। इस सम्बन्ध में स्वयं सरकार का मत यह था कि यदि मुसलमान अंग्रेजी की शिक्षा से लाभ नहीं उठायेंगे तो वे राजपदों

को प्राप्त करने में हिन्दुओं से पीछे रह जायेंगे।[1] इस प्रकार अंग्रेजों ने मुसलमानों को अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने के लिये प्रोत्साहित किया। इसका आधारभूत राजनीतिक कारण मुसलमानों को ब्रिटिश राज्य के स्तम्भ एवं ब्रिटिश सरकार के विश्वासपात्र कर्मचारी बनाना था।

११. स्त्री-शिक्षा

तत्कालीन स्त्री-शिक्षा की दयनीय दशा पर अपने हृदयोद्गारों को व्यक्त करते हुए कमीशन ने लिखा "यह बात स्पष्ट है कि स्त्री-शिक्षा अभी तक अत्यधिक पिछड़ी हुई दशा में है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक सम्भव विधि से इसका पोषण किया जाय।"[2] स्त्री-शिक्षा की अनेकमुखी उन्नति के लिये आयोग ने निम्नांकित व्यापक सुझाव दिये :—

सार्वजनिक कोष—स्थानीय, म्युनिसिपल और प्रान्तीय सार्वजनिक कोषों से बालकों तथा बालिकाओं के विद्यालयों के लिये उचित अनुपात में धन व्यय किया जाय।

सहायता-अनुदान—बालिका-विद्यालयों को उससे अधिक आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये जितनी कि उन्हें मिल रही है। अतः यह आवश्यक है कि बालिका-विद्यालयों के लिये सहायता-अनुदान के नियम सरल हों।

पाठ्य-क्रम एवं पाठ्य-पुस्तकों में विभिन्नता—यह बात अमान्य है कि जो शिक्षा बालकों के लिये उपयोगी हो, वह बालिकाओं के लिये भी लाभप्रद सिद्ध हो। अतः यह आवश्यक है कि बालिकाओं का पाठ्य-क्रम एवं पाठ्य-पुस्तकें बालकों से भिन्न हों। बालिकाओं को साहित्यिक विषयों की अपेक्षा प्रायोगिक विषयों की शिक्षा देना अधिक उपयुक्त होगा।

शुल्क एवं छात्रवृत्तियाँ—स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उनको निःशुल्क शिक्षा देने की व्यवस्था की

1. "It is only by frankly placing themselves in line with the Hindus, and taking full advantage of the Government system of high and especially of English education, that the Muhammadans can hope fairly to hold their own in respect of the better description of State appointments." Syed Mahmood : *op. cit.*, p. 174.
2. "It will have been seen that female education is still in an extremely backward condition, and that it needs to be fostered in every legitimate way." ***Indian Education Commission Report.***

जाय। सहायता-अनुदान की शर्त शुल्क पर आधारित है। यह सर्वथा उचित होगा यदि इस शर्त को कन्या-विद्यालयों के लिये न रखा जाय। बालिकाओं की शिक्षा-अवधि में वृद्धि करने के लिये उनको छात्रवृत्तियाँ देने की योजना कार्यान्वित की जाय।

माध्यमिक शिक्षा—बालिकाओं की माध्यमिक शिक्षा की दिशा में अभी तक बहुत ही कम कार्य किया गया है। अतः इस शिक्षा का प्रबन्ध उन क्षेत्रों में किया जाय, जहाँ इसकी माँग है।

छात्रावास—यदि बालिकाओं के निवास-स्थान दूर हैं, तो उन्हें विद्यालय आने में बहुत कठिनाई होती है। अतः स्कूलों के प्रबन्धकों को छात्रावास की व्यवस्था करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

कन्या-विद्यालयों का स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरण—कन्या-विद्यालयों का कार्य-भार स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया जाय। जिन क्षेत्रों की संस्थायें इस कार्य के लिये अन्यमनस्क हों, वहाँ विद्यालयों का प्रबन्ध स्वयं सरकार द्वारा किया जाय।

अध्यापिकाओं की व्यवस्था—तत्कालीन भारतीय समाज महिला-विद्यालयों में पुरुष-शिक्षकों के पक्ष में नहीं था। अतः आयोग ने सिफ़ारिश की कि स्त्रियों को अध्यापन-कार्य के लिये आकर्षित किया जाय। उनके लिये प्रशिक्षण-विद्यालयों का शिलान्यास किया जाय और धीरे-धीरे पुरुषों के स्थान पर स्त्री-अध्यापिकायें नियुक्त की जायँ।

पर्दानशीन स्त्रियों की शिक्षा—उस समय भारत में पर्दा-प्रथा का अत्यधिक प्रचलन था। कुछ लड़कियाँ तो एक निश्चित आयु तक घर से बाहर जा सकती थीं, पर कुछ के लिये इस पर भी प्रतिबन्ध था। आयोग ने सिफ़ारिश की कि लड़कियों की शिक्षा के लिये सरकार कोई कसर न उठा रखे। महिला-शिक्षिकायें नियुक्त की जायँ और वे घरों में जा कर शिक्षण-कार्य करें।

निरीक्षिकाओं की नियुक्ति—महिला-विद्यालयों के निरीक्षण तथा प्रोत्साहन के लिये सुशिक्षित निरीक्षिकायें नियुक्त की जायँ।

जनता का सहयोग—जिन पुरुषों एवं स्त्रियों को शिक्षा में रुचि हो, उन्हें कन्या-विद्यालयों की प्रबन्धकारिणी समितियों में स्थान दिया जाय। ऐसा करने से उनका और उनके द्वारा शेष स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त हो जायगा। फलस्वरूप विद्यालयों के कार्य में कोई अड़चन नहीं पड़ेगी।

एक टिप्पणी

भारतीय शिक्षा-आयोग ने स्त्री-शिक्षा के प्रायः सभी अंगों के सम्बन्ध में सुझाव दिये। यद्यपि ये सुझाव व्यापक तथा विस्तृत थे, पर इनको महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। आयोग बालिकाओं की अनिवार्य शिक्षा के सम्बन्ध में मौन रहा। उसने यह सुझाव नहीं दिया कि सरकार के संरक्षण में उसका तीव्र प्रसार किया जाय। उसने स्त्री-शिक्षा के विस्तार के लिये केवल व्यक्तिगत प्रयासों पर बल दिया। परिणाम यह हुआ कि स्त्री-शिक्षा के प्रति जनसाधारण की सामान्य उदासीनता एवं निर्धनता के कारण स्त्री-शिक्षा का कार्य केवल मन्थर गति से आगे बढ़ा।

१२. हरिजनों तथा पिछड़ी जातियों की शिक्षा

हरिजनों तथा पिछड़ी जातियों की शोचनीय शिक्षा-व्यवस्था का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। भारतीय शिक्षा-आयोग ने इन जातियों की सामाजिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि ये जातियाँ अनादि काल से सामाजिक संरचना में निम्नतम स्तर पर रही हैं। उनकी स्थिति को सहसा उच्च वर्गों के समकक्ष बना देना सम्भव नहीं है। अतः आयोग ने शिक्षा द्वारा उनकी अवस्था में शनैः-शनैः, पर निश्चित रूप से परिवर्तन लाने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये :—

१. हरिजनों तथा पिछड़ी जातियों के विद्यार्थियों के लिये उन सभी विद्यालयों के द्वार खोल दिये जायँ, जो सरकार, नगरपालिकाओं या स्थानीय संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे हैं।

२. जिन स्थानों पर इन छात्रों के विद्यालय-प्रवेश पर अन्य जातियों द्वारा विरोध प्रकट किया जाय, वहाँ इनके लिये विशिष्ट विद्यालय स्थापित किये जायँ।

३. शिक्षक तथा शिक्षा-अधिकारी जनता की इच्छा के विरुद्ध हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों के छात्रों को विद्यालय में प्रवेश न दें। इसके विपरीत वे बुद्धिमानी से जातीय भेद-भाव के अन्त करने का प्रयास करें।

उपर्युक्त सुझावों के फलस्वरूप हरिजनों तथा पिछड़ी जातियों में शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हुआ।

१३. आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा

आयोग ने आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा का भी अध्ययन किया। यह बात छिपी न रह सकी कि उनको शिक्षा देने के प्रयत्नों में सर-

कार असफल रही है। आयोग ने इस बात पर बल दिया कि सरकार को उनकी शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आयोग ने अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. आदिवासियों तथा पहाड़ी जातियों की शिक्षा को व्यक्तिगत प्रयासों पर नहीं छोड़ा जा सकता है। अतः यह आवश्यक है कि सरकार इनके लिये विशेष प्रकार के विद्यालयों का निर्माण करे।

२. जो गैर-सरकारी स्कूल इन जातियों को शिक्षा प्रदान करने का कार्य कर रहे हैं, उन्हें प्रोत्साहित किया जाय।

३. इन जातियों के छात्रों से विद्यालय में किसी प्रकार का शुल्क न लिया जाय।

४. आदिवासी क्षेत्रों के समीपवर्ती विद्यालयों में इन जातियों के विद्यार्थियों को पढ़ने के लिये आकर्षित किया जाय।

५. इन जातियों के छात्रों के शिक्षण का कार्य इन्हीं जातियों के शिक्षकों को सौंपा जाय।

६. यदि किसी आदिवासी जाति की भाषा को लिखित रूप में प्रयोग किया जा सकता है, तो उस भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।

७. आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों को इसप्रकार की शिक्षा दी जाय जिससे वे अपनी पड़ोसी सभ्यजातियों से सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हों।

८. इन जातियों के अध्यापकों को साधारण नार्मल स्कूलों में अति सामान्य विषयों की शिक्षा देकर थोड़े ही समय में प्रशिक्षित करने का प्रयास किया जाय।

उपरोक्त सुझावों को सरकार ने स्वीकार किया। आर्थिक सहायता एवं निःशुल्क शिक्षा का प्रलोभन देकर आदिवासियों तथा पहाड़ी जातियों के छात्रों को विद्यालयों में पढ़ने के लिये प्रोत्साहन दिया गया। उनके लिये विशेष प्रकार के विद्यालयों का निर्माण किया गया, गैर-सरकारी स्कूलों को उदारतापूर्वक सहायता अनुदान दिया गया और अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई।

भारतीय शिक्षा—आयोग का मूल्यांकन

आयोग ने अपने अमूल्य सुझाव देकर भारतीय शिक्षा की एक निश्चित नीति का सूत्रपात किया। आयोग ने १८५४ के घोषणा-पत्र में शिक्षा के लिये प्रतिपादित सिद्धान्तों की पुष्टि की और उन्हीं के आधार पर १९०१-०२ तक भारतीयों की शिक्षा की योजना को कार्यान्वित किया गया। इसी आशय से

हावेल ने लिखा है : "भारत में ब्रिटिश शासन-काल में प्रथमतः शिक्षा की अवहेलना हुई, फिर उग्रता एवं सफलता के साथ उसका विरोध किया, तत्पश्चात् एक ऐसी प्रणाली का सूत्रपात किया गया जो कि सर्वमान्य रूप से हानिकारक थी और अन्त में वह अपने वर्तमान स्तर पर रख दी गई।"[1]

आयोग की सिफ़ारिशों के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा का प्रवाह तीव्र हो गया। निस्सन्देह, देशी शिक्षा निष्प्राण हो चुकी थी, परन्तु उससे न तो कोई व्यथित हुआ और न किसी ने उसके लिये अश्रुपात किया। इसके विपरीत, लोगों ने अंग्रेजी स्कूलों तथा कॉलेजों का आश्चर्यजनक विस्तार देखा। सम्पूर्ण देश में प्राथमिक विद्यालयों का जाल बिछ गया और ये विद्यालय निश्चय रूप से देशी पाठशालाओं से अधिक उत्तम थे। शिक्षा के कुछ विशिष्ट अवयवों का क्रमिक विकास होने लगा। उदाहरणार्थ स्त्रियों, मुसलमानों, हरिजनों, आदिवासियों आदि की शिक्षा में व्यापकता नज़र आने लगी। व्यावसायिक शिक्षा ने भारतीयों की अर्थोपार्जन की समस्या का बहुत बड़ी सीमा तक समाधान कर दिया। सारांश में, सरकारी अधिकारी तथा भारतीय, शिक्षा के लिये किये गये अपने प्रयासों से सुख और सन्तोष की साँस लेने लगे।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आयोग के सुझावों के फलस्वरूप शिक्षा का जो विकास प्रारम्भ हुआ उसमें त्रुटियाँ नहीं थीं या उसके प्रति किसी को कोई शिकायत नहीं थी। वस्तुतः शिक्षा में अनेकों दोष स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे। प्रथम, इस शिक्षा ने भारत के आर्थिक तथा औद्योगिक विकास में कोई योग नहीं दिया। द्वितीय, शिक्षा के ऊपर पर्याप्त धन व्यय नहीं किया गया, जिनसे जन-साधारण की शिक्षा की माँग की पूर्ति नहीं हुई। तृतीय, शिक्षा के द्वारा एक ऐसे नवीन वर्ग का निर्माण हुआ जिसे निर्धन जनता से किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं थी। चतुर्थ, शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति नगरों में नौकरियाँ करने लगे, जिससे ग्रामीण जनता से उनका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। पंचम्, इस शिक्षा के परिणामस्वरूप भारतीय समाज दो प्रमुख वर्गों में विभाजित हो गया—एक वर्ग में नगरों में निवास करने वाले शिक्षित व्यक्तियों की अल्प संख्या थी और दूसरे वर्ग में ग्रामों में रहने वाले अशिक्षित व्यक्तियों की विशाल संख्या थी। इसी पार्थक्य ने आधुनिक भारतीय शिक्षा के अधिकांश

---

1. "Education in India under the British Government was first ignored, then violently and successfully opposed, then conducted on a system now universally admitted to be erroneous and finally placed on its present footing." Sharp : *op. cit.*, p. 2.

दोषों का बीजारोपण किया और दुर्भाग्यवश भारतीय समाज आज भी इनका शिकार है। अन्तिम दोष यह था कि कॉलेजों और विश्वविद्यालयों का पुस्तकीय ज्ञान विद्यार्थियों के लिये उपयोगी तथा सहायक सिद्ध नहीं हुआ।

सारांश

आयोग की नियुक्ति—मिशनरियों ने आन्दोलन किया कि भारतीय शिक्षा-नीति १८५४ के घोषणा-पत्र के विरुद्ध जा रही है। फलस्वरूप भारतीय शिक्षा की जाँच करने के लिये १८८२ में भारतीय शिक्षा-आयोग की नियुक्ति की गई। इस आयोग ने शिक्षा के सभी अंगों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

प्राथमिक शिक्षा—(१) प्राथमिक शिक्षा को जनसामान्य के व्यावहारिक जीवन के लिये लाभप्रद बनाया जाय; (२) निम्न पदों की नियुक्तियों में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को वरीयता दी जाय; (३) शिक्षा का माध्यम देशी भाषायें हों; (४) प्राथमिक शिक्षा का कार्य स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया जाय; (५) अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय; और (६) स्थानीय-कोष केवल प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किया जाय।

देशी शिक्षा—(१) देशी विद्यालयों में प्रवेश पाने के लिये छात्रों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये; (२) निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी जायँ; और (३) देशी विद्यालयों का प्रबन्ध स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया जाय।

माध्यमिक शिक्षा—(१) माध्यमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व भारतीयों को दे दिया जाय; (२) सहायता-अनुदान प्रणाली का अनुसरण किया जाय; और (३) हाई स्कूल की शिक्षा को 'अ-कोर्स' तथा 'ब-कोर्स' में विभक्त कर दिया जाय।

उच्च शिक्षा—(१) कॉलेजों को सहायता-अनुदान के अतिरिक्त अन्य आवश्यकताओं के लिये विशेष आर्थिक सहायता दी जाय; (२) छात्रों का नैतिक स्तर उच्च करने के लिये प्रकृति-धर्म एवं मानव-धर्म पर व्याख्यान दिये जाएँ और (३) योग्य विद्यार्थियों को यूरोप में अध्ययन करने के लिए छात्र-वृत्तियाँ दी जाएँ।

शिक्षा विभाग—(१) निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की जाय; (२) प्रत्येक विद्यालय का निरीक्षण किया जाय; और (३) यूरोपियनों की अपेक्षा भारतीय निरीक्षक अधिक नियुक्त किये जाएँ।

सहायता-अनुदान—(१) सहायता-अनुदान के लिये निश्चित नियम

बनाये जाएँ (२) पिछड़े क्षेत्रों के विद्यालयों को अधिक सहायता-अनुदान दिया जाय; और (३) सहायता-अनुदान की धन-राशि निश्चित समय पर दी जाय।

विशिष्ट शिक्षा—आयोग ने स्त्रियों, मुसलमानों, हरिजनों, पिछड़ी जातियों, आदिवासियों और पहाड़ी जातियों में शिक्षा का प्रसार करने के लिये महत्वपूर्ण सुझाव दिये। फलस्वरूप उनकी शिक्षा का विकास प्रारम्भ हो गया।

आयोग का मूल्यांकन—आयोग के सुझावों के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा की एक निश्चित नीति का सूत्रपात हुआ और उसका प्रवाह तीव्र हो गया। देश में प्राथमिक विद्यालयों का जाल बिछ गया। अँग्रेजी स्कूलों तथा कॉलेजों का आश्चर्यजनक विस्तार हुआ। समाज के सभी वर्गों की शिक्षा का विकास हुआ।

आयोग की सिफ़ारिशों के फलस्वरूप शिक्षा का जो विकास हुआ उसमें अग्रलिखित दोष थे—(१) आर्थिक तथा औद्योगिक विकास का अभाव; (२) जन-साधारण की शिक्षा की माँग की अपूर्ति; (३) समाज का दो स्पष्ट वर्गों में विभाजन; और (४) पुस्तकीय ज्ञान की निरर्थकता।

TEST QUESTIONS

1. State and discuss the recommendations of the Hunter Commission of 1882 regarding either Primary Education or Higher Education.
2. Summarize the chief recommendations of the Hunter Commission of 1882 on Secondary Education and trace their influence on the subsequent development of Secondary Education in India.
3. What recommendations did the Indian Education Commission make regarding :—(a) Education of Women ; (b) Education of Muslims ; and (c) Grant-in-aid system.

—: o :—

अध्याय ११

शिक्षा की प्रगति (१८८२-१९०२)

हम अध्याय १० में भारतीय शिक्षा-आयोग द्वारा शिक्षा के विभिन्न अङ्गों के सम्बन्ध में दी गई सिफ़ारिशों का वर्णन कर चुके हैं। इनमें से अधिकांश सिफ़ारिशों को भारत-सरकार ने स्वीकृत किया। फलस्वरूप शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। हम इन पर नीचे प्रकाश डाल रहे हैं।

प्राथमिक शिक्षा

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है लार्ड रिपन ने इङ्गलैंड की 'काउण्टी कौंसिल्स' का अनुकरण करके भारत में नगर-पालिकाओं एवं ज़िला-परिषदों का निर्माण किया था। भारतीय शिक्षा-आयोग की सिफ़ारिश के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध इन स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया गया। इस नवीन व्यवस्था से प्राथमिक शिक्षा की कुछ प्रगति अवश्य हुई, पर उसको संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है।

आयोग के सुझाव को मान्यता देकर देशी पाठशालाओं (Indigenous Schools) को भी इन्हीं स्थानीय संस्थाओं के अन्तर्गत रख दिया गया, परन्तु उनके विकास की ओर रंच मात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। परिणामतः वे क्रमशः क्षीण होती चली गईं और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक उनके अव-

शेष भी दिखाई देने बन्द हो गये। अधिकांश देशी पाठशालायें काल के गाल में पहुँच गईं और कुछ को राजकीय विद्यालयों में विलीन कर लिया गया।

स्थानीय संस्थाओं पर सरकार ने अपना अंकुश रखा और उनके अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को एक संहिता (Code) में लेखबद्ध कर दिया। प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करना संस्थाओं का अनिवार्य कर्त्तव्य घोषित किया गया। कुछ प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय के सम्बन्ध में नियम बना दिये गये, जिनके अनुसार स्थानीय संस्थाओं को अपनी आय की एक निश्चित धन-राशि प्राथमिक शिक्षा पर व्यय करनी आवश्यक थी। इस धन को अन्य किसी कार्य में व्यय नहीं किया जा सकता था। इस व्यय का भार बहन करने के लिये प्रान्तीय सरकारें सहायता-अनुदान देती थीं। बम्बई सरकार ने व्यय का आधा भाग देना निश्चय किया। मद्रास प्रान्त में सम्पूर्ण आय का ५ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया गया। इसी प्रकार बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश एवं आसाम आदि प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा पर व्यय करने के नियम बनाये गये। भारतीय शिक्षा-आयोग के सुझाव के अनुसार सभी प्रान्तों में सहायता-अनुदान के नियमों को उदार बना कर प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया गया।

एक समीक्षा

यद्यपि भारतीय शिक्षा-आयोग ने इस बात पर बल दिया था कि प्राथमिक शिक्षा को सरकार का पूर्ण संरक्षण प्राप्त होना चाहिये, तथापि यह बड़े खेद की बात है कि सरकार ने इसकी अवहेलना की। वास्तविकता यह है कि सरकार ने स्थानीय संस्थाओं पर प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व रखकर उससे अपना पीछा छुड़ाया। सरकार की उपेक्षा का प्रमाण इस बात से मिलता है कि प्राथमिक शिक्षा पर किया जाने वाला राजकीय व्यय १८८२ से १९०२ तक केवल १५ लाख रुपया बढ़ाया गया। इसके विपरीत, स्थानीय संस्थाओं ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में यथाशक्ति योग दिया। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले अपने व्यय को १८८२ से १९०२ तक २२ लाख बढ़ा दिया। परन्तु स्थानीय संस्थाओं की अपनी असमर्थतायें थीं। उनमें से अधिकांश की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी और उनमें कुशल प्रबन्ध की क्षमता का अभाव था। फलस्वरूप इस अवधि में प्राथमिक विद्यालयों और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में विशेष वृद्धि न हो सकी। १८७१ से १८८६ तक छात्रों की संख्या २० लाख बढ़ी, पर १८८६ से १९०२ तक छात्र-संख्या में केवल ६ लाख ६० हज़ार की वृद्धि हुई। प्रशिक्षित निरीक्षकों एवं

सुव्यवस्थित शिक्षा के कारण प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का स्तर तो अवश्य ऊँचा हो गया, पर शिक्षा का विकास अवरुद्ध हो गया । सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में नवीन विद्यालयों की स्थापना न की गई और इस प्रकार वहाँ के बालकों तथा बालिकाओं को शिक्षा ग्रहण करने के अवसर से वंचित रखा गया ।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के विषय में हंटर कमीशन का सुझाव था कि सरकार इसकी व्यवस्था को व्यक्तिगत प्रयासों पर छोड़ दे और स्वयं इसके उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाय । सरकार ने इस सुझाव के प्रतिकूल कार्य किया और पूर्व के समान माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में व्यस्त रही । फलतः शिक्षा के इस क्षेत्र में प्रगति होनी स्वाभाविक थी । शिक्षा-विभाग ने राजकीय विद्यालयों की सुव्यवस्था में शिथिलता न आने दी और वे उत्तरोत्तर समुन्नत होते चले गये । इसके विपरीत, सहायता-अनुदान से चलने वाले विद्यालयों की अवस्था सन्तोषजनक नहीं थी । उनके पास धन का अभाव था और वे अपने व्यय के लिये मुख्यतः शुल्क तथा चन्दों पर निर्भर रहते थे ।

आयोग ने हाईस्कूल की शिक्षा को अधिक लाभप्रद बनाने के विचार से उसे 'अ-कोर्स' एवं 'ब-कोर्स' में विभाजित किया था । प्रथम का उद्देश्य छात्रों को उच्च शिक्षा के विद्यालयों में प्रवेश पाने के लिये तैयार करना था । द्वितीय के अन्तर्गत औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों को स्थान देने की सिफ़ारिश की थी । यद्यपि आयोग के इस सुझाव को स्वीकृत किया गया, परन्तु इन विषयों को लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी । कारण यह था कि उस समय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य राजपद की प्राप्ति करना था । विद्यार्थियों का झुकाव 'ब-कोर्स' की अपेक्षा 'अ-कोर्स' की ओर ही रहा । फिर भी प्रान्तीय सरकारों ने हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम में जीवनोपयोगी व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध करके उसको प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया । उदाहरणार्थ, १८८८ में मद्रास में औद्योगिक (Technical) पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किया गया । १८९७ में बम्बई प्रान्त में 'स्कूल लीविंग सर्टीफ़िकेट' परीक्षा आरम्भ की गई । इसमें उत्तीर्ण होने पर ही विद्यार्थी विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के अधिकारी होते थे । बम्बई के 'स्कूल फ़ाइनल कोर्स' के पाठ्य-क्रम में भौतिक विज्ञान, मेनुअल ट्रेनिंग, अर्थ-शास्त्र एवं कृषि को स्थान दिया गया । राजपद प्राप्त करने के लिये इस कोर्स को अनिवार्यता प्रदान करके लोकप्रिय बनाने की चेष्टा की गई । १८९४ में इलाहाबाद में 'स्कूल फ़ाइनल परीक्षा' की व्यवस्था की गई । १९०० में बंगाल में इंजीनियर एवं अन्य व्यावसायिक व्यक्तियों को तैयार करने के लिये

शिक्षा की एक विशिष्ट योजना कार्यान्वित की गई। पंजाब विश्वविद्यालय ने व्यापार, वाणिज्य एवं क्लर्कों की शिक्षा का प्रबन्ध किया। इस प्रकार प्रायः सभी प्रान्तों में औद्योगिक पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किया गया, परन्तु जनता इसकी ओर आकृष्ट नहीं हुई। १९०२ में इस पाठ्यक्रम में केवल २,००० छात्रों ने परीक्षा दी, जब कि 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में २३,००० छात्र सम्मिलित हुए। इस प्रकार औद्योगिक पाठ्य-क्रम में कोई विशेष प्रगति न हुई और 'मेट्रीकुलेशन' की परीक्षा की प्रधानता यथावत् बनी रही।

एक समीक्षा

इस काल में अँग्रेजी की बढ़ती हुई लोकप्रियता एवं सरकार के प्रोत्साहन के कारण माध्यमिक शिक्षा का अपूर्व प्रसार हुआ। १८८२ में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या ३,९१६ और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या २,१४,०७७ थी। १९०२ में यह संख्या क्रमशः ५,१२४ और ५९,०१९ हो गई। माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये प्रशिक्षण महाविद्यालयों का भी निर्माण किया गया। १८८२ तक भारत में केवल २ प्रशिक्षण महाविद्यालय थे, परन्तु १९०२ में उनकी संख्या बढ़ कर ६ होगई। इन महाविद्यालयों के अतिरिक्त माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों की 'सार्टीफिकेट परीक्षा' के लिये प्रायः प्रत्येक प्रान्त में ट्रेनिंग स्कूल खोल दिये गये थे।

माध्यमिक शिक्षा के विषय में एक दुख की बात यह है कि मातृभाषाओं को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया गया। भारतीय शिक्षा-आयोग ने अंग्रेजी का ही पक्ष लिया था। परिणामस्वरूप देश के प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में अंग्रेजी की पताका फहराने लगी। विद्यालयों का एकमात्र उद्देश्य अंग्रेजी की शिक्षा देना और विद्यार्थियों का चरम लक्ष्य उस पर अधिकार प्राप्त करना हो गया। इसका परिणाम विद्यार्थियों के लिये अति हानिकारक सिद्ध हुआ। उनको इस कठिन और विदेशी भाषा को सीखने में अपना अधिकांश समय लगाना पड़ता था जिससे अन्य विषयों के अध्ययन के लिये उनके पास समय का अभाव रहता था। फलतः छात्रों का स्वाभाविक मानसिक विकास अवरुद्ध हो गया। अँग्रेजी का आधिपत्य स्थापित हो जाने से भारतीय भाषाओं के विकास पर भी रोक लग गई।

उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालय एवं कॉलेज)

भारतीय शिक्षा-आयोग की सिफ़ारिशों ने अप्रत्यक्ष रूप से उच्च शिक्षा के विद्यालयों के विकास में योग दिया। माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों की संख्या

में तीव्र वृद्धि होने के कारण उच्च शिक्षा के लिये कॉलेजों का निर्माण आवश्यक हो गया। माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त छात्र कॉलेजों में शिक्षा ग्रहण करने के लिये लालायित रहते थे, क्योंकि उन्हें आशा रहती थी कि उच्च शिक्षा प्राप्त करके वे उच्च राजकीय पदों पर आसीन हो सकेंगे। आयोग ने भारतीय शिक्षा में वैयक्तिक प्रयासों को भी प्रोत्साहित किया था। मिशनरियों का विरोधी होने के कारण आयोग ने भारतीयों को ही वरीयता दी थी। फलतः भारतीयों ने मिशनरियों की अपेक्षाकृत अधिक कॉलेजों की स्थापना करके शिक्षा में अपनी अभिरुचि का प्रमाण दिया। १९०२ में भारतीय, ४२ कॉलेजों का संचालन कर रहे थे, जब कि मिशनरियों के संचालन में केवल ३७ कॉलेज चल रहे थे। १८८२ में सम्पूर्ण भारत में ६८ कॉलेज थे, परन्तु १९०२ में इनकी संख्या बढ़ कर १९१ हो गई। इनमें से १५५ आर्ट्स कॉलेज और ४६ व्यावसायिक शिक्षा के कॉलेज थे। १२ कॉलेज स्त्रियों की शिक्षा के लिये भी थे। इन कॉलेजों के अतिरिक्त ५ विश्वविद्यालय भी थे। १८८२ तक कलकत्ता, मद्रास, बम्बई और पंजाब विश्वविद्यालयों का शिलान्यास हो चुका था। इन विश्वविद्यालयों को केवल परीक्षा लेने का अधिकार था। १८८७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय का शिलारोपण हुआ, जिसमें परीक्षाओं के अतिरिक्त शिक्षा देने की भी व्यवस्था की गई।

इस दौरान में १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव हो चुका था, जिसके फलस्वरूप १८८५ में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की नींव पड़ी। उसके उपरान्त देश में जो राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उसके प्रभाव से शिक्षा-क्षेत्र अछूता न बचा। भारतीयों ने अंग्रेजी पढ़ कर बेकन, मिल्टन, लॉक, बर्क, बर्ड्सवर्थ एवं बाइरन की विचारधाराओं का अध्ययन किया। अंग्रेजी साहित्य-सरोवर में स्वतन्त्रता-संदेश का जल-पान करके भारतीयों के अन्तर में अपनी मातृभूमि की दासता की बेड़ियों को काट डालने के लिये आत्म-समर्पण एवं आत्म-त्याग की भावनायें उमड़ उठीं। इन राजनीतिक विचारों के फलस्वरूप देश के पुनरुत्थान के लिये सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित विशाल योजनाओं का प्रतिपादन किया गया। इन योजनाओं के अन्तर्गत शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान मिला। १८८२ के बाद आने वाली पीढ़ी ने शिक्षा का सर्वांगीण विकास देखा।[1]

राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत भारतीयों को यह पूर्णतया विदित हो चुका था कि भारत के नवयुवकों का चारित्रिक निर्माण भारतीयों द्वारा संचा-

1. A. A. Zellner : *Education in India*, p. 96.

लित राष्ट्रीय विद्यालयों में ही किया जा सकता है। इसी भावना से प्रेरित होकर कुछ सुयोग्य तथा देश-प्रेमी भारतीयों ने शिक्षा-संस्थाओं में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। इनमें आर० पी० परांजपे (R. P. Pranjpe) का नाम सर्वोपरि है। उनका अनुकरण अन्य भारतीय विद्वानों ने किया। १८८० में प्रसिद्ध देश-भक्त बाल गंगाधर तिलक, चिपलांकर एवं आयंगर के सम्मिलित प्रयासों के फलस्वरूप पूना में 'फर्ग्यूसन कॉलेज' (Fergusson College) की स्थापना हुई। १८८२ में भारत के महान् नेता, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 'रिपन कॉलेज' का प्रबन्ध-सूत्र अपने हाथ में लिया।

देश के कुछ धार्मिक तथा सामाजिक नेता भी शिक्षा-प्रसार के द्वारा जनता में जागरण एवं उद्‌बोधन फूँकने के लिये क्रियाशील थे। ऐसे नेताओं में स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम सर्वप्रथम है। उन्होंने देश के कोने-कोने में विद्यालय स्थापित करने का बीड़ा उठाया। १८८६ में लाहौर में दयानन्द वैदिक कॉलेज की स्थापना हुई। इस कॉलेज के सिद्धान्तों पर शीघ्र ही भारत के विभिन्न भागों में अन्य शिक्षालयों का निर्माण किया गया। १८९८ में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज का शिलारोपण किया, जिसने कुछ समय उपरान्त बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप धारण किया।

एक समीक्षा

इस अवधि में कॉलेजों और उनमें शिक्षा-ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों की संख्या में असाधारण वृद्धि हुई, परन्तु शिक्षा का स्तर क्रमशः गिरता चला गया। इसके अनेकों कारण थे। अधिकांश कॉलेजों का संचालन भारतीयों के हाथ में था और उनके पास कॉलेजों को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिये धन का अभाव था। उत्तम पुस्तकों, सुयोग्य अध्यापकों तथा कॉलेजों के लिये अच्छे एवं पर्याप्त भवन का भी अभाव था। पुस्तकीय ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता था और छात्रों में परीक्षा पास करने के लिये रटने की प्रथा प्रारम्भ हो गई थी। फलस्वरूप छात्रों की निर्णय शक्ति, मौलिक निरीक्षण और विचार-स्वातन्त्र्य नष्ट हो गया। १८८५ में इलबर्ट (Ilbert) ने कहा : "जैसे-जैसे कॉलेज की शिक्षा की अधिक प्रगति हो रही है, वैसे-वैसे उस प्रतीक का मूल्य, जिसका कि वह बोध कराती है, निम्नतर होता जा रहा है।"[1] १८७१ में कलकत्ते के एक कॉलेज के प्रिंसिपल का कथन था : "स्नातक तो

1. "As collegiate education has become more common, the value of the symbol which denotes it has proportionately fallen." T. N. Siqueria : *op. cit.*, p. 82.

केवल स्मृतियंत्र हैं और शिक्षा, अधकचरे ज्ञान को अधिकांश मात्रा में रट लेने तक ही सीमित प्रतीत होती है।" १८८९ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में लार्ड लैन्सडाउन (Lansdowne) ने चेतावनी देते हुए कहा : "मुझे भय है कि हमें यह बात नहीं छिपानी चाहिये कि यदि हमने इस वर्तमान गति से अपने स्कूलों एवं कॉलेजों द्वारा देश के नवयुवकों को शिक्षित करने की परम्परा को जारी रखा, तो हमें यह शिकायत और भी अधिक सुननी पड़ेगी कि प्रति वर्ष हम इन नवयुवकों की अधिकाधिक संख्या इस प्रकार के बौद्धिक उपार्जनों से युक्त उत्पन्न करते जा रहे हैं, जो अपने आप में प्रशंसनीय होते हुए भी उनके लिये पूर्णतया व्यर्थ सिद्ध होते हैं, क्योंकि देश में इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने वाले सज्जनों के योग्य शिक्षित व्यवसाय सम्बन्धी अवसर अति न्यून हैं।[1]"

इस अवधि में उच्च शिक्षा की समृद्धि एवं विस्तार के साथ-साथ एक ऐसे शिक्षित वर्ग का निर्माण हो रहा था जिसके सदस्यों पर एक-सी छाप लगी हुई थी, जिन्हें प्रायोगिक कार्य में कोई रुचि नहीं थी और जिनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य शिक्षा ग्रहण करके नौकरी प्राप्त करना था। परीक्षा की प्रचलित प्रणाली के दोष की जड़ें भारतीय शिक्षा व्यवस्था में गहरी पहुँच चुकी थीं। शिक्षा के व्यापक उद्देश्य में संकीर्णता आ गई। उसका अर्थ परीक्षा में सफलता प्राप्त करना हो गया था, न कि जीवन में सफलता प्राप्त करना। इस दोष की ओर संकेत करते हुए १९०२ में 'भारतीय विश्वविद्यालय आयोग' का कथन था : "भारतीय विश्वविद्यालयों में पाया जाने वाला निकृष्ट दोष यह है कि शिक्षण परीक्षा के अधीन है, न कि परीक्षा शिक्षण के।" इसके अतिरिक्त इस काल में शिक्षा में व्यापारिक प्रवृत्ति आविर्भूत हुई और शिक्षा का मूल्य बाजारू वस्तुओं के समान निर्धारित किया जाने लगा।

इस स्थान पर एक बात का उल्लेख करना असंगत न होगा। यद्यपि कॉलेजों के विस्तार के साथ-साथ शिक्षा का स्तर निरन्तर निम्नतर होता जा

1. "I am afraid that we must not disguise from ourselves that if our schools and colleges continue to educate the youths of India at present rate, we were likely to hear even more than we do at present of the complaint that we are turning out every year an increasing number of young men whom we have provided with an intellectual equipment, admirable in itself, but practically useless to them, on account of the small number of openings which the professions afford for gentlemen who have received this kind of education." James : *op. cit.*, p. 62.

रहा था, तथापि कुछ कर्मठ भारतीय नेताओं का मत था कि शिक्षा का स्तर भले ही गिर जाय, पर उसका विस्तार अति आवश्यक है। उनकी धारणा थी कि कॉलेजों की कार्य क्षमता को बढ़ा कर शिक्षा के स्तर को किसी समय भी ऊँचा किया जा सकता है। इस विषय में गोपाल कृष्ण गोखले ने अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया था : "भारत की वर्तमान परिस्थितियों में सभी प्रकार की पाश्चात्य शिक्षा अमूल्य एवं लाभदायक है। यदि वर्तमान परिस्थितियों में यह सर्वोत्तम प्रकार की है, तो अच्छा है। परन्तु यदि यह सर्वोत्तम नहीं है, तो भी इस कारण इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। मेरे विचारानुसार भारत की वर्तमान दशा में पाश्चात्य शिक्षा का महानतम कार्य ज्ञान को इतना प्रोत्साहन देना नहीं है, जितना कि भारतीयों के मस्तिष्क को पुराने विचारों के बन्धन से मुक्त करना है। इसके लिये न केवल सर्वोत्तम शिक्षा, अपितु सब प्रकार की पाश्चात्य शिक्षा लाभप्रद है।"[1]

सारांश में, १६०२ के अन्त में विश्वविद्यालय एवं कॉलेज की शिक्षा का चित्र रंग-बिरंगा था। एक ओर तो उच्च शिक्षा का आश्चर्यजनक प्रसार हो रहा था, जिससे भारतीय जीवन के विविध क्षेत्रों में यथार्थ जागृति का सूत्र-पात हुआ। दूसरी ओर, नवीन कॉलेजों की शिक्षा का स्तर उच्च नहीं था और उसमें आधुनिक भारतीय भाषाओं की अवहेलना के दोष का समावेश हो गया था। परन्तु दोष युक्त होते हुए भी उच्च शिक्षा के विस्तार ने भारतीयों के ज्ञान-भंडार में वृद्धि की और वे अपने देश को पराधीनता से मुक्त करने के लिये व्याकुल हो उठे।

स्त्रियों की शिक्षा

१८८२ से १६०२ तक स्त्री-शिक्षा की प्रगति मन्द अवश्य थी, पर वह निरन्तर होती रही। हम स्त्री-शिक्षा के विभिन्न अङ्गों पर नीचे दृष्टिपात कर रहे हैं :—

1. "In the present circumstances of India, all Western education is valuable and useful. If it is the highest that under the circumstances is possible, so much the better. But even if it is not the highest, it must not on that account be rejected.....To my mind, the greatest work of Western education in the present state of India is not so much the encouragement of Learning as the liberation of the Indian mind from the thraldom of old-world ideas.....For this purpose not only the highest but all Western education is useful." G. K. Gokhale ; *Speeches*, pp. 234-35.

प्राथमिक शिक्षा

इस अवधि में प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति हुई। १८८२ में शिक्षा ग्रहण करने वाली बालिकाओं की संख्या १,२४,४९१ थी। १९०२ में यह संख्या बढ़ कर ३,४८,५१० हो गई। इनमें से १,६०,१६४ बालिकायें लड़कों के स्कूलों में पढ़ रही थीं। यह इस बात का प्रमाण है कि इस काल में सहशिक्षा का प्रचार अधिक हो गया था। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाली छात्राओं में अधिकांश संख्या हिन्दू और मुसलमान बालिकाओं की थी। छात्राओं की उपरोक्त संख्या में २,३०,०२४ हिन्दू एवं ४७,५६७ मुसलमान बालिकायें थीं। प्राथमिक विद्यालयों में बालकों और बालिकाओं के पाठ्य-क्रमों में अन्तर कर दिया गया था। छात्राओं को गणित, भूगोल और इतिहास के स्थान में संगीत, चित्रकला और सीने-पिरोने की शिक्षा दी जाने लगी थी।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में उतनी प्रगति नहीं हुई जितनी प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में हुई। १८८२ में माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाली छात्राओं की संख्या २,०५४ और १९०२ में ४१,५८२ थी। परन्तु इस अवधि में बालिकाओं की माध्यमिक शिक्षा की लोकप्रियता बढ़ रही थी और विशेष रूप से हिन्दू उसकी उपयोगिता को समझने लगे थे। हिन्दू समाज में इस परिवर्तित दृष्टिकोण को उपस्थित करने का श्रेय पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, अगारकर; महादेव गोविन्द रानाडे और बैराम जी मालाबारी ऐसे उत्साही समाज-सुधारकों को है। इन निस्वार्थ समाज-सेवकों ने कन्या-विद्यालयों के निर्माण के लिये जनता से धन एकत्रित करने में अथक प्रयास किया और देश के विभिन्न भागों में बालिका-विद्यालयों की स्थापना करके माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में सराहनीय योग दिया।

उच्च-शिक्षा

इस काल की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि महिलाओं ने उच्च शिक्षा के लिये कॉलेजों में प्रवेश करना प्रारम्भ किया। १८८२ में कॉलेजों में पढ़ने वाली छात्राओं की संख्या केवल ६ थी, पर १९०२ में यह संख्या बढ़ कर २६४ हो गई। इनमें से अधिकांश छात्रायें ऐंग्लो-इंडियन और ईसाई थीं। हिन्दू छात्राओं की संख्या केवल २८ थी और मुस्लिम छात्रा एक भी नहीं थी। इस प्रकार इस काल में हिन्दू समाज में तो स्त्री-शिक्षा का प्रचलन प्रारम्भ होगया था, परन्तु मुस्लिम समाज में उसका सर्वथा अभाव था।

व्यावसायिक शिक्षा

व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति बहुत धीमी थी। १६०२ में २,८०७ लड़कियाँ विभिन्न व्यावसायिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। परन्तु इनमें ऐंग्लो-इंडियन एवं ईसाई छात्राओं की संख्या ही अधिक थी। व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियों में से अधिकांश का झुकाव प्रशिक्षण विद्यालयों और मेडिकल कॉलेजों की ओर था।

मुसलमानों की शिक्षा

हम पहिले बता चुके हैं कि सर सैयद अहमद खां के प्रयासों और सरकार के प्रोत्साहन के कारण मुस्लिम-शिक्षा में प्रगति होनी प्रारम्भ हो गई थी। भारतीय शिक्षा-आयोग ने मुसलमानों की शिक्षा के विकास के लिये कुछ विशेष सुझाव दिये थे। केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों ने उनमें से अधिकांश सुझावों को स्वीकार करके मुसलमानों की शिक्षा में अपनी रुचि व्यक्त की। फलस्वरूप मुस्लिम-शिक्षा का उत्तरोत्तर विकास होने लगा। १६०२ में सभी प्रकार के विद्यालयों में पढ़ने वाले मुसलमान छात्रों की संख्या ६,७८,००० थी। इसका अर्थ था कि सम्पूर्ण छात्रों में मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या २१.६ प्रतिशत थी। यह प्रतिशत मुसलमानों की जनसंख्या के प्रतिशत से, जो २२.६ था, कम था। स्पष्टतः मुसलमानों की शिक्षा अन्य जातियों की अपेक्षाकृत कम थी। प्राथमिक विद्यालयों में मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या सबसे अधिक थी, परन्तु उच्च तथा माध्यमिक शिक्षालयों में अन्य जातियों की अपेक्षा कम थी। विशिष्ट शिक्षा की संस्थाओं में मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं से अधिक थी।[1] इस प्रकार यह ज्ञात हो जाता है कि इस काल में मुस्लिम शिक्षा का वांछित विकास नहीं हुआ।

हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों की शिक्षा

१८८२ से १६०२ तक की अवधि में हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों की शिक्षा में आशातीत उन्नति हुई। इसके अनेकों आधारभूत कारण थे। प्रथम, भारतीय शिक्षा-आयोग की सिफ़ारिश के अनुसार राजकीय विद्यालयों के द्वार हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों के छात्रों के लिये खोल दिये गये। परन्तु सवर्ण हिन्दुओं ने सरकार की इस नीति का घोर विरोध किया। अतः सरकार ने आयोग के सुझाव को स्वीकार करके हरिजनों तथा पिछड़ी जातियों के लिये विशिष्ट स्कूल स्थापित किये। फलस्वरूप हरिजनों और पिछड़ी जातियों के

1. *Quinquennial Review of the Progress of Education* (1897 1902), paras 1119–1123,

छात्रों की शिक्षा का कार्य निर्विघ्न रूप से चलने लगा। द्वितीय, शिक्षा-विभागों ने सवर्ण हिन्दुओं के विरोध का उत्तर यह घोषित करके दिया कि समस्त सार्वजनिक विद्यालयों में सभी जातियों के छात्रों को प्रवेश पाने का समान अधिकार है। जब जनता ने देखा कि शिक्षा-विभाग अपनी नीति का दृढ़ता से पालन कर रहे हैं, तब उसने विरोध करना बन्द कर दिया। कारण यह था कि अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने के लिये विद्यालयों में अध्ययन करना आवश्यक था और जनता इस बात का अनुभव कर चुकी थी कि अंग्रेजी की शिक्षा के अभाव में धन का उपार्जन एवं राजपद की प्राप्ति सम्भव नहीं है। इन परिस्थितियों में विरोध स्वयं ही कुछ समय के उपरान्त समाप्त हो गया। तृतीय, इस अवधि में समाज सुधारकों ने अस्पृश्यता को दूर करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। महात्मा फूले, ब्रह्मसमाजी, प्रार्थना समाजी और आर्य समाजी छुआ-छूत को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिये क्रियाशील थे। उनके आन्दोलनों का प्रभाव यह हुआ कि १९०२ के अन्त तक भारतीयों के मस्तिष्क से छुआ-छूत की भावना बहुत-कुछ निकल गई। फलतः विद्यालयों में अछूतों के बालकों की उपस्थिति सवर्ण हिन्दुओं द्वारा सहन की जाने लगी। चतुर्थ, उपर्युक्त आन्दोलनों के परिणामस्वरूप हरिजनों में भी जागरूकता का प्रादुर्भाव हो गया और वे सार्वजनिक स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने के अपने अधिकार की मांग करने लगे। अन्तिम कारण यह था कि कुछ प्रान्तीय सरकारों ने हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों के प्रति अत्यधिक उदारता दिखाई और अनेक नियम बना कर उनकी शिक्षा को प्रत्येक सम्भव रीति से प्रोत्साहित किया। इन प्रान्तों में मद्रास अग्रणी था।

१८९३ में मद्रास की सरकार ने हरिजनों की शिक्षा के लिये एक विस्तृत प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव को 'पंचम शिक्षा का महाधिकार पत्र' (Magna Charta of Pancham Education) माना गया है। इसके प्रमुख उपबन्ध (Provisions) निम्नाङ्कित थे :—

१. प्रशिक्षण विद्यालयों में पढ़ने वाले पंचम छात्रों को अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा २ रुपये मासिक वृत्तिका (Stipend) अधिक दी जायगी।

२. जिन गैर-सरकारी प्रशिक्षण-विद्यालयों में पंचम छात्र प्रवेश लें, उन्हें अधिक सहायता-अनुदान दिया जाय।

३. स्थानीय संस्थायें एवं नगरपालिकायें सभी बड़े पंचम ग्रामों और नगरों में पंचम छात्रों के लिये विशिष्ट स्कूलों की स्थापना करें।

४. सरकारी बंजर भूमि को पंचम विद्यालयों के निर्माण के लिये बिना मूल्य लिये दे दिया जाय।

५. पंचम वर्ग के लिये रात्रि-पाठशालायें स्थापित की जायँ, क्योंकि ये पाठ-

शालायें इस वर्ग के लिये विशेष रूप से लाभप्रद सिद्ध होंगी[1]।

उपर्युक्त रियायतों के अतिरिक्त हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों के छात्रों को छात्रावृत्तियाँ प्रदान की गईं और हरिजन अध्यापकों के लिये मद्रास नगर में एक प्रशिक्षण-विद्यालय का निर्माण किया गया।

मद्रास सरकार की इस नीति ने हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों की शिक्षा में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इस प्रान्त में १६०२ में ३,००० विद्यालय ऐसे थे जिनमें केवल हरिजनों को शिक्षा दी जाती थी। इनमें से अधिकांश विद्यालय प्राथमिक शिक्षा के थे, पर १४ माध्यमिक शिक्षालय भी थे। सब प्रकार के विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या ४४,१५० थी। इनमें से ८,२२८ लड़कियाँ थीं। इससे स्पष्ट होता है कि मद्रास प्रान्त में हरिजनों में शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हुआ।

मद्रास के समान बम्बई प्रान्त में भी हरिजनों की शिक्षा के प्रति उदारता व्यक्त की गई। परन्तु इस प्रान्त की नीति मद्रास से भिन्न थी। यहाँ की सरकार ने हरिजनों के लिये विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना पर अधिक बल नहीं दिया। फलतः यहाँ सरकार ने मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया कि हरिजन छात्रों को सामान्य विद्यालयों में शिक्षा दी जाय और इस कार्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। परन्तु इसमें समय लगा, क्योंकि प्रारम्भ में हरिजन छात्रों के प्रति बड़ा दुर्व्यवहार किया जाता था। समय की गति के साथ उनकी स्थिति में परिवर्तन होता चला गया और कुछ समय पश्चात् उन्हें सभी सुविधायें प्राप्त हो गईं।

दुर्भाग्यवश अन्य प्रान्तों में हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों की शिक्षा में कोई रुचि व्यक्त नहीं की गई। परिणामस्वरूप वहाँ उनकी शिक्षा में प्रगति न हुई। अभी तक भारतीयों ने उनकी शिक्षा के प्रसार के लिये कुछ नहीं किया था। हाँ, मिशनरियों ने अवश्य कुछ प्रयास किये थे, पर उनकी शिक्षा की समस्या इतनी जटिल थी कि मिशनरी अकेले उसका समाधान करने में असमर्थ थे।

आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा

भारतीय शिक्षा-आयोग अपनी जांच के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों में शिक्षा का प्रायः पूर्ण अभाव था। उनकी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये आयोग ने कुछ बहुमूल्य सुझाव दिये थे। सरकार ने उनमें से अधिकांश सुझावों को स्वीकार किया। फलस्वरूप १८८२ से १६०२ तक आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा में कुछ प्रगति हुई। इस काल में सरकार ने उनकी शिक्षा के प्रसार के लिये जो साधन

1. *Ibid* (1892–97) p. 353.

अपनाये वे अग्रलिखित थे :—(१) विशिष्ट विद्यालयों का निर्माण; (२) निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध; (३) छात्रवृत्तियों की व्यवस्था; (४) अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये विशेष सुविधायें; (५) इन जातियों के शिक्षा कार्य में लगे हुए ग़ैर-सरकारी शिक्षालयों को उदार आर्थिक सहायता; और (६) पाठ्य-पुस्तकों का अमूल्य वितरण।

राजकीय प्रयत्नों की अपेक्षा मिशनरी प्रयासों को आदिवासियों तथा पहाड़ी जातियों के शिक्षा-कार्य में अधिक सफलता प्राप्त हुई। मिशनरियों ने छोटा नागपुर, संथाल के परगनों, मद्रास और आसाम के आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों में शिक्षा-प्रसार का कार्य मुख्य रूप से किया। परन्तु सरकारी और मिशनरी प्रयासों के बावजूद भी इन जातियों में शिक्षा का अधिक प्रसार न हो सका। इस बात की पुष्टि तत्कालीन आंकड़ों से हो जाती है। १९०२ में इन जातियों में शिक्षित पुरुषों का अनुपात इस प्रकार था—बम्बई में १०,००० में १०५, बरार में १८, बंगाल और आसाम में ८९, मद्रास में ४७ तथा मध्य प्रदेश में ४०। शिक्षित स्त्रियों का अनुपात और भी कम था—आसाम में १०,००० में १३, बङ्गाल में ४, और अन्य प्रान्तों में २ से कम।[1]

व्यावसायिक शिक्षा

भारतीय शिक्षा-आयोग ने व्यावसायिक शिक्षा को लोकप्रिय बनाने पर बल दिया था और इस सम्बन्ध में अनेकों सुझाव दिये थे। भारत-सरकार ने अपने हितों को ध्यान में रखते हुए इनमें से कुछ सुझावों को मान लिया। परिणामतः इस अवधि में विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा में प्रगति दृष्टिगोचर हुई। हम नीचे इनका विवरण दे रहे हैं।

क़ानून की शिक्षा

१८८२ तक आधुनिक ढङ्ग के न्यायालयों की स्थापना से और उनके कारण क़ानून की शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की माँग बढ़ने से भारतीयों का झुकाव क़ानून के अध्ययन की ओर हो गया था। १८८२ के पश्चात् उनका झुकाव और भी बढ़ गया, क्योंकि अभिवक्ता के रूप में वे समाज के आदर के पात्र बन सकते थे और साथ ही पर्याप्त धन का उपार्जन भी कर सकते थे।

१९०२ में कानून की शिक्षा का प्रबन्ध सम्मिलित रूप से विश्वविद्यालयों, शिक्षा-विभागों एवं उच्च न्यायालयों के हाथ में था। क़ानून के विद्यालय शिक्षा-विभागों की अध्यक्षता में थे। विश्वविद्यालय परीक्षाओं के लिये पाठ्य-क्रम निर्धारित करते थे। उच्च न्यायालय की परीक्षा पास करने के पश्चात् उच्च

1. *Ibid* (1897–1902), p. 384.

न्यायालयों द्वारा ली जाने वाली परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ही एक व्यक्ति क़ानून के व्यवसाय में प्रवेश कर सकता था।

क़ानून की शिक्षा के लिये तीन प्रकार की संस्थायें थीं—(१) आर्ट्स और साइन्स के कॉलेजों से सम्बद्ध क़ानून की कक्षायें; (२) क़ानून के कॉलेज; एवं (३) क़ानून के स्कूल। मद्रास सरकार की अध्यक्षता में एक क़ानून का कॉलेज था। इसी प्रकार का एक कॉलेज पंजाब विश्वविद्यालय की अधीनता में था। बम्बई नगर में एक राजकीय क़ानून-कॉलेज था, जिसमें क़ानून की शिक्षा सायंकाल को दी जाती थी। बङ्गाल, मध्य प्रदेश एवं संयुक्त प्रान्त में पृथक् क़ानून-कॉलेज नहीं थे, पर आर्ट्स और विज्ञान के कॉलेजों को क़ानून-विभाग खोलने का अधिकार था। आसाम में हाई स्कूलों से सम्बद्ध क़ानून की ४ कक्षायें चलती थीं, जो विद्यार्थियों को 'अभिवक्ता परीक्षा' (Pleader's Examination) के लिये तैयार करती थीं।

चिकित्सा-शिक्षा

१६०२ में कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और लाहौर में ४ राजकीय मैडिकल कॉलेज थे। इनके अतिरिक्त देश में अनेकों मेडिकल स्कूल थे, जिनका संचालन राज्य या व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा किया जा रहा था। प्रारम्भ में भारतीयों ने अपनी धार्मिक भावनाओं तथा सामाजिक परम्पराओं के कारण पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली का बहिष्कार किया था। १६०२ तक पुरुष इसकी ओर पर्याप्त संख्या में आकर्षित होने लगे थे, परन्तु स्त्रियों ने इसमें कोई विशेष रुचि प्रकट नहीं की थी। १६०२ में मेडिकल कॉलेजों की छात्र संख्या १,४६६ और मेडिकल स्कूलों की छात्र संख्या २,७२७ थी। इनमें छात्राओं की संख्या केवल २४२ थी, जिनमें से ७६ लड़कियाँ मेडिकल कॉलेजों में और १६६ मेडिकल स्कूलों में अध्ययन कर रही थीं। इन समस्त छात्राओं में ६२ यूरोपियन और ऐंग्लोइंडियन, १२० ईसाई, ८ ब्राह्मण, १५ अन्य जातियों की, १५ मुसलमान और २२ पारसी थीं।[1]

इञ्जीनियरिंग की शिक्षा

इस अवधि में सार्वजनिक निर्माण विभागों, नगर पालिकाओं और कारखानों आदि में इंजीनियरों की माँग बढ़ने से इंजीनियरिंग की शिक्षा की अच्छी प्रगति हुई। १६०२ में रुड़की, शिवपुर, पूना और मद्रास में सरकार द्वारा संचालित इंजीनियरिंग कॉलेज थे। इन कॉलेजों में ८६५ छात्र थे। कॉलेजों के अतिरिक्त इंजीनियरिंग और सर्वे के १८ स्कूल भी थे, जिनकी छात्र-संख्या ७६७ थी। इन कॉलेजों और स्कूलों में सिविल, मेकेनिकल और

1. Nurullah and Naik : *op. cit.*, p. 377.

एलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग की शिक्षा का प्रबन्ध था। इंजीनियरिंग के कुछ अन्य अंगों की शिक्षा की भी व्यवस्था थी।

कृषि-शिक्षा

कृषि-प्रधान देश होने के कारण भारत में कृषि-शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है। परन्तु खेद है कि विदेशी शासकों ने इस शिक्षा की ओर १८८० तक कोई ध्यान नहीं दिया। उस वर्ष 'दुर्भिक्ष-आयोग' (Famine Commission) ने भारत-सरकार का ध्यान कृषि-शिक्षा की ओर आकृष्ट किया। परन्तु फिर भी इसकी उपेक्षा की गई। १८८९ में इंगलैन्ड की 'रॉयल सोसाइटी' का एग्रीकल्चरल केमिस्ट, डा० वोल्कर (Voelcker) भारत की कृषि की जांच करने और इस सम्बन्ध में सरकार को अपना परामर्श देने के लिये यहाँ आया। उसने अपनी रिपोर्ट में कृषि-शिक्षा पर विशेष रूप से बल दिया। १८९० में उसकी रिपोर्ट पर प्रान्तीय सरकारों के प्रतिनिधियों में विचार विनिमय हुआ और केन्द्रीय सरकार से कृषि-शिक्षा की व्यवस्था करने की सिफ़ारिश की गई। उसी समय से यथार्थ रूप में सरकार कृषि-शिक्षा के लिये प्रयत्नशील हुई, यद्यपि यह शिक्षा भारत में कुछ स्थानों पर पहिले भी प्रदान की जा रही थी। १९०२ में पूना, शिवपुर, सैदपत (मद्रास), कानपुर और नागपुर में कृषि कॉलेज थे, जिनमें २१९ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

पशु-चिकित्सा-शिक्षा

कृषि-शिक्षा के समान पशु-चिकित्सा-शिक्षा के प्रति भी सरकार की उदासीनता रही। १९०२ में पशु-चिकित्सा की शिक्षा देने के लिये भारत में ३ राजकीय कॉलेज, बम्बई, बेलगचिया (कलकत्ते के समीप) और लाहौर में थे। लाहौर के कॉलेज में शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा थी। कॉलेजों के अतिरिक्त अजमेर में एक स्कूल भी था। इन चारों संस्थाओं में ३०१ विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

वन-विज्ञान की शिक्षा

१९ वीं शताब्दी के मध्य से सरकार ने भारतीय वनों से उपलब्ध होने वाली वस्तुओं की ओर ध्यान दिया। अतः वनों की देख-रेख और सुरक्षा के लिये कर्मचारियों की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इन्हीं कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के विचार से देहरादून और पूना में वन-विज्ञान की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया।

कला की शिक्षा

१९०२ में सरकार द्वारा संचालित चार आर्ट स्कूल बम्बई, कलकत्ता,

लाहौर और मद्रास में थे। इन विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की यौगिक संख्या १,२२० थी।

वाणिज्य-शिक्षा

वाणिज्य-शिक्षा को सरकार ने बहुत कम प्रोत्साहन दिया। इस शिक्षा के लिये केवल बम्बई में एक कॉलेज था। परन्तु वह भी यथार्थ में वाणिज्य शिक्षा प्रदान करने का कार्य न करके केवल विद्यार्थियों को 'लन्दन चेम्बर ऑफ़ कामर्स' की परीक्षा के लिये तैयार करता था। १६०२ में इस कॉलेज के अतिरिक्त १५ स्कूल भी थे, जिनमें १,१२३ छात्रों को शिक्षा दी जा रही थी।

तकनीकी एवं औद्योगिक शिक्षा

भारत सरकार प्रारम्भ से ही तकनीकी एवं औद्योगिक शिक्षा की विरोधी थी। अंग्रेज शासकों का विचार था कि यदि भारत में इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई, तो देश का औद्योगिक विकास प्रारम्भ हो जायगा और इससे इंगलैन्ड के उद्योगों को आघात पहुँचेगा। भारत के राष्ट्रीय नेताओं का विश्वास था कि देश की निर्धनता को दूर करने के लिये तकनीकी एवं औद्योगिक शिक्षा अति आवश्यक है। कांग्रेस ने १८८७ में होने वाले अपने तीसरे अधिवेशन में सरकार से इस शिक्षा की मांग की और अन्य अधिवेशनों में इस माँग को दोहराती रही।[1] परन्तु निज स्वार्थ में लिप्त भारत की अंग्रेजी सरकार इस माँग को निरन्तर ठुकराती रही। ऐसी स्थिति में टेकनिकल एवं औद्योगिक शिक्षा का विकास होना सम्भव नहीं था। १६०२ में सम्पूर्ण भारत में केवल ८० टेकनिकल और औद्योगिक स्कूल थे जिनमें ४,८६४ विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इन स्कूलों में से कुछ ही टेकनिकल स्कूल कहलाने के अधिकारी थे, क्योंकि अधिकांश में देश की प्राचीन परम्पराओं के आधार पर देशी कला-कौशल की ही शिक्षा प्रदान की जाती थी। वस्तुतः देश की आवश्यकताओं को देखते हुए टेकनिकल एवं औद्योगिक स्कूलों की संख्या नगण्य थी।

व्यावसायिक शिक्षा का पुनर्विलोकन

इस अवधि में व्यावसायिक शिक्षा के उपर्युक्त वर्णन से कुछ महत्त्वपूर्ण

1. "It reiterated its request in 1891, 1892 and 1893. In 1894 it affirmed in the most emphatic manner the importance of increasing public expenditure on all branches of education, and the expediency of establishing technical schools and colleges. It repeated the same request in 1895." Madan Mohan Malviya in *Report of the Indian Industrial Commission*, 1916-18, p. 250.

बातें स्पष्ट हो जाती हैं। प्रथम, व्यावसायिक शिक्षा की जो भी व्यवस्था सरकार द्वारा की गई थी, उसका एक मात्र उद्देश्य सार्वजनिक प्रशासन के लिये उपयुक्त व्यक्तियों को तैयार करना था। द्वितीय, सामान्य शिक्षा के प्रसार में व्यक्तिगत प्रयास सराहनीय थे, परन्तु व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में उनका पूर्ण अभाव था। ऐसी संस्थायें उँगलियों पर गिनी जा सकती हैं, जिनका संचालन भारतीयों द्वारा किया जा रहा था। तृतीय, क़ानून, चिकित्सा और इंजीनियरिंग की शिक्षा में कुछ प्रगति अवश्य हुई, पर व्यावसायिक शिक्षा के अन्य अंगों की ओर न तो समुचित ध्यान दिया गया और न उनको संगठित करने का प्रयत्न ही किया गया। इन्हीं दोषों को दूर करने के लिये भविष्य में अविराम रूप से प्रयास किये गये।

सारांश

प्राथमिक शिक्षा—भारतीय शिक्षा-आयोग की सिफ़ारिश के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया गया। इन संस्थाओं ने १८८२ से १९०२ तक प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय को २२ लाख बढ़ा दिया, परन्तु सरकार ने केवल १५ लाख बढ़ाया। फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि तो अवश्य हुई, पर उसे संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा—इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा की संतोषजनक प्रगति हुई। राजकीय विद्यालयों की उत्तरोत्तर उन्नति होती रही, परन्तु व्यक्तिगत विद्यालयों की आर्थिक दशा शोचनीय थी। आयोग के सुझाव के अनुसार हाई स्कूल की शिक्षा को 'अ-कोर्स' और 'ब-कोर्स' में विभाजित किया गया। लगभग सभी प्रान्तों में औद्योगिक पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किया गया, पर वह लोकप्रिय न हो सका। अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण-विद्यालय भी खोले गये। अंग्रेज़ी की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिये जाने से भारतीय भाषाओं का विकास रुक गया।

उच्च शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा की प्रगति ने उच्च शिक्षा के विकास में योग दिया। भारतीयों के व्यक्तिगत प्रयासों के फलस्वरूप अनेकों कॉलेजों का निर्माण हुआ। देश के कुछ आत्म-त्यागी विद्वानों ने कॉलेजों में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ करके भारतीय नवयुवकों के चारित्रिक निर्माण में अपूर्व योग दिया। फर्ग्यूसन कालेज, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज और सेन्ट्रल हिन्दू कालेज का निर्माण हुआ। इस अवधि में उच्च शिक्षा की संतोषजनक प्रगति हुई, परन्तु शिक्षा का स्तर गिर गया। शिक्षा का एक विशेष दोष यह था कि पुस्तकीय ज्ञान और परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर अत्यधिक बल दिया जाता था।

स्त्रियों की शिक्षा—इस काल में स्त्री-शिक्षा की प्रगति मन्द रही, परन्तु वह निरन्तर होती रही। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति हुई। देश के कुछ निस्वार्थ समाज-सेवकों ने माध्यमिक शिक्षा को लोकप्रिय बनाने में कोई कसर न उठा रखी। हिन्दू-समाज बालिकाओं की माध्यमिक शिक्षा की उपयोगिता का अनुभव करने लगा। हिन्दू लड़कियाँ उच्च शिक्षा की ओर अग्रसर हुईं, पर मुस्लिम लड़कियाँ उसकी ओर उदासीन रहीं।

मुसलमानों की शिक्षा—मुस्लिम-शिक्षा को सरकार द्वारा विशेष प्रोत्साहन दिया गया। फलस्वरूप शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हुआ। फिर भी मुस्लिम-शिक्षा का उतना विकास न हो सका जितना हिन्दुओं की शिक्षा का हुआ।

हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों की शिक्षा—भारतीय शिक्षा-आयोग की सिफ़ारिश के अनुसार सरकार ने हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। इन जातियों के लिये विशिष्ट स्कूलों का निर्माण किया गया और छात्रों को निःशुल्क शिक्षा तथा छात्रवृत्तियों द्वारा पढ़ने के लिये प्रलोभित किया गया।

आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा—सरकारी प्रयास के कारण इन जातियों की शिक्षा में प्रगति तो हुई, परन्तु वह कम थी। मिशनरियों ने इन जातियों की शिक्षा के लिये भारत के कुछ भागों में विशेष रूप से प्रयत्न किये।

व्यावसायिक शिक्षा—इस अवधि में क़ानून, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कृषि, वन-विज्ञान, पशु-चिकित्सा, कला, वाणिज्य, तकनीकी और औद्योगिक शिक्षा का भी विस्तार हुआ। इस दिशा में सरकार द्वारा ही अधिक कार्य किया गया। भारतीयों ने इसमें विशेष रुचि व्यक्त नहीं की।

TEST QUESTIONS

1. "The most significant achievement of the period from 1882 to 1902 was an unprecedented expansion of primary, secondary and collegiate education." Do you agree with this view? If so, give reasons and illustrate your answer with facts and figures.
2. "In the period of twenty years between 1882 and 1902 the education of women made slow but steady progress." Elucidate this statement.
3. Give a brief account of vocational education as it was in 1882–1902 and add a short criticism.

—: ० :—

अध्याय १२

लार्ड कर्ज़न की शिक्षा-नीति

(१८९९–१९०५)

१९ वीं शताब्दी के अन्तिम दशक भारतीय शिक्षा के इतिहास में सदैव स्मरण रहेंगे। यह वह समय था जब भारत के कुछ सपूत विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त देश की दुर्दशा देख कर विक्षुब्ध हो उठे थे। स्वतन्त्रता के विचारों से सरावोर होकर उन्होंने अपने देशवासियों को आलस्य और अकर्मण्यता की चिर-निद्रा से जागृत करके उनमें राष्ट्रीय भावनाओं को कूट-कूट कर भरना प्रारम्भ कर दिया था। इन्हीं भावनाओं से ओत-प्रोत भारत के कुछ सुयोग्य एवं त्यागी समाज सुधारकों ने राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की। केवल ऐसी ही शिक्षा से भारतीय संस्कृति, सभ्यता, साहित्य और भाषा का संरक्षण सम्भव था। शीघ्र ही उनकी यह माँग साकार रूप में प्रकट हुई। लाहौर में दयानन्द ऐंग्लोवैदिक कालेज, हरिद्वार में स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल और बनारस में सेंट्रल हिन्दू कालेज का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करना था।

कर्ज़न का भारत आगमन

ऐसे समय पर जनवरी १८९९ में लार्ड कर्ज़न (Curzon) ने गवर्नर-जन-

रल के रूप में इस देश में पदार्पण किया। "वह स्वभाव से उदार एवं स्वेच्छाचारी शासक था और शिक्षा द्वारा कठोर शासन में विश्वास करने वाला कठोर साम्राज्यवादी था। वह केन्द्रीयकरण एवं कार्यक्षमता का भी पुजारी था।"[1] वह धुरन्धर विद्वान, कुशल प्रशासक और पाश्चात्य सभ्यता का परम भक्त था। उसका अटल विश्वास था कि एशियाई जातियों का उद्धार केवल पाश्चात्य सभ्यता को अङ्गीकार करने से ही हो सकता है। अतः प्रत्येक अंग्रेज का यह कर्त्तव्य है कि वह प्राच्य जातियों को सभ्य बनाये। इस प्रकार भारत में फैलती हुई राष्ट्रीयता की भावना के विरोधी के रूप में कर्ज़न ने इस देश का शासन-सूत्र अपने हाथ में सम्हाला।

शिमला शिक्षा-सम्मेलन[2] (१९०१)

जिस समय कर्ज़न ने इस देश में प्रवेश किया, उस समय यहाँ की शिक्षा की दशा अच्छी नहीं थी। "१८९७ से १९०२ तक का काल भारतीय-शिक्षा के इतिहास में सबसे अधिक अप्रगतिशील था, विद्यार्थियों की संख्या अति न्यून थी और स्कूलों की संख्या भी कम हो गई थी।[3] कर्ज़न को शिक्षा में विशेष अभिरुचि थी। अतः भारत आने के कुछ समय उपरान्त ही उसने शिक्षा की ओर ध्यान दिया। उसका विश्वास था कि भारतीय शासन को पुनर्संङ्गठित करने के लिये शिक्षा में सुधार किया जाना अति आवश्यक है।[4] अपने विचार को क्रियात्मक रूप प्रदान करने के लिये उसने १९०१ में शिमला में एक गुप्त शिक्षा-सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन में प्रत्येक प्रान्त के शिक्षा-संचालक एवं मिशनरियों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया। इसमें भारतीय प्रतिनिधियों को कोई स्थान नहीं दिया गया। अतः कर्ज़न की शिक्षा-नीति के प्रति भारतीयों का सशंकित होना स्वाभाविक था। यह सम्मेलन कर्ज़न के सभापतित्व में १५ दिन चला। इसमें १५० प्रस्ताव पास किये गये और उन्हीं के

1. "By temperament he was a benevolent autocrat and by training a diehard imperialist with implicit faith in a strong rule. He was also the archpriest of centralisation and efficiency." A. N. Basu : *op. cit.*, p. 60
2. Simla Educational Conference.
3. *Quinquennial Review of the Progress of Education in India*, 1902-07, Vol. I, p. 22.
4. "When I came to India, Education Reform loomed before me as one of those objects which.....appeared to deserve a prominent place in any programme of administrative reconstruction." *Lord Curzon in India*, Vol. II, p. 65.

आधार पर कर्ज़न ने अपनी शिक्षा-नीति निर्धारित की। सम्मेलन की कार्य-वाही को पूर्णतः गुप्त रखा गया और उसको किसी समाचार-पत्र में प्रकाशित नहीं किया गया। सम्मेलन में प्रतिनिधित्व न प्राप्त होने के कारण भारतीय पहिले से ही सशंकित थे। अब उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया कि "सम्मेलन भारतीयों को यातना देने वाली सभा थी जिसमें उनके विरुद्ध किसी षड्यन्त्र की रचना की गई है।"[1]

शिमला-सम्मेलन में भारतीय शिक्षा के प्रत्येक पहलू और उससे सम्बन्धित प्रायः प्रत्येक समस्या पर विचार-विमर्श किया गया और उन्हीं पर भारत में शिक्षा-प्रसार की योजना को आधारित किया गया। हम उनका अध्ययन नीचे करेंगे।

विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षा

कर्ज़न ने अपने शिक्षा के कार्य-क्रम में विश्वविद्यालयों के सुधार को अग्रिमता प्रदान की। अभी तक विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेने और उपाधियाँ वितरण करने का कार्य कर रहे थे। उनका छात्रों से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। भारतीय विश्वविद्यालयों की इस स्थिति की कर्ज़न ने तीक्ष्ण आलोचना की। उसने कहा: "आदर्श विश्वविद्यालय के दो पहलू होने चाहिये। उसे ज्ञान के प्रसार और विद्या के प्रोत्साहन का स्थान होना चाहिये; और उसे एक मानवीय कारखाना होना चाहिये जहाँ चरित्र का निर्माण अनुभव रूपी अग्निशाला में किया जाय और जहाँ उसको सत्य की कसौटी पर कसा जाय।"[2] इन शब्दों द्वारा कर्ज़न ने भारतीय विश्वविद्यालयों के समक्ष एक नया आदर्श रखा परंतु इस आदर्श तक पहुँचने के लिये उसने यह आवश्यक समझा कि पहिले भारतीय विश्वविद्यालयों की वास्तविक स्थिति की जाँच करली जाय। इस विचार से उसने २७ जनवरी १९०२ को प्रथम 'भारतीय विश्वविद्यालय आयोग' की नियुक्ति की।

1. "A star Chamber conclave that was engaged in some dark and sinister conspiracy." *Ibid*, p. 67.
2. "The ideal university would consist of two aspects. It would be a place for the dissemination of knowledge and the encouragement of learning; and it would further be a smithy where character was forged in the furnace of experience, and beaten out on the anvil of truth." Curzon's Convocation Address at the Calcutta University, 1905. *Lord Curzon in India*, Vol. II, pp. 59-61.

भारतीय विश्वविद्यालय आयोग[1] (१९०२)

नियुक्ति के कारण—कर्ज़न का विचार था कि भारतीय विश्वविद्यालयों में सुधार की आवश्यकता है, क्योंकि जिस समय से उनकी स्थापना हुई थी, उस समय से किसी ने भी उनकी सुध नहीं ली थी। इन विश्वविद्यालयों का संगठन लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मान कर किया गया था। १८९८ में लन्दन विश्वविद्यालय का पुनर्संङ्गठन हो गया था। अतः उसी के आधार पर भारतीय विश्वविद्यालयों में परिवर्तन करना वांछनीय था। उस समय तक कॉलेजों की संख्या में बहुत वृद्धि हो गई थी और विश्वविद्यालयों का कार्य-भार अत्यधिक हो गया था। सीनेट के सदस्यों की संख्या निश्चित न होने के कारण उनकी अनावश्यक रूप से वृद्धि होगई थी। सीनेट में अध्यापकों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त था। विश्वविद्यालयों का मान्यता-प्राप्त कॉलेजों पर परीक्षा लेने के अतिरिक्त अन्य कोई नियन्त्रण नहीं था। अतः कॉलेजों का शिक्षा-स्तर गिर गया था। इन सभी बातों के कारणों की जाँच करने के लिये आयोग की नियुक्ति की गई।

जांच का विषय—विश्वविद्यालयों के उपरोक्त दोषों को ध्यान में रखते हुए आयोग की जाँच का विषय यह रखा गया :—"ब्रिटिश भारत में स्थित विश्वविद्यालयों की दशा एवं उनकी भावी उन्नति की जाँच करना; एवं उनके विधान तथा कार्य-प्रणाली को सुधारने के लिये प्रस्ताव प्रस्तुत करना; एवं ऐसे सुझाव देना जिनसे विश्व-विद्यालयों का शिक्षा-स्तर उठ सके—और विद्या की उन्नति हो सके।"[2]

सुझाव—आयोग ने सभी विश्वविद्यालयों में भ्रमण किया और उनकी अवस्था की सूक्ष्म छानबीन करके लगभग ६ माह पश्चात् एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें विश्वविद्यालयों के सुधार के लिये अनेकों सुझाव दिये गये। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्नांकित हैं :—

१. विश्वविद्यालयों के विधान में ऐसा परिवर्तन कर दिया जाय जिससे वे कुछ सीमा तक शिक्षण-कार्य कर सकें।
२. विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिये अध्यापकों की नियुक्ति करें।
३. सीनेट एवं सिंडीकेट का पुनर्संङ्गठन आवश्यक है। सीनेट के सदस्यों की संख्या कम कर दी जाय और उनकी अवधि ५ वर्ष कर दी जाय। सिंडीकेट के सदस्यों की संख्या ९ से १५ तक रखी जाय।

1. Indian Universities Commission.
2. *Indian Universities Commission Report*, 1902.

४. सीनेट में कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के अध्यापकों तथा सुयोग्य विद्वानों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये।

५. कॉलेजों को मान्यता प्रदान करने के नियमों में अधिक कड़ाई रखी जाय।

६. मान्यता-प्राप्त कॉलेजों का नियमित निरीक्षण किया जाय।

७. प्रत्येक कॉलेज का प्रबन्ध एक संगठित समिति द्वारा किया जाय। यह समिति योग्य अध्यापकों की नियुक्ति, विद्यार्थियों के अनुशासन, छात्रावास और भवन आदि की ओर विशेष ध्यान दे।

८. मेट्रीकुलेशन का स्तर उच्च किया जाय, इन्टरमीडियेट परीक्षा समाप्त कर दी जाय और बी० ए० का पाठ्य-क्रम तीन वर्ष का कर दिया जाय।

आयोग का मूल्यांकन—उपर्युक्त सुझावों से स्पष्ट हो जाता है कि आयोग का उद्देश्य विश्वविद्यालयों के संगठन में आमूल-चूल परिवर्तन करना नहीं था अपितु प्रचलित प्रणाली को पुनर्संगठित करके शक्तिशाली बनाना था। आयोग ने विश्वविद्यालयों को शिक्षा-केन्द्र बनाने का सुझाव नहीं दिया। उसके मतानुसार कॉलेज देश के प्रत्येक भाग में दूर-दूर तक फैले हुए थे। अतः उनको एकत्रित करके विश्वविद्यालयों को शिक्षा-केन्द्र बनाना असम्भव था। शिक्षा-शुल्क की निम्नतर दर निश्चित करने एवं द्वितीय श्रेणी के कॉलेजों को तोड़ने का सुझाव देने के कारण आयोग ने भारतीयों की शत्रुता मोल ले ली। वैसे तो भारतीय पहिले से ही इसके विरोधी थे, क्योंकि शिमला-सम्मेलन के समान इसमें भी किसी भारतीय का प्रतिनिधित्व नहीं था। यद्यपि पुनर्विचार के उपरान्त सरकार ने डाक्टर गुरुदास बनर्जी और सैयद हसन बिलग्रामी को आयोग के सदस्यों में स्थान दे दिया था, परन्तु इससे भारतीयों को किसी प्रकार का सन्तोष नहीं हुआ था। उनका प्रारम्भ से ही विश्वास था कि सरकार देश में प्रवाहित राष्ट्रीयता की लहर को मोड़ने का प्रयास कर रही है। जनता का विरोध व्यर्थ सिद्ध हुआ। कर्ज़न की सरकार ने आयोग की सिफ़ारिशों के आधार पर एक विधेयक तैयार किया जो २१ मार्च १९०४ को 'भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम' के रूप में पारित किया गया।

भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम[1] (१९०४)

इस अधिनियम द्वारा भारतीय विश्वविद्यालयों के संगठन, कार्य-क्षेत्र, अधिकार और शासन आदि में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। ये परिवर्तन निम्नलिखित थे :—

१. विश्वविद्यालयों के कार्य-क्षेत्र को विस्तृत कर दिया गया। उन्हें परीक्षायें

1. Indian Universities Act.

लेने के अतिरिक्त शिक्षण की व्यवस्था करने का भी अधिकार दे दिया गया। वे शिक्षण-कार्य के लिये प्राध्यापकों को नियुक्त कर सकते थे। उच्च ज्ञान को प्रोत्साहित करने के लिये पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं का प्रबन्ध कर सकते थे और विद्यार्थियों के अनुशासन के सम्बन्ध में नियमों का निर्माण कर सकते थे।

२. १८५७ के 'विश्वविद्यालय अधिनियम' के अनुसार सीनेट के सदस्यों को सरकार आजीवन के लिये मनोनीत करती थी। फलस्वरूप सीनेट का आकार अति विशाल हो गया था। इस अधिनियम द्वारा यह निश्चय कर दिया गया कि सीनेट के सदस्यों की निम्नतम संख्या ५० और उच्चतम १०० होगी और ये सदस्य अपने पद पर आजीवन न रह कर केवल ५ वर्ष तक रहेंगे।

३. बम्बई, कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालयों की सीनेटों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या २० एवं अन्य विश्वविद्यालयों की सीनेटों की संख्या १५ से अधिक नहीं होगी। इस अधिनियम द्वारा सीनेटों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या में अभिवृद्धि कर दी गई।

४. विश्वविद्यालय के सिंडीकेटों को क़ानूनी स्वीकृति प्रदान कर दी गई। सिंडीकेटों के सदस्यों में विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों का उचित प्रतिनिधित्व होना अनिवार्य कर दिया गया।

५. १८५७ के 'विश्वविद्यालय अधिनियम' के अनुसार सीनेट को विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार प्राप्त था। उसे सरकार से उनकी स्वीकृति केवल नाम मात्र के लिये लेनी पड़ती थी। अब तक सरकार को केवल यह अधिकार था कि वह उनको अस्वीकृत कर सकती थी, परन्तु स्वीकृति देने के उपरान्त उनमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। १९०४ के अधिनियम के अनुसार सरकार को सीनेट द्वारा बनाये हुए नियमों में संशोधन करने, उन्हें स्वीकृति देने तथा सीनेट द्वारा समय पर नियम न बनाये जाने पर स्वयं नियम बनाने का अधिकार प्राप्त हो गया।

६. विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता चाहने वाले कॉलिजों के लिये नियम कड़े कर दिये गये और सिन्डीकेटों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे मान्यता प्राप्त कॉलिजों के शिक्षण-स्तर को ऊँचा रखने के लिये समय-समय पर उनका निरीक्षण कर सकते हैं।

७. १८५७ के अधिनियम द्वारा विश्वविद्यालयों के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार (Territorial Jurisdiction) की सीमा निश्चित नहीं की गई थी। परिणामस्वरूप कुछ कॉलेजों ने दो विश्वविद्यालयों से अपना सम्बन्ध

स्थापित कर लिया था और कुछ एक विश्वविद्यालय के क्षेत्र में होते हुए भी दूसरे से सम्बन्धित हो गये थे। १९०४ के अधिनियम के अनुसार गर्वनर-जनरल को विश्वविद्यालयों के प्रादेशिक क्षेत्राधिकारों की सीमायें निश्चित करने का अधिकार दे दिया गया।

भारतीय प्रतिक्रिया

भारतीयों ने प्रारम्भ से ही विश्वविद्यालय सुधार के इस अधिनियम का घोर विरोध किया था। भारतीय मत को केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्य गोपाल कृष्ण गोखले ने अपने ऐतिहासिक व्याख्यानों में व्यक्त किया। वस्तुतः भारतीय, विश्वविद्यालय सुधार के विरोधी नहीं थे। जिस समय १८९९ में कर्जन ने विश्वविद्यालयों के सुधार की बात कही थी, उस समय भारतीयों ने इस बात का हृदय से स्वागत किया था। परन्तु उसके पश्चात् शिमला-सम्मेलन में भारतीयों को प्रतिनिधित्व न देना, सम्मेलन की कार्यवाही को गुप्त रखना और विश्वविद्यालय आयोग में किसी भारतीय को नियुक्त न करना, कुछ ऐसी घटनायें थीं जिन्होंने भारतीयों को शंकापूर्ण कर दिया। वे समझने लगे कि सरकार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय प्रयासों पर रुकावट डालना चाहती है और देश की शिक्षा को अंग्रेजों के हाथ में रखना चाहती है। भारतीयों का यह भी विचार हो गया था कि सरकार उच्च शिक्षा-संस्थाओं पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहती है और नये नियमों का निर्माण करके शिक्षा-प्रसार को प्रोत्साहित करने की अपेक्षा उसकी प्रगति में अवरोध डालना चाहती है। भारतीयों के विरोध का सबसे शक्तिशाली कारण यह था कि १९०४ के अधिनियम द्वारा गर्वनर-जनरल को विश्वविद्यालयों के आन्तरिक प्रबन्ध पर पूर्ण अधिकार दे दिया गया था। वह विश्वविद्यालयों के लिये नियम बना सकता था, सीनेट द्वारा बनाये हुए नियमों में परिवर्तन कर सकता था और यह आदेश दे सकता था कि विश्वविद्यालय किन कॉलेजों को मान्यता प्रदान करें। इन सब बातों को देख कर भारतीयों को विश्वास हो गया था कि सरकार विश्वविद्यालयों के स्वतन्त्र अस्तित्व को समाप्त करके उन पर अपना पूर्ण नियंत्रण स्थापित करना चाहती है। यद्यपि भारतीयों का यह सन्देह भविष्य में निराधार सिद्ध हुआ, परन्तु उस समय की परिस्थितियों में इसका निराकरण न हो सका।

विश्वविद्यालय अधिनियम का मूल्याङ्कन

विश्वविद्यालय अधिनियम के सम्बन्ध में दो विचारधारायें प्रवाहित हो रही

थीं। सरकार का कहना था कि इस अधिनियम से विश्वविद्यालयों के समस्त दोषों का निवारण हो जायगा और उच्च शिक्षा की ऐसी सुन्दर व्यवस्था हो जायगी कि उसकी प्रगति तीव्र हो जायगी। इसके विपरीत भारतीयों का मत था कि अधिनियम द्वारा उच्च शिक्षा पर सरकार का पूर्ण आधिपत्य स्थापित हो जायगा और उसकी प्रगति रुक जायगी। परन्तु अधिनियम द्वारा न तो प्रथम बात सत्य सिद्ध हुई और न दूसरी असत्य। हाँ, इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि उच्च शिक्षा को लाभ अधिक हुआ और हानि कम। विश्वविद्यालयों का संचालन पहिले से अधिक उत्तम रीति से किया जाने लगा, उनका संगठन बहुत-कुछ निर्दोष हो गया और उनके सीनेटों के सदस्य सरकार के चाटुकार न होकर सुयोग्य और कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति होने लगे। कुछ विश्वविद्यालयों में शिक्षण का कार्य प्रारम्भ हो गया। पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं की स्थापना हो गई। निरीक्षण की व्यवस्था होने के कारण शिक्षा का स्तर उच्च हो गया। जो कॉलेज इसमें सफलता न प्राप्त कर सके, उनका अन्त हो गया। शिक्षा का स्तर उच्च होने से विद्यार्थियों की योग्यता में वृद्धि हुई और वे विभिन्न विषयों में अपनी विद्वता का परिचय देने लगे।

भारतीयों को भय था कि 'विश्वविद्यालय अधिनियम' से शिक्षा-प्रसार के क्षेत्र में भारतीयों की व्यक्तिगत चेष्टाओं पर घातक प्रहार होगा। परन्तु भारतीयों का यह भय असत्य सिद्ध हुआ। यद्यपि मान्यता प्रदान करने के नियमों का कठोरतापूर्वक पालन किये जाने से १९०९ से १९१२ तक कॉलेजों की संख्या कुछ कम हो गई, परन्तु उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में निश्चित रूप से वृद्धि हुई।

इस अधिनियम द्वारा विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों का बहुत सुधार हुआ और शिक्षा का स्तर ऊँचा हो गया, परन्तु उनकी शिक्षा-प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और न उसको उचित आधार पर ही रखा गया। पूर्व के समान पुस्तकीय ज्ञान तथा साहित्यिक विषयों को वरीयता प्रदान की गई। पाठ्य-क्रमों में जीवनोपयोगी विषयों को सम्मिलित नहीं किया गया। अधिनियम ने विश्वविद्यालयों पर सरकार का इतना कठोर नियंत्रण स्थापित कर दिया कि उन्हें स्वेच्छा से किसी कार्य को करने की स्वतन्त्रता न रह गई। 'कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग' के अनुसार भारतीय विश्वविद्यालय विश्व में सबसे अधिक सरकारी शासन के अधीन थे। "यह सत्य है कि विश्वविद्यालय अधिनियम से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। परन्तु विश्वविद्यालय सुधार का आन्दोलन प्रारम्भ करने का सेहरा कर्ज़न के सिर पर है। यह आन्दोलन मन्थर

गति से, पर दृढ़ता पूर्वक अपने निश्चित लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ रहा है।"[1]

कालेजों में सुधार

विश्वविद्यालयों में सुधार होने के कारण उनसे सम्बन्धित कॉलेजों में सुधार होना स्वाभाविक था। शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने के लिये कॉलेजों में शिक्षण-सामग्री से सुसज्जित प्रयोगशालाओं तथा रसायनशालाओं का होना अनिवार्य था। उनमें पुस्तकालयों, वाचनालयों और छात्रावासों की भी उचित व्यवस्था वांछनीय थी। व्यक्तिगत संस्थाओं के पास इन सब बातों का प्रबन्ध करने के लिये धन का अभाव था। अतः कर्ज़न ने उदारता पूर्वक कॉलेजों को १३½ लाख रुपये का विशेष सहायता-अनुदान दिया। इस धन का वितरण विभिन्न प्रान्तों की जनसंख्या और कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की यौगिक संख्या के आधार पर किया गया। गैर-सरकारी कॉलेजों को इस विशेष अनुदान से बहुत सहारा मिला और उन्होंने उचित व्यवस्था करके शिक्षा में गुणात्मक वृद्धि की।

शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव[2] (१९०४)

११ मार्च १९०४ को लार्ड कर्ज़न ने अपनी शिक्षा-नीति को एक सरकारी प्रस्ताव के रूप में प्रकाशित किया। इस प्रस्ताव में तत्कालीन भारतीय शिक्षा के दोषों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया। इनमें से अनेकों दोष आज भी इस देश की शिक्षा में कलंकबिन्दुओं के समान दृष्टिगोचर हो रहे हैं। प्रस्ताव में कहा गया : "संख्यात्मक दृष्टि से वर्तमान शिक्षा के दोष सर्वविदित हैं। ५ में से ४ गाँवों में स्कूल नहीं हैं। ४ बालकों में से ३ बिना शिक्षा प्राप्त किये बड़े होते हैं और ४० में से केवल १ बालिका किसी प्रकार के स्कूल में शिक्षा

1. "It is true that the Act of 1904, by itself did not achieve much. But Curzon will still have the credit of having been the pioneer to start a new movement in university reform which slowly and laboriously, but nevertheless steadily, has ever been progressing to its destined goal." Nurullah and Naik : *op. cit.*, pp. 474-475.
2. Government Resolution on Educational Policy.

प्राप्त करती है।"[1] गुणात्मक दृष्टि से शिक्षा में निम्नाङ्कित दोषों की ओर संकेत किया गया :—

१. उच्च शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य सरकारी नौकरी प्राप्त करना है। इस प्रकार शिक्षा का क्षेत्र अत्यधिक संकुचित कर दिया जाता है और जो व्यक्ति राजपद प्राप्त करने में असफल होते हैं, वे अन्य कार्यों के लिये अयोग्य हो जाते हैं।

२. परीक्षाओं को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया जाता है।

३. पाठ्य-क्रम पूर्णतया साहित्यिक है।

४. स्कूलों और कॉलेजों में विद्यार्थियों की बुद्धि का विकास कम किया जाता है और स्मृति का अधिक। परिणामतः ठोस ज्ञान का स्थान यंत्रवत् पुनरावृत्ति द्वारा ले लिया जाता है।

५. अंग्रेज़ी शिक्षा को प्रधानता देकर भारतीय भाषाओं की उपेक्षा की जाती है।

प्रस्ताव में शिक्षा के सभी अंगों का विवेचन करने के पश्चात् उसके विकास के लिये सरकारी नीति घोषित की गई। इस नीति की मुख्य-मुख्य बातें अधोलिखित थीं :—

१. प्राथमिक शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है और उसके विकास के लिये पर्याप्त प्रयास नहीं किया गया है। प्राथमिक शिक्षा का विकास करना सरकार का एक प्रमुख कर्त्तव्य होना चाहिये।

२. प्राथमिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम में अंग्रेज़ी को नहीं सम्मिलित करना चाहिये। इस स्तर पर भारतीय भाषाओं की शिक्षा पर ही अधिक बल दिया जाना चाहिये। अंग्रेज़ी की शिक्षा १३ वर्ष की आयु के पश्चात् दी जानी चाहिये।

३. माध्यमिक विद्यालयों का शिक्षण-स्तर ऊँचा उठाना चाहिये। नवीन शिक्षालयों को मान्यता एवं सहायता-अनुदान देने में कड़ाई करनी चाहिये जिससे अवांछनीय स्कूलों की स्थापना न हो सके।

४. विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की शिक्षा का स्तर ऊँचा किया जाना चाहिए। उच्च शिक्षा का उद्देश्य केवल सरकारी नौकरी प्राप्त करना नहीं होना चाहिये।

---

1. "The shortcomings of the present system in point of quantity are well known. Four out of five villages are without a school. Three boys out of four grow up without education and only one girl in forty attends any kind of school." *Government Resolution on Educational Policy*, 1904.

उपरिकथित बातों के अतिरिक्त प्रौद्योगिक, कृषि, कला और नैतिक शिक्षा के सम्बन्ध में भी कर्जन ने अपनी नीति की घोषणा की। इनका वर्णन आगे यथास्थान किया जायगा। यद्यपि कर्ज़न ने अपने प्रस्ताव में तत्कालीन भारतीय शिक्षा के गुण-दोषों का निरूपण बिल्कुल ठीक किया था और शिक्षा-प्रसार के लिये उसके सुझाव भी प्रशंसनीय थे, परन्तु जिस नीति का अनुसरण करके वह कार्य को सम्पादित करना चाहता था, वह भारतीयों को पसन्द नहीं थी। "यद्यपि रोग का निदान ठीक था, परन्तु प्रस्तावित औषधि न तो उपयुक्त ही थी और न सामयिक ही। लार्ड कर्ज़न ने जो बातें कहीं, उनमें से बहुत सी ठीक थीं, पर जिस विधि से वह सुधार करना चाहता था, उससे शिक्षित भारतीयों के मस्तिष्क में गम्भीर सन्देह उत्पन्न हो गया। उन्होंने समझा कि इस सुधार कार्य में कोई गहरी राजनीतिक चाल छिपी हुई है।"[1]

कर्जन और माध्यमिक शिक्षा

यद्यपि १८८२ से १९०२ तक माध्यमिक शिक्षा का विस्तार तीव्र गति से हुआ था तथापि उसमें अनेको दोष उत्पन्न हो गये थे। माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों में से अधिकांश भारतीयों द्वारा संचालित थे। इन संस्थाओं का शिक्षा-स्तर निम्न था। इनके पास शिक्षा की उचित व्यवस्था करने के लिये धन का अभाव था। अतः इन विद्यालयों के सुधार की ओर कर्ज़न का ध्यान जाना स्वाभाविक था। उसने माध्यमिक शिक्षा के लिये एक नवीन नीति निर्धारित करके कार्यान्वित की। इस नीति की मुख्य-मुख्य बातों पर हम नीचे प्रकाश डाल रहे हैं :—

शिक्षा-विभाग द्वारा मान्यता

भारतीय शिक्षा-आयोग द्वारा दिये गये सहायता-अनुदान सम्बन्धी सुझावों को सरकार ने स्वीकृत किया था। जिन विद्यालयों को सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी; उन पर शिक्षा-विभाग का पूर्ण नियन्त्रण रहता था। परन्तु जिन स्कूलों को सहायता-अनुदान नहीं प्राप्त था, वे शिक्षा-विभाग के

1. "Though the diagnosis was correct, the remedy suggested was neither appropriate nor opportune. Lord Curzon was right in many of the things he said; but it was the way which be wanted to reform that raised grave suspicions in the mind of the educated Indians. They thought that this reform move camouflaged some deep political motive." A. N. Basu : *op. cit.*, p. 64.

अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं थे। वे अपनी प्रगति के लिये किसी भी नीति का अनुसरण कर सकते थे। ऐसी स्थिति में सभी ग़ैर-सरकारी स्कूल अपनी मनमानी कर रहे थे।[1] फलस्वरूप उनमें ऐसे दोष उत्पन्न होगये थे जिनसे शिक्षा का बहुत अपकार हो रहा था। लार्ड कर्ज़न को विद्यालयों की इस स्थिति से सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा कि सभी माध्यमिक विद्यालयों पर शिक्षा-विभाग का नियन्त्रण होना चाहिये, चाहे वे सहायता प्राप्त हों अथवा नहीं। १९०४ के प्रस्ताव में कुछ शर्तें निर्धारित कर दी गईं। इनको पूरा करने पर ही स्कूलों को शिक्षा-विभाग से मान्यता (Recognition) प्राप्त हो सकती थी। ये शर्तें निम्नलिखित थीं :—[2]

१. जिस क्षेत्र में स्कूल स्थापित हो, वहाँ उसकी वास्तव में माँग हो।
२. विद्यालय की प्रबन्ध-समिति उचित प्रकार से संगठित हो।
३. विद्यालय में आवश्यक विषयों के शिक्षण का समुचित प्रबन्ध हो।
४. विद्यार्थियों के स्वास्थ्य, मनोरंजन और अनुशासन की उपयुक्त व्यवस्था हो।
५. अध्यापकों का चरित्र अच्छा हो, उनकी संख्या पर्याप्त हो और उनमें अध्यापन कार्य की क्षमता हो।
६. शिक्षा-शुल्क की दर ऐसी हो जिससे समीपवर्ती विद्यालयों की हानि की आशंका न हो।

इन शर्तों को पूरा करने वाले विद्यालयों को ही सहायता-अनुदान प्राप्त होता था। ऐसे ही स्कूलों के विद्यार्थी छात्र-वृत्तियाँ पाने और सार्वजनिक परीक्षाओं में सम्मिलित होने के अधिकारी थे। इस प्रकार १९०४ से सभी ग़ैर सरकारी स्कूलों को मान्यता प्राप्त करना अनिवार्य हो गया और उन पर शिक्षा-विभाग का नियंत्रण स्थापित हो गया।

विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता

१९०४ से पूर्व विश्वविद्यालयों के नियमों में बहुत शिथिलता थी। जिन विद्यालयों को मान्यता नहीं प्राप्त थी, उनके छात्र भी विश्वविद्यालयों द्वारा ली जाने वाली 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में सम्मिलित हो सकते थे। १९०४ के 'भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम' द्वारा इस परीक्षा के लिये तैयार करने वाले सभी स्कूलों को अपने क्षेत्र के विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया। जिन स्कूलों को मान्यता नहीं प्राप्त थी, उनके छात्र 'मेट्री-

1. *Quinquennial Reveiw of the Progress of Education in India*, 1902-07, para 187.
2. *Government Resolution on Educatonal Policy*, 1904.

कुलेशन' परीक्षा में नहीं बैठ सकते थे। इस प्रकार माध्यमिक स्कूलों पर विश्वविद्यालय और शिक्षा-विभाग दोनों का नियंत्रण स्थापित हो गया।

मान्यता-प्राप्त विद्यालयों को सुविधायें

विश्वविद्यालय से मान्यता-प्राप्त विद्यालयों के छात्र 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में बैठ सकते थे। विद्यालयों को शिक्षा-विभाग से भी मान्यता प्राप्त करना आवश्यक था। उन्हें कुछ सरकारी नियमों का भी पालन करना पड़ता था। यदि स्कूलों को शिक्षा-विभाग से कोई लाभ न होता, तो वे मान्यता-प्राप्त करने के इच्छुक न होते। अतः मान्यता-प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों को शिक्षा-विभाग से अधोलिखित सुविधायें प्राप्त करने की व्यवस्था की गई :—

१. मान्यता-प्राप्त स्कूलों के छात्र सरकार द्वारा ली जाने वाली सभी परीक्षाओं में प्रविष्ट हो सकेंगे।
२. ऐसे विद्यालय सरकार से सहायता-अनुदान प्राप्त कर के आर्थिक लाभ उठा सकेंगे।
३. राजकीय छात्रवृत्तियों का उपभोग करने वाले विद्यार्थियों को अपने यहाँ प्रवेश दे सकेंगे।

विद्यालयों को मान्यता प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहन देने और इस प्रकार उनके शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाने के लिये राज्य की ओर से ग़ैर-सरकारी स्कूलों को अधिक सहायता अनुदान देना प्रारम्भ किया गया। उन पर कड़ा नियंत्रण रखने के लिये निरीक्षकों की संख्या में भी वृद्धि कर दी गई।

अमान्य विद्यालयों के छात्रों पर प्रतिबन्ध

मान्यता प्राप्त करने की शर्त निर्धारित करके सरकार का उन विद्यालयों पर अधिकार स्थापित हो गया, जो अपने छात्रों को 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में भेजते थे। परन्तु कुछ मिडिल स्कूल भी थे, जिन्हें 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा से कोई प्रयोजन नहीं था। वे न तो मान्यता चाहते थे और न सहायता-अनुदान। उनका एक मात्र उद्देश्य विद्यार्थियों को निम्न कक्षाओं में शिक्षा प्रदान करके मान्यता प्राप्त स्कूलों में भेजना था। इस प्रकार के विद्यालयों को स्वतन्त्र छोड़ना उचित न समझा गया। अतः यह नियम बना दिया गया कि किसी भी अमान्य (Unrecognised) विद्यालय का छात्र मान्यता-प्राप्त स्कूल में प्रवेश नहीं पा सकेगा। बाध्य होकर मिडिल स्कूल भी सरकार से मान्यता प्राप्त करने लगे। इस प्रकार सभी श्रेणी के शिक्षालयों पर सरकार का नियंत्रण स्थापित हो गया।

सरकार की नई नीति की भारतीयों ने तीक्ष्ण आलोचना की। उनका कथन था कि सरकार माध्यमिक विद्यालयों पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित

करके भारतीयों के शिक्षा-कार्यों और उनकी राष्ट्रीयता की भावना को कुचलना चाहती है। यह कथन भविष्य में निराधार सिद्ध हुआ। परन्तु सरकारी नियंत्रण से माध्यमिक विद्यालयों की स्वतंत्रता अवश्य नष्ट हो गई। इसके अतिरिक्त सहायता-अनुदान एवं मान्यता प्राप्त होने से उनके कार्य में शिथिलता भी आ गई। किन्तु इसके विपरीत, विद्यालयों को पर्याप्त लाभ भी हुआ। सरकारी निरीक्षण के कारण उनके शिक्षण-कार्य में सुधार हुआ और सभी विद्यालयों के शिक्षा-स्तर में समानता स्थापित हो गई।

माध्यमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति

कर्ज़न माध्यमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति के लिये बहुत चिन्तित था। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने निम्नलिखित आदेश दिये :—

१. माध्यमिक विद्यालयों के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या और कार्य-क्षमता में उन्नति की जाय। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षण-महाविद्यालयों का सुधार किया जाय और उनकी संख्या में वृद्धि की जाय।
२. माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में व्यावसायिक विषयों को स्थान दिया जाय।
३. मिडिल स्कूलों में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें हों, और माध्यमिक विद्यालयों में प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अपनी मातृभाषा का अध्ययन अनिवार्य हो।
४. माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा के स्तर को उच्च करने का भार निरीक्षकों को सौंपा जाय और इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये सुयोग्य निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की जाय।
५. ग़ैर-सरकारी स्कूलों को अधिक सहायता-अनुदान दिया जाय जिससे वे शिक्षण की समुचित व्यवस्था करके शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठा सकें।
६. प्रत्येक ज़िले में एक राजकीय विद्यालय की स्थापना की जाय और ग़ैर-सरकारी स्कूल उसको अपना आदर्श मान कर शिक्षण-कार्य करें।

कर्ज़न और प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कर्ज़न के विचार अति उदार थे। 'शिमला-सम्मेलन' में अपना भाषण देते हुए उसने कहा : 'प्राथमिक शिक्षा से मेरा अभिप्राय जन-साधारण को मातृ-भाषा की शिक्षा देना है। मैं उन व्यक्तियों में हूँ जो समझते हैं कि सरकार ने इस दिशा में अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया है। भारत को सबसे अधिक भय अज्ञानता से है। अज्ञानता ही अविश्वास, अन्धविश्वास, असंतोष एवं अनैतिकता का मूल कारण है। अज्ञानता

का विनाश केवल ज्ञान से हो सकता है। हम भारतीय जनता को जितना ही अधिक शिक्षित बनायेंगे, उतनी ही अधिक वह सुखी होगी और उसी अनुपात में वह राजनीतिक जीवन के लिये लाभप्रद सिद्ध होगी।"[1]

कर्ज़न की प्रारम्भिक शिक्षा-नीति कुछ भिन्न थी। उच्च शिक्षा में तो वह केवल गुणात्मक उन्नति चाहता था, परन्तु प्राथमिक शिक्षा में वह विस्तार के साथ-साथ छात्रों की योग्यता में भी वृद्धि चाहता था। संख्यात्मक (Quantitative) वृद्धि के सम्बन्ध में उसका विचार था कि—

१. प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की पहिले से अधिक आवश्यकता है।
२. प्राथमिक शिक्षा की प्रगति में सदैव शिथिलता रही है।
३. प्राथमिक शिक्षा की मन्द प्रगति का कारण यह है कि उसे पर्याप्त आर्थिक सहायता नहीं दी गई है।

प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक (Qualitative) उन्नति के लिये उसकी नीति निम्नांकित सिद्धान्तों पर आधारित थी :—

१. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था।
२. पाठ्य-क्रम में सुधार।
३. सहायता-अनुदान-प्रणाली में सुधार।

कर्ज़न ने उपरिकथित दोनों दिशाओं में प्राथमिक शिक्षा के लिये जो कार्य किये उनका अध्ययन हम नीचे करेंगे।

प्राथमिक विद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि

१९ वीं शताब्दी के अन्त में भारत पर महामारी और अकाल का भयंकर प्रकोप रहा था। फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों का नवनिर्माण स्थगित हो गया था। अतः कर्ज़न ने उनकी संख्या में वृद्धि करने के लिये उदारता पूर्वक अनावर्त्तक अनुदान (Non-recurring grant) दिया। साथ ही प्राथमिक

1. "Primary Education-by which I understand the teaching of the masses—opens a wider and more contested field of study. I am one of those who think that Government has not fulfilled its duty in this respect. What is the greatest danger in India? What is the source of suspicion, superstition, outbreaks, crime.....? It is ignorance. And what is the only antidote to ignorance? Knowledge. In proportion as we teach the masses, so we shall make their lot happier, and in proportion as they are happier, so they will become more useful members of the body-politic." Curzon's Speech at the Simla Conference, 1901.

विद्यालयों को दिये जाने वाले सहायता-अनुदान में वृद्धि कर दी। ज़िला-परिषदों और नगरपालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय का $\frac{2}{3}$ भाग मिलने लगा, जबकि उन्हें अब तक केवल $\frac{1}{3}$ मिलता था। कर्ज़न की इस नीति के फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। १९०२ में इन विद्यालयों की संख्या ९३,६०४ और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की यौगिक संख्या ३०,७६,६७१ थी। १९११ में विद्यालयों की संख्या बढ़ कर १,१८,२२२ और विद्यार्थियों की ४८,०६,७३६ हो गई।

प्राथमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति

प्राथमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति के लिये कर्ज़न ने निम्नलिखित कार्य किये :—

अध्यापकों का प्रशिक्षण—प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या बहुत कम थी। अतः कर्ज़न ने इस बात पर बल दिया कि अध्यापकों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाय और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रशिक्षण विद्यालयों का निर्माण किया जाय। प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष नियत की गई। प्रशिक्षण के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह थी कि अध्यापकों को कृषि का सामान्य ज्ञान भी दिया जाता था जिससे वे ग्रामीण विद्यालयों में छात्रों को कृषि की शिक्षा दे सकें। ग्रामीण छात्रों के लिये कृषि शिक्षा की व्यवस्था करके कर्ज़न ने वास्तव में अत्युत्तम कार्य किया।

पाठ्य-क्रम में सुधार—कर्ज़न के मतानुसार प्राथमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति के लिये पाठ्य-क्रम में सुधार किया जाना आवश्यक था। वह भारतीय शिक्षा-आयोग के विचार से सहमत नहीं था कि विद्यालयों के पाठ्य-क्रम को सरल बना दिया जाय। इसके विपरीत वह पाठ्य-क्रम में अधिक-से-अधिक विषयों को सम्मिलित करना चाहता था। अतः उसने पाठ्य-क्रम में लिखने, पढ़ने और गणित के अतिरिक्त कृषि को भी स्थान दिये जाने की इच्छा व्यक्त की। उसने सिफ़ारिश की कि जिन विद्यालयों में सुयोग्य शिक्षक हों, उनमें किंडरगार्टन (Kindergarten) एवं आबजेक्ट पद्धति (Object Method) को अपनाया जाय। उसका विश्वास था कि इस पद्धति का प्रयोग करने से भारतीयों के स्वाभाविक मानसिक दोषों का निवारण हो जायगा और उनकी तर्क-शक्ति का विकास होगा। प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों के लिये शारीरिक व्यायाम आवश्यक कर दिया गया।

कर्ज़न का विचार था कि पाठ्य-क्रम का सम्बन्ध स्थानीय वातावरण से होना आवश्यक है। अतः उसने ग्रामीण तथा नागरिक क्षेत्रों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था की। उसने ग्रामीण विद्यालयों के लिये कृषि की शिक्षा

देना वांछनीय बताया। परन्तु साथ ही उसने इस बात पर बल दिया कि छात्रों को ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे कुशल कृषक, विचारक एवं परीक्षण कर्त्ता बन सकें और क्रय-विक्रय में अपने हित की रक्षा कर सकें। ग्रामीण बालकों को इस प्रकार की शिक्षा दिये जाने के विचार अति श्रेष्ठ थे। परन्तु दुर्भाग्य-वश कर्ज़न के विचारों को कार्य रूप में परिणत न किया जा सका। कृषि को पाठ्य-क्रम में अतिरिक्त विषय के रूप में स्थान दिया गया और ग्रामीण विद्या-लयों के पाठ्य-क्रम को नागरिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम की अपेक्षा सरल बना दिया गया।

सहायता-अनुदान-प्रणाली में सुधार

'भारतीय शिक्षा-आयोग' की सिफ़ारिश के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों को सहायता-अनुदान देने के लिये 'परीक्षा-फल के अनुसार वेतन' प्रणाली का अनु-सरण किया जाने लगा था। कर्ज़न ने इस प्रणाली को सर्वथा अनुपयुक्त ठह-राया। इसके स्थान पर उसने शिक्षकों की योग्यता, विद्यालयों की कार्यक्षमता और छात्रों की संख्या आदि के आधार पर सहायता-अनुदान देने की प्रणाली प्रचलित की। यद्यपि सहायता-अनुदान में दी जाने वाली धन-राशि अपर्याप्त थी, तथापि इस प्रणाली से प्राथमिक विद्यालयों का बहुत हित हुआ।

कर्ज़न के अन्य शिक्षा-कार्य

कर्ज़न ने सामान्य शिक्षा के साथ-साथ शिक्षा के अन्य क्षेत्रों की ओर भी ध्यान दिया। इसके प्रयास के फलस्वरूप कृषि, कला, और नैतिक शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। इसके अतिरिक्त उसने पुरातत्व विभाग का निर्माण किया, केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की स्थापना की और छात्रों को विदेश में अध्य-यन करने के लिये छात्रवृत्तियाँ दीं। हम इन पर नीचे विहंगम दृष्टि डाल रहे हैं—

कृषि-शिक्षा

अपनी प्रखर बुद्धि के कारण कर्ज़न को यह समझते देर न लगी कि भारत एक कृषि-प्रधान देश है और इसलिये कृषि-शिक्षा की समुचित व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। इस दिशा में अब तक कुछ कॉलेजों की स्थापना करके थोड़ा-सा कार्य किया जा चुका था। परन्तु इन कॉलेजों में कृषि का व्यावहारिक ज्ञान देने एवं कुशल कृषकों को उत्पन्न करने की क्षमता का अभाव था। कर्ज़न को कृषि-शिक्षा की इस शोचनीय दशा से बहुत दुख हुआ। अतः उसने कृषि-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये अधोलिखित कार्य किये :—

१ भारत के प्रत्येक प्रान्त में कृषि-विभाग का निर्माण किया और कृषि-कार्यों तथा कृषि-शिक्षा को इसे सौंप दिया।

२. बिहार प्रान्त में पूसा नामक स्थान पर केन्द्रीय गवेषण-शाला (Central Research Institute) स्थापित की और इसमें कृषि-सम्बन्धी सर्वोच्च शिक्षा और अनुसंधान-कार्य की व्यवस्था की।

३ कर्ज़न ने निश्चय किया कि प्रत्येक प्रान्त में एक कृषि-कॉलेज खोला जाय जिसमें पूर्ण शिक्षण-सामग्री से युक्त प्रयोग-शालायें हों और कॉलेज से सम्बन्धित कृषि का एक फ़ार्म हो।

४. मिडिल और हाई स्कूलों के पाठ्य-क्रमों में कृषि के विषय को स्थान दिया जाय।

५. कृषकों को शिक्षा देने के लिये कृषि की विशिष्ट कक्षायें खोली जायँ।

६. भारतीय भाषाओं द्वारा कृषि की शिक्षा देने के लिये उपयुक्त पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन किया जाय।

कला की शिक्षा

कला की शिक्षा को स्थिरता एवं प्रोत्साहन देने के लिये कर्ज़न का नाम सदैव गर्व से लिया जायगा। १८९३ से कला-विद्यालयों के सम्बन्ध में दो विचारधारायें प्रवाहित हो रही थीं। प्रथम विचारधारा के लोगों का मत था कि भारत के कला-विद्यालय भारतीय कलाओं की उन्नति करने में असफल हुए हैं। अतः उनको बन्द कर देना चाहिये। दूसरी विचारधारा को मानने वाले व्यक्तियों का कथन था कि कला-विद्यालयों के रूप को तो परिवर्तित कर देना चाहिये, पर उन्हें बन्द नहीं करना चाहिये। कर्ज़न दोनों विचारधाराओं का अध्ययन करके इस परिणाम पर पहुँचा कि कला-विद्यालयों में सुधार करके उन्हें चलते रहने दिया जाय। इनमें सुधार करने के लिये उसने निम्नांकित सुझाव दिये :—

१. कला-विद्यालयों का प्रमुख कार्य भारतीय कलाओं और इन कलाओं से सम्बन्धित उद्योगों को प्रोत्साहित करना होना चाहिये।

२. कला-विद्यालयों को व्यासायिक रूप नहीं प्रदान करना चाहिये।

३. इन विद्यालयों का उद्देश्य छात्रों को ऐसी कलाओं और उद्योग-कलाओं की शिक्षा देना होना चाहिये, जिन्हें विद्यार्थी अपने जीविकोपार्जन का साधन बनाना चाहते हैं।

४. विद्यालयों को दूकानों में नहीं परिणत किया जाना चाहिये और न शिक्षाधिकारियों को उनसे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने चाहियें।

५. शिक्षण का कार्य ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिये जो कला

विशेषज्ञ हों और जिन्होंने भारतीय कला-कॉलेजों तथा विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण की हो।

६. अनेकों कलाओं की शिक्षा दिये जाने की अपेक्षा कुछ चुनी हुई कलाओं की विशेष शिक्षा दी जानी चाहिये।

७. विद्यार्थियों से कुछ शुल्क अवश्य लिया जाना चाहिये। निःशुल्क प्रवेश और छात्रवृत्तियाँ देने की प्रथा को समाप्त कर देना चाहिये।

८. ज्योंही छात्र कला की उत्तम वस्तुयें बनाने के योग्य हो जायँ, उन्हें कुछ पारिश्रमिक दिया जाना चाहिये।

९. औद्योगिक कलाओं की शिक्षा का सम्बन्ध स्थानीय उद्योगकलाओं से अवश्य होना चाहिये।

कर्ज़न के सुझावों के फलस्वरूप कलाविद्यालय उपरोक्त विचारधाराओं के बीच में पिसने से बच गये। उनके उद्देश्यों, विधियों एवं संगठन में परिवर्तन हो गया और उन्होंने एक निश्चित मार्ग पर अपनी यात्रा प्रारम्भ की। परन्तु कला-विद्यालयों और उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या में विशेष वृद्धि नहीं हुई।

नैतिक शिक्षा

भारतीय शिक्षा का इतिहास बताता है कि सरकार धार्मिक तटस्थता की नीति में आस्था रखती थी। धार्मिक शिक्षा को सामान्य विद्यालयों में कोई स्थान नहीं दिया गया था। भारतीय शिक्षा-आयोग ने सिफ़ारिश की थी कि कॉलेजों के पाठ्य-क्रम में नैतिक शिक्षा के लिये एक प्रारम्भिक पुस्तक (Moral Primer) रखी जाय। शिमला-सम्मेलन में धार्मिक शिक्षा के प्रश्न पर विचार विमर्श हुआ। कर्ज़न का मत था कि नैतिक शिक्षा के लिये पुस्तक का रखा जाना निरर्थक है। उसने कहा कि "यदि छात्र युकलिड की पुस्तक को रट सकते हैं, तो वे नैतिक शिक्षा की पुस्तक को भी रट लेंगे।"[1] इससे कोई लाभ नहीं होगा। विद्यार्थियों पर नैतिकता का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से पड़ना चाहिये। केवल ऐसी ही दशा में उनकी आध्यात्मिक तथा नैतिक उन्नति हो सकेगी। अतः छात्रों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये उत्तम अनुशासन, सच्चरित्र अध्यापकों, सुव्यवस्थित छात्रावासों, पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत महान पुरुषों की जीवनियों और छात्रों तथा शिक्षकों में निकट सम्पर्क की आवश्यकता है। यदि विद्यार्थी इस प्रकार के वातावरण में रहेंगे, तो उनका

1. "If pupils can cram Euclid, there is nothing to prevent them from cramming ethics." *Lord Curzon in India*, Vol. II, pp. 53-4

आध्यात्मिक तथा नैतिक उत्थान स्वाभाविक रूप से होगा।[1] इसके लिये प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है। अपने विचारों को व्यक्त करते समय कर्ज़न ने केवल राजकीय विद्यालयों पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा था। जहाँ तक ग़ैर-सरकारी स्कूलों का प्रश्न था, वह चाहता था कि उनमें धार्मिक शिक्षा दी जाय। कारण यह था कि वह मिशनरियों को धर्म-प्रचार की सुविधा देने के पक्ष में था।

पुरातत्व विभाग का निर्माण

कर्ज़न को भारतीय स्मारकों के प्रति श्रद्धा और प्रेम था। उनकी देख-रेख के लिये उचित व्यवस्था नहीं थी। अतः कर्ज़न ने पुरातत्व विभाग (Department of Archaeology) की स्थापना करके स्मारकों के संरक्षण का कार्य उसे सौंप दिया। १६०४ में उसने प्राचीन स्मारक-संरक्षण अधिनियम भी पारित करा दिया। इस अधिनियम ने प्राचीन स्मारकों को सुरक्षित रखकर भारतीय संस्कृति के अवशेषों को यथावत् बनाये रखने में प्रशंसनीय सहयोग दिया है।

केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की स्थापना

केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की स्थापना का श्रेय कर्ज़न को है। वुड के घोषणा-पत्र के अनुसार प्रान्तों में शिक्षा-विभाग का प्रतिष्ठापन हो गया था। परन्तु अभी तक कोई ऐसी संस्था या पदाधिकारी नहीं था जो केन्द्रीय सरकार को शिक्षा-सम्बन्धी परामर्श दे सके। इस कार्य को कर्ज़न ने पूरा किया। उसने केन्द्रीय शिक्षा-विभाग का निर्माण करके एक डाइरेक्टर जेनरल ऑफ़ एजूकेशन की नियुक्ति की। इस पद को सर्व प्रथम एच० डब्लू० ओरेंज (H. W. Orange) ने सुशोभित किया।

विदेश में अध्ययन के लिये छात्रवृत्तियाँ

विद्यार्थी-समाज में कर्ज़न का नाम कभी विस्मृत न किया जा सकेगा। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने कुशाग्र बुद्धिवाले विद्यार्थियों को छात्र वृत्तियाँ देकर विदेश में प्रौद्योगिक (Technological) शिक्षा ग्रहण करने के लिये भेजा। यद्यपि छात्रवृत्तियों को प्रौद्योगिक शिक्षा के क्षेत्र तक ही सीमित रखा गया तथापि कर्ज़न ने एक नवीन प्रथा का प्रारम्भ करके पथ-प्रदर्शक का कार्य किया। आज उसी प्रथा के आधार पर अनेकों भारतीय विद्यार्थी शिक्षा के विभिन्न विषयों का विदेशों में अध्ययन कर रहे हैं।

1. *Government Resolution on Education Policy*, 1904.

भारतीय शिक्षा को कर्ज़न की देन

भारत आने वाले वाइसरायों में लार्ड कर्ज़न का नाम प्रथम श्रेणी में रखा जाता है। वह धुरंधर विद्वान्, कुशल राजनीतिज्ञ, कर्त्तव्य परायण शासक और प्रतिभाशाली व्यक्ति था। "जो कार्य उसने सात वर्ष में किये, उन्हें कोई अन्य मनुष्य निश्चित रूप से दुगने या तिगने समय में करता।"[1] परंतु पाश्चात्य सभ्यता का कट्टर समर्थक और भारतीय संस्कृति को हेय समझने के कारण वह इस देश के निवासियों का स्नेह-भाजन न बन सका। गोखले ने तो उसके प्रशासन की तुलना औरंगज़ेब के शासन से की है।[2] किन्तु उदार-हृदय भारतीयों ने उसे क्षमा कर दिया है। वस्तुतः शिक्षा के क्षेत्र में आज उसके अनेकों प्रशंसक हैं। वे बलपूर्वक कहते हैं कि कर्ज़न के शिक्षा-कार्यों के लिये भारत उसका सदैव ऋणी रहेगा। उनके कथन में सत्य का कितना अंश है, इसी बात पर हमें यहाँ विचार करना है।

विश्वविद्यालयों एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कर्ज़न गुणात्मक उन्नति चाहता था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति की और भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित करवाया। कर्ज़न के इन प्रयासों के परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा का स्तर ऊँचा उठा और छात्रों की योग्यता में वृद्धि हुई।

कर्ज़न ने माध्यमिक शिक्षा के स्तर को भी ऊँचा उठाने का प्रयास किया। इसी विचार से प्रेरित होकर उसने ग़ैर-सरकारी स्कूलों को अधिक सहायता-अनुदान दिया और उनके निरीक्षण का समुचित प्रबन्ध किया। माध्यमिक शिक्षा को कर्ज़न की सबसे महत्त्वपूर्ण देन, शिक्षा का माध्यम था। १९०२ तक हाई स्कूलों और मिडिल स्कूलों में अंग्रेज़ी की तूती बोलती थी। उसने यह घोषित कर दिया कि १३ वर्ष की आयु से पूर्व बालकों को अंग्रेज़ी की शिक्षा न दी जाय और माध्यमिक विद्यालयों के पूर्ण शिक्षा-काल में मातृभाषा का अध्ययन अनिवार्य रूप से चले। "यदि शिक्षित वर्ग ही अपनी मातृभाषाओं

1. "What Curzon achieved in seven years would certainly have required twice or thrice as much time for any other man." Nurullah and Naik : *op. cit.*, p. 451.
2. "For a parallel to such an administration, we must, I think, go back to the times of Aurangzeb in the history of our own country." *Gokhale's Speeches*, p. 680

की उपेक्षा करेंगे, तो निश्चय रूप से वे केवल बोलचाल की भाषायें रह जायेंगी जिनका अपना कोई भी साहित्य नहीं होगा।"[1]

प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कर्ज़न ने स्वीकार किया कि सरकार द्वारा उसकी अवहेलना की गई है। उसके मतानुसार प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करके जन-साधारण को शिक्षित करना सरकार का स्पष्ट कर्त्तव्य था। उसने प्राथमिक विद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि और शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के अपना ध्येय बनाया। इस ध्येय को प्राप्त करने के लिये कर्ज़न ने प्राथमिक विद्यालयों को अधिक आर्थिक सहायता दी, अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया और पाठ्य-क्रम में सुधार किया।

कर्ज़न ने देश की आवश्यकताओं को समझ कर कृषि और कला की शिक्षा को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया। उससे पुरातत्व विभाग का निर्माण करके भारतीय संस्कृति के प्राचीन अवशेषों को सुरक्षित रखा और केन्द्रीय शिक्षा विभाग की स्थापना करके भारतीय शिक्षा का महान् कल्याण किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लार्ड कर्ज़न ने भारतीय शिक्षा के सभी अङ्गों को पुनर्संङ्गठित करने का भागीरथ प्रयास किया। शिक्षा-सुधार के जिस आंदोलन का उसने इस शताब्दी के प्रारम्भ में सूत्रपात किया, उसकी गति में आज तीव्रता दृष्टिगोचर हो रही है। उसी की प्रेरणा के फलस्वरूप स्वतन्त्र भारत की शिक्षा में मातृभाषाओं के साथ-साथ पाश्चात्य विज्ञानों को समाविष्ट करके शिक्षा की संज्ञा निरूपित करने की अनेकानेक चेष्टायें की जा रही हैं।

अन्त में हम कह सकते हैं आधुनिक भारत कर्ज़न की राष्ट्रीयता विरोधी नीति को विस्मृत करके उसकी शिक्षा-सुधार सम्बन्धी सेवाओं की स्मृति को सावधानी से सँजो रहा है। डा० अमरनाथ झा के इस कथन में पूर्ण सत्य का आभास मिलता है: "आज जब कि अगणित संघर्षों की स्मृति अतीत के गर्त में विलीन हो चुकी है, सभी भारतीय उस महान् वाइसराय की विवेकपूर्ण राज्य-मर्मज्ञता के प्रति अनुग्रहीत हैं, जिसने हमारे प्राचीन स्मारकों के संरक्षण एवं हमारे शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाने का इतना प्रयास किया। अपने इन कार्यों

---

1. "If the educated classes neglect the cultivation of their own languages, these will assuredly sink to the level of mere colloquial dialects possessing no literature worthy of the name." *Government Resolution on Education Policy*, 1904.

के लिये उसे आज भी स्मरण किया जाता है और भारतवासियों की अनेकों पीढ़ियाँ इन कार्यों के लिये उसका गुणगान करेंगीं।"[1]

सारांश

कर्ज़न का भारत आगमन—जिस समय कर्ज़न भारत आया, उस समय यहाँ राष्ट्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव हो चुका था। कर्ज़न पाश्चात्य सभ्यता का पुजारी और भारतीय राष्ट्रीयता का प्रबल विरोधी था। उसकी शिक्षा में विशेष अभिरुचि थी। अतः भारतीय शिक्षा की दयनीय दशा की ओर उसका ध्यान जाना स्वाभाविक था।

शिमला शिक्षा-सम्मेलन (१९०१)—इस सम्मेलन में प्रान्तों के शिक्षा-संचालक और मिशनरियों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया। इसमें किसी भारतीय को नहीं बुलाया गया और सम्मेलन की कार्यवाही को बिल्कुल गुप्त रखा गया। अतः भारतीय सशंकित हो उठे।

भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (१९०२)—इस आयोग की नियुक्ति भारतीय विश्वविद्यालयों की जाँच करने और उनमें सुधार करने के लिये सुझाव देने के विचार से की गई। आयोग ने अग्रलिखित सुझाव दिये—(१) विश्वविद्यालय शिक्षण का कार्य करें; (२) अध्यापकों की नियुक्ति करें; (३) सीनेट के सदस्यों की संख्या कम कर दी जाय; (४) सीनेट में प्राध्यापकों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाय; और (५) मान्यता-प्राप्त कॉलेजों का निरीक्षण किया जाय।

भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम (१९०४)—इस अधिनियम द्वारा भारतीय विश्वविद्यालयों में अग्रलिखित परिवर्तन किये गये—(१) विश्वविद्यालय परीक्षा लेने के अतिरिक्त शिक्षण-कार्य भी करने लगे; (२) सीनेट के सदस्यों की संख्या ५० से १०० तक निश्चित कर दी गई; (३) बम्बई, कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालयों की सीनेटों में २० तथा अन्य में १५ सदस्य निर्वाचित किये जायेंगे; (४) सरकार को सीनेट द्वारा बनाये गये नियमों में

1. "Now that the ashes of the mumerous strifes are cold, all Indians are grateful to the wise statesmanship of the great Viceroy who did so much to preserve our ancient monuments and raise our educational standards. By these achievements he still lives, and generations of Indians will bless him for them." Lord Ronaldshay : *The Life of Lord Curzon*, Vol. II, p. 390.

संशोधन करने का अधिकार होगा; और (५) विश्वविद्यालयों के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार की सीमा निश्चित हो गई।

शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (१९०४)—इस प्रस्ताव में तत्कालीन भारतीय शिक्षा के दोषों का विवेचन किया गया और शिक्षा के सभी अङ्गों को विकसित करने की नीति निर्धारित की गई।

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा का स्तर ऊँचा करने के लिये अनेकों कार्य किये गये। माध्यमिक विद्यालयों को शिक्षा-विभाग और विश्व-विद्यालय से मान्यता प्राप्त करना अनिवार्य हो गया। अमान्य विद्यालयों के छात्रों को मान्यता प्राप्त विद्यालयों में प्रवेश पाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। मान्यता-प्राप्त विद्यालयों को अधिक आर्थिक सहायता दी गई और उनके निरीक्षण का प्रबन्ध कर दिया गया।

प्राथमिक शिक्षा—प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि करने और उनके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाने के लिये कर्ज़न ने सराहनीय कार्य किया। विद्यालयों को अधिक सहायता-अनुदान दिया गया। अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। पाठ्य-क्रम और सहायता-अनुदान प्रणाली में सुधार किया गया।

अन्य शिक्षा-कार्य—कर्ज़न ने कृषि, कला और नैतिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया। पुरातत्व विभाग का निर्माण और केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की स्थापना की। योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देकर प्रौद्योगिक शिक्षा का अध्ययन करने के लिये विदेशों को भेजा।

TEST QUESTIONS

1. "The corner-stone of Curzon's educational policy was the complete abandonment of the old policy of *laissez faire* and the extension of state-control over the whole field of education." Elucidate this statement.
2. Write a short essay on Curzon's countribution to Indian education.
3. What services did Curzon render to the cause of Primary Education ?
4. Write short notes on :—(a) Simla Educational Conference, 1901; (b) Indian Universities Commission, 1902; (c) Indian Universities Act, 1904; and (d) Government Resolution on Educational Policy, 1904.

—: ० :—

अध्याय १३

राष्ट्रीय आन्दोलन एवं शिक्षा की प्रगति

(१९०५–१९२१)

बीसवीं शताब्दी के उषा-काल में राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारतीय आत्मा को उसकी गहराई तक हिला दिया था। कर्ज़न की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण परिस्थिति पहले से अधिक गम्भीर हो गई थी। भारतीयों के प्रति उसके उदण्ड एवं अन्यायपूर्ण व्यवहार ने उनकी क्रोधाग्नि को प्रज्वलित कर दिया था। देश के नेताओं ने अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचारों और उनकी साम्राज्यवादी नीति का भंडाफोड़ करना प्रारम्भ किया। शिक्षित वर्ग ने अंग्रेज़ों की उस अर्थनीति की कटु आलोचना की जिसकी छाया में "विदेशी भारत का शोषण कर रहे थे। हमारे प्राकृतिक साधन निरन्तर निचोड़े जा रहे थे, देश में दुर्भिक्षों का ताँता लगा था और भारतीय जनता तथा उसके उद्योगों को शासन की रक्षा न प्राप्त होने के कारण निर्धनता तीव्र गति से बढ़ रही थी।" भारतीय नवयुवक क्रान्तिकारी भावनाओं से ओत-प्रोत देश के अतीत

वैभव की पुनर्स्थापना का स्वप्न देख रहे थे। कुछ कर्मठ समाज-सेवक जनता को सन्देश दे रहे थे कि जब भारतवासी अंग्रेजी शासन से मुक्ति पाना अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझने लगेंगे, तभी देश अपने अतीत गौरव की पुनः प्राप्ति कर सकेगा। इन सब बातों के फलस्वरूप १९०४ में राष्ट्रवाद का आन्दोलन अपने चरम बिन्दु पर था। उस समय के लगभग कुछ ऐसी विदेशी घटनायें हुईं जिन्होंने भारतीय मस्तिष्क को विस्तार देकर जनता की निराशा का अन्त कर दिया। अबसीनिया में हब्शियों ने इटली को, तथा जापानियों ने रूस को पराजित किया। मिस्र, ईरान, टर्की और रूस में जन-आन्दोलनों का वेग बढ़ रहा था। इन सब घटनाओं ने यूरोपीय जातियों की अजेयता के बुलबुले को फोड़ दिया और एशियाई जातियों में नव जीवन तथा नव साहस का संचार किया।

ऐसे समय में २० जुलाई १९०५ को लार्ड कर्ज़न की नौकरशाही ने मूर्खता भरी और निष्प्रयोजन नीति का पालन करके बंगाल-विभाजन की घोषणा की। इसको सुनकर सम्पूर्ण बंगाल एक-साथ उठ खड़ा हुआ और काँग्रेस ने ७ अगस्त १९०५ के कलकत्ता अधिवेशन में राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। इस आन्दोलन के चार मुख्य अंग थे—स्वराज्य की प्राप्ति, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और राष्ट्रीय शिक्षा की माँग। यहाँ हमारा सम्बन्ध केवल राष्ट्रीय शिक्षा से है। अतः हम नीचे इसका अध्ययन करेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा का विकास[1] (१९०५–२१)

राष्ट्रीय शिक्षा की भावना का आविर्भाव

राष्ट्रीय शिक्षा की भावना का आविर्भाव वर्तमान शती के प्रथम दशक में माना जाता है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि १९ वीं शताब्दी में राष्ट्रीय शिक्षा का विचार अविद्यमान था। १८८२ के 'भारतीय शिक्षा-आयोग' की जाँच ने शिक्षा के क्षेत्र में जागृति उत्पन्न कर दी थी और शिक्षित भारतीयों ने आयोग के समक्ष तत्कालीन भारतीय शिक्षा के कुछ दोषों की ओर संकेत किया था। उन्होंने प्रचलित शिक्षा-प्रणाली से असंतुष्ट होकर अनेकों व्यक्तिगत शिक्षा संस्थाओं का निर्माण किया था, जिनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय था,

1. Development of National Education.

क्योंकि वे कतिपय बातों में राजकीय तथा मिशन स्कूलों से भिन्न थीं। इन विद्यालयों की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित थीं :—

१. इनका संचालन भारतीयों द्वारा किया जाता था।
२. स्कूल-प्रबन्धकों और शिक्षकों में आत्म-त्याग तथा निस्वार्थ सेवा की भावना थी।
३. धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था थी।
४. भारतीयों की सांस्कृतिक आवश्यकताओं का पूर्ति के लिये निर्धारित पाठ्य-क्रम में कुछ और विषय सम्मिलित कर दिये गये थे।
५. प्राचीन परम्पराओं और सभ्यता के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिये संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाता था।
६. आधुनिक भारतीय भाषाओं के शिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था।
७. विद्यार्थियों से कम शुल्क लिया जाता था।

इन बिद्यालयों के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि ये राजकीय शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत थे। इनका प्रमुख उद्देश्य प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के कुछ दोषों को दूर करना था। इनमें से अधिकांश किसी विशेष सम्प्रदाय के द्वारा स्थापित किये गये थे। अतः इनको राष्ट्रीय विद्यालयों की संज्ञा देना उपयुक्त न होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा की माँग

हम ऊपर लिख चुके हैं कि बंग-भंग के शीघ्र बाद ही राष्ट्रीय आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा और राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की गई। ज्यों-ज्यों राष्ट्रीय आन्दोलन उग्रता धारण करता गया, त्यों-त्यों भारतीय शिक्षा के राष्ट्रीयकरण अथवा स्वदेशीकरण की माँग प्रबल होती गई। ऐनी बेसेन्ट ने भारतीय शिक्षा के आंग्लीयकरण की अत्यधिक निन्दा करते हुए कहा कि भारत के राष्ट्रीय जीवन एवं राष्ट्रीय चरित्र को निर्बल बनाने के लिये भारतीय शिक्षा पर विदेशी प्रभुत्व से अधिक उत्तम उपाय और कोई नहीं हो सकता है।[1]

1. "Nothing can more swiftly emasculate national life, nothing can more surely weaken national character, than allowing the education of the young to be controlled by foreign influences, to be dominated by foreign ideals." Quoted by Lala Lajpat Rai in *The Problem of National Education in India*. p. 28.

महात्मा गांधी ने भी ज़ोरदार शब्दों में भारतीय शिक्षा के विदेशी स्वरूप की कटु आलोचना की। उन्होंने प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में निम्नाङ्कित दोष बताये :—

१. यह अन्यायपूर्ण शासन से सम्बन्धित है।
२. यह विदेशी संस्कृति पर आधारित है और भारतीय संस्कृति को इससे पूर्णतया बहिष्कृत कर दिया गया है।
३. इसका एक-मात्र उद्देश्य मानसिक विकास करना है। इसका हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और इसमें हाथ के कार्य का कोई स्थान नहीं है।
४. इसमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है। वास्तविक शिक्षा विदेशी माध्यम के द्वारा नहीं दी जा सकती है।[1]

राष्ट्रीय शिक्षा की रूप रेखा

१९०५ से १९२१ तक भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा की माँग पर देश के नेता बल देते रहे। ऐनी बेसेन्ट और महात्मा गांधी के अतिरिक्त अन्य भारतीयों ने भी तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली के दोषों का विश्लेषण किया। परन्तु जब राष्ट्रीय शिक्षा की रूप-रेखा निश्चित करने का प्रश्न उठता था, तब भारतीय नेता और शिक्षा-विशेषज्ञ एकमत नहीं हो पाते थे। प्रारम्भ में ऐसा होना स्वाभाविक था। परन्तु समय की गति के साथ-साथ उनके विचारों में स्थिरता आती चली गई और कुछ आधारभूत सिद्धान्तों पर राष्ट्रीय शिक्षा की रूप-रेखा निर्धारित कर दी गई। ये सिद्धान्त अधो-लिखित थे :—

१. भारतीय नियन्त्रण

राष्ट्रीय नेताओं ने भारतीय शिक्षा पर ब्रिटिश नियंत्रण का प्रबल विरोध किया। उन्होंने माँग की कि शिक्षा को पूर्णतया भारतीयों के हाथ में सौंप

---

1. "The existing system of education is defective, apart from its association with an utterly unjust Government, in three most important matters :—(1) It is based upon foreign culture to the almost entire exclusion of indigenous culture; (2) It ignores the culture of the heart and the hand, and confines itself simply to the head; and (3) Real education is impossible through a foreign medium." Mahatma Gandhi : *Young India* (1919-22), p. 451.

दिया जाय। "भारतीय शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो भारतीय धार्मिक भावना से सराबोर होते हुए भी साम्प्रदायिकता से पृथक् रहे और छात्रों के समक्ष भक्ति, ज्ञान एवं नैतिकता के भारतीय आदर्शों को उपस्थित करे।"[1]

२. स्वदेश-प्रेम की शिक्षा

प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में राजभक्ति की शिक्षा दी जाती थी और भारतीय परम्पराओं तथा संस्कृति का कोई स्थान नहीं था। ऐसी शिक्षा-प्रणाली को सर्वथा अनुपयुक्त ठहराया गया और कहा गया कि छात्रों को एसी शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे उनमें स्वदेश-प्रेम की भावना प्रस्फुटित हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पाठ्य-क्रम में भारतीय साहित्य, इतिहास, विज्ञान, कला-कौशल और राजनीति आदि को सम्मिलित किया जाय।[2]

३. दास्य अनुकरण का अन्त

प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य भारतीयों पर पाश्चात्य आदर्शों को लादना और एक ऐसा वर्ग तैयार करना था, जो भारतीय होते हुए भी पाश्चात्य विचारों का हो। ऐसी शिक्षा प्रणाली को दोष युक्त बताया गया। अतः राष्ट्रीय नेताओं ने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो छात्रों के समक्ष भारतीय राष्ट्रीयता की विशेषताओं को रखे। इन्हीं विशेषताओं के अनुसार छात्रों का चारित्रिक एवं मानसिक विकास किया जाया चाहिये। "ब्रिटिश आदर्श ब्रिटेन के लिये अच्छे हैं, परन्तु भारतीय आदर्श ही भारत

1. "It must be controlled by Indians, shaped by Indians, carried on by Indians. It must hold up Indian ideals of devotion, wisdom and morality, and must be permeated by the Indian religious spirit rather than fed on the letter of the creeds." Annie Besant in *The Problem of National Education in India*, p. 28.
2. "National education must live in an atmosphere of proud and glorious patriotism, and this atmosphere must be kept sweet, fresh and bracing by the study of Indian litrature, Indian history, Indian triumphs in science, in art, in politics, in war, in colonization, in manufactures, in trade, in commerce." *Ibid* p. 29.

के लिये अच्छे होंगे। भारत की राष्ट्रीयता से अधिक श्रेष्ठ और अधिक उत्तम राष्ट्रीयता का निर्माण ईश्वर ने नहीं किया है।"[1]

४. पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञानों का अध्ययन

राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थकों ने अनुभव किया कि विज्ञान के इस प्रगतिशील युग में भारत का वाह्य देशों से सम्पर्क स्थापित होना आवश्यक है। यह उसी दशा में सम्भव होगा जब पाठ्य-क्रम में पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञानों को उचित स्थान दिया जाय और भारतीय छात्रों को उनमें विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्राप्त हो। लाला लाजपतराय का मत था कि "यूरोपियन भाषाओं, साहित्य और विज्ञानों के अध्ययन को भारत में प्रोत्साहन न देना मूर्खता और पागलपन होगा। अभी हमें उनका यथेष्ट ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ है।"[2]

५. अंग्रेज़ी के प्रभुत्व का अन्त

राष्ट्रीय शिक्षा में अंग्रेज़ी का प्रभुत्व अवांछनीय है। अंग्रेज़ी को न तो पाठ्य-क्रम में प्रधानता दी जाय और न इसे शिक्षा का माध्यम ही रखा जाय। इसके विपरीत, भारतीय भाषाओं को प्रमुखता दी जाय। गांधी जी के मतानुसार अंग्रेज़ी का अध्ययन केवल व्यावसायिक और राजनीतिक लाभ के लिये किया जाता था। मनुष्य अच्छा राजपद और स्त्रियाँ उत्तम वर प्राप्त करने के विचार से अंग्रेज़ी का अध्ययन करते थे। समाज में अंग्रेज़ी का घुन लग गया था और यह दासता तथा पतन का प्रतीक था।[3] साहित्य में रुचि रखने वाले

1. "British ideals are good for Britain, but it is India's ideals that are good for India. India is herself, and needs not to be justified; for verily, God has evolved no greater, no more exquisite nationality than India's." *Ibid*, pp. 29-30.
2. "In my judgment it will be a folly and madness to try to discourage the study and dissemination of European languages, European literature and European sciences in India. The fact is that we have not had enough of them." Lala Lajpat Rai : *op. cit.*, p. 85.
3. "Our boys think that without English they cannot get Government service. Girls are taught English as a passport for marriage. The canker has so eaten into the society that in many cases the only meaning of education is a knowledge of English. All these are for me signs of our slavery and degradation." Mahatma Gandhi : *op. cit.*, pp. 822-823.

भारतीय अंग्रेज़ी का अध्ययन तो करें, परन्तु एक भी भारतीय को अपनी मातृभाषा की अवहेलना नहीं करनी चाहिये।[1]

६. व्यावसायिक शिक्षा पर बल

तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली ने देश के आर्थिक विकास में योग नहीं दिया था। अतः उसकी निन्दा की गई। भारतीय जनमत इस पक्ष में था कि राष्ट्रीय शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा को उचित स्थान दिया जाय। ऐसा करने से ही देश की आर्थिक समस्या का समाधान होगा और जनता को निर्धनता से मुक्ति मिलेगी। भारत की प्रत्यक्ष निर्धनता का आधारभूत कारण व्यावसायिक शिक्षा का अभाव है। अतः राष्ट्रीय शिक्षा का प्रथम उद्देश्य भारतीयों को ऐसी व्यावसायिक शिक्षा देना होना चाहिये जिससे वे अधिक धनोपार्जन कर सकें।[2]

दुर्भाग्यवश व्यावसायिक शिक्षा के प्रश्न पर भारतीय नेताओं में मतैक्य न हो सका। कुछ नेता मशीनों के प्रयोग के पक्ष में थे और कुछ विपक्ष में। गांधी जी की बेसिक शिक्षा की अपनी एक अलग योजना थी। इस मत विभिन्नता के बावजूद भी उपरोक्त सिद्धांतों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा की एक निश्चित योजना तैयार हो गई। परन्तु उसको प्राथमिक शिक्षा से विश्वविद्यालय की शिक्षा तक कार्यान्वित करना सरल नहीं था। विद्यालयों के नवनिर्माण के लिये धन, विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापकों और नवीन पाठ्य-क्रम आदि की आवश्यकता थी। किन्तु इन कठिनाइयों ने कर्म-क्षेत्र में अवतरित निस्वार्थ देश-सेवकों को हतोत्साह न किया और वे राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था करने में जुट गये।

राष्ट्रीय विद्यालयों का निर्माण

राष्ट्रीय विद्यालयों के निर्माण की दिशा में जो प्रयास किये गये, उन्हें निम्नलिखित दो कालों में विभाजित किया जा सकता है :—

---

1. "I would have our young men and women with literary tastes to learn as much of English and other world languages as they like.....But I would not have a single Indian to forget, neglect or be ashamed of his mother-tongue. Mahatma Gandhi : *op. cit.*, p. 484.
2. "India's phenomenal poverty is one of the tragic facts of its life; and it is mainly due to the lack of means of education. Under the circumstances, the first aim of all publicly imparted education in India should be to increase the productive capacity of its citizens." Lala Lajpat Rai : *op. cit.*, p. 209.

(१) १९०५–१९११—१९०५ में बंगाल-विभाजन की घोषणा के फल-स्वरूप सम्पूर्ण देश में विरोध की लहर दौड़ गई। भारतीयों और विद्यार्थियों ने अपना विरोध व्यक्त करने के लिये सभायें कीं और जलूस निकाले। इस पर सरकार का दमन-चक्र प्रारम्भ हुआ। छात्रों को राजनीति से पृथक् रहने के लिये आदेश दिया गया और इस आज्ञा का पालन न करने पर उनको विद्यालयों से निकाल दिये जाने की धमकी दी गई। छात्रों ने इसका उत्तर स्वयं ही विद्यालयों का वहिष्कार करके दिया। इन नवयुवकों की शिक्षा का प्रबन्ध करना राष्ट्रीय कर्त्तव्य समझा गया। अतः बंगाल में गुरुदास बनर्जी की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय शिक्षा-समिति'[1] का संगठन किया गया। इस समिति ने पश्चिमी बंगाल में ११ और पूर्वी बंगाल में ४० राष्ट्रीय हाई स्कूलों का निर्माण किया।[2] बंगाल के बाहर इस प्रकार के स्कूलों की स्थापना नहीं हुई। केवल पूना के निकट तालेगाँव स्थान पर 'समर्थ विद्यालय' निर्मित किया गया।

बंगाल में गुरुदास बनर्जी के अतिरिक्त रासबिहारी घोष तथा रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भी राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार में सराहनीय योग दिया। इनके सम्मिलित प्रयास से कलकत्ता में एक 'नेशनल कॉलेज' स्थापित किया गया और श्री अरविंद इसके प्रथम प्रिंसिपल नियुक्त हुए। कलकत्ता में एक 'टेकनिकल इंस्टीट्यूशन' का भी निर्माण किया गया, जिसने आगे चल कर 'जादवपुर कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग एण्ड टेकनॉलॉजी' का रूप धारण किया।

राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन एक अन्य रूप में भी दृष्टिगोचर हुआ। १९०१ में रवीन्द्र नाथ टैगोर ने शान्तिनिकेतन में एक 'ब्रह्मचर्य आश्रम' खोला, जो आज 'विश्व-भारती' के रूप में विकसित दिखाई देता है। इसी समय के लगभग 'आर्य-प्रतिनिधि सभा' ने वृन्दावन और हरिद्वार में गुरुकुल स्थापित किये। उनमें वैदिक मंत्रों की मधुर ध्वनियाँ भारत के अतीत की गौरव-गाथा गुंजरित करने लगीं।

इस काल में भारत का बच्चा-बच्चा राष्ट्रीय शिक्षा की भावनाओं से सरावोर हो गया। ऐसा प्रतीत होता था मानों नवनिर्मित राष्ट्रीय विद्यालयों में प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का पुनरुत्थान अनिवार्य रूप से होगा। परन्तु दुर्भाग्यवश राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन धीरे-धीरे शिथिल पड़ता गया और

---

1. "Society for the Promotion of National Education in Bengal."
2. *Quinquennial Review of the Progress of Education in India*, (1907-12) para 670.

१९११ में बंगाल विभाजन के अन्त के साथ वह भी समाप्त हो गया। कलकत्ते का 'नेशनल कॉलेज' बन्द हो गया और अन्य विद्यालय भी विलीन हो गये।

१९२०–१९२२—१९२० में राष्ट्रीय शिक्षा का आंदोलन फिर प्रारम्भ हुआ। मांटेग-चेम्सफ़ोर्ड योजना (Montagu-Chelmsford Reform) (१९१९) के सुधारों से असंतुष्ट और जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड (१९१९) से आतंकित भारतीयों ने १ अगस्त १९२० को महात्मा गाँधी के नेतृत्व में 'असहयोग आन्दोलन' प्रारम्भ किया। १९२० में काँग्रेस के नागपुर अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने जनता से अपने बच्चों को स्कूलों और कॉलेजों से हटा लेने की और विभिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों को स्थापित करने की अपील की।[1] गाँधी जी की अपील व्यर्थ न गई। सहस्रों विद्यार्थियों ने विद्यालयों का बहिष्कार कर दिया। इस कार्य में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्र अग्रणी रहे। उन्होंने विश्वविद्यालय के राष्ट्रीयकरण की माँग की, पर उन्हें सफलता न प्राप्त हुई। इस आन्दोलन में भाग लेने के लिये जिन छात्रों ने विश्वविद्यालय का बहिष्कार किया था, उनकी शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये मौलाना मुहम्मद अली ने अलीगढ़ ने 'जामिया मिलिया इस्लामिया' नामक विश्वविद्यालय स्थापित किया। यह विश्वविद्यालय १९२५ में उठकर दिल्ली चला गया। भारत के अन्य भागों में अलीगढ़ का अनुकरण किया गया और ४ माह से कम में ही बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ और अन्य प्रकार के अनेकों राष्ट्रीय स्कूलों तथा कॉलेजों की स्थापना हो गई।[2]

१९२० का राष्ट्रीय शिक्षा-आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन का एक अङ्ग था। ५ फरवरी १९२२ को चौरीचौरा नामक स्थान से गांधी जी को हिंसा के प्रयोग का दुखद समाचार प्राप्त हुआ। फलस्वरूप उन्होंने असहयोग आन्दोलन सहसा स्थगित कर दिया। इसका प्रभाव राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन पर भी पड़ा और उसमें शैथिल्य आ गया। परन्तु प्रथम काल के आन्दोलन से अधिक व्यापक और सक्रिय होने के कारण वह चलता रहा और राष्ट्रीय शिक्षा-प्रसार की शिक्षा में लाभप्रद कार्य करता रहा। इससे अंग्रेज़ शासकों को यह विश्वास हो गया कि तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली और उसके उद्देश्यों में परिवर्तन करना आवश्यक है। राष्ट्रीय विद्यालयों के निर्माण ने शिक्षा-सुधारकों को सशक्त बना

1. Dr. Pattabhi Sitaramayya : *History of the Indian National Congress*, Vol. I, p. 203.
2. *Ibid*, p. 211.

दिया और उन्होंने राष्ट्रीय विद्यालयों में राष्ट्रीय शक्ति को एकत्रित तथा सङ्गठित करने के लिये सक्रिय आन्दोलन की राह पकड़ ली।

१९२१–२२ तक विभिन्न प्रान्तों में स्थापित किये गये राष्ट्रीय स्कूलों तथा कॉलेजों की संख्या का ज्ञान नीचे दी गई तालिका से हो जाता है :—

१९२१–२२ में राष्ट्रीय स्कूल और कॉलेज[1]

प्रान्त	शिक्षा-संस्थायें	विद्यार्थी
आसाम	३८	१,९०८
बंगाल	१९०	१४,८१९
बिहार व उड़ीसा	४४२	१७,३३०
संयुक्त प्रान्त	१३७	८,४७६
पंजाब	६९	८,०४६
मध्य प्रान्त	८६	६,३३८
बम्बई	१८९	१७,१००
मद्रास	९२	५,०७२
अन्यत्र	१४	१,३७५

राजकीय शिक्षा प्रयास (१९०५–२१)

लार्ड कर्ज़न की विदाई से पूर्व ही भारत में राजनीतिक तथा सामाजिक हल-चल प्रारम्भ हो गई थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने राष्ट्रीय शिक्षा की मांग की। १९१० में शिक्षा का विषय भारत-सरकार के गृह-विभाग के अन्तर्गत न रखा जाकर शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि सम्बन्धी नये विभाग को हस्तान्तरित कर दिया गया। उसी वर्ष गोपाल कृष्ण गोखले ने निःशुल्क एवं अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का अपना ऐतिहासिक विधेयक केन्द्रीय धारा-सभा के समक्ष प्रस्तुत किया। जिस समय विधेयक पर तीसरी बार वाद-विवाद चल रहा था, उस समय सम्राट जार्ज पंचम् १२ दिसम्बर १९११ को भारत में भ्रमणार्थ पधारे। दिल्ली दरबार में उन्होंने प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किये जाने के लिये ५० लाख रुपये की अतिरिक्त धन-राशि देने का आदेश दिया।

1 *Quinquennial Review of the Progress of Educatioa in India* (1917–22), p. 5.

६ जनवरी १९१२ को उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में जनता को अपना सन्देश देते हुए कहा : "मेरी यह इच्छा है कि सम्पूर्ण देश में स्कूलों और कॉलेजों का एक ताना-बाना फैल जाय, जहाँ से उद्योगों और कृषि और जीवन के समस्त व्यवसायों में कुछ कर दिखाने वाले योग्य, उपयोगी, विश्वसनीय एवं साहसी नागरिक शिक्षा प्राप्त करके निकला करें।[1]"

उपरिकथित परिस्थितियों से बाध्य होकर सरकार को अपनी शिक्षा-नीति पर पुनर्विचार करना पड़ा। फलस्वरूप २१ फरवरी १९१३ को नवीन 'शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव' प्रकाशित किया गया।

शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव[2] (१९१३)

इस प्रस्ताव में शिक्षा-नीति के आधारभूत सिद्धान्तों को निर्धारित किया गया और शिक्षा के विभिन्न अंगों के विस्तार तथा उन्नति के लिये सिफ़ारिशें की गईं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नाङ्कित है :—

आधारभूत सिद्धान्त

१. शिक्षा-संस्थाओं की संख्या में वृद्धि करने की अपेक्षा उनके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाया जाय।
२. प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के पाठ्य-क्रमों को जीवनोपयोगी तथा व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाय।
३. भारत में उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान की व्यवस्था की जाय जिससे छात्रों को विदेश जाये बिना यहीं पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध हो जायँ।

प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी सिफ़ारिशें

१. पूर्व प्राथमिक (Lower Primary) स्कूलों का अधिक विस्तार किया जाय और उनमें लिखने, पढ़ने और गणित के अतिरिक्त ड्राइंग, गाँव का नक्शा, प्रकृति निरीक्षण एवं शारीरिक व्यायाम की शिक्षा दी जाय।
२. उपयुक्त स्थानों पर उत्तर प्राथमिक (Upper Primary) स्कूलों की स्थापना

1. "It is my wish that there may be spread over the land a network of schools and colleges, from which will go forth loyal and manly and useful citizens, able to hold their own in industries and agriculture and all the vocations in life." *Government Resolution on Educational Policy*, 1913, p. 1.
2. Government Resolution on Educational Policy, 1913.

की जाय और आवश्यकतानुसार लोअर प्राइमरी स्कूलों को अपर प्राइमरी स्कूलों में परिवर्तित कर दिया जाय।

३. ज़िला परिषदों एवं स्थानीय संस्थाओं द्वारा अधिक स्कूल खोले जायँ। जहाँ यह सम्भव न हो सके, वहाँ व्यक्तिगत स्कूलों की स्थापना को प्रोत्साहित किया जाय।

४. मकतबों तथा पाठशालाओं को उदारता पूर्वक सहायता-अनुदान दिया जाय।

५. व्यक्तिगत स्कूलों के उत्तम प्रबन्ध तथा नियमित निरीक्षण की व्यवस्था की जाय।

६. भारत के अधिकांश भागों में ग्रामों एवं नगरों के विद्यालयों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रम निश्चित करना असम्भव है। फिर भी नगर विद्यालयों में भूगोल और पर्यटन आदि विषयों को बढ़ाया जा सकता है।

७. जिस वर्ग के छात्र हों उसी वर्ग के शिक्षक नियुक्त किये जायँ।

८. शिक्षक मिडिल पास और एक वर्ष प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हों।

९. शिक्षकों को ग्रीष्मावकाश में अपने ज्ञान को नवीन करने के लिये अल्पकालीन दीक्षा की सुविधा दी जाय।

१०. प्रशिक्षित अध्यापकों को १२ रुपये मासिक से कम वेतन न दिया जाय और उनकी पदोन्नति, पेंशन अथवा प्रॉविडेन्ट फंड की व्यवस्था की जाय।

११. किसी भी अध्यापक से ५० से अधिक छात्रों को शिक्षा देने के लिये न कहा जाय। साधारणतया कक्षा में ३० से ४० तक विद्यार्थी हों।

१२. मिडिल एवं माध्यमिक वर्नाक्यूलर स्कूलों में सुधार किया जाय और उनकी संख्या में वृद्धि की जाय।

१३. विद्यालयों में काफी स्थान हो। साथ ही वे स्वच्छ एवं सस्ते हों।

माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी सिफ़ारिशें

१. माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र से सरकार का पूर्ण पालायन उचित नहीं है।

२. राजकीय स्कूलों की संख्या में वृद्धि न की जाय अपितु उनको आदर्श बनाने का प्रयास किया जाय।

३. राजकीय स्कूलों में केवल प्रशिक्षित स्नातक ही अध्यापक नियुक्त किये जायँ।

४. इन शिक्षकों का निश्चित ग्रेड एवं वेतन हो। न्यूनतम वेतन ४० रुपया मासिक एवं उच्चतम ४०० रुपया मासिक हो।

५. राजकीय स्कूलों के छात्रों के लिये छात्रावासों की उचित व्यवस्था की जाय।

६. ग़ैर-सरकारी स्कूलों को उदारता पूर्वक सहायता-अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जाय।

७. हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम में इस प्रकार सुधार किया जाय कि वह स्वतः एक पूर्ण इकाई हो जाय।

८. पाठ्य-क्रम में मेनुअल ट्रेनिंग एवं विज्ञान ऐसे आधुनिकतम विषयों को सम्मिलित किया जाय।

९. छात्रों को स्वास्थ्य-विज्ञान की शिक्षा दी जाय और उनके स्वास्थ्य निरीक्षण (Medical Examination) की व्यवस्था की जाय।

१०. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाने के लिये शिक्षण-महाविद्यालय स्थापित किये जायँ।

११. माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के लिये 'स्कूल फ़ाइनल' परीक्षा की व्यवस्था की जाय और इसका प्रबन्ध विश्वविद्यालय द्वारा न किया जाकर किसी अन्य संस्था द्वारा किया जाय।

१२. इन विद्यालयों पर कड़ा नियन्त्रण रखा जाय जिससे वे अपनी कार्य-क्षमता में वृद्धि करें।

विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षा

१. विश्वविद्यालयों ने अनेकों कठिनाइयों का सामना कर के भी उत्तम कार्य किया है, परन्तु विश्वविद्यालयों की दशा अच्छी नहीं है। अतः उनमें सुधार की आवश्यकता है।

२. भारत में अभी बहुत समय तक परीक्षक विश्वविद्यालयों की आवश्यकता रहेगी, परन्तु उनकी प्रादेशिक सीमाओं को निश्चित कर देना आवश्यक है।

३. इस समय देश में ५ विश्वविद्यालय और १८५ कॉलेज हैं। ये देश की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ हैं। अतः विश्वविद्यालयों की संख्या में वृद्धि की जाय और प्रत्येक प्रान्त में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय।

४. विश्वविद्यालयों का कार्य बहुत बढ़ गया है। अतः उन्हें हाई स्कूलों को मान्यता प्रदान करने के कार्य से मुक्त कर दिया जाय। यह कार्य प्रान्तीय सरकारों और देशी राज्यों को सौंप दिया जाय।

५. विश्वविद्यालयों में औद्योगिक विषयों की शिक्षा और अनुसंधान कार्य की व्यवस्था की जाय।
६. ऐसे विश्वविद्यालयों की स्थापना पर जोर दिया जाय जो शिक्षण-कार्य करना चाहते हैं।
७. विश्वविद्यालयों में पुस्तकालयों, छात्रावासों और प्रयोगशालाओं की व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया जाय।
८. विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण एवं सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक शक्तियों के विकास का वातावरण उपस्थित किया जाय।

एक टिप्पणी

१९१३ के सरकारी प्रस्ताव में प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय एवं उच्च शिक्षा की उन्नति तथा विस्तार के लिये महत्वपूर्ण सिफ़ारिशें की गईं। परन्तु इन सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करने के लिये शिक्षा-मर्मज्ञों की सम्मति की आवश्यकता थी। अतः एक अन्य शिक्षा-आयोग की नियुक्ति का प्रस्ताव किया गया। किंतु १९१४ में महायुद्ध प्रारम्भ होने से आयोग की नियुक्ति न की जा सकी और समस्त शिक्षा-सुधार कुछ समय के लिये केवल क़ागज़ पर ही लिखे रहे गये। महायुद्ध के उपरान्त भारत सरकार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की शिक्षा की जाँच और उसकी दशा में सुधार करने के लिये एक आयोग नियुक्त किया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग[1] (१९१७)

नियुक्ति का कारण—१९१६ में कलकत्ता विश्वविद्यालय में सर आशुतोष मुकर्जी के प्रयास से स्नातकोत्तर विभाग (Post-Graduate Department) खोला गया। इस विभाग की स्थापना द्वारा सर आशुतोष एक नवीन प्रयोग का उद्घाटन करने के लिये अत्यन्त उत्सुक थे। वे चाहते थे कि स्नातकोत्तर शिक्षण का कार्य विश्वविद्यालय में ही किया जाय। जब सरकार का ध्यान इस ओर गया, तब उसने विश्वविद्यालय की जाँच के लिये १४ सितम्बर १९१७ को एक आयोग की नियुक्ति की।

सदस्य—इस आयोग के अध्यक्ष लीड्स (Leeds) विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० माइकेल सैडलर (Michael Sadler) थे। अध्यक्ष के नाम पर इस आयोग को 'सैडलर आयोग' भी कहा जाता है। आयोग के अन्य सदस्यों में डा० ग्रेगरी (Gregory), सर फ़िलिप हरटॉग (Sir Philip Hartog), प्रोफ़े-

1. The Calcutta University Commission (Sadler Commission).

सर रैमज़े म्योर (Ramsay Mure), बंगाल के शिक्षा-संचालक, सर आशुतोष मुकर्जी और डा० ज़ियाउद्दीन अहमद थे।

जाँच का विषय—आयोग के जाँच का विषय था—"कलकत्ता विश्वविद्यालय की अवस्था एवं आवश्यकता की जाँच करना और उससे सम्बन्धित समस्याओं का रचनात्मक ढंग से समाधान करने का सुझाव देना।"[1]

अधिकार-क्षेत्र—यह आयोग केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय की जाँच करने के लिये नियुक्त किया गया था। परन्तु तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से इसको अन्य विद्यालयों की भी जाँच करने का अधिकार दे दिया गया था।

रिपोर्ट—आयोग ने लगभग १७ माह के अथक परिश्रम के उपरान्त मार्च १९११ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट बहुत विस्तृत है और १३ भागों में विभाजित है। इसके अन्तर्गत माध्यमिक, कॉलेजीय एवं विश्वविद्यालय शिक्षा का पूर्ण विवेचन किया गया है और उन पर रचनात्मक सिफ़ारिशें की गई हैं। आयोग में माध्यमिक शिक्षा को विश्वविद्यालय की शिक्षा का आधार मान कर उसका सूक्ष्म परीक्षण किया गया है।

सुझाव—आयोग ने माध्यमिक और उच्च शिक्षा के अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा, अध्यापकों के प्रशिक्षण, प्रौद्योगिक शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में भी सुझाव दिये। हम इनका विस्तृत वर्णन नीचे दे रहे हैं।

आयोग के सुझाव

आयोग ने माध्यमिक शिक्षा को उच्च शिक्षा का आधार माना। अतः उसका विचार था कि जब तक माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करके उसकी काया-पलट नहीं की जायगी, तब तक विश्वविद्यालय की शिक्षा में किसी प्रकार का सुधार करना सम्भव नहीं होगा। आयोग के मतानुसार माध्यमिक शिक्षा के दोष निम्नांकित थे :—

माध्यमिक शिक्षा के दोष

१. माध्यमिक शिक्षा का पर्याप्त विस्तार हुआ है, पर उसमें गुणात्मक उन्नति नहीं हुई है।

२. माध्यमिक विद्यालयों की निम्नकोटि की शिक्षा का प्रमुख कारण सुयोग्य

---

1. "To enquire into the condition and prospects of the University of Calcutta and to consider the question of a constructive policy in relation to the question it presents." Quoted by S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 216.

अध्यापकों का अभाव है। उन्हें इतना कम वेतन मिलता है कि वे इस व्यवसाय की ओर आकर्षित नहीं होते हैं।

३. माध्यमिक विद्यालयों में उचित शिक्षण-सामग्री एवं उपयोगी साधन उपस्थित नहीं हैं।

४. माध्यमिक शिक्षा का दृष्टिकोण संकुचित है, क्योंकि उस पर सार्वजनिक परीक्षाओं का दूषित प्रभाव है।

५. ऐसे अनेक विषय हैं जो माध्यमिक विद्यालयों के लिये महत्वपूर्ण तथा उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। परन्तु उन विषयों को माध्यमिक विद्यालयों में न पढ़ाया जाकर इण्टरमीडिएट कॉलेजों में पढ़ाया जाता है।

६. अधिकांश माध्यमिक विद्यालयों में धन का अभाव है, अतः उनकी कार्य-क्षमता न्यून है।

आयोग का कथन था कि विश्वविद्यालय शिक्षा के सुधारार्थ माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संङ्गठन आवश्यक है। इस सम्बन्ध में आयोग के सुझाव अधोलिखित थे :—

माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव

१. विश्वविद्यालयों में उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाय, जो इन्टरमीडिएट परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हों और बी० ए० का कोर्स तीन वर्ष का कर दिया जाय।

२. इन्टरमीडिएट कक्षाओं को विश्वविद्यालयों से पृथक कर दिया जाय। इन कक्षाओं की शिक्षा देने के लिये इन्टरमीडिएट कालेज स्थापित किये जायँ।

३. इंटरमीडिएट कॉलेजों में इंजीनियरिंग, चिकित्सा, वाणिज्य, अध्यापन, विज्ञान, कला और कृषि आदि विषयों की शिक्षा दी जाय।

४. इन कॉलेजों में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें हों।

५. प्रत्येक प्रान्त में 'माध्यमिक शिक्षा-परिषद्' (Board of Secondary and Intermediate Education) की स्थापना की जाय। माध्यमिक विद्यालयों और इन्टरमीडिएट कॉलेजों के निरीक्षण एवं नियंत्रण का भार इन परिषदों को सौंप दिया जाय।

६. ये परिषदें शिक्षा-विभाग के नियंत्रण से मुक्त रखी जायँ। इनकी प्रबन्ध-कारिणी में सरकार, विश्वविद्यालय, इंटरमीडिएट कॉलेजों तथा हाई स्कूलों के प्रतिनिधि हों।

इन परिषदों के निर्माण का सुझाव आयोग ने इस उद्देश्य से दिया था कि विश्वविद्यालय माध्यमिक शिक्षा के भार से मुक्त हो जायँ और अपने ध्यान कोपूर्णतः उच्च शिक्षा पर केन्द्रित कर सकें।

कलकत्ता विश्वविद्यालय-सम्बन्धी सुझाव

माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त आयोग ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की समस्याओं का गहन अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कॉलेजों और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि विश्वविद्यालय उनका समुचित प्रबन्ध करने में असमर्थ है। इस सम्बन्ध में आयोग ने निम्नांकित ३ सुझाव दिये :—

१. ढाका में शीघ्र ही एक सावास-शिक्षण विश्वविद्यालय (Residential and Teaching University) की स्थापना की जाय।
२. कलकत्ता नगर की शिक्षा-संस्थाओं को इस प्रकार संगठित किया जाय कि एक वास्तविक शिक्षण-विश्वविद्यालय का निर्माण हो जाय।
३. नगर के समीपवर्ती कॉलेजों का संगठन इस दृष्टि से किया जाय कि कुछ स्थानों पर नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना सम्भव हो जाय।

भारतीय विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में सामान्य सुझाव

आयोग ने भारतीय विश्वविद्यालयों के कार्यों, संगठन तथा आन्तरिक शासन के सम्बन्ध में कुछ सामान्य सुझाव दिये। हम इनका विवरण नीचे दे रहे हैं :—

१. विश्वविद्यालयों पर सरकार का नियंत्रण बहुत कठोर है और उन्हें अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं है। अतः यह वांछनीय है कि उन्हें अधिक स्वतंत्रता दी जाय।
२. विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को अधिक अधिकार प्रदान किये जायँ।
३. 'पास कोर्स' (Pass Course) के अतिरिक्त 'आनर्स कोर्स' (Honours Course) का भी प्रबन्ध किया जाय। बी० ए० के कोर्स की अवधि ३ वर्ष कर दी जाय।
४. विश्वविद्यालयों के लिये सरकारी-नौकरी प्रणाली का पालन करना उपयुक्त नहीं है। अतः प्रोफ़ेसरों और रीडरों की नियुक्ति एक समिति द्वारा की जाय, जिसमें शिक्षा के विशेषज्ञ भी रखे जायँ।
५. विश्वविद्यालयों के आन्तरिक शासन के लिये 'सीनेट' के स्थान पर 'कोर्ट' और 'सिंडीकेट' के स्थान पर एक कार्य-कारिणी समिति स्थापित की जाय।
६. परीक्षा, पाठ्य-क्रम, उपाधि-वितरण और अनुसंधान आदि एकेडेमिक कार्यों को करने के लिये 'एकेडेमिक समिति' (Academic Council) की स्थापना की जाय।

७. विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय, यथा—व्यावसायिक शिक्षा, इंजीनियरिंग, अध्यापन, डाक्टरी, क़ानून, कृषि आदि।
८. उप-कुलपति का पद वैतनिक कर दिया जाय।
९. विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की देख-भाल करने के लिये प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक 'डाइरेक्टर ऑफ़ फ़िज़िकल ट्रेनिंग' नियुक्त किया जाय।
१०. मुस्लिम-शिक्षा पिछड़ी हुई अवस्था में है। अतः मुसलमान छात्रों को विशेष सुविधा देकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

स्त्री-शिक्षा

स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने के लिये आयोग ने नीचे लिखे सुझाव दिये :—

१. जो लड़कियाँ १५-१६ वर्ष की आयु तक शिक्षा का लाभ उठाना चाहती हैं उनके लिये सरकार द्वारा पर्दा स्कूलों की व्यवस्था की जाय।
२. कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक 'स्पेशल बोर्ड ऑफ़ वीमेन्स एजूकेशन' का निर्माण किया जाय। यह बोर्ड स्त्रियों के लिये एक विशेष पाठ्य-क्रम तैयार करे और उन्हें अध्यापिका-प्रशिक्षण तथा चिकित्सा-शिक्षा की सुविधा दे।
३. सह-शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय।

अध्यापक-प्रशिक्षण

आयोग की दृष्टि में माध्यमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव था। अतः उसने दीक्षित अध्यापकों की संख्या में वृद्धि करने के लिये कुछ सुझाव दिये, जैसे :—

१. बी० ए० एवं इन्टरमीडिएट कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में शिक्षा के विषय को स्थान दिया जाय।
२. कलकत्ता एवं ढाका विश्वविद्यालयों में शिक्षा-विभाग की स्थापना की जाय।

प्रौद्योगिक शिक्षा

आयोग ने भारतीयों के लिये प्रौद्योगिक (Technological) शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया। अतः उसने सुझाव दिया कि :—

१. विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में प्रौद्योगिक शिक्षा को सम्मिलित किया जाय।

२. इस शिक्षा की परीक्षा की व्यवस्था की जाय और सफल छात्रों को उपाधियाँ प्रदान की जायँ।

व्यावसायिक शिक्षा

अपनी जाँच के आधार पर आयोग इस परिणाम पर पहुँचा कि भारतीय छात्रों की साहित्यिक शिक्षा में अधिक अभिरुचि थी। इसका कारण आयोग के विचार से व्यावसायिक (Professional and Vocational) शिक्षा का अभाव था। अतः व्यावसायिक शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के लिये आयोग ने अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

२. इन्टरमीडिएट कक्षाओं के पाठ्य-क्रम को दोहराया जाय और उसमें आवश्यकतानुसार व्यवसाय की सामान्य शिक्षा सम्मिलित की जाय।

आयोग का मूल्यांकन

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने इस देश की उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्तुत्य-कार्य किया। यद्यपि इसकी नियुक्ति केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय की जांच करने के लिये हुई थी तथापि इसने समस्त भारतीय विश्वविद्यालयों के सुधार के लिये सामान्य सुझाव दिये। सौभाग्यवश सरकार ने उनको स्वीकृत किया और उन्हीं के आधार पर सभी विश्वविद्यालयों में सुधार किये गये। यही कारण है कि इस आयोग की रिपोर्ट का महत्व अखिल भारत के लिये है। इसके सुझावों ने भारतीय विश्वविद्यालयों को अवांछनीय दोषों से मुक्त किया और उन्हें एक नया जामा पहिना दिया। वे परीक्षा-संस्थायें न रह कर अध्यापन तथा अनुसंधान के केन्द्र बन गये। आयोग ने प्रौद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव देकर विश्वविद्यालयों पर जीवनोपयोगी शिक्षा देने का उत्तरदायित्व रखा और इस प्रकार शिक्षा का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध स्थापित कर दिया।

उपर्युक्त गुणों के बावजूद यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिये कि आयोग के कुछ सुझाव दोष-पूर्ण और समय से बहुत पूर्व थे। उदाहरणतः भारत ऐसे निर्धन देश के लिये सावास (Residential) विश्वविद्यालयों की स्थापना का सुझाव बिल्कुल उपयुक्त नहीं था। इस दरिद्र देश में केवल कुछ ही संरक्षक ऐसी शिक्षा का व्यय-भार वहन करने में समर्थ होते। लन्दन और

बर्लिन विश्वविद्यालय भी तो सावास नहीं हैं और उनमें प्रदान की जाने वाली शिक्षा किसी प्रकार आक्सफ़ोर्ड और केम्ब्रिज के सावास विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा से निम्नतर नहीं है। यदि उन देशों में सावास विश्वविद्यालयों के अभाव में उच्च कोटि की शिक्षा देना सम्भव था, तो भारत में भी यह बात असम्भव नहीं थी। आयोग का एक अन्य दोषपूर्ण सुझाव था माध्यमिक शिक्षा को शिक्षा-विभाग के अधिकार-क्षेत्र से निकाल कर बोर्ड के नियंत्रण में रख देना। सैडलर कमीशन और उत्तर प्रदेश बोर्ड के सदस्य डा० जियाउद्दीन अहमद का मत है कि इस हस्तान्तरण का परिणाम अच्छा नहीं निकला। इन्टरमीडिएट कॉलेजों का परीक्षण भी असफल रहा है। किंतु इन दोषों के होते हुए भी विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में आयोग की सेवायें सराहनीय हैं। इसके सुझावों के फलस्वरूप ही १९२१ तक अनेकों विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ। वस्तुतः आयोग ने विश्वविद्यालय का जो आदर्श उपस्थित किया उसी को युग का प्रतिनिधि आदर्श स्वीकार किया गया और उसी को कुछ संशोधनों के साथ आज भी मान्यता दी जाती है।

शिक्षा की प्रगति (१९०५–१९२१)

उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालय एवं कॉलेज)

नवीन विश्वविद्यालयों का निर्माण

१८८७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निर्माण के उपरान्त ३० वर्ष तक कोई भी विश्वविद्यालय स्थापित नहीं किया गया। परंतु इस अवधि में कॉलेजों की संख्या १८५ हो गई। यह अनुभव किया जाने लगा था कि इतने कॉलेजों का भार ५ विश्वविद्यालय—कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, पंजाब और इलाहाबाद संभालने में असमर्थ हैं। अतः उनकी संख्या में वृद्धि की जानी आवश्यक है। १९१३ के सरकारी प्रस्ताव ने विश्वविद्यालयों के नव-निर्माण पर जोर दिया। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने भी इस दिशा में कार्य करने के लिए परामर्श दिया। फलस्वरूप १९१६ से १९२१ तक निम्नलिखित ७ नये विश्वविद्यालय स्थापित किये गये :—

१. **मैसूर विश्वविद्यालय**—इसकी स्थापना १९१६ में हुई। यह कॉलेजों को केवल मान्यता प्रदान करता था। इसके निर्माण से मद्रास विश्वविद्यालय का कार्य-भार काफ़ी कम हो गया।

२. **पटना विश्वविद्यालय**—इस विश्वविद्यालय का निर्माण १९१७ में बिहार और उड़ीसा की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये किया गया।

३. **बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय**—इस विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए १९१५ में केन्द्रीय धारा सभा में 'बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी' अधिनियम पारित किया गया। इसकी स्थापना का श्रेय पं० मदनमोहन मालवीय को है। इसने १९१७ से सावास और शिक्षण विश्वविद्यालय के रूप में कार्य करना आरम्भ किया।

४. **अलीगढ़ विश्वविद्यालय**—बनारस विश्वविद्यालय के समान इस विश्वविद्यालय का भी निर्माण केन्द्रीय धारा सभा के एक विशेष अधिनियम द्वारा १९२० में किया गया। यह विश्वविद्यालय 'मोहमडन ऐंग्लो-ओरिएन्टल कॉलेज' (Mahomedan Anglo-Oriental College) का विकसित स्वरूप है, जिससे सर सैयद अहमद खाँ का नाम सम्बन्धित है। बनारस विश्वविद्यालय की भाँति यह भी सावास और शिक्षण विश्वविद्यालय है और उसी के समान केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत है।

५. **ढाका विश्वविद्यालय**—इसकी स्थापना १९२१ में की गई। यह सावास और शिक्षण विश्वविद्यालय है।

६. **लखनऊ विश्वविद्यालय**—इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास १९२० में अवध के राजाओं तथा तालुक़्क़ेदारों के सम्मिलित प्रयासों के फलस्वरूप हुआ। यह सावास तथा शिक्षण विश्वविद्यालय है।

७. **उसमानिया विश्वविद्यालय**—इस विश्वविद्यालय की स्थापना १९१८ में हैदराबाद के निज़ाम ने अपने राज्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये की। यह विश्वविद्यालय अपने ढंग का निराला है, क्योंकि इसमें उर्दू भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा दी जाती है।

विश्वविद्यालयों को सहायता-अनुदान

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय-शिक्षा को प्रोत्साहित करने और उसके स्तर को ऊँचा उठाने के लिये उदारता पूर्वक आर्थिक सहायता दी। १९०० में केवल पंजाब विश्वविद्यालय को २९,३८० रुपये का वार्षिक अनुदान दिया जाता था। १९२१ में इस धन राशि को बढ़ा कर २०,५४,००० रुपया कर दिया गया और सभी विश्वविद्यालयों को सहायता अनुदान दिया जाने लगा। १९०१ में विश्वविद्यालयों का व्यय ७,२१,००० रुपये था, परन्तु १९२१ में यह व्यय ७४,१३,००० रुपये हो गया था।

विश्वविद्यालयों का शिक्षण-कार्य

सरकारी सहायता-अनुदान एवं व्यक्तिगत साधनों से आर्थिक सहायता

प्राप्त करके विश्वविद्यालय दत्तचित्त होकर शिक्षण का कार्य करने लगे। इस काल के १२ विश्वविद्यालयों में से १ विश्वविद्यालय शिक्षण और सम्बन्धीकरण (Affiliation) का कार्य करता था, ५ केवल शिक्षण का और शेष ६ सम्बन्धीकरण का। अन्तिम प्रकार के विश्वविद्यालय कुछ शिक्षण-कार्य भी करते थे, जो निम्नांकित में से एक या उससे अधिक होता था :—

१. विश्वविद्यालय में भारतीय एवं विदेशी विद्वानों के भाषणों की व्यवस्था करना।
२. विश्वविद्यालय में कुछ विशिष्ट विषयों के शिक्षण का प्रबन्ध करना।
३. विश्वविद्यालय में आनर्स तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं को चलाना।

कॉलेजों का विस्तार

१९०४ के विश्वविद्यालय अधिनियम के अनुसार कॉलेजों को मान्यता प्रदान करने के नियम कठोर बना दिये गये। परिणामतः कॉलेजों का स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो गया। इतना ही नहीं, वरन् जर्जरित दशा में चलने वाले कॉलेजों का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। १९०२ में कॉलेजों की संख्या १४५ थी, परन्तु १९०५ में वह घट कर १३८ रह गई। यहाँ एक विशेष बात उल्लेखनीय है। जब कि कॉलेजों की संख्या में उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा था, विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। अतः कुछ समय उपरान्त ऐसी स्थिति आ गई, जब नये कॉलेजों की स्थापना अनिवार्य हो गयी। यह कार्य १९११ में प्रारम्भ हुआ और १९२१ तक ६९ कॉलेजों का नवनिर्माण हुआ। इस प्रकार १९२१ में २०७ कॉलेज थे और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों की संख्या ५४,४७३ थी जब कि १९०५ में १३८ कॉलेजों में १७,००० छात्र थे।

इस प्रकार १९०५ से १९२१ तक कॉलेजीय शिक्षा का प्रशंसनीय विस्तार हुआ, परन्तु यह शिक्षा देश के नवयुवकों की माँग की पूर्ति न कर सकी। १९०५ से पूर्व उच्च-शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की संख्या कम और राजकीय पदों की संख्या अधिक थी। परन्तु शनैः-शनैः इस स्थिति में परिवर्तन होता चला गया और कॉलेजों की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त सरकारी नौकरी प्राप्त करना सरल नहीं रह गया। फिर भी कॉलेजों में छात्रों की संख्या में वृद्धि होती गई। कारण यह था कि विद्यार्थियों के समक्ष कॉलेजों की उच्च शिक्षा के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था। देश में औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के कॉलेजों की संख्या अपर्याप्त थी। अतः 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में उत्तीर्ण छात्र सामान्य शिक्षा के कॉलेजों में प्रवेश ले लेते थे। इस प्रकार

कॉलिजों में विद्यार्थियों की संख्या में यह निरुद्देश्य वृद्धि शुभ प्रगति का चिह्न न होकर रोग का लक्षण बनती जा रही थी।[1]

कालेजों को सहायता अनुदान

इस अवधि में सरकार ने कॉलिजीय शिक्षा में सुधार करने के लिये उदार आर्थिक सहायता दी। फलस्वरूप कॉलिजों में छात्रावासों, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं आदि की समुचित व्यवस्था हो गई और शिक्षण स्तर भी ऊँचा उठ गया। १९०७ तक केन्द्रीय सरकार कॉलिजों को ३,६५,००० रुपया आवर्त्तक सहायता-अनुदान (Recurring Grant-in-aid) के रूप में देती थी। १९०७ से १९१२ तक इस धनराशि में २,४५,००० रुपये की वृद्धि कर दी गई। १९१२ के पश्चात् इसमें २,८४,००० रुपये और बढ़ा दिये गये। इसके अतिरिक्त कॉलिजों को अनावर्त्तक सहायता-अनुदान भी उदारता पूर्वक दिया गया। १९२१-२२ में सरकार द्वारा कॉलिजीय शिक्षा पर ४९,२६,००० रुपया व्यय किया गया। इस धन में गैर-सरकारी कॉलिजों का भाग १५,२८,००० रुपया था।

कॉलिजों का शिक्षण-कार्य

इस अवधि में कॉलिजों के शिक्षण-कार्य में पूर्व की अपेक्षाकृत अधिक उन्नति हो गई थी और उनकी शिक्षा का स्तर भी ऊँचा हो गया था। कारण यह था कि अधिक सहायता-अनुदान प्राप्त होने से कॉलिजों ने सुयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति कर ली थी। साथ ही उत्तम भवन, प्रचुर शिक्षण-सामग्री आदि की व्यवस्था हो गई थी।

माध्यमिक शिक्षा (१९०५-१९२१)

पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि लार्ड कर्ज़न की नवीन शिक्षा-नीति में माध्यमिक विद्यालयों की गुणात्मक उन्नति पर बल दिया गया था, न कि संख्यात्मक वृद्धि पर। फलस्वरूप माध्यमिक स्कूलों पर सरकारी नियन्त्रण कड़ा कर दिया गया था। इस कठिनाई के होते हुए भी १९०५ से १९२१ तक माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। इसका प्रमुख कारण यह था कि सरकारी नौकरियों के द्वार अँग्रेज़ी शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के लिये खुले हुए थे। ऐसी दशा में छात्रों की संख्या में वृद्धि होना और तदनुसार विद्यालयों

1. "This aimless increase in the number of students in colleges of general education was, therefore, more a sign of disease than of robust growth." Nurullah and Naik : *op. cit.*, p. 512.

की संख्या बढ़ना स्वाभाविक था। १९०५ में माध्यमिक स्कूलों की संख्या ५,१२४ और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या ५,९०,१२९ थी। १९२१ में ये संख्यायें क्रमशः ७,५३० और ११,०६,८०३ थीं।

माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में इस अभिवृद्धि का श्रेय १९१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' को प्राप्त है। इस प्रस्ताव में माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिये अनेकों बहुमूल्य सुझाव दिये गये। इनका वर्णन पहिले किया जा चुका है। परन्तु इस कथन में भी औचित्य है कि 'सरकारी प्रस्ताव' से अधिक श्रेय भारतीय समाज-सेवकों को दिया जाना चाहिये। इस काल में होने वाली सामाजिक तथा राजनीतिक जागृति ने उनको शिक्षा-प्रसार के कार्य में संलग्न होने के लिये अनुप्राणित किया। अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि भारत के कर्त्तव्यपरायण नेताओं के प्रयासों के कारण ही हुई।

व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था

भारतीय शिक्षा-आयोग की सिफ़ारिश को स्वीकार करके विभिन्न प्रान्तों में हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों को स्थान दिया गया था और 'स्कूल लीविंग सर्टिफ़िकेट' परीक्षा प्रारम्भ की गई थी। यह व्यवस्था इस अवधि में भी यथावत रखी गई। यद्यपि अधिकांश विद्यार्थी अब भी 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में सम्मिलित होते थे, तथापि 'स्कूल लीविंग सर्टिफ़िकेट' प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या उनसे अधिक कम नहीं थी। १९१०–११ में सम्पूर्ण भारत में 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में १६,९६२ और 'सर्टिफ़िकेट' परीक्षा में १०,१६१ छात्र बैठे।

इन आंकड़ों से सिद्ध होता है कि 'सर्टिफ़िकेट' परीक्षा की लोकप्रियता बढ़ रही थी। इसके तीन प्रमुख कारण थे। प्रथम, इस परीक्षा में किसी विद्यार्थी को अनुत्तीर्ण नहीं घोषित किया जाता था। द्वितीय, इस परीक्षा का सर्टिफ़िकेट प्राप्त करने वाले छात्र विश्वविद्यालय में प्रवेश ले सकते थे। तृतीय, ये छात्र सरकारी नौकरी के लिये प्रार्थी हो सकते थे।

उपर्युक्त गुणों की उपस्थिति में भी 'सर्टिफ़िकेट' परीक्षा का पाठ्य-क्रम उस आदर्श पर नहीं पहुँच सका, जिसको १८५४ के घोषणा-पत्र में अङ्कित किया गया था। इसके अनुसार भारतीयों को ऐसी शिक्षा प्रदान की जानी थी, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्हें समाज का लाभप्रद सदस्य बना सके। यह आदर्श केवल कल्पना-मात्र रह गया। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि हाई स्कूल का पाठ्य-क्रम थोड़ा विस्तृत हो गया और उसमें कुछ औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों का समावेश हो गया।

अंग्रेजी-शिक्षण में सुधार

पहिले बताया जा चुका है कि माध्यमिक स्कूलों का प्रमुख ध्येय अंग्रेजी की शिक्षा देना हो गया था। इस काल में भी इस ध्येय में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अतः अंग्रेजी के शिक्षण को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के विचार से विभिन्न विधियों का प्रयोग किया गया। इनमें से प्रमुख थीं—'डाइरेक्ट मेथड' (Direct Method) की नवीन प्रणाली, प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा अंग्रेजी का शिक्षण, पाठ्य-पुस्तकों की स्वीकृति और परीक्षा में कठोरता। परन्तु ये सभी प्रयास असफल रहे और अंग्रेजी का स्तर अधिक ऊँचा न उठ सका।

शिक्षा का माध्यम

अंग्रेजी को अत्याधिक महत्व देने से भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम न बनाया जा सका। यद्यपि कर्जन की शिक्षा-नीति का अनुसरण करके अब भी मिडिल स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा थी, परन्तु हाई स्कूल में माध्यम अंग्रेजी ही था।

अध्यापकों का प्रशिक्षण

लार्ड कर्जन ने शिक्षण महाविद्यालयों के नवनिर्माण की घोषणा करके माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण में एक नवीन युग का आवाहन किया था। १९१२ तक १५ शिक्षण-महाविद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी, जो लगभग १,४०० छात्राध्यापकों को दीक्षित कर रहे थे। १९१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' ने प्रशिक्षण-कार्य को और आगे बढ़ाया। इस प्रस्ताव में घोषित गया कि किसी भी अदीक्षित अध्यापक को स्कूलों में अध्यापन कार्य की अनुमति न दी जायगी। फलस्वरूप प्रशिक्षण-विद्यालयों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। १९२१ में १३ शिक्षण-महाविद्यालय इस प्रकार के थे जो माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों को अंग्रेजी पढ़ाने की शिक्षा दे रहे थे। १९०४ में ऐसे शिक्षण-महाविद्यालयों की कुल संख्या ४ थी।

एक टिप्पणी

इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा की सराहनीय प्रगति हुई। साथ ही उसकी गुणात्मक उन्नति भी हुई। छात्रों की संख्या में भी आशातीत वृद्धि हुई। परन्तु माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी प्रमुख समस्यायों का समाधान न हो सका। हाई स्कूल में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रहा और व्यावसायिक शिक्षा की संतोषजनक व्यवस्था नहीं की गई।

प्राथमिक शिक्षा (१९०५-२१)

इस अवधि की प्राथमिक शिक्षा को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :—(१) १९०५ से १९१७ तक; और (२) १९१७ से १९२१ तक। प्रथम काल में प्राथमिक शिक्षा का रूप पूर्ववत् ही रहा। द्वितीय काल में उसका रूप तो वही रहा, परन्तु उसको अनिवार्य बनाने का प्रयास किया गया। हम इन दोनों कालों पर नीचे विहंगम दृष्टि डाल रहे हैं :—

प्राथमिक शिक्षा (१९०५-१९१७)

लार्ड कर्ज़न से पूर्व प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिये भारत सरकार ने समय-समय पर योजनायें बनाई थीं। परन्तु फिर भी इस दिशा में कोई संतोषजनक कार्य नहीं किया गया था। कर्ज़न प्रथम वाइसराय था जिसने १९०४ के 'सरकारी प्रस्ताव' में प्राथमिक शिक्षा का विकास करना सरकार का एक प्रमुख कर्त्तव्य बताया। उसने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ उसकी गुणात्मक उन्नति की ओर भी ध्यान दिया। फलस्वरूप १९११ तक प्राथमिक शिक्षा की प्रगति में बहुत तीव्रता रही। दिसम्बर १९११ में सम्राट जार्ज पंचम् भारत पधारे और उन्होंने दिल्ली दरबार में प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किये जाने के लिये ५० लाख रुपये की धन-राशि प्रदान करने का घोषणा की। ६ जनवरी १९१२ को कलकत्ता विश्वविद्यालय में भाषण देते हुए उन्होंने भारत में विद्यालयों का जाल बिछा हुआ देखने की आशा व्यक्त की। सम्राट के भारत आगमन से कुछ ही समय पूर्व १६ मार्च १९११ को गोपाल कृष्ण गोखले ने केन्द्रीय धारा सभा में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत किया, परन्तु मार्च १९१२ को विधेयक को गिरा दिया गया और गोखले को पराजय स्वीकार करनी पड़ी।

इस समय भारत-सरकार बड़े धर्म-संकट में थी। एक ओर तो उसे सम्राट द्वारा ५० लाख रुपया प्राथमिक शिक्षा के विकास पर व्यय करने का आदेश दिया गया था। दूसरी ओर इस आदेश के कुछ समय उपरान्त ही सरकार ने गोखले के अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विधेयक का विरोध करके उसे गिरा दिया था। ऐसी स्थिति में सरकार के लिये यह आवश्यक हो गया कि वह गोखले के विधेयक का विरोध करने का कुछ कारण दे और साथ ही अपनी शिक्षा-नीति की स्पष्ट व्याख्या करे। यह कार्य १९१३ में 'शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव' को प्रकाशित करके किया गया।

शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव

इस प्रस्ताव में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक सिफारिशें तथा आदेश दिये गये। इनका विस्तृत वर्णन पहिले किया जा चुका है। इस प्रस्ताव के सूक्ष्म अध्ययन से विदित होता है कि सरकार का ध्यान प्राथमिक विद्यालयों की संख्यात्यक वृद्धि की अपेक्षाकृत गुणात्मक उन्नति की ओर अधिक था। वस्तुतः प्रस्ताव में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कोई नया सुझाव नहीं दिया गया। अतः प्राथमिक शिक्षा में कोई प्रगति दृष्टिगोचर नहीं हुई। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि प्रस्ताव के सुझावों के परिणाम-स्वरूप १९१७ के अन्त तक संयुक्त प्रान्त, बिहार, आसाम, पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रान्तों में ज़िला परिषदों और स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्राथमिक स्कूलों का निर्माण किया गया। किन्तु इस प्रकार के विद्यालयों की स्थापना बंगाल, उड़ीसा और मद्रास में न हो सकी। कारण यह था कि वहाँ व्यक्तिगत रूप से स्थापित किये गये विद्यालयों का ज़ोर था। बंगाल सरकार ने पंचायती आदर्श स्कूलों की एक योजना बनाई। इसके अनुसार लगभग १०.४ वर्ग मील में एक आदर्श प्राइमरी स्कूल स्थापित किया गया। यद्यपि इन स्कूलों का निर्माण सरकार द्वारा किया गया था, परन्तु इनका कार्य-भार ज़िला परिषदों को सौंप दिया गया था।[1]

इन प्रयासों के बावजूद परिणाम अच्छे नहीं निकले। १९१७ तक विद्यालयों को जाने योग्य बालकों में से केवल $\frac{1}{5}$ प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा पारहे थे और लगभग ८·३ वर्ग मील के क्षेत्रफल में बालकों का एक प्रारम्भिक स्कूल था।[2]

प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के प्रयास (१९१७–२१)

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में राजनीतिक एवं सामाजिक जागृति की लहर देश के कोने-कोने में फैल चुकी थी। राष्ट्रीय चेतना ने भारतीयों के हृदय में आकुलता का समावेश कर दिया था। वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो चुके थे। अन्य अधिकारों के साथ-साथ उन्होंने विदेशी सरकार से शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार की बलपूर्वक शब्दों में माँग की। देश भक्त नेताओं ने शिक्षा के प्रसार एवं प्रचार के लिये तन-मन से आन्दोलन करना प्रारम्भ किया। इनमें सर्वश्रेष्ठ स्थान गोपाल कृष्ण गोखले को प्राप्त है। उन्होंने

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 213.
2. *Ibid*, p. 214.

१९१० में केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य के रूप में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य तथा निःशुल्क बनाने के लिये आकाश-पाताल एक कर दिया। परन्तु उनसे भी पूर्व भारत के एक देशी राज्य के उदार एवं बुद्धिमान शासक इस दिशा में सक्रिय एवं सफल प्रयास कर चुके थे। वे थे बड़ौदा नरेश, महाराज सायाजीराव गायकवाड़।

बड़ौदा नरेश का प्रथम प्रयास

महाराज सायाजीराव गायकवाड़ को अपनी प्रजा की शिक्षा में बहुत रुचि थी। अतः उन्होंने उसके हितार्थ अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का प्रसार करने का संकल्प किया। परन्तु बड़ौदा में शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई दशा में थी। अतः सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् उन्होंने अपने राज्य के विभिन्न भागों में प्राथमिक विद्यालयों के निर्माण की आज्ञा दी। १८९१ में इन स्कूलों की संख्या ५५८ हो गई, जबकि १८८१ में इनकी संख्या १८० थी।

मार्च १८९२ में उन्होंने एक रचनात्मक क़दम उठाया। एक राजाज्ञा द्वारा घोषित किया गया कि अमरेली नगर के एक ताल्लुका के ९ ग्रामों में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होगी। ७ से १२ वर्ष की आयु तक के सब बालकों और ७ से १० वर्ष की आयु तक की सब बालिकाओं को प्राथमिक विद्यालयों में अनिवार्य रूप से शिक्षा ग्रहण करनी पड़ेगी। नवम्बर, १८९३ में अनिवार्य शिक्षा का यह कार्य प्रारम्भ किया गया और इसमें इतनी आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई कि उपरोक्त ताल्लुका के ५२ ग्रामों में शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। अमरेली में १५ वर्ष तक किये जाने वाले इस नवीन प्रयोग ने सिद्ध कर दिया कि सम्पूर्ण बड़ौदा राज्य के लिये प्राथमिक शिक्षा का अनिवार्य किया जाना उपयुक्त और वांछनीय होगा। अतः १९०६ में एक अधिनियम बना कर राज्य के सभी बच्चों के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।[1]

गोखले का प्रयास

राष्ट्रीय भावनाओं से सरावोर शिक्षा के मर्मज्ञ गोपाल कृष्ण गोखले बड़ौदा-नरेश के उत्कृष्ट उदाहरण से अनुप्राणित हुए। उन्होंने विचार किया कि जिस कार्य को आय के सीमित साधनों वाला छोटासा देशी राज्य सफलतापूर्वक कर चुका है, उस कार्य को ब्रिटिश भारत में भी, जिसके पास धन का अभाव नहीं है, अवश्य सम्पादित किया जा सकता है। अतः उन्होंने भारत-सरकार को इस दिशा में क्रियाशील करने का दृढ़ निश्चय किया।

गोखले का प्रस्ताव—केन्द्रीय धारा-सभा (Imperial Legislative

1. *The Gazetteer of the Baroda State*, pp. 310-2.

Council) के सदस्य के रूप में १९ मार्च १९१० को गोखले ने यह प्रस्ताव (Resolution) रखा :—"यह सभा सिफ़ारिश करती है कि सम्पूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जाय और इस सम्बन्ध में निश्चित प्रस्तावों को उपस्थित करने के लिये सरकारी और ग़ैर-सरकारी अधिकारियों का एक संयुक्त आयोग शीघ्र ही नियुक्त किया जाय।"[1]

इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने का प्रमुख कारण यह था कि भारत में प्राथमिक शिक्षा की दयनीय दशा देख कर गोखले का हृदय द्रवित हो गया था। उनका विश्वास था : "यह बात स्पष्ट है कि एक अशिक्षित तथा अज्ञान जाति कदापि वास्तविक उन्नति नहीं कर सकती है और जीवन की दौड़ में अवश्य पीछे रह जायगी।" तत्कालीन प्राथमिक विद्यालय जनता की शिक्षा की माँग की पूर्ति करने में पूर्णतः असमर्थ थे। उस समय देश में केवल ६ प्रतिशत साक्षरता थी और प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने योग्य बच्चों में से केवल २३·८ प्रतिशत बालक एवं २·७ प्रतिशत बालिकायें इस शिक्षा से लाभ उठा रहे थे। अतः गोखले ने प्रस्ताव में निम्नांकित सुझाव दिये :—

१. जिन क्षेत्रों में ३३ प्रतिशत बालक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, उनमें ६ से १० वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य कर दी जाय।
२. इस शिक्षा का व्यय स्थानीय संस्थायें और सरकार १ : २ के अनुपात में वहन करें।
३. प्राथमिक शिक्षा की देख-भाल के लिये एक मन्त्री की नियुक्ति की जाय।
४. बजट में प्रतिवर्ष शिक्षा की प्रगति का स्पष्ट वर्णन किया जाय।
५. केन्द्र में प्राथमिक शिक्षा के लिये एक पृथक् विभाग स्थापित किया जाय, जो प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिये एक योजना बनाये।

1. "That this Council recommends that a beginning should be made in the direction of making elementary education free and compulsory throughout the country, and that a mixed commission of officials and non-officials be appointed at an early date to frame definite proposals." *Gokhale's Speeches*, p. 609.
2. "It is obvious that an illiterate and ignorant nation can never make any solid progress and must fall back in the race of life." *Ibid*, p. 659.

सरकार द्वारा प्रस्ताव पर विचार करने का आश्वासन प्राप्त होने पर गोखले ने उसे वापिस ले लिया। सरकार ने १९१० में केन्द्र के अधीन एक शिक्षा-विभाग स्थापित कर दिया, मंत्री की नियुक्ति कर दी और प्रतिवर्ष शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रकाशित करने लगी। परन्तु प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क तथा अनिवार्य बनाने के लिये कुछ नहीं किया। गोखले और जनता को सरकार से बड़ी बड़ी आशायें थीं, परन्तु वे पूर्ण न हुईं।

गोखले का विधेयक—प्राथमिक शिक्षा के प्रति सरकार की उदासीनता देखकर गोखले ने १६ मार्च १९११ को केन्द्रीय धारा सभा में प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी अपना विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया। "इस विधेयक का उद्देश्य देश की प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली में अनिवार्यता के सिद्धान्त को क्रमशः लागू करना था।"[1] यह विधेयक गोखले के प्रस्ताव पर आधारित था और उसकी मुख्य-मुख्य बातें अधोलिखित थीं :—

१. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियम को उन स्थानीय बोर्डों के क्षेत्रों में लागू किया जाय जहाँ के बच्चों का एक निश्चित प्रतिशत प्रारम्भिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहा है। इस प्रतिशत को निश्चित करने का अधिकार गर्वनर-जनरल की परिषद् को होगा।

२. स्थानीय बोर्ड सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करके इस अधिनियम को लागू कर सकते हैं।

३. प्राथमिक शिक्षा के व्यय के लिये स्थानीय बोर्ड शिक्षा-कर (Educational Cess) लगा सकते हैं।

४. अभिभावकों के लिये ६ से १० वर्ष तक की आयु के बालकों को प्राथमिक विद्यालयों में भेजना अनिवार्य हो। यदि वे इस नियम का उल्लंघन करें, तो उन्हें दण्ड दिया जाय।

५. कालान्तर में बालिकाओं के लिये भी प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय।

६. जिस अभिभावक की आय १० रुपये मासिक से कम हो, उससे शिक्षा-शुल्क न लिया जाय।

७. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का व्यय-भार स्थानीय बोर्डों और सरकार द्वारा वहन किया जाय। सरकार सम्पूर्ण व्यय का ⅔ भाग दे।[2]

---

1. "The object of this Bill is to provide for the gradual introduction of the principle of compulsion into the elementary education system of the country."
2. *Gokhale's Speeches*, pp. 619.

उपरिकथित सुझावों को देखने से ज्ञात होता है कि गोखले का विधेयक अत्यन्त साधारण था। इसको प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अति विनम्र भाव से गवर्नर-जनरल को सम्बोधित करते हुए कहा : "श्रीमान् जी, सारांश में मेरा विधेयक यह है। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का श्रीगणेश करने का यह लघु और तुच्छ प्रयास है।"[1]

विधेयक को जन-मत संग्रह के लिये स्थानीय सरकारों, विश्वविद्यालयों एवं कुछ व्यक्तिगत संस्थाओं के पास भेजा गया। १७ मार्च १९१२ को धारा-सभा में विधेयक पर वाद-विवाद प्रारम्भ हुआ। दो दिन के भीषण संघर्ष के पश्चात् १९ मार्च १९१२ को इसे १३ वोटों के विरुद्ध ३८ वोटों से गिरा दिया गया। दुख की बात यह है कि सरकारी सदस्यों ने तो इसके विपक्ष में मत प्रदान किया ही, परन्तु उनके साथ-साथ ज़मीदार सदस्यों ने भी अपने गोरे शासकों को प्रसन्न करने के लिये ऐसा ही किया। इस प्रकार भारत के कतिपय व्यक्तियों की स्वार्थ-सिद्धि इस देश की जन-शिक्षा में बाधक हुई।

सरकारी वक्ता की हैसियत से सर हारकोर्ट बटकर (Harcourt Butler) ने गोखले के प्रस्तावित अधिनियम का विरोध करते हुए कहा कि स्वयं जनता इस प्रकार की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिये अभी तैयार नहीं है। यही कारण है कि उसने कभी ऐसी शिक्षा की मांग नहीं की। अतः अनिवार्यता का प्रश्न ही नहीं उठता। गोखले ने इन सभी तर्कों के अकाट्य उत्तर दिये, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। सरकार ने विधेयक को असामयिक कह कर ठुकरा दिया।

गोखले प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की चेष्टा में असफल हुए। परन्तु उनकी असफलता में सफलता निहित थी। यद्यपि वे सरकार को प्राथमिक शिक्षा की दिशा में क्रियाशील न कर सके तथापि उन्होंने जनता के समक्ष एक नवीन योजना प्रस्तुत की। सभी राजनीतिक दलों ने इसका समर्थन किया और सभी क्षेत्रों में इसने हलचल मचा दी।

बम्बई प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम[2] (१९१८)

गोखले के कार्य से प्रेरणा प्राप्त करके भारत के एक अन्य महान् नेता, विट्ठलभाई पटेल ने बम्बई की प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा में एक विधेयक

1. "This, my Lord, is briefly the whole of my Bill. It is a small and humble attempt to suggest the first steps of a journey." *Ibid.*
2. The Bombay Primary Education Act, 1918.

प्रस्तुत किया। इसका उद्देश्य प्रान्त में नगरपालिका-क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाना था। विधेयक ने १९१८ में 'बम्बई प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' का रूप धारण किया। इसको 'पटेल-अधिनियम' (Patel Act) भी कहा जाता है। इसकी प्रमुख धारायें निम्नलिखित हैं :—

१. बम्बई के अतिरिक्त अन्य सभी नगरपालिका-क्षेत्रों में अधिनियम लागू होगा।

२. ७ वर्ष की आयु से ११ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होगी।

३. प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क भी होगी।

४. नगरपालिका-क्षेत्रों में निवास करने वाले प्रत्येक अभिभावक को अपने बच्चों को मान्यता प्राप्त प्राथमिक विद्यालय में भेजना पड़ेगा। यदि कोई अभिभावक इस नियम का उल्लंघन करेगा तो उसे ५ रुपये धन-दण्ड देना होगा।

५. जो व्यक्ति अनिवार्य शिक्षा से लाभ उठा सकने वाले बच्चों को नौकर रखेगा, उसे २५ रुपये धन-दण्ड देना पड़ेगा।

६. अनिवार्य शिक्षा के कारण होने वाले अधिक व्यय की पूर्ति के लिये नगर-पालिकाओं को पुराने करों को बढ़ाने और नये करों को लगाने का अधिकार होगा।

७. अनिवार्य शिक्षा के लिये सरकार अधिक सहायता-अनुदान देने के लिये बाध्य नहीं होगी। परन्तु सरकार स्वेच्छा से व्यय का कुछ भाग दे सकती है।

८. यह नगरपालिकाओं की इच्छा पर निर्भर होगा कि वे बालकों और बालिकाओं दोनों के लिये या इनमें से किसी एक के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करें।

पटेल-अधिनियम में सरकार के ऊपर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का दायित्व नहीं रखा गया। इतने बड़े प्रान्त में इस शिक्षा के व्यय के लिये निश्चित साधनों का भी स्पष्टीकरण नहीं किया गया। परन्तु इन दोषों के होते हुए भी इस अधिनियम ने प्राथमिक शिक्षा के इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ किया। ब्रिटिश भारत में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य तथा निःशुल्क बनाने का यह प्रथम सफल प्रयास था। इस सुन्दर उदाहरण का अन्य प्रान्तों में अनुकरण किया गया और वहाँ भी अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी अधिनियम पारित किये गये।

पंजाब—पंजाब में १९११ में प्राथमिक शिक्षा अधिनियम (Primary

Education Act) पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार नागरिक तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बालकों के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

संयुक्त प्रान्त—यहाँ १९१९ में 'प्राथमिक शिक्षा अधिनियम' बना। इसके अनुसार नगरपालिका क्षेत्रों में बालकों तथा बालिकाओं के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया।

बङ्गाल—इस प्रान्त में १९१९ के 'प्राथमिक शिक्षा अधिनियम' के द्वारा नगरपालिका-क्षेत्रों में बालकों के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। १९३२ में इस अधिनियम में संशोधन करके बालिकाओं को भी इस शिक्षा का लाभ दिया गया।

बिहार व उड़ीसा—यहाँ १९१९ में 'प्राथमिक शिक्षा अधिनियम' पास करके नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्रों में बालकों के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य किया गया।

बम्बई—'पटेल-अधिनियम' बम्बई के अतिरिक्त अन्य सभी नगरपालिका-क्षेत्रों के लिये था। अतः १९२० में 'बम्बई नगर के लिये प्राथमिक शिक्षा अधिनियम' (City of Bombay Primary Education Act) बनाया गया। इसके द्वारा बम्बई नगर के बालकों तथा बालिकाओं के लिये अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई।

मध्यप्रान्त—इस प्रान्त में नागरिक और ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों एवं बालिकाओं के लिये १९२० में अनिवार्य 'प्राथमिक शिक्षा अधिनियम' पारित किया गया।

मद्रास—यहाँ १९२० में 'प्रारम्भिक शिक्षा अधिनियम' (Elementary Education Act) पास किया गया। इसके अनुसार नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्रों में बालकों और बालिकाओं के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया गया।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत के सभी बड़े प्रान्तों में अधिनियम बना कर प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। दो वर्ष की अवधि में सात प्रान्तों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियम का पारित होना इस बात का प्रतीक है कि भारतीय, शिक्षा के महत्व को समझ चुके थे और इसके विस्तार के लिये क्रियाशील हो गये थे। लगभग ४० वर्ष के अविराम संघर्ष के उपरान्त उन्होंने सरकार को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का सिद्धान्त स्वीकार करने के लिये बाध्य किया। अपने महान् कार्य के लिये इस काल के नेता हमारी प्रशंसा के पात्र हैं।

प्राथमिक शिक्षा की स्थिति (१९०५-१९२१)

हम इसी अध्याय में 'प्राथमिक शिक्षा (१९०५-१७)' के शीर्षक के अन्तर्गत उल्लेख कर चुके हैं कि १९११ तक प्राथमिक शिक्षा की प्रगति अबाध गति से हुई। परन्तु उसके उपरान्त इसमें शैथिल्य आ गया। इसके दो प्रमुख कारण थे :—

१. प्राथमिक शिक्षा का अनिवार्य न होना।
२. सरकारी अधिकारियों द्वारा प्राथमिक शिक्षा की संख्यात्मक वृद्धि की अपेक्षा गुणात्मक उन्नति पर अधिक बल दिया जाना।

प्राथमिक शिक्षा की संख्यात्मक वृद्धि

"१८८२ से १८९२ तक भारत में पांच वर्ष और उससे अधिक आयु के पुरुषों की साक्षरता में १·४ प्रतिशत (१३ प्रतिशत से १४·४ प्रतिशत) और स्त्रियों की साक्षारता में १·३ प्रतिशत (·७ प्रतिशत से २ प्रतिशत) वृद्धि हुई। १९२१ में पुरुषों और स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत केवल ७·२ था। प्राथमिक शिक्षा की प्रगति अत्याधिक मन्द रही है।"[1]

प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है सरकार ने प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक वृद्धि पर बहुत ज़ोर दिया और इस दिशा में निम्नलिखित कार्य किये :—

अध्यापक-प्रशिक्षण—भारतीय शिक्षा-आयोग की सिफ़ारिश के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। फलतः राजकीय प्रशिक्षण विद्यालय निर्मित किये गये और ग़ैर-सरकारी शिक्षण संस्थाओं को उदारता-पूर्वक आर्थिक सहायता दी गई। १९२१ में भारत में (बर्मा को सम्मिलित करके) ९२६ प्रशिक्षण विद्यालय पुरुषों के लिये और १४६ स्त्रियों के लिये थे। इनमें क्रमशः २२,७७४ और ४,१५७ व्यक्तियों को दीक्षित किया जा रहा था। इस वर्ष प्राथमिक विद्यालयों में १८१,२८६ अध्यापक कार्य कर रहे थे, जिनमें से ६७,६१३ दीक्षित और शेष अदीक्षित थे।

अध्यापकों का वेतन—अध्यापकों के वेतन-वृद्धि के सम्बन्ध में कुछ प्रान्तों में उदारता की नीति का अनुसरण किया गया। इस कार्य में बम्बई अग्रणी रहा। वहाँ १९०१-०२ में अध्यापकों का वेतन लगभग ८ रुपया

1. *Report of the Hartog Committee*, p. 45.

मासिक था। १९२१-२२ में इसे बढ़ा कर ३३ रुपये कर दिया गया। पंजाब और मध्य प्रान्त में भी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की गई, परंतु वह बम्बई से कम थी। बंगाल, बिहार और मद्रास में इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया गया। उदाहरणतः बंगाल में शिक्षकों का औसत मासिक वेतन ८ रुपये था।

पाठ्यक्रम—इस अवधि की एक विशेषता यह है कि समय-समय पर प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम को दोहरा कर उसमें अधिक विषयों को स्थान दिया गया और इस प्रकार पाठ्य-क्रम को जटिल बना दिया गया और अधिकांश प्रान्तों में पाठ्य-क्रम में प्रकृति अध्ययन और बाग़बानी को सम्मिलित कर दिया गया।

भवन और शिक्षण-सामग्री—इस काल में प्राथमिक विद्यालयों के भवनों और उनकी शिक्षण-सामग्री में सुधार करने की चेष्टा की गई। परन्तु जिस तीव्रता से प्राथमिक शिक्षा का विस्तार हो रहा था, उस अनुपात में इन कार्यों को नहीं किया गया। फलस्वरूप समग्र रूप में विद्यालयों के भवन और उनकी शिक्षण-सामग्री को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है।

समीक्षा

यद्यपि इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिये उपरिकथित कार्य किये गये तथापि उनके परिणाम सुन्दर न निकले। वस्तुतः प्राथमिक शिक्षा की यथार्थ उन्नति नहीं हुई और न शिक्षण का स्तर ही ऊँचा उठा। कारण यह था कि अदीक्षित अध्यापकों की संख्या प्रशिक्षित शिक्षकों से कहीं अधिक थी। पाठ्य-क्रम जटिल था और नागरिक तथा ग्रामीण क्षेत्रों के पाठ्य-क्रमों में कोई विशेष अन्तर नही था। विद्यालयों के लिये उपयुक्त भवनों तथा शिक्षण-सामग्री का अभाव था। कुछ प्रान्तों में शिक्षकों के वेतन में वृद्धि अवश्य कर दी गई थी, परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् वस्तुओं के मूल्य इतने अधिक हो गये थे कि अधिक वेतन प्राप्त होने पर भी शिक्षकों को अपने जीवन का निर्वाह करना अत्यन्त कठिन था। जिन प्रान्तों में उनके वेतन में वृद्धि नहीं की गई थी, वहाँ तो उनकी दशा अत्यन्त करुणाजनक थी। अतः यह कहना उपयुक्त ही होगा कि इस काल में प्राथमिक शिक्षा की न तो संख्यात्मक वृद्धि हुई और न गुणात्मक उन्नति।

स्त्रियों की शिक्षा (१९०५–१९२१)

भारत में स्त्री-शिक्षा की सदैव उपेक्षा की गई है। कॉटन (Cotton) का कथन था कि स्त्री-शिक्षा की अप्रगतिशील अवस्था इस देश की शिक्षा-प्रणाली

को कलंकित कर रही है।[1] कर्ज़न ने स्वीकार किया था कि भारत में स्त्री-शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई दशा में है। उसके समय में सम्पूर्ण भारत में केवल ४२५,००० लड़कियाँ विभिन्न प्रकार के स्कूलों में शिक्षा-ग्रहण कर रही थीं। इनमें से लगभग $\frac{1}{3}$ ऐंग्लो-इंडियन और भारतीय ईसाई थीं। कर्ज़न ने स्त्री-शिक्षा का प्रोत्साहित करने का निश्चय किया, परन्तु भारतीयों की रूढ़िवादिता, पर्दा-प्रथा और बाल-विवाह-प्रथा की कठिनाइयाँ उसके समक्ष आईं। अतः उसने बालिकाओं के लिये कुछ आदर्श विद्यालयों की स्थापना और उनमें सुयोग्य अध्यापिकाओं की नियुक्ति करके स्त्री-शिक्षा को विस्तृत करने का मार्ग अपनाया। इन कार्यों के परिणाम संतोषजनक न निकले और स्त्री-शिक्षा अपनी पूर्व स्थिति में ही रही।

शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (१९१३)

'शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव' में स्त्री-शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया। इसमें स्वीकार किया गया कि भारतीयों की सामाजिक प्रथायें स्त्रियों की शिक्षा में अवरोध डालती हैं। समाज के इन बंधनों को तिरस्कृत करके स्त्री-शिक्षा का प्रसार किया जाना सम्भव नहीं है। अतः प्रान्तीय सरकारों को लिखा गया कि वे स्थानीय सामाजिक परिस्थितियों को अपने दृष्टिकोण में रख-कर स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये अपनी योजनायें भेजें। इसके साथ ही 'सरकारी प्रस्ताव' में स्त्री-शिक्षा के विकास के लिये निम्नांकित सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किये गये :—

१. लड़कियों को जीवनोपयोगी शिक्षा दी जाय और वह ऐसी हो जिससे बालिकायें सामाजिक जीवन में अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकें।
२. बालिकाओं को बालकों से भिन्न शिक्षा दी जाय और इसमें परीक्षाओं को कोई महत्व न दिया जाय।
३. बालिकाओं की शिक्षा में स्वास्थ्य विज्ञान को विशेष स्थान दिया जाय और स्थानीय सामाजिक वातावरण को ध्यान में रखा जाय।
४. बालिका-विद्यालयों में शिक्षण तथा निरीक्षण का कार्य करने के लिये स्त्रियाँ ही नियुक्त की जायँ।
५. योग्य भारतीय अध्यापिकाओं के अभाव में यह वांछनीय होगा कि भारत में जो विदेशी स्त्रियाँ निवास कर रही हैं, उनको शिक्षा के कार्य के लिये प्रशिक्षित किया जाय।

---

1. "The most conspicuous blot on the educational system of India."

इस नवीन शिक्षा-नीति के फलस्वरूप लड़कियों की शिक्षा को प्रेरणा मिली और उसके प्रत्येक स्तर पर प्रगति के चिह्न दिखाई देने लगे। हम इन विभिन्न स्तरों की ओर नीचे संकेत कर रहे हैं :—

उच्च शिक्षा—इस अवधि में उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में चार बातें उल्लेखनीय हैं। प्रथम, कॉलेजों में शिक्षा ग्रहण करने वाली छात्राओं की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई। १९२१ में १,२८३ लड़कियाँ कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त कर रही थीं, जब कि १९०२ और १८८२ में उनकी संख्या क्रमशः १७७ और ६ थी। द्वितीय, हिन्दू लड़कियाँ अधिक संख्या में कॉलेजों में प्रवेश करने लगीं और मुस्लिम लड़कियों ने भी उच्च शिक्षा से लाभ उठाना प्रारम्भ किया। आर्ट्स कॉलेजों में पढ़ने वाली १,२६३ लड़कियों में से ३९८ हिन्दू और २५ मुसलमान थीं। तृतीय, लड़कियों ने परीक्षाओं में अपनी अपूर्व बुद्धि का परिचय दिया और वे लड़कों से किसी प्रकार पीछे नहीं रहीं। चतुर्थ, १९१६ में पूना में 'एस० एन० डी० टी० इंडियन वीमेन्स यूनिवर्सिटी' की स्थापना की गई। इसका श्रेय भारत के सुविख्यात समाज-सेवक महर्षि अन्नासाहब कार्वे को है। उन्होंने अनुभव किया कि स्त्रियों तथा पुरुषों के लिये पाठ्य-क्रम तो भिन्न होना ही चाहिये, साथ ही स्त्रियों के निमित्त ऐसा पाठ्य-क्रम होना चाहिये जो उनके जीवन-कर्त्तव्य के अनुकूल हो। अतः इस विद्यालय का उद्देश्य स्त्रियों को 'सुमाता' तथा 'सुगृहिणी' बनने की शिक्षा प्रदान करना था।

माध्यमिक शिक्षा—इस काल में स्त्रियों की माध्यमिक शिक्षा में प्रशंसनीय उन्नति हुई। १९२१ में हाई स्कूलों और मिडिल स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियों की संख्या क्रमशः ३६,६९८ और ९२,४६६ थी, जब कि १९०१ में यह संख्या क्रमशः ९,२७४ और ३२,३०८ थी। माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियों की संख्या में वृद्धि होने के चार मुख्य कारण थे। प्रथम, प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाली बालिकाओं की संख्या में वृद्धि हो गई थी। उनमें से अनेकों माध्यमिक शिक्षा की इच्छा रखती थीं। अतः वे माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश लेने लगीं थीं। द्वितीय, शिक्षा-प्रसार के कारण भारतीयों का दृष्टिकोण बहुत कुछ परिवर्तित हो गया था और वे बाल-विवाह की हानियों से परिचित हो गये थे। ऐसी दशा में अनेकों लड़कियों के लिये माध्यमिक शिक्षा सुलभ हो गई थी। तृतीय, भारतीयों का दृष्टिकोण व्यापक हो गया था और वे स्त्री-शिक्षा के लाभ से अवगत हो गये थे। अन्तिम, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रसार के साथ-साथ लड़कियों को अंग्रेजी शिक्षा देने का विरोध समाप्त होता जा रहा था। भारतीयों को लड़कियों को अंग्रेजी शिक्षा देने के आर्थिक लाभ का अनुभव हो चुका था। ऐसी

लड़कियों के विवाह में कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था और साथ ही विवाह में कम धन भी व्यय करना पड़ता था। अतः अधिकांश अभिभावक अपनी पुत्रियों को अंग्रेज़ी की शिक्षा देने लगे थे।

प्राथमिक शिक्षा—शिक्षा के इस क्षेत्र में सबसे अधिक प्रगति हुई। १९२१ में प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने वाली बालिकाओं की संख्या १,९८,५५० थी, जब कि १९०१ में यह संख्या ३४८,५१० थी। इस काल में शिक्षण-विद्यालयों में में दीक्षा लेने वाली छात्राओं की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। १८८१ में इस प्रकार की छात्राओं की संख्या ५१५, १९०१ में १,४१२ और १९२१ में ४,३९१ थी। बंगाल में स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये १९०७ में 'स्त्री-शिक्षा-समिति' की स्थापना की गई। पर्दानशीन स्त्रियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया।

व्यावसायिक शिक्षा—इस अवधि में पूर्व के समान स्त्रियों ने व्यावसायिक शिक्षा (Professional Education) में अपनी रुचि व्यक्त नहीं की। अधिकांश लड़कियों ने शिक्षण-विद्यालयों और मेडिकल स्कूलों में ही प्रवेश लिया। इनमें ऐंग्लो-इंडियन और भारतीय-ईसाई छात्राओं की संख्या अधिक थी। स्त्रियों को चिकित्सा-शिक्षा की विशेष सुविधा देने के लिये १९१६ में 'लेडी हार्डिंज कॉलेज' का निर्माण किया गया।

मुसलमानों की शिक्षा (१९०५–१९२१)

भारतीय शिक्षा आयोग ने मुस्लिम-शिक्षा की पिछड़ी हुई दशा पर दुख प्रकट किया था और इसकी ओर सरकार का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया था। सरकार मुसलमानों को शिक्षित कर और इस प्रकार राजकीय पदों के लिये उन्हें हिन्दुओं का प्रतिद्वन्द्वी बना कर अपने राजनीतिक हित की पूर्ति करना चाहती थी। अतः मुसलमानों को शिक्षा की विशेष सुविधायें प्रदान की गईं। फलस्वरूप १९२१ तक मुस्लिम-शिक्षा का अद्‌भुत विस्तार हुआ। हम इस काल की मुस्लिम-शिक्षा के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन नीचे करेंगे।

मुस्लिम छात्र—१९२१ में भारत की विभिन्न शिक्षा-संस्थाओं में मुसलमानों की संख्या १,७५९, ९६१ थी। इनमें १,४६१,५३८ लड़के और २९८,४२३ लड़कियाँ थीं।

मुस्लिम शिक्षा की विशेषतायें—इस काल की मुस्लिम शिक्षा की चार प्रमुख विशेषतायें थीं :—(१) मुसलमान छात्रों की संख्या लगभग उतनी ही थी, जितनी कि अन्य जातियों के छात्रों की ; (२) जिन प्रान्तों में मुसल-

मात्र अल्प संख्या में थे, वहाँ उनकी शिक्षा में आश्चर्यजनक प्रगति हुई थी ; (३) मुस्लिम स्त्रियाँ भी उच्च एवं व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने लगीं थी ; और (४) माध्यमिक स्कूलों एवं कॉलेजों में अन्य जातियों की अपेक्षाकृत मुस्लिम छात्रों की संख्या कम थी।

विशिष्ट एवं पृथक स्कूल—अधिकांश मुस्लिम छात्र सार्वजनिक शिक्षालयों में पढ़ते थे। परन्तु वे उनसे संतुष्ट नहीं थे, क्योंकि उनमें धार्मिक शिक्षा एवं मुस्लिम अध्यापकों का अभाव था, अरबी और फारसी के अध्ययन की सुविधा नहीं थी और शिक्षा का माध्यम उर्दू नहीं था। अतः मुसलमानों ने विशिष्ट तथा पृथक् स्कूलों की माँग की, जिसे सरकार ने पूर्ण किया। इस काल के मुस्लिम स्कूलों को तीन स्पष्ट समूहों में विभाजित किया जा सकता है :—

१. प्रथम समूह में **मकतब, मुल्ला और कुरान स्कूल** थे। इनमें प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाती थी।
२. द्वितीय समूह में **मदरसे** थे, जिनमें उर्दू, अरबी और फ़ारसी की शिक्षा दी जाती थी।
३. तृतीय समूह में आधुनिक ढंग के स्कूल और कॉलेज थे। इनमें उर्दू, अरबी और फ़ारसी के साथ-साथ अंग्रेज़ी की भी शिक्षा दी जाती थी।

एक टिप्पणी

मुसलमानों की शिक्षा के लिये विशिष्ट एवं पृथक् स्कूलों की स्थापना का सिद्धान्त आधारभूत रूप में ग़लत था। इस प्रकार के स्कूलों का निर्माण करके मुसलमान छात्रों को छोटी आयु से ही अन्य जातियों के छात्रों से पृथक् कर दिया जाता था। इसके बड़े भयंकर परिणाम निकले। अल्प आयु ही में मुस्लिम छात्रों के अपरिपक्व मस्तिष्क में साम्प्रदायिकता की विषाक्त भावना अंकुरित होने लगती थी और वे हिन्दुओं तथा अन्य जातियों को अपने से पृथक् समझने लगते थे। जिस साम्प्रदायिकता का बीज-वपन इस काल में किया गया, उसका उग्रतम रूप १९४७ में देखने को मिला।

हरिजनों की शिक्षा (१९०५-१९२१)

इस अवधि में हरिजनों की शिक्षा में आशातीत प्रगति हुई। हरिजन छात्रों की सबसे अधिक संख्या प्राथमिक विद्यालयों में थी, परन्तु माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा-शालाओं में भी हरिजन छात्र अध्ययन कर रहे थे। १९२१

में भारत के विभिन्न प्रान्तों में हरिजन छात्रों की संख्या निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जाती है :—[1]

प्रान्त	हरिजनों की जनसंख्या (हज़ारों में)	मान्यता प्राप्त विद्यालयों में हरिजन-छात्र
मद्रास	६,५३०	१,५७,११३
बम्बई	१,४६०	३६,५४३
बंगाल	६,६४०	९६,५५२
संयुक्त प्रान्त	७,९८०	३९,८७३
पंजाब	१,७००	३,७३२
बिहार व उड़ीसा	२,५३०	१५,०९६
मध्य प्रान्त	३,०१०	२८,९१९

इस काल में हरिजनों की शिक्षा की प्रगति के कुछ विशेष कारण थे, जिन पर हम नीचे प्रकाश डाल रहे हैं :—

(१) **राजकीय प्रयास**—हरिजनों की शिक्षा को सरकार से विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सरकार ने विविध विधियों द्वारा हरिजनों को शिक्षा ग्रहण करने लिये आकर्षित किया, यथा—(१) निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था ; (२) छात्रवृत्तियाँ तथा अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता ; (३) छात्रावासों का प्रबन्ध ; (४) हरिजनों को शिक्षा देने वाले विद्यालयों को उदार सहायता-अनुदान और (५) हरिजन शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था।

(२) **व्यक्तिगत प्रयास**—इस अवधि में सवर्ण हिंदुओं में जागृति प्रारम्भ हो गई थी और उन्होंने भारतीय समाज पर लगी अस्पृश्यता की कलङ्क-कालिमा को धो डालने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। आर्य-समाज, ब्रह्म समाज और प्रार्थना-समाज पहले से ही अछूतोद्धार के पुनीत कार्य में अपनी सेवाओं को अर्पित कर चुके थे। गोपाल कृष्ण गोखले ने अस्पृश्यता को समूल नष्ट करने के लिये १९०५ में 'भारत सेवक समाज' (Servants of India Society) की स्थापना की थी और वह सराहनीय कार्य कर रहा था। १९१४ में अमृतलाल ठक्कर ने इस 'समाज' के सदस्य बनकर हरिजनोद्धार के कार्य में अपने जीवन के शेष वर्ष व्यतीत किये। हरिजनों के उत्थान के लिये १९०६ में विट्ठलराम जी शिंदे ने पूना में 'दलित वर्ग उद्धार सभा' (Depressed Class Mission) स्थापित की। हरिजनोद्धार के कार्य में सबसे अधिक योग महात्मा गाँधी ने दिया। उन्होंने

1. *Report of the Hartog Committee*, p. 218.

अपने लेख द्वारा जनता का ध्यान हरिजनों की पतित दशा की ओर आकर्षित किया। उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने अपने कार्य-क्रम में हरिजन-समाज-सुधार को प्रमुख स्थान दिया। कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने १९२२ में बारदौली में हरिजनों की सामाजिक स्थिति में सुधार करने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया। उसमें कहा गया कि हरिजनों के सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये संगठित रूप में प्रयत्न किया जाय, उनको मानसिक तथा नैतिक उन्नति करने में सहायता दी जाय, उनको अपने बच्चों को शिक्षा देने का लाभ बताया जाय और उनके लिये नागरिकों को प्राप्त होने वाली प्रत्येक सुविधा प्रदान की जाय।

उपरिकथित समाज-सेवकों तथा संस्थाओं के अतिरिक्त बड़ौदा और कोल्हापुर के राजाओं ने हरिजनों के सामाजिक उत्थान के लिये भागीरथ प्रयास किये। बड़ौदा-नरेश, सायाजीराव गायकवाड़ ने १८८३ में हरिजनों के लिये १८ विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना की। उन्होंने हरिजन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देकर, उनके लिये छात्रावासों का निर्माण कर और उन्हें आर्थिक सहायता देकर शिक्षा ग्रहण करने के लिये प्रोत्साहन दिया। हरिजनों के नेता डा० अम्बेदकर को बड़ौदा नरेश ने अपने व्यय से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये अमेरिका भेजा और अपने राज्य में उच्च पद पर नियुक्त किया। कोल्हापुर-नरेश शाहू क्षत्रपति ने अपने राज्य के सभी विद्यालयों के द्वार हरिजनों के लिये खोल दिये और शिक्षित हरिजनों की राज-पद पर नियुक्तियाँ कीं।

(३) **हरिजनों के प्रयास**—उपरोक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप हरिजन अपने राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूक हुए। कुछ समय से शिक्षा प्राप्त करने के कारण वे इसके लाभ को पूर्णतः समझ लगे थे। उनमें ज्ञान पिपासा की वृद्धि हुई और वे शिक्षा प्राप्त करने के अपने अधिकार की मांग करने लगे। इस कार्य में उन्हें अपने नेताओं डा० बी० आर० अम्बेदकर और एम० सी० राजा से विशेष सहायता प्राप्त हुई। उनके नेतृत्व में हरिजनों ने भारत के नागरिक के रूप में अन्य व्यक्तियों को प्राप्त सभी अधिकारों के लिये आन्दोलन प्रारम्भ किया। वस्तुतः हरिजनों की जागृति ही ने उनके शिक्षा-कार्य को आगे बढ़ाया।

एक टिप्पणी

हरिजन आन्दोलन से प्रभावित होकर प्रान्तीय सरकारों ने हरिजन छात्रों को शिक्षा ग्रहण करने के लिये सभी सुविधायें प्रदान कीं। मद्रास सरकार ने

१९१९, १९२० और १९२२ में आदेश देकर सभी सार्वजनिक विद्यालयों के द्वार दलित वर्ग के विद्यार्थियों के लिये खोल दिये। मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त और बम्बई में भी इसी नीति का अनुसरण किया गया। केन्द्रीय सरकार के एक आदेश द्वारा उन विद्यालयों का सहायता-अनुदान कम करने की आज्ञा दी गई, जो हरिजन छात्रों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगायें। फलस्वरूप हरिजनों की शिक्षा की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।

आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा

पूर्व के समान इस काल में भी आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा का विस्तार नहीं हुआ। इन जातियों की शिक्षा की व्यवस्था मुख्य रूप से मिशनरियों के हाथ में ही रही। सरकार ने भी इस दिशा में कुछ प्रयास किये और थोड़े से मिशन स्कूलों का संचालन स्वयं करने लगी।

अपराधी जातियों[1] की शिक्षा

इस काल की एक प्रमुख विशेषता अपराधी जातियों को शिक्षित करना और उन्हें लाभप्रद व्यवसायों में लगाना था। इस दिशा में सरकार का यह सर्व प्रथम प्रयास था। ये जातियाँ खानाबदोश थीं और अपनी उदर-पूर्ति के लिये चोरी करती थीं या दूसरों के पशुओं को चुपचाप ले जाती थीं। मद्रास प्रान्त में इन जातियों के लिए १० बस्तियाँ बनाई गईं। प्रत्येक बस्ती में एक स्कूल था, जिसमें बालकों के लिये शिक्षा अनिवार्य थी। १९२१ में इन विद्यालयों में १,४४३ छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उनको व्यावसायिक शिक्षा देने के विचार से सरकार ने औद्योगिक स्कूलों का भी निर्माण किया। पंजाब में अपराधी जातियों के लिये ३३ स्कूल थे—२० लड़कों के लिये और १३ लड़कियों के लिये। इनमें क्रमशः ७३० लड़के और ४३१ लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। कुछ औद्योगिक स्कूल भी थे जिनकी यौगिक छात्र संख्या ११६ थी। सार्वजनिक प्राथमिक विद्यालयों में १,८५५ विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। बम्बई प्रान्त में अपराधी जातियों की शिक्षा के लिये ३६ स्कूल थे, जिनकी छात्र-संख्या १,४७७ थी। सामान्य और मिशन स्कूलों में इन जातियों के ४,००० विद्यार्थी पढ़ रहे थे।[2]

1. Criminal Tribes.
2. *Quinquennial Review of the Progress of Education in India*, (1917–22) p. 211.

व्यावसायिक शिक्षा (१९०५–१९२१)

इस काल में सामान्य शिक्षा की अपेक्षा व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति बहुत ही कम हुई। इस समय तक जो भी व्यावसायिक शिक्षा-संस्थायें थीं उनका एक मात्र उद्देश्य राजकीय विभागों के लिये भारतीयों को किसी उद्योग या व्यवसाय की शिक्षा देना था। देश की औद्योगिक तथा व्यावसायिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये शिक्षा-संस्थाओं का निर्माण नहीं किया गया। १९२१ में व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जाती है :—

व्यावसायिक शिक्षा संस्थायें	संस्थाओं की संख्या	छात्रों की संख्या
शिक्षण महाविद्यालय	१२	५१९
चिकित्सा-शिक्षा के कॉलेज	७	३,८६३
कानून के कॉलेज	१३	५,८९५
इंजीनियरिंग-कॉलेज	५	८०३
वाणिज्य के कॉलेज	५	४७९
कृषि-कॉलेज	२	३२६
योग	४४	११,८८५

सारांश

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राष्ट्रीय आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत देश के नेताओं ने राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की।

राष्ट्रीय शिक्षा का विकास—यद्यपि राष्ट्रीय शिक्षा की माँग वर्तमान शताब्दी के प्रथम दशक में की गई थी तथापि १९ वीं शती में भी राष्ट्रीय शिक्षा का विचार विद्यमान था। तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली से असंतुष्ट होकर भारतीयों ने व्यक्तिगत रूप से विद्यालयों का निर्माण किया था, जिनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय था। २० वीं शती में राष्ट्रीय आन्दोलन की उग्रता के साथ-साथ भारतीय शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की माँग प्रबल होती गई। गांधी जी ने भारतीय शिक्षा के विदेशी स्वरूप की कटु आलोचना की। राष्ट्रीय शिक्षा को ६ सिद्धान्तों पर आधारित किया गया—(१) भारतीय नियन्त्रण; (२) स्वदेश प्रेम की शिक्षा (३) दास्य अनुकरण का अन्त; (४)पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञानों का अध्ययन; (५) अँग्रेजी के प्रभुत्व का अन्त ; एवं (६) व्यावसायिक शिक्षा पर बल। इन सिद्धान्तों के आधार पर १९०५ से १९११ तक बंगाल में अनेकों

राष्ट्रीय विद्यालयों का निर्माण किया गया। १९११ में बंगाल विभाजन के अन्त के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन का भी अन्त हो गया। १९२० में यह आन्दोलन फिर प्रारम्भ हुआ। फलस्वरूप ४ माह से कम में ही जामिया मिलिया इस्लामिया, बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ आदि का निर्माण हुआ। लगभग सभी प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना हुई।

शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव—१९१३ के इस प्रस्ताव में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के सुधार के लिये अनेकों सुझाव दिये गये। परन्तु प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो जाने के कारण इन सुझावों को कार्यान्वित न किया जा सका। फलस्वरूप भारतीय शिक्षा के विकास के लिये कुछ न किया गया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग—इस आयोग की नियुक्ति १९१७ में की गई। इसका उद्देश्य कलकत्ता विश्वविद्यालय की जाँच करना था, परन्तु इसने भारत के समस्त विश्वविद्यालयों के सुधार के लिये सुझाव दिये। इसी लिये इस आयोग का अत्यधिक महत्व है। आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के दोष बताये और उनको दूर करने के लिये सुझाव दिये। कलकत्ता विश्वविद्यालय के सम्बंध में भी उत्तम सुझाव रखे। आयोग ने भारतीय विश्वविद्यालयों के कार्यों, संगठन तथा आन्तरिक शासन के सम्बन्ध में अनेकों महत्त्वपूर्ण बातें बताईं, जिनके आधार पर उनमें सुधार किया जा सकता था। आयोग ने स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने के लिये कुछ उत्तम सुझाव दिये; यथा—पर्दा स्कूलों की व्यवस्था और अध्यापिका-प्रशिक्षण तथा चिकित्सा-शिक्षा की सुविधा। आयोग ने अध्यापक-प्रशिक्षण, प्रौद्योगिक शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में भी सिफारिशें कीं।

उच्च शिक्षा—१९१६ से १९२१ तक भारत में ७ नये विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ। सरकार ने इनको उदार आर्थिक सहायता दी। फलस्वरूप ये शिक्षण-कार्य में कुशलता प्राप्त करने लगे। १९११ से १९२१ तक ६९ कॉलेजों की स्थापना हुई। सरकार से पर्याप्त सहायता-अनुदान मिलने के कारण इनका शिक्षण-स्तर उच्च हो गया।

माध्यमिक शिक्षा—इस काल में माध्यमिक शिक्षा की आशातीत प्रगति हुई। १९२१ में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या ५,१२४ थी। इन विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा की भी व्यवस्था की गई। अंग्रेजी शिक्षण में सुधार हुआ। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से भारतीय भाषाओं का विकास रुक गया।

प्राथमिक शिक्षा—१९११ तक प्राथमिक शिक्षा की प्रगति में बहुत तीव्रता रही। दिल्ली दरबार में सम्राट ने प्राथमिक शिक्षा पर ५० लाख रुपया व्यय किये जाने की आज्ञा दी। १९१३ के प्रस्ताव के फलस्वरूप लगभग सभी प्रान्तों में परिषदों और स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्राथमिक स्कूलों का निर्माण किया गया। परन्तु फिर भी प्राथमिक शिक्षा की संतोषजनक प्रगति नहीं हुई।

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा—सर्व प्रथम बड़ौदा-नरेश ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाया। १९०६ के अधिनियम द्वारा सम्पूर्ण बड़ौदा राज्य के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। गोखले ने १६ मार्च १९११ को केन्द्रीय धारा सभा में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत किया, पर वह पास न हो सका। १९१८ के 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' के द्वारा बम्बई नगर के अतिरिक्त सभी नगरपालिका-क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया। १९१९ में पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बंगाल और बिहार व उड़ीसा में अधिनियम बना कर प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। १९२० में इस प्रकार के अधिनियम मध्य प्रान्त, मद्रास, और बम्बई नगर के लिये बनाये गये।

स्त्रियों की शिक्षा– १९१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' के सुझावों के फलस्वरूप स्त्री-शिक्षा की प्रत्येक स्तर पर प्रगति हुई। १९२१ में १,२६३ लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी प्रगति हुई। प्राथमिक शिक्षा का सब से अधिक विस्तार हुआ।

मुसलमानों की शिक्षा—मुसलमानों की शिक्षा की ओर सरकार ने विशेष ध्यान दिया। उनके लिये विशिष्ट तथा पृथक् स्कूलों की स्थापना की। मुस्लिम स्त्रियों ने भी उच्च तथा व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया।

हरिजनों की शिक्षा—हरिजनों के सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये तिलक, अमृतलाल ठक्कर, शिंडे, बड़ौदा-नरेश और कोल्हापुर के राजा ने अथक प्रयास किये। इन सब से अधिक कार्य महात्मा गांधी और उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने किया। सरकार ने हरिजनों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये विशेष रूप से चेष्टा की। स्वयं हरिजनों ने भी शिक्षा प्राप्त करने के अपने अधिकार की मांग की। इन सभी बातों के कारण हरिजनों की शिक्षा की तीव्र प्रगति हुई।

अन्य जातियों की शिक्षा—आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा

में विस्तार नहीं हुआ। अपराधी जातियों के बच्चों को शिक्षित करने के लिये मद्रास, पंजाब और बम्बई में स्कूल खोले गये।

व्यावसायिक शिक्षा—इस काल में सामान्य शिक्षा की अपेक्षा व्यावसायिक शिक्षा की बहुत ही कम प्रगति हुई।

TEST QUESTIONS

1. Give a historical review of the attempts made for Compulsory Primary Education in India from 1906 to 1920. How far did these attempts succeed ?
3. "In spite of some defects, it is universally admitted that the Calcutta University Commission wielded the greatest influence on university education in this country." Comment.
3. What defects in the Secondary Education were pointed out by the Sadler Commission ? What suggestions were offered by the Commission to remedy them ?
4. Between 1905 and 1921 we find a great ferment of education thought within the fold of Indian struggle for freedom." Elucidate the statement.
5. Write notes on :—(a) Gokhale's contribution to Primary Education, (b) Sadler Commission Report, (c) Government Resolution on Educational Policy, 1913; and (d) Fundamental principles of National Education.

—: o :—

अध्याय १४

द्वैध शासन में शिक्षा की प्रगति

(१९२१-१९३७)

१९१४ में प्रथय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ । अन्य मित्र-राष्ट्रों के साथ इंग-लैण्ड ने भी घोषित किया कि युद्ध "संसार को जनतंत्रवाद के लिये सुरक्षित बनाने के उद्देश्य से" लड़ा जा रहा है । इस घोषणा के पश्चात् महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीयों ने धन-जन से इंगलैण्ड की सहायता की । १९१८ में युद्ध-विराम की घोषणा हुई । उस समय भारत में गहरी अशान्ति का साम्राज्य था । भारतीय उद्योग-धंधों की दशा दयनीय थी । बेकारी बढ़ती जा रही थी । कृषक, श्रमिक एवं मध्य श्रेणी के व्यक्ति क्षुब्ध हो रहे थे । किन्तु सरकार की ओर से जनता के कष्ट को दूर करने के लिये कुछ नहीं किया गया । "साम्राज्य की आवश्यकता" पूर्ण हो जाने पर भारतवर्ष के साथ विश्वासघात किया जा रहा था ।

मांटेग-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट

इस बीच में भारत-मंत्री लार्ड मांटेग (Montagu) ने भारत के तत्का-लीन गर्वनर-जनरल, लार्ड चेम्सफ़ोर्ड (Chelmsford) के साथ भारत का दौरा

करके देश की राजनीतिक एवं वैधानिक परिस्थितियों का अध्ययन किया और जुलाई १९१८ में 'मांटेग-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट' (Montagu Chelmsford Report) प्रकाशित की। इसके अनुसार भारतीयों को थोड़ी मात्रा में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन देने का आश्वासन दिया गया। इसने भारतीय वातावरण को निराशा के बादलों से आच्छादित कर दिया। युद्ध से पूर्व घोषणा में कुछ कहा गया था और अब किया कुछ और जा रहा था। अगस्त १९१८ के बम्बई अधिवेशन में कांग्रेस ने 'रिपोर्ट' को "निराशाजनक एवं असंतोषप्रद" बताया।

द्वैध-शासन की स्थापना

उपर्युक्त 'रिपोर्ट' के आधार पर ब्रिटिश संसद ने १९१९ का 'भारत-सरकार अधिनियम' (Government of India Act) पारित किया और १९२१ में उसे कार्यान्वित कर दिया गया। इस अधिनियम के अनुसार भारत में द्वैध-शासन-प्रणाली (Dyarchy) अर्थात् दोहरे शासन की व्यवस्था की गई। इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रान्तों के विषयों को दो भागों में विभाजित किया गया—(१) संरक्षित (Reserved) और (२) हस्तान्तरित (Transferred)। संरक्षित विषयों को प्रशासन कर्मचारी वर्ग के हाथों में सौंपा गया। ये कर्मचारी गवर्नर-जनरल एवं भारतमंत्री के माध्यम से ब्रिटिश लोकसभा के प्रति उत्तरदायी थे। हस्तान्तरित विषयों के प्रशासक, जन-प्रिय मंत्रीगण, प्रान्तीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे। शिक्षा को हस्तान्तरित विषयों में स्थान दिया गया और उसे लोकप्रिय मंत्रियों को सौंप दिया गया। इस प्रकार प्रांतीय शिक्षा हस्तान्तरित विषय हो गया। परन्तु यूरोपियनों की शिक्षा एवं केन्द्रीय प्रशासित प्रदेशों—पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त, अजमेर, मेरवाड़ा, कुर्ग, दिल्ली, बंगलौर, बिलोचिस्तान एवं सिकन्दराबाद—की शिक्षा पर केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण यथावत् बना रहा। इसके अतिरिक्त बनारस, अलीगढ़ और दिल्ली विश्वविद्यालयों, राजकुमारों के कॉलेजों तथा अखिल भारतीय गवेषणा-शालाओं पर केन्द्रीय सरकार ने अपना आधिपत्य रखा।

शिक्षा मंत्रियों की कठिनाइयां

भारतीय शिक्षा के इतिहास में प्रथम बार शिक्षा पर प्रान्तों के जन-प्रिय भारतीय मंत्रियों का अधिकार स्थापित हुआ। परन्तु इन मंत्रियों को अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

१. शिक्षा हस्तान्तरित विषय था, परन्तु वित्त-विभाग पर अंग्रेज मंत्रियों का

अधिकार था, जो व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी न होकर केवल गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थे। शिक्षा की कोई भी योजना वित्त-विभाग के प्रशासकों के सक्रिय सहयोग और सहायता के बिना-आगे नहीं बढ़ सकती थी। शिक्षा-मंत्रियों को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार धन नहीं मिलता था। अतः उनकी शिक्षा-योजनायें अपूर्ण रह जाती थीं।

२. केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय शिक्षा के व्यय का सम्पूर्ण भार प्रान्तों पर डाल दिया और केन्द्रीय आर्थिक सहायता बन्द कर दी। ऐसी स्थिति में प्रान्तीय सरकारों के पास धन का अभाव रहने लगा और शिक्षा पर समुचित धन-राशि व्यय करना असम्भव हो गया।

३. प्रान्त की समस्त शक्तियाँ गर्वनरों के हाथों में केन्द्रित थीं और वे हस्तांतरित विषयों (जिनमें शिक्षा भी थी) के क्षेत्र में नीति-विषयक एवं विस्तार-सम्बन्धी दोनों प्रकार के प्रश्नों में हस्तक्षेप करते थे। ऐसी परिस्थितियों में शिक्षा-मंत्री तथा अन्य मंत्रियों के समस्त अधिकार नाममात्र के ही थे।

४. शिक्षा-मंत्रियों को 'भारतीय-शिक्षा-सेवा' (Indian Educational Service) के कर्मचारी वर्ग पर किसी प्रकार का प्रभुत्व तथा नियंत्रण नहीं प्राप्त था। कर्मचारीगण अपने आप को अनुभवहीन मंत्रियों से अधिक कार्यकुशल समझ कर मंत्रियों का निर्देशन करना चाहते थे। ऐसी स्थिति में वे मंत्रियों की शिक्षा-योजनाओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे और उन्हें पूर्ण नहीं होने देते थे।

५. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १९१९ के अधिनियम से असंतुष्ट थी। उसने द्वैध-शासन एवं विभाजित उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की अवहेलना की, प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं का बहिष्कार किया और असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। फलस्वरूप जनता का ध्यान शिक्षा की अपेक्षा राजनीतिक समस्याओं पर अधिक केन्द्रित रहा।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में भारतीय शिक्षा-मंत्रियों ने अपने प्रान्तों की शिक्षा का भार अपने ऊपर लिया। अनेकों कठिनाइयों के बीच से गुज़रते हुए भी उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में थोड़ा-बहुत रचनात्मक कार्य अवश्य किया। कुछ प्रान्तों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियम पारित किये गये, औद्योगिक प्रशिक्षण को प्रोत्साहित किया गया, वयस्क साक्षरता की दिशा में रचनात्मक क़दम उठाया गया एवं शिक्षा-सम्बन्धी अन्य कार्य भी किये गये। शिक्षा-मंत्रियों को अपनी शिक्षा-योजनाओं को पूर्ण करने में राष्ट्रीय आन्दोलन और शिक्षा के

प्रति जनता के अदम्य उत्साह से बहुत प्रेरणा मिली। फलस्वरूप १९२१ से १९३७ तक शिक्षा का विस्तार अत्यन्त तीव्र गति से हुआ।[1]

हर्टाग समिति[2]

द्वैध-शासन प्रणाली "एक असंगत आधारवाली, बोझिल, दुरूह तथा अस्तव्यस्त प्रणाली सिद्ध हुई।" भारतीय जनमत के सभी पक्ष उससे असंतुष्ट रहे। कांग्रेस ने उसका घोर विरोध किया और पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग की। भारतीय आन्दोलन से प्रभावित होकर ब्रिटिश लोकसभा ने ८ नवम्बर १९२७ को 'साइमन कमीशन' (Simon Commission) की नियुक्ति की, जिसका उद्देश्य १९१९ की सुधार-योजना के अनुभवों की विवेचना करना था। इस कमीशन की नियुक्ति के समय भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन चल रहा था और भारतीय, विदेशी शिक्षा-पद्धति की तीक्ष्ण आलोचना कर रहे थे। अतः कमीशन ने भारतीय शिक्षा की जांच करना आवश्यक समझा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कमीशन ने एक सहायक समिति (Auxiliary Committee) की नियुक्ति की। इसके सभापति कमीशन के एक सदस्य सर फ़िलिप हर्टाग (Philip Hartog) थे। उन्हीं के नाम से यह समिति 'हर्टाग समिति' (Hartog Committee) के नाम से विख्यात है। समिति ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के सभी अङ्गों का अध्ययन किया और सितम्बर १९२९ में अपनी रिपोर्ट कमीशन के समक्ष प्रस्तुत की।

समिति की रिपोर्ट

समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि १९१७ से १९२७ तक शिक्षा के सभी अंगों की तीव्र गति से प्रगति हुई है और संख्यात्मक वृद्धि के साथ-साथ गुणात्मक उन्नति भी हुई है। समिति का कथन था : "प्राथमिक विद्यालयों में छात्रों की अत्यधिक संख्या व्यक्त करती है कि शिक्षा के प्रति जनता की उदासीनता का अन्त हो रहा है। भारत की स्त्रियों में सामाजिक एवं राजनीतिक जागृति प्रारम्भ हो गई है और वे शिक्षा तथा सामाजिक सुधार की बलपूर्वक मांग कर रही हैं। शिक्षा प्राप्त करने वाले मुसलमानों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई है, दलित वर्गों की दशा सुधारने के लिये प्रयास किये गये हैं और इन प्रयत्नों के फलस्वरूप वे शिक्षा के अपने अधिकार की माँग करने लगे हैं। सार्वजनिक नेताओं में शिक्षा की जटिल एवं कठिन समस्या को समझने

1. Nurullah and Naik : *op. cit.*, p. 622.
2. Hartog Committee.

और सुलझाने की इच्छा है एवं शिक्षा-मन्त्रियों ने शिक्षा पर पर्याप्त अतिरिक्त धन व्यय करने का प्रस्ताव किया है और व्यवस्थापिकाओं ने उनके कार्य का अनुमोदन किया है।"[1]

भारतीय शिक्षा के इस सुन्दर पहलू का चित्रण करने के उपरान्त समिति ने दूसरे पहलू का भी चित्र प्रस्तुत किया। उसने लिखा कि सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था में अपव्यय एवं प्रभावहीनता के प्रमुख दोष दृष्टिगोचर होते हैं। प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय सबसे अधिक है। प्राथमिक विद्यालयों में छात्रों की संख्या में अवश्य वृद्धि हुई है, परन्तु उनकी योग्यता में कोई उन्नति नहीं हुई है। माध्यमिक शिक्षा के संगठन में महान् दोष परिलक्षित होते हैं। विश्व-विद्यालयों में शिक्षण से अधिक महत्त्व परीक्षाओं को दिया जाता है।[2] इस प्रकार शिक्षा के सभी अंगों की विशद व्याख्या करने के पश्चात् समिति ने लिखा : "हमसे शिक्षा के संगठन के सम्बन्ध में रिपोर्ट देने के लिये कहा गया था। उस संगठन के प्रत्येक पहलू पर पुनर्विचार करने और उसको सशक्त बनाने की आवश्यकता है ; और शिक्षा के संगठन के लिये जो संस्थायें उत्तर-दायी हैं, उनके पारस्परिक सम्बन्धों को पुनः निर्धारित करना अनिवार्य है।"[3]

शिक्षा के विभिन्न अवयवों के सम्बन्ध में हर्टाग समिति ने जो विचार व्यक्त किये, उनका वर्णन आगे यथास्थान किया जायगा।

उच्च शिक्षा (१९२१–१९३७)

विश्वविद्यालयों का निर्माण

१९१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' में कहा गया था कि प्रत्येक प्रान्त में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय और अधिक से अधिक सम्भव स्थानों पर शिक्षण विश्वविद्यालयों का निर्माण किया जाय। फलस्वरूप इस काल में ५ नवीन विश्वविद्यालयों का शिलान्यास किया गया। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१. **दिल्ली विश्वविद्यालय**—इसकी स्थापना १९२२ में परीक्षा लेने और सम्बद्धीकरण करने के लिये की गई। इसके अन्तर्गत रामजस कॉलिज,

1. *Report of the Hartog Committee*, p. 345.
2. *Ibid*, pp. 345-46.
3. "We were asked to report on the organization of education. At almost every point that organization needs reconsideration and strengthening; and the relations of the bodies responsible for the organization of education need readjustment." *Ibid*, p. 346.

हिन्दू कॉलिज और सेन्ट स्टीफ़ेन्स कॉलिज थे। १९३७ तक यह विश्वविद्यालय इसी स्थिति में रहा।

२. **नागपुर विश्वविद्यालय**—इस विश्वविद्यालय का निर्माण १९२३ में मध्यप्रान्त एवं बरार की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये किया गया। प्रारम्भ में यह केवल सम्बद्धीकरण की व्यवस्था करता था, परन्तु शीघ्र ही इसने अपने प्रबन्ध में कानून का एक कॉलिज स्थापित किया।

३. **आंध्र विश्वविद्यालय**—इसकी स्थापना १९२६ में मद्रास प्रान्त के तैलगू भाषा के क्षेत्रों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये की गई। यह शिक्षण एवं सम्बद्धीकरण विश्वविद्यालय था। १९२३ में इसने विज्ञान और औद्योगिक शिक्षा तथा १९३७ में आर्ट्स के शिक्षण का प्रबन्ध किया।

४. **आगरा विश्वविद्यालय**—इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास १९२७ में किया गया। यह सम्बन्धक विश्वविद्यालय था। इसके प्रादेशिक क्षेत्राधिकार में उत्तरप्रदेश, विन्ध्य प्रदेश, ग्वालियर तथा राजस्थान थे।

५. **अन्नमलई विश्वविद्यालय**—यह एकात्मक ((Unitary), शिक्षण एवं सम्बन्धक विश्वविद्यालय था। इसकी आधारशिला १९२९ में महाराजा अन्नमलई से २० लाख रुपये की दानस्वरूप प्राप्त धन-राशि से रखी गई। इसमें अंग्रेजी, तामिल और संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी। तामिल भाषा के लिये इसमें एक अनुसन्धान विभाग भी था।

पुराने विश्वविद्यालयों का पुनर्गठन

इस काल में पुराने विश्वविद्यालयों में सुधार करके उनका पुनर्गठन किया गया। मद्रास विश्वविद्यालय ने विज्ञान के विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था की और अनुसंधान कार्य भी प्रारम्भ किया। बम्बई विश्वविद्यालय ने स्नातकोत्तर एवं प्रौद्योगिक शिक्षा प्रदान करने के कार्य का श्रीगणेश किया। आगरा विश्वविद्यालय की स्थापना के उपरान्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने सम्बद्धीकरण करने का कार्य समाप्त कर दिया और पूर्ण रूप से शैक्षणिक बन गया। पंजाब विश्वविद्यालय ने विज्ञान के 'आनर्स कोर्स' को अधिक व्यापक बनाया। इन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त, पटना और कलकत्ता विश्वविद्यालयों को भी पुनर्संगठित करके उनकी कार्य क्षमता में उन्नति की गई।

विश्वविद्यालय-शिक्षा

इस अवधि में नवीन विश्वविद्यालयों के निर्माण एवं पुरानों के पुनर्गठन तथा विस्तार के कारण उच्च शिक्षा की अधिक सुविधायें हो गईं। फलस्वरूप

छात्रों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। १९२१-२२ में विश्वविद्यालयों और उनसे सम्बन्धित कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की यौगिक संख्या लगभग ६६,२५८ थी। १९३६-३७ में यह संख्या बढ़कर १,२६,२२८ हो गई। अनुसंधान कार्य करने वाले छात्रों को छात्रवृत्तियों, प्रयोगशालाओं, उत्तम पुस्तकालयों एवं अन्य सुविधाओं द्वारा प्रोत्साहित किया गया। इसके अतिरिक्त, प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में सैनिक शिक्षा की व्यवस्था एवं यू० टी० सी० (University Training Corps) की स्थापना की गई। कलकत्ता, ढाका और कुछ अन्य विश्वविद्यालयों में सैनिक शिक्षा (Military Science) को पाठ्य-क्रम में सम्मिलित किया गया। इस शिक्षा के फलस्वरूप विद्यार्थियों का शारीरिक एवं चारित्रिक विकास हुआ और वे अनुशासन के महत्व को समझने लगे। इस काल की विश्वविद्यालय-शिक्षा के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि विद्यार्थियों के लिए छात्रावासों का प्रबन्ध किया गया और उनके स्वास्थ्य की देख-भाल के लिये चिकित्सक नियुक्त किये गये।

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने सुझाव दिया था कि इन्टरमीडिएट कक्षाओं को विश्वविद्यालयों से पृथक् कर दिया जाय और प्रान्तों में शिक्षा परिषदों की स्थापना की जाय, जो इन्टरमीडिएट और हाई स्कूल कक्षाओं के शिक्षण का प्रबन्ध करें। इस सुझाव के अनुसार ढाका विश्वविद्यालय ने इन्टरमीडिएट की कक्षायें पृथक् कर दीं। अलीगढ़, लखनऊ, इलाहाबाद, दिल्ली और मद्रास विश्वविद्यालयों ने भी इन्टरमीडिएट कक्षाओं से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखा। अब ये कक्षायें प्रान्तों में स्थापित की गई परिषदों की अध्यक्षता में आ गईं। इस परिवर्तन पर १९२२ में विवाद प्रारम्भ हो गया, जो १९२६ तक चलता रहा। शिक्षा-विशेषज्ञों का कहना था कि इन्टरमीडिएट कॉलेजों में शिक्षा का इतना उत्तम प्रबन्ध नहीं हो सकेगा जितना कि विश्वविद्यालयों में था। फिर इन्टरमीडिएट कक्षाओं से विश्वविद्यालयों को पर्याप्त धन प्राप्त होता था। इन कक्षाओं के पृथक् हो जाने से उनकी आय के एक उत्तम साधन का अन्त हो गया। इस विवाद के फलस्वरूप आंध्र, बम्बई, अन्नमलई और पटना विश्व-विद्यालयों के अधिनियमों में इन्टरमीडिएट कक्षाओं को रखने की स्वीकृति प्रदान की गई। मद्रास एवं दिल्ली विश्वविद्यालयों ने इन्टरमीडिएट कक्षाओं को पृथक् नहीं किया। उत्तर प्रदेश में शिक्षा-परिषद् की स्थापना हो गई थी, फिर भी आगरा विश्वविद्यालय अधिनियम में इन्टरमीडिएट कक्षायें रखने की व्यवस्था की गई। उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त, केवल ढाका, पंजाब और बिहार में शिक्षा-परिषदों का निर्माण हुआ।

हर्टाग समिति एवं विश्वविद्यालय-शिक्षा

हर्टाग समिति ने विश्वविद्यालय-शिक्षा की जाँच की और इस निष्कर्ष पर पहुँची कि उसमें निम्नलिखित दोष थे :—

१. विश्वविद्यालयों की संख्या में सराहनीय वृद्धि हुई है, परन्तु शिक्षण का स्तर गिर गया है।[1]

२. विश्वविद्यालय की शिक्षा में छात्रों में बौद्धिक रुचि उत्पन्न करने, उन्हें जीवन का अनुभव प्रदान करने तथा देश के नेता बनाने की क्षमता नहीं है।[2]

३. विश्वविद्यालयों में पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता है। फलस्वरूप उनका ध्यान शिक्षण-कार्य पर केन्द्रित न रह कर छात्रों की संख्यात्मक वृद्धि पर केन्द्रित रहता है।

४. विश्वविद्यालयों और उनसे सम्बन्धित कॉलेजों के कार्य में सामंजस्य नहीं है एवं उनका वातावरण उचित रूप से विकसित नहीं किया गया है।[3]

५. विश्वविद्यालयों द्वारा किया गया अनुसन्धान का कार्य सन्तोषजनक है, परन्तु 'आनर्स कोर्स' का समुचित संगठन नहीं किया है।

६. विश्वविद्यालयों में सुसमृद्ध पुस्तकालयों का अभाव है।

७. विश्वविद्यालय के छात्रों में सामूहिक जीवन का अभाव है और उनमें बेरोज़गारी की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

८. विद्यार्थियों को अँग्रेजी का इतना अल्प ज्ञान है कि वे अँग्रेजी भाषा के माध्यम से दिये हुए व्याख्यानों को नहीं समझ पाते हैं। फलस्वरूप न

---

1. "A few years ago, the low standard of Calcutta University examinations attracted to it students from all parts of India, even from as far south as Travancore. Another example is to be found in the Punjab." *Hartog Committee Report*, p. 136.

2. "The graduate on leavning college is only too often a man with no wide or living intellectual interests, with no discipline or experience in the difficult art of living in a community, with no training in leadership, and with little sense of his responsibility to others." *Ibid*, p. 141.

3. "The activities of universities and colleges are not always well-balanced or adjusted.....the social atmosphere is only partially developed." *Ibid*.

केवल विश्वविद्यालयों का अपितु माध्यमिक विद्यालयों का भी शिक्षण-स्तर निम्नतर होगया है।[1]

विश्वविद्यालयों के इन दोषों को दूर करने के लिये समिति ने निम्नांकित सुझाव दिये :—

१. शिक्षा की दृष्टि से एकात्मक विश्वविद्यालय सर्वोत्तम होते हैं। परन्तु भारत की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सम्बन्धक विश्वविद्यालयों की आवश्यकता अभी पर्याप्त समय तक रहेगी। अतः दोनों प्रकार के विश्वविद्यालयों को प्रोत्साहित किया जाय।

२. विश्वविद्यालयों के शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाना आवश्यक है। इससे न केवल विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले अपितु माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों का भी कल्याण होगा।

३. विश्वविद्यालयों के प्रवेश-नियमों में कड़ाई की जाय। केवल उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाय, जिनमें उच्च शिक्षा का लाभ उठाने की योग्यता हो।[2]

४. विश्वविद्यालयों का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वे सुसमृद्ध पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं और अनुसंधान कार्यों की उत्तम व्यवस्था करें।

५. 'आनर्स कोर्स' के शिक्षण का प्रबन्ध किया जाय और इसको 'पास-कोर्स' से पृथक रखा जाय। 'आनर्स-कोर्स' को सफल बनाने के लिये विश्वविद्यालय और उनसे सम्बन्धित कॉलेजों के प्राध्यापकों पर सम्मिलित रूप से उत्तरदायित्व रखा जाय।

६. स्नातकों में बढ़ती हुई बेकारी को रोकने के लिये विश्वविद्यालयों में औद्योगिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किया जाय। औद्योगिक शिक्षा प्राप्त छात्रों को सरकार द्वारा नौकरी दी जाय।

---

1. "Many of the students are unable to follow the lectures owing to their defective knowledge of English, which is used as the medium of instruction. And the mischief is not limited to the universities, for university standards react upon those of the secondary schools which feed them." *Hartog Committee Report*, p. 135.

2. "The time has come when all efforts should be concentrated on improving university work, on confining the university to its proper function of giving good advanced education to students who are fit to receive it." *Ibid*, p. 137.

७. स्नातकों को नौकरी प्राप्त करने की सुविधा देने के विचार से विश्वविद्यालयों में 'रोज़गार-कार्यालय' (Employment Bureaus) स्थापित किये जायँ।

८. विश्वविद्यालयों का एक प्रमुख कर्त्तव्य जन-साधरण में ज्ञान का प्रसार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये विश्वविद्यालयों द्वारा व्याख्यान मालाओं की योजना का सूत्रपात किया जाय।

माध्यमिक शिक्षा (१९२१-३७)

१९२१ से १९३७ तक उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जितनी अनेकमुखी उन्नति परिलक्षित होती है, माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में अवलोकित नहीं होती है। निस्संदेह माध्यमिक विद्यालयों और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में, कॉलेजों और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई, परन्तु माध्यमिक शिक्षा के कुछ आधारभूत दोषों का (यथा, शिक्षा का माध्यम और अध्यापकों का प्रशिक्षण) निवारण न हो सका।

माध्यमिक शिक्षा का विस्तार

१९२१-२२ में मान्यता प्राप्त स्कूलों की संख्या ७,५३० और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या ११,०६,८०३ थी। १९३६-३७ में यह संख्या क्रमशः १३,०५६ और २२,८७,८७२ थीं। इन आंकड़ों के देखने से माध्यमिक शिक्षा का विस्तार असाधारण ज्ञात होता है। इस आश्चर्यजनक वृद्धि के कारण निम्नलिखित थे :—

१. राजनीतिक चेतना एवं राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन के फलस्वरूप भारतवासी शिक्षा के महत्व से अवगत हो गये थे और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये विद्यालयों का नवनिर्माण किया जा रहा था।

२. पिछड़ी जातियों, निम्न वर्गों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भी जागरूकता थी और परिणामस्वरूप माध्यमिक शिक्षा को सुलभ बनाने के लिये स्कूलों की स्थापना हो रही थी।

३. कुछ उदार व्यक्तियों ने स्कूलों के निर्माण के लिये धन दिया। कुछ व्यक्ति ऐसे थे जो अपनी लोकप्रियता में अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से इस दिशा में कार्यरत हुए।

४. एक क्षेत्र के निवासी अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्त के लिये अन्य क्षेत्र में स्थापित विद्यालयों में नहीं भेजना चाहते थे। अतः उन्होंने सामूहिक प्रयास से अपने क्षेत्र में स्कूल की स्थापना की।

५. कुछ विद्यालयों का निर्माण समीपवर्ती क्षेत्रों के निवासियों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता एवं कलह के कारण हुआ।

६. कतिपय विद्यालयों के शिक्षकों ने प्रबन्धकों के व्यवहार से असंतुष्ट होकर पृथक विद्यालय निर्मित किये।

७. शिक्षित व्यक्तियों में बेकारी बढ़ रही थी। अतः उनमें से कुछ उत्साही एवं बुद्धिमान मनुष्यों ने विद्यालयों की स्थापना करके अपने जीविकोपार्जन का साधन खोज लिया।

उपर्युक्त कारणों के फलस्वरूप १६३७ तक सम्पूर्ण देश में माध्यमिक विद्यालयों का एक ताना-बाना बुन गया। प्रायः प्रत्येक बड़े ग्राम और क़स्बे में एक स्कूल-भवन दिखाई देने लगा। अध्ययन की सुविधा होने के कारण उस क्षेत्र के बच्चे उनमें प्रवेश करने लगे और शीघ्र ही छात्रों की बाढ़ दिखाई देने लगी।

शिक्षा का माध्यम

इस काल की माध्यमिक शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। परन्तु फिर भी कुछ स्कूल ऐसे थे जिनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी भाषा ही रही। इसके कारण थे—(१) उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी था। अतः कुछ विद्यालयों के प्रबन्धकों ने माध्यम के स्थान पर अंग्रेज़ी को ही प्रतिष्ठित रखा। (२) कुछ अभिभावक चाहते थे कि उनके बच्चे अंग्रेज़ी में दक्षता प्राप्त करें। अतः वे उनको ऐसे ही स्कूलों में भेजते थे, जहाँ शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी था। (३) कुछ क्षेत्रों में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया जाता था। अतः वहाँ अंग्रेज़ी के माध्यम से शिक्षा देना अनिवार्य था। (४) भारतीय भाषाओं में विज्ञान आदि की उत्तम पुस्तकों एवं शब्दावली का अभाव होने के कारण अंग्रेज़ी को ही शिक्षा का माध्यम बनाना पड़ता था।

उपरोक्त कठिनाइयों पर १६३७ तक विजय प्राप्त कर ली गई और भारतीय भाषाओं का शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठापन कर दिया गया।

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक

इस काल में माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। १६३७ में १५ शिक्षण-विद्यालय थे, जिनमें १,३४१ पुरुष और १४७ स्त्रियाँ थीं। माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की दशा में सुधार करने के प्रयास किये गये। उनके लिये 'प्राविन्डेन्ट फ़न्ड' की योजना कार्यान्वित की गई। प्रबन्धकों द्वारा निकाले जाने वाले ग़ैर-सरकारी स्कूलों

के शिक्षकों को विद्यालय-निरीक्षक से अपील करने का अधिकार दिया गया। सहायता-अनुदान पाने वाले विद्यालयों के लिये विद्यालय-निरीक्षक का निर्णय स्वीकार करना अनिवार्य कर दिया गया।

हर्टाग समिति एवं माध्यमिक शिक्षा

हर्टाग समिति ने उच्च शिक्षा के समान माध्यमिक शिक्षा की सूक्ष्म जांच नहीं की। फिर भी समिति ने माध्यमिक शिक्षा के प्रधान गुण-दोषों की ओर संकेत किया और शिक्षा का स्तर उच्च करने के लिये सुझाव दिये। समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापकों की दशा, उनकी शिक्षण-योग्यता और स्कूलों के सामाजिक जीवन को व्यापक बनाने में उन्नत हुई है। परन्तु उच्च शिक्षा के समान माध्यमिक शिक्षा में भी संगठन के दोष हैं। "माध्यमिक शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली में आज भी उसी आदर्श की प्रधानता है कि प्रत्येक बालक जो माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश करता है, उसे विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये अपने आप को तैयार करना चाहिये; और 'मेट्रीकुलेशन' एवं विश्वविद्यालय परीक्षाओं में एक विशाल संख्या में बालकों का असफल होना प्रयास के एक महान अपव्यय का द्योतक है।"[1]

इस प्रकार समिति के अनुसार माध्यमिक शिक्षा के दो प्रमुख दोष थे—मेट्रीकुलेशन परीक्षा की प्रधानता एवं अनुत्तीर्ण छात्रों की विशाल संख्या। इन दोषों के निवारण एवं माध्यमिक शिक्षा में सुधार करने के लिये समिति ने अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. मिडिल स्कूलों का पाठ्यक्रम इतना संकुचित है कि उसके अध्ययन के उपरान्त छात्र कोई जीवनोपयोगी कार्य नहीं कर सकते हैं। अतः पाठ्य-क्रम को विस्तृत किया जाय और उसमें ऐसे विषयों को स्थान दिया जाय जो छात्रों को धनोपार्जन में सहायता दें।

२. हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम में औद्योगिक एवं व्यापारिक विषयों को सम्मिलित किया जाय और विद्यार्थियों को इन विषयों का अध्ययन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

३. हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम में ऐसे वैकल्पिक विषयों को स्थान दिया जाय,

---

1. "The whole system of secondary education is still dominated by the ideal that every boy who enters a secondary school should prepare himself for the university; and the immense numbers of failures at the Matriculation and in the university examinations indicate a great waste of effort." *Hartog Committee Report*, pp. 345-346.

जो विद्यार्थियों के लिये लाभप्रद सिद्ध हों और जिन्हें वे अपनी रुचि के अनुसार चुन सकें।

४. मिडिल स्कूल का कोर्स समाप्त करने के पश्चात् परीक्षा लेने की व्यवस्था की जाय और उसमें उत्तीर्ण विद्यार्थियों को उन उद्योगों एवं व्यवसायों की शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेज दिया जाय जिनके लिये वे उपयुक्त समझे जायँ।

५. शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने के लिये शिक्षकों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाय। इसके साथ ही प्रशिक्षण-विद्यालयों की दशा में सुधार किया जाय और उनमें शिक्षण की आधुनिकतम पद्धतियों को अपनाया जाय।

६. प्रशिक्षण-विद्यालयों में अध्यापकों के लिये अभिनवन पाठ्य-क्रम (Refresher Course) की व्यवस्था की जाय।

७. अध्यापकों के वेतन एवं सेवा-प्रतिबन्धों (Conditions of Service) में सुधार किया जाय। जब तक ऐसा नहीं किया जायगा, तब तक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति नहीं हो सकेगी।[1]

८. ग़ैर-सरकारी स्कूलों में अध्यापकों को ९ माह के लिये नियुक्त किया जाता है। इस प्रकार प्रबन्धक ग्रीष्मावकाश का वेतन बचा लेते हैं। इसके अतिरिक्त, शिक्षकों से किसी प्रकार का लिखित संविदा (Agreement) नहीं भरवाया जाता है और उन्हें थोड़े समय का नोटिस देकर पद से पृथक कर दिया जाता है। इन सब बातों में सुधार करके शिक्षक को अपने पद की सुरक्षा प्रदान की जानी आवश्यक है।

एक समीक्षा

समिति ने माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में प्रशंसनीय सुझाव दिये। पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत औद्योगिक तथा व्यापारिक विषयों को रखने की सिफ़ारिश करके समिति ने छात्रों को विभिन्न जीवनोपयोगी विषयों का अध्ययन करने की व्यवस्था की। इससे विद्यार्थी निरुद्देश्य साहित्यिक शिक्षा के अध्ययन से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर सकते थे और जीवन में प्रवेश करने पर कोई लाभप्रद कार्य भी कर सकते थे। अध्यापकों की दशा में सुधार करने के लिये समिति ने जो सुझाव दिये, उनके विषय में किसी प्रकार का मतभेद नहीं हो

1. "The conditions of service of teachers must be greatly altered before the quality of secondary education can become satisfactory." *Hatrog Committee Report*, p. 118.

सकता है। परन्तु खेद की बात है कि इस दिशा में कोई क्रियाशील कदम नहीं उठाया गया और वर्षों तक ग़ैर सरकारी स्कूलों के अध्यापकों की दशा करुणाजनक रही। इसकी प्रतिक्रिया शिक्षा पर हुई और उसके स्तर में क्रमिक ह्रास होता चला गया।

प्राथमिक शिक्षा (१९२१-१९३७)

भारतीय शिक्षा के इतिहास में इस अवधि की सर्व प्रधान घटना प्राथमिक शिक्षा की तीव्र प्रगति है। भारतीय अतिदीर्घ काल से जन-शिक्षा की तीव्र मांग कर रहे थे, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इसकी सदैव अवहेलना की थी। शिक्षा विभागों का जन-प्रिय मंत्रियों की अध्यक्षता में आजाने से भारतीयों को आशा होने लगी थी कि जन-साधारण में शिक्षा का प्रसार होगा और वह निःशुल्क तथा अनिवार्य हो जायगी। हुआ भी ऐसा ही जैसा कि नीचे दिये हुए विवरण से स्पष्ट हो जाता है।

प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम

१९२० तक भारत के अनेकों प्रान्तों में अधिनियमों द्वारा प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया था। १९३७ तक और भी प्रान्तों में ऐसे ही अधिनियम पारित किये गये।

बम्बई—१९२३ में बम्बई में 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' पास किया गया, जिसके द्वारा बम्बई नगर के अतिरिक्त सम्पूर्ण प्रान्त के बालकों तथा बालिकाओं के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया।

आसाम—इस प्रान्त में १९२६ में 'प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम' बनाकर ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों एवं बालिकाओं के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

संयुक्त प्रान्त—यहाँ १९२६ में 'ज़िला-परिषद् प्राथमिक शिक्षा अधिनियम' (District Board Primary Education Act) बनाया गया और देहातों में निवास करने वाले बालकों तथा बालिकाओं के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया।

बंगाल—इस प्रान्त में १९३० में 'बङ्गाल ग्रामीण प्राथमिक शिक्षा अधिनियम' (Bengal Rural Primary Education Act) पारित करके ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों और बालिकाओं पर लागू कर दिया गया।

उपर्युक्त अधिनियमों के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया गया। अधिनियमों को कार्यान्वित करने का उत्तर-दायित्व भी उन्हीं पर रखा गया। शिक्षा के व्यय की पूर्ति के लिये उन्हें 'शिक्षा

कर' (Education Cess) लगाने का अधिकार दे दिया गया। प्रान्तीय सरकारों ने इस व्यय के लिये आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। अनिवार्य शिक्षा का लाभ वे ही बालक और बालिकायें उठा सकते थे, जिनकी आयु साधारणतः ६ वर्ष से १० वर्ष की थी। अपने बच्चों को स्कूल न भेजने वाले अभिभावकों को दण्डित किया जा सकता था।

हर्टाग समिति एवं प्राथमिक शिक्षा

हर्टाग समिति ने प्राथमिक शिक्षा की समस्या का गहन अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँची कि प्राथमिक शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। समिति के अनुसार इसका प्रमुख कारण यह था कि पिछले समय में उच्च शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया था एवं प्राथमिक शिक्षा की समस्याओं की अवहेलना की गई थी।[1] समिति ने कहा कि यद्यपि प्राथमिक शिक्षा का विस्तार हो रहा था तथापि वह संतोषजनक नहीं था, क्योंकि उसके मार्ग में अधोलिखित विशेष कठिनाइयाँ थीं :—

१. भारत की एक अति विशाल जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है। अतः प्राथमिक शिक्षा एक ग्रामीण समस्या है। नगरों में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था सरलतापूर्वक की जा सकती है, परन्तु ग्रामों में यह कार्य अति दुष्कर है।

२. ग्रामों के स्कूल छोटे होते हैं। उनके लिये शिक्षक प्राप्त करना कठिन होता है, क्योंकि शिक्षित व्यक्ति ग्रामीण वातावरण में निवास करना पसन्द नहीं करते हैं। ग्रामीण विद्यालयों के निरीक्षण में असुविधा का सामना करना पड़ता है।

३. ग्राम-निवासी अशिक्षित, निर्धन और रूढ़िवादी हैं। अतः वे शिक्षा की उपादेयता को नहीं समझते हैं। इसीलिये वे अपने बच्चों को विद्यालय नहीं भेजना चाहते हैं। फिर बच्चों को शिक्षा देने में उन्हें आर्थिक हानि भी होती है, क्योंकि उन्हें कृषि-कार्य के लिये अन्य व्यक्तियों को रखना पड़ता है।

४. प्रत्येक ग्राम में प्राथमिक विद्यालय नहीं हैं। बच्चों के लिये दूसरे गाँव

1. "While much attention has been paid in the past to a consideration of higher forms of education, the problems of primary education have been comparatively neglected." *Hartog Committee Report*. pp. 3-4.

के स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने के लिये जाना कठिन होता है, क्योंकि प्राकृतिक बाधायें, आवागमन के साधनों का अभाव एवं मौसमी बीमारियाँ उनके मार्ग में अवरोध डालती हैं।

५. बहुत से पिछड़े हुए क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित नहीं किया गया है।

६. बालकों को अपने माता-पिता के साथ कृषि-कार्य करना पड़ता है। अतः कार्य की अधिकता हो जाने पर वे विद्यालयों में नियमित रूप से उपस्थित नहीं हो पाते हैं।

७. जातीय, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक भेद-भाव प्राथमिक शिक्षा के विकास में बाधक हैं।

८. कुछ क्षेत्रों में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। अतः वहाँ प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना एक दुरूह कार्य हो जाता है।

अपव्यय एवं अवरोधन[1]—समिति ने कहा कि यद्यपि प्राथमिक विद्यालयों और छात्रों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्राथमिक शिक्षा की प्रगति हो रही है। कारण यह है कि प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन अत्यधिक हैं। प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने से पूर्व बालकों को किसी कक्षा में से हटा लेना 'अपव्यय' है।[2] इस दशा में बालक जो कुछ थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना सीख लेता है, उसे वह भूल जाता है और निरक्षर हो जाता है। साक्षरता का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है, जब बालक कम से कम प्राथमिक शिक्षा को समाप्त कर लें। 'अवरोधन' का अर्थ स्पष्ट करते हुए समिति ने लिखा कि एक बच्चे का एक ही कक्षा में एक वर्ष से अधिक रहना 'अवरोधन' है।[3]

समिति के मतानुसार 'अपव्यय' एवं 'अवरोधन' के कारण निम्नलिखित थे :—

१. जो छात्र प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् विद्यालयों को छोड़ देते हैं, उन्हें उचित वातावरण नहीं मिलता है। उनके माता-पिता अशि-

---

1. Wastage and Stagnation.
2. "By 'wastage' we mean the premature withdrawal of children from school at any stage before the completion of the primary course." *Hartog Committee Report*, p. 47.
3. "By 'stagnation' we mean the retention in a lower class of a child for a period of more than one year," *Ibid.*

क्षित होते हैं। धनाभाव के कारण वे पुस्तकें और मासिक पत्रिकायें आदि नहीं खरीद सकते हैं। अतः थोड़े समय के उपरान्त वे निरक्षर बन जाते हैं।

२. अधिकांश स्कूलों में एक ही शिक्षक है और सभी विद्यार्थियों को सभी विषयों की शिक्षा उसी के द्वारा दी जाती है। ऐसी दशा में शिक्षण उचित प्रकार से नहीं हो पाता है। फलस्वरूप शिक्षा का स्तर निम्न हो गया है।

३. प्राथमिक विद्यालयों की संख्या के अनुपात में निरीक्षकों की संख्या अति अल्प है। परिणामतः विद्यालयों का निरीक्षण नियमित रूप से नहीं हो पाता है।

४. शिक्षण-पद्धति प्राचीन तथा अमनोवैज्ञानिक है। ऐसे शिक्षण से छात्रों को लाभ नहीं होता है।

५. प्राथमिक विद्यालयों के लिये शिक्षक उपलब्ध नहीं हैं और जो शिक्षक अध्यापन-कार्य कर रहे हैं उनमें आवश्यक योग्यता तथा प्रशिक्षण का अभाव है।

६. पाठ्य-क्रम दोषपूर्ण है और उससे छात्रों का उचित हित नहीं होता है।

७. विद्यालयों में उचित शिक्षण-सामग्री का अभाव है। साथ ही उनमें स्थान की कमी है।

८. प्राथमिक विद्यालयों का वितरण अनियमित एवं अवैज्ञानिक है।

९. अनेकों विद्यालय ऐसे हैं, जिनको विद्यालय की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। फिर भी वे अपने अस्तित्व को चला रहे हैं।

१०. कुछ प्राथमिक स्कूल नियमित रूप से नहीं चलते हैं और असमय ही टूट जाते हैं।

११. ग्रामीण जनता इतनी निर्धन है कि वह बच्चों को अल्प आयु में ही कार्य में लगा देती है।

१२. धार्मिक एवं जातीय भेदों के कारण विभिन्न स्कूलों की माँग की जाती है।

१३. रूढ़िवादी अभिभावक बालिकाओं को बालकों के विद्यालयों में शिक्षा नहीं देना चाहते हैं। अतः वे पृथक् स्कूलों की स्थापना चाहते हैं।

१४. निरक्षर होने के कारण जनता अपने क्षेत्र में स्थित विद्यालय का पूर्ण लाभ अपने बच्चों को नहीं उठाने देती है।

१५. प्राथमिक शिक्षा अधिनियम त्रुटि पूर्ण है, क्योंकि उन्होंने अनिवार्य प्राथ-

मिक शिक्षा प्रारम्भ करने का कार्य स्थानीय संस्थाओं की इच्छा पर छोड़ दिया है।

शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव

प्राथमिक शिक्षा के दोषों का विवेचन करने के उपरान्त समिति ने उनके निवारण के लिये निम्नांकित सुझाव दिये : —

१. प्राथमिक विद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि पर ज़ोर न देकर गुणात्मक उन्नति पर बल दिया जाय।

२. शिक्षा को ठोस (Consolidation) बनाने की नीति का अनुसरण किया जाय।

३. जो विद्यालय छोटे हैं, जिनमें छात्रों की संख्या अति न्यून है और जिनमें शिक्षण की व्यवस्था उपयुक्त नहीं है, उन्हें तोड़ दिया जाय।

४. प्राथमिक विद्यालयों की न्यूनतम शिक्षा-अवधि ४ वर्ष होनी चाहिये और उनके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाना चाहिये।

५. विद्यालयों के पाठ्य-क्रम को वातावरण एवं परिस्थिति के अनुसार अधिक उदार तथा उपयुक्त बनाया जाय और उसे व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित किया जाय।

६. विद्यालयों का समय, अवकाश एवं कार्य-क्रम स्थानीय ऋतु एवं आवश्यकताओं के अनुसार रखा जाय।

७. विद्यालयों की निम्नतम कक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय और उसमें होने वाले अपव्यय तथा अवरोधन को समाप्त करने के लिये दृढ़ प्रयास किया जाय।

८. विद्यालयों में ग्राम-सुधार का कार्य रखा जाय, उनमें सफ़ाई, स्वास्थ्य, आत्मविश्वास, सहकारिता आदि गुणों का विकास किया जाय और उन्हें सामान्य चिकित्सा, मनोरंजन तथा प्रौढ़-शिक्षा का केन्द्र बनाया जाय।

९. अध्यापकों के शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाया जाय। उनके प्रशिक्षण की अवधि में वृद्धि की जाय। प्रशिक्षण-विद्यालयों की दशा में सुधार किया जाय। उनमें अभिनवन पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किये जायँ।

१०. शिक्षकों की वेतन-वृद्धि की जाय और उनके सेवा-प्रतिबन्धों में सुधार किया जाय, जिससे योग्य व्यक्ति शिक्षण-कार्य के प्रति आकर्षित हों।

११. विद्यालयों का नियमित रूप से निरीक्षण किये जाने के लिये निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की जाय।

१२. प्राथमिक शिक्षा को संगठित एवं विस्तृत करने का उत्तरदायित्व सर-

कार का है। अतः उसे पूर्णतया स्थानीय संस्थाओं पर नहीं छोड़ देना चाहिये, जैसा कि किया गया है।

१३. प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने में शीघ्रता न की जाय। जिस क्षेत्र में अनिवार्य शिक्षा लागू की जानी है उसका पहिले अध्ययन किया जाय और वहाँ के लिये एक उपयुक्त योजना तैयार की जाय।

एक समीक्षा

समिति ने प्राथमिक शिक्षा के सुधार के लिये जो सुझाव दिये, वे वस्तुतः अति विवेकपूर्ण एवं दूरदर्शी थे। शिक्षा का उचित लाभ उठाने के लिये उसको संगठित किया जाना और उसकी गुणात्मक उन्नति की जानी वांछनीय थी। सरकारी अधिकारियों ने समिति के इस सुझाव का स्वागत किया, क्योंकि उनका विचार था कि शिक्षा को ठोस बनाने की नीति ही भारतीयों के लिये कल्याणकारी होगी और बिना ऐसा किये केवल शिक्षा का विस्तार करना निरर्थक होगा। इसके विपरीत, भारतीय, प्राथमिक शिक्षा का तीव्र विस्तार चाहते थे। अतः उन्होंने हर्टाग समिति के सुझावों की अत्यन्त निन्दा की। उन्होंने कहा कि शिक्षा का विस्तार किया जाना अति आवश्यक है, क्योंकि इस नीति के अभाव में जन-शिक्षा का प्रसार नहीं होगा और देश को निरक्षरता का अन्त नहीं होगा। भारतीयों ने यह भी कहा कि समिति ने अपव्यय तथा अवरोधन का जो चित्र उपस्थित किया है, वह अतिरंजित है और यथार्थ आँकड़ों पर आधारित नहीं है। सारांश में, हर्टाग समिति ने प्राथमिक शिक्षा पर बज्र प्रहार किया और उसकी प्रगति को अवरुद्ध कर दिया। यही भाग्य अनिवार्य शिक्षा का भी हुआ। इसे हम नीचे दी हुई तालिकाओं से स्पष्ट कर रहे हैं।

प्राथमिक शिक्षा का प्रसार

	१९२१-२२	१९२६-२७	१९३१-३२	१९३६-३७
प्राथमिक स्कूल	१,५५,०१७	१,७४,८२९	१,९६,७०८	१,९२,२४४
छात्र-संख्या	६१,०९,७५२	८०,१७,९२३	९१,६२,४५०	१,०२,२४,२८८
व्यय रुपयों में	४,९४,६९,०८०	७,७५,१४,८०२	७,८७,९५,२३६	८,१३,३८,०१५

अनिवार्य शिक्षा के क्षेत्र

प्रान्त	नागरिक क्षेत्र		ग्रामीण क्षेत्र	
	१९२६-२७	१९३६-३७	१९२६-२७	१९३६-३७
मद्रास	२१	२७	३	७
बम्बई	६	९	.....	१
बंगाल	.....	१	.....	.....
संयुक्त प्रान्त	२५	३६	.....	२५
पंजाब	५७	६३	१,४९९	२,९८१
बिहार व उड़ीसा	१	२	३	२
मध्य प्रान्त	३	२७	६६	८
सिन्ध	.....	१	.....	९
दिल्ली	१	१	.....	१
	११४	१६७	१,५७१	३,०३४

व्यावसायिक शिक्षा (१९२१–१९३७)

राष्ट्रीय चेतना के इस युग में देश के विवेकी जन कोरे पुस्तकीय ज्ञान के विरुद्ध नारे लगा रहे थे और भारतीयों के समक्ष व्यावसायिक शिक्षा का आदर्श उपस्थित कर रहे थे। उनका यह संदेश भारत के कोने-कोने में गूँज उठा था कि अव्यावहारिक साहित्यिक ज्ञान का बहिष्कार करके और तकनीकी तथा औद्योगिक ज्ञान को उपलब्ध करके ही प्रचुर प्राकृतिक पदार्थों से युक्त इस देश की औद्योगिक उन्नति हो सकेगी। केवल तभी भारत का सर्वतोमुखी विकास सम्भव होगा और हृदय-विदारक दरिद्रता की दाह-क्रिया होगी। इस आन्दोलन के फलस्वरूप १९२१ से १९३७ तक व्यावसायिक शिक्षा का प्रवाह निर्बाध रहा और उसका प्रत्येक अवयव संशोधित तथा परिष्कृत होकर सुसंगठित बना। हम इनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दे रहे हैं।

क़ानून की शिक्षा

इस अवधि में क़ानून की शिक्षा की सबसे अधिक प्रगति हुई। क़ानून का व्यवसाय स्वतंत्र था और साथ ही क़ानून के अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गई जिससे कि भारतीय, वैधानिक जटिलताओं से अवगत हो जायँ। परिणामतः देश के नवयुवकों का झुकाव क़ानून की शिक्षा की ओर अधिक हुआ। १९३७ तक भारत में १४ क़ानून-कॉलेजों का निर्माण हो चुका था। इनके

अतिरिक्त ६ विश्वविद्यालयों में क़ानून-विभाग थे और ६ सामान्य कॉलेज ऐसे थे जिनमें क़ानून की शिक्षा की व्यवस्था थी।

चिकित्सा शिक्षा

क़ानून की शिक्षा की अपेक्षा चिकित्सा-शिक्षा की उन्नति कम हुई। फिर भी यह पर्याप्त रूप से संतोषजनक थी। १९०२ में केवल ४ मेडिकल कॉलेज थे और उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या १,४६६ थी। १९३७ में यह संख्या क्रमशः ११ और ४,९३६ हो गई। इसी प्रकार १९०२ में मेडिकल स्कूलों की संख्या २२ थी, जिनमें छात्रों की यौगिक संख्या २,७२७ थी। १९३७ में मेडिकल स्कूलों की संख्या ३० और छात्रों की ६,९९९ हो गई। इस काल में दो विशेष प्रकार के चिकित्सा-शिक्षालयों की स्थापना हुई, जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।

१. स्कूल ऑफ़ ट्रापिकल मेडिसिन, कलकत्ता—इसकी स्थापना १९२१ में की गई। यह अपने ढंग का अकेला चिकित्सा-विद्यालय है। इसमें उष्णकटिबन्धीय (Tropical) रोगों की स्नातकोत्तर शिक्षा दी जाती है।

२. ऑल इंडिया इन्टीट्यूट ऑफ हाइजीन एन्ड पब्लिक हेल्थ, कलकत्ता—इसका निर्माण १९३२ में किया गया। इसमें सार्वजनिक स्वास्थ्य की स्नातकोत्तर शिक्षा और जन-स्वास्थ्य-समस्याओं पर अनुसंधान करने की सुन्दर व्यवस्था है।

इंजीनियरिंग की शिक्षा

इस अवधि में इंजीनियरिंग की शिक्षा की आशातीत प्रगति हुई। १९०२ में इंजीनियरिंग कॉलेजों की संख्या ४ और उनमें शिक्षा-ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या ८६५ थी। १९३७ में यह संख्या बढ़ कर क्रमशः ८ और २,१९९ हो गई।

पशु-चिकित्सा-शिक्षा

भारत ऐसे कृषि-प्रधान देश में पशु कृषकों की अमूल्य सम्पत्ति हैं। अतः स्वस्थ और उत्तम नस्ल के पशुओं की आवश्यकता है। भारत की विदेशी सरकार ने १९९२ तक इस दिशा में कोई ठोस क़दम नहीं उठाया। केवल यत्र-तत्र नाम-मात्र के लिये थोड़ी-सी पशु-चिकित्सा-शिक्षा-संस्थायें स्थापित कर दीं थीं। किन्तु इस काल में पशु-चिकित्सा-शिक्षा को विस्तृत करने का प्रयास किया गया। संयुक्त प्रान्त में १९२२ तक मुक्तेश्वर में 'इम्पीरियल बेटेरिनरी रिसर्च इंस्टीट्यूट' (Imperial Veterinary Research Institute) बना कर तैयार कर दिया गया। इसमें पशु-चिकित्सा की स्नातकोत्तर शिक्षा प्रदान

की जाती है। १९३० में पटना में 'वेटेरिनरी कॉलेज' स्थापित किया गया। इन संस्थाओं के निर्माण से पशु-चिकित्सा-शिक्षा की आवश्यकता पूर्ण न हो सकी और जनता अधिक कॉलेजों की स्थापना की मांग करती रही।

वन-विज्ञान-शिक्षा

भारतीय वनों की सम्पत्ति की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित हो चुका था और उनसे लाभ उठाने के विचार से वन-विभाग के लिये कर्मचारियों को प्रशिक्षित करना प्रारम्भ कर दिया गया था। १९३७ में वन-विज्ञान की शिक्षा देने के लिये तीन कॉलेज थे—(१) इंडियन फ़ारेस्ट रेंजर्स कॉलेज (Indian Forest Ranger's College), देहरादून; (२) फ़ारेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट, देहरादून; और (३) फ़ारेस्ट कॉलेज, कोयम्बटूर। द्वितीय कॉलेज में शिक्षा के साथ-साथ अनुसंधान कार्य भी किया जाता था।

कला की शिक्षा

लार्ड कर्ज़न ने १९०४ के 'सरकारी-प्रस्ताव' में कला-विद्यालयों के सुधार के लिये कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये थे। इस अवधि में उन्हीं सुझावों के अनुसार कला-विद्यालयों का पुनर्गठन किया गया। यद्यपि इस कार्य में अधिक सफलता नहीं प्राप्त हुई, परन्तु कला-विद्यालयों की संख्या में वृद्धि अवश्य हुई। १९०२ में ४ कला-विद्यालय थे, पर १९३७ में उनकी संख्या १६ हो गई थी, जिनमें २,१०६ छात्र पढ़ते थे।

वाणिज्य की शिक्षा

इस काल में वाणिज्य की शिक्षा देने के लिये प्रशंसनीय कार्य किया गया। १९३७ में वाणिज्य की शिक्षा देने के लिये ८ कॉलेज थे। इनमें १,३३६ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इन कॉलेजों के अतिरिक्त वाणिज्य की शिक्षा प्रदान करने के लिये ३१७ स्कूल भी थे, जिनमें १२,५८६ विद्यार्थी थे।

कृषि की शिक्षा

लार्ड कर्ज़न ने कृषि की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया था। १९०१ में भारतीय कृषि की उन्नति करने के लिये एक 'इंसपेक्टर-जेनरल ऑफ एग्रीकल्चर' की नियुक्ति की गई थी। कृषि-विभागों का विस्तार किया गया था और १९०५ में कृषि-शिक्षा तथा अनुसंधान के लिये २० लाख रुपया प्रति वर्ष राज-कोष से दिया जाने लगा था। फलस्वरूप भारत में कृषि की शिक्षा का कुछ प्रबन्ध हो गया था और थोड़े से विद्यालय भी निर्मित कर दिये गये थे। दुर्भाग्यवश कर्ज़न की कृषि-शिक्षा को प्रोत्साहित करने की नीति का अनुसरण नहीं किया गया। १९०२ में ३ कृषि-कॉलेज थे, पर १९३७ में उनकी संख्या

बढ़कर कुल ६ तक पहुंची। ये कॉलेज कोयम्बटूर, पूना, कानपुर, नैनी, लायलपुर और नागपुर में थे। इन कॉलेजों के स्थापना-स्थानों को देखने से ज्ञात होता है कि कुछ महत्त्वपूर्ण प्रान्तों में कृषि-शिक्षा के कॉलेज नहीं थे, यथा—बंगाल, बिहार, उड़ीसा, सिन्ध और पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त।

उपरिकथित कॉलेजों के अतिरिक्त १९२३ में बंगलौर में 'इम्पीरियल इंस्टीट्यूट ऑफ़ ऐनिमल हस्बेन्ड्री एन्ड डेयरिंग' (Imperial Institute of Animal Husbandry and Dairying) की स्थापना की गई। १९३४ के भूकम्प के उपरान्त पूसा (बिहार) के 'सेन्ट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट' को उठा कर दिल्ली ले आया गया। यद्यपि इन कॉलेजों ने कुशल कृषक उत्पन्न नहीं किये, तथापि उन्हें कृषि विशेषज्ञों को प्रशिक्षित करने में कुछ सफलता अवश्य प्राप्त हुई। इतना निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि इन कॉलेजों ने भारत में कृषि की उच्च शिक्षा छात्रों के लिये सुलभ कर दी।

कृषि-शिक्षा के प्रसंग में 'रायल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर' (Royal Commission on Agriculture) द्वारा इस शिक्षा की प्रगति के लिये दिये गये सुझावों पर यहाँ दृष्टिपात कर लेना अनुपयुक्त न होगा। सारांश में, ये सुझाव अधोलिखित थे :—

१. हाई स्कूलों में कृषि की शिक्षा सैद्धान्तिक (Theoretical) और व्यावहारिक (Practical) दोनों प्रकार की होनी चाहिये।
२. कृषि-शिक्षा नगर के विद्यालयों में न दी जाकर, ग्राम के विद्यालयों में दी जानी चाहिये, क्योंकि इस शिक्षा से ग्रामीण छात्र ही लाभ उठा सकते हैं।
३. ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि-शिक्षा देने के लिये 'कृषि मिडिल स्कूलों' की स्थापना की जाय।
४. प्रत्येक विद्यालय के पास ३ एकड़ का फ़ार्म होना चाहिये। यदि यह सम्भव नहीं है, तो कम से कम ½ एकड़ का फ़ार्म अवश्य हो।

भारत का दुर्भाग्य था कि कमीशन की सिफ़ारिशों को कार्यान्वित नहीं किया गया और फलस्वरूप इस अवधि में कृषि-शिक्षा की समस्या का समाधान न किया जा सका।

तकनीकी एवं औद्योगिक शिक्षा

पिछले अध्याय में हम लिख चुके हैं कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सरकार से निरन्तर तकनीकी और औद्योगिक शिक्षा की माँग कर रही थी, परंतु सरकार ने इस माँग का स्वागत नहीं किया था। हाँ, इतना अवश्य किया था

कि विदेशों में प्रौद्योगिक (Technological) शिक्षा प्राप्त करने के लिये कुछ विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां देने लगी थी। १९०५ से १९१७ तक ११३ विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां प्रदान दी गईं। सरकार के इस कार्य से जनता को सन्तोष नहीं हुआ, क्योंकि प्रौद्योगिक शिक्षा के अभिलाषी सभी छात्रों को छात्रवृत्तियां नहीं प्राप्त हो पाती थीं। इसके अतिरिक्त, वे बहुत कम थीं और उनमें व्यय भी अधिक होता था। १९१७ में 'मारिसन समिति' (Morrison Committee) ने इन छात्रवृत्तियों के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये, परन्तु उनसे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। १९२१ में प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना के उपरान्त जनता ने तकनीकी और औद्योगिक शिक्षा की मांग को प्रबल किया। यह कहा गया कि इस शिक्षा की व्यवस्था भारत में ही की जाय। सरकार ने इसका निर्णय करने का कार्य लार्ड लिटन (Lytton) की अध्यक्षता में एक विशिष्ट समिति[1] को सौंप दिया। इसने विदेशों में अध्ययन करने वाले भारतीय छात्रों की कठिनाइयों का अध्ययन किया और उन्हें दूर करने के लिये अनेकों सुझाव दिये। पर समिति का सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव यह था कि भारत में प्रौद्योगिक, तकनीकी और औद्योगिक संस्थाओं का निर्माण किया जाय और उनमें उच्च-शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाय। भारतीयों को अपने देश में ही यह शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। अतः यह आवश्यक है कि इस शिक्षा के विभिन्न अङ्गों का शीघ्र अति शीघ्र विकास किया जाय।[2] इस सिफ़ारिश के फलस्वरूप भारत में जिन संस्थाओं का निर्माण किया गया, उनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

१. **बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट, कलकत्ता**—इसकी स्थापना भारत के सुविख्यात वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र बोस द्वारा की गई थी। इसमें वनस्पति विज्ञान, जीव-विज्ञान, रसायन शास्त्र तथा कृषि की शिक्षा एवं अनुसंधान की व्यवस्था है।

---

1. Committee on Indian Students in England, 1921-22.
2. "India has now been set on the road to self-government and autonomy, and it must be obvious that her sons and daughters ought to be able to receive their education within their own borders. We believe, therefore, that the only permanent solution of the problem is the development of education in India in all its branches as early as possible." *The Report of the Committee on Indian Students in England*, para 84.

२. **हारकोर्ट बटलर टेकनॉलोजिकल इंस्टीट्यूट, कानपुर**—इसकी स्थापना १९२१ में प्रौद्योगिक शिक्षा देने के लिये की गई।

३. **इम्पीरियल एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली**—इसमें कृषि की उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान-कार्य का प्रबन्ध है।

४. **इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइंस, बंगलौर**—इसकी स्थापना का श्रेय टाटा परिवार को है। इसमें विज्ञान की प्रायः सभी शाखाओं की शिक्षा की सुविधा है।

५. **इंडियन स्कूल ऑफ़ साइंस, धनबाद**—इसका निर्माण १९२६ में खान-सम्बन्धी शिक्षा देने के लिये किया गया।

अन्य संस्थायें—उपर्युक्त के अतिरिक्त कुछ अन्य संस्थायें भी उल्लेखनीय हैं, यथा—टेकनिकल इंस्टीट्यूट ऑफ़ कलकत्ता; गवर्नमेन्ट स्कूल ऑफ़ टेकनॉलोजी, मद्रास; जमशेदपुर टेकनिकल इंस्टीट्यूट, टाटा नगर; टेकनिकल इंस्टीट्यूट, रांची; विक्टोरिया जुबली टेकनिकल इंस्टीट्यूट, बम्बई; और आर० सी० टेकनिकल इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद। १९३७ में सम्पूर्ण भारत में ५३५ औद्योगिक, तकनीकी और औद्योगिक विद्यालय थे, जिनमें ३०,५०९ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

स्त्रियों की शिक्षा (१९२१–१९३७)

इस अवधि में नारी-जगत के प्रत्येक क्षेत्र में एक विलक्षण क्रान्ति परिलक्षित हुई। देश के कर्मठ नेताओं, निस्वार्थ समाज-सेवकों और स्वयं स्त्रियों ने अपनी सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति में सुधार करने के लिये जो प्रयास किये वे भारतीय इतिहास में बेजोड़ हैं। १९२९ में अजमेर के हरबिलास शारदा द्वारा प्रस्तावित 'बाल-विवाह निषेध विधेयक' को 'शारदा एक्ट' का रूप देकर १४ वर्ष से कम आयु वाली लड़की का विवाह दण्डनीय अपराध कर दिया गया। राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों को मतदान देने का अधिकार प्राप्त हो गया। इस प्रकार सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हो जाने के कारण स्त्रियों में अपूर्व बल का संचार हुआ और वे स्त्री-समाज के संगठन तथा उसके उत्कर्ष के लिये पूर्ण तन्मयता से लीन हो गईं। अपने इस कार्य-क्रम में उन्हें महात्मा गांधी का शुभ आशीर्वाद प्राप्त हुआ और उन के प्रगतिशील चरणों का अनुगमन करके स्त्रियों ने ऊँची दीवारों को जो उनको घेरे हुए खड़ी थीं, विध्वंस कर दिया। राष्ट्रपिता के पथ-प्रदर्शन में उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम के रण-स्थल में प्रवेश करके अपनी विच्छेद तथा पृथकता की प्रवृत्ति का अन्त कर दिया। इतना ही नहीं, स्त्रियों ने १९२६ में 'अखिल भारतीय स्त्री-

संघ' का निर्माण किया और १९२७ में 'अखिल भारतीय स्त्री-शिक्षा सम्मेलन' आयोजित किया, जिसमें उन्होंने पुरुषों के अनुरूप विविध प्रकार की शिक्षा की अधिकारिणी होने की मांग का नारा बुलन्द किया।

उपर्युक्त सभी कारणों के फलस्वरूप १९२१ से १९३७ तक स्त्री शिक्षा की प्रगति का बहुमुखी स्वरूप दिखाई देने लगा। इस काल में स्त्री-शिक्षा की विशेषता यह थी कि सह-शिक्षा (Co-education) के प्रति किसी प्रकार का विरोध नहीं रह गया। १९३२-३७ में लगभग सभी प्रान्तों में सह-शिक्षा का प्रचलन हो गया। लड़कों के विद्यालयों में शिक्षा पाने वाली लड़कियों का प्रतिशत ४३·४ था। इसके अतिरिक्त, कितने ही बालिका-शिक्षालयों का निर्माण हुआ और शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर और प्रत्येक प्रकार की शिक्षा-शाला में लड़कियों की उपस्थिति एक सामान्य बात हो गई। अपने कथन की पुष्टि में हम नीचे एक तालिका दे रहे हैं :—

बालिका-विद्यालयों एवं छात्राओं की संख्या[1]

शिक्षा-संस्थायें	१९२१-२२		१९३६-३७	
	विद्यालय	छात्रायें	विद्यालय	छात्रायें
प्राथमिक	२२,५७९	१,१९५,८९२	३२,२७३	२,६०७,०८६
मिडिल	५४८	८५,०७९	९७८	२१६,९६५
हाई स्कूल	१२०	२५,१३०	२८७	११४,४८१
आर्ट्स कॉलेज	१२	९३८	३१	६,०३९
विशिष्ट संस्थायें	२५८	११,१८४	४०४	२३,०२७
योग	२३,५१७	१३,१८,२९३	३३,९८९	२,९९७,४९८

उपर्युक्त आंकड़े भ्रमोत्पादक हो सकते हैं और प्रथम दृष्टि में यह स्वाभाविक विचार उत्पन्न हो सकता है कि इस अवधि में स्त्री-शिक्षा की प्रशंसनीय प्रगति हुई। प्रगति अवश्य प्रशंसनीय थी, परन्तु फिर भी स्त्रियों की शिक्षा

1. *Quinquennial Review of the Progress of Education* (1932–37), Chapter VI.

अत्यन्त पिछड़ी हुई दशा में थी। यथार्थता यह है कि सम्पूर्ण जनसंख्या में से केवल २.३८ प्रतिशत लड़कियों शिक्षा प्राप्त कर रही थीं और स्त्रियों की साक्षरता केवल ३ प्रतिशत थी।

हर्टाग समिति एवं स्त्री-शिक्षा

हर्टाग समिति के प्रखर बुद्धि सदस्यों से स्त्री-शिक्षा की वास्तविकता छिपी न रह सकी और उन्होंने स्त्री-शिक्षा का विस्तार करने के लिये निम्नलिखित सिफ़ारिशें कीं :—

१. बालिकाओं की शिक्षा को उतना ही महत्व दिया जाना चाहिये, जितना कि बालकों की शिक्षा को दिया जाता है। अतः दोनों की शिक्षा पर समान धन-राशि व्यय की जानी चाहिये, जो इस समय नहीं की जा रही है।

२. प्रत्येक प्रान्त में एक सुशिक्षित तथा अनुभवी महिला की नियुक्ति की जाय और उसे स्त्री-शिक्षा के प्रसार की योजनायें बनाने का कार्य सौंप दिया जाय।

३. समस्त स्थानीय संस्थाओं एवं शिक्षा समितियों में स्त्रियों को प्रतिनिधित्व दिया जाय।

४. बालिका-विद्यालयों के नियमित निरीक्षण के लिये निरीक्षिकाओं की संख्या में अभिवृद्धि की जाय।

५. स्त्रियों को उच्च व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

६. छोटे नगरों और ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

७. ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं के लिये अधिक प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण किया जाय।

८. लड़कियों के स्कूलों में अपव्यय तथा अवरोधन अत्यधिक है। अतः उन्हें रोकने का प्रयास किया जाय।

९. बालिकाओं को बालकों के विद्यालयों में प्राथमिक शिक्षा दी जाय।

१०. बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने में आर्थिक तथा सामाजिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतः उनके लिये शिक्षा को धीरे-धीरे अनिवार्य बनाया जाय।

११. हाई स्कूल में बालिकाओं के लिये बालकों से भिन्न पाठ्य-क्रम की व्यवस्था की जाय।

१२. बालिकाओं को गृह-विज्ञान, स्वास्थ्य, संगीत आदि विषयों की शिक्षा दी जाय।

१३. बालिकाओं के प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापिकाओं का अभाव है। यह बात ग्रामीण विद्यालयों के सम्बन्ध में विशेष रूप से सत्य है। अतः अध्यापिकाओं को अधिक वेतन और कार्य करने की उत्तम सुविधायें देकर ग्रामों में जाने के लिये प्रलोभित किया जाय।

१४. अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाय।

अन्त में समिति ने बलपूर्वक सिफ़ारिश करते हुए लिखा : "शिक्षा प्राप्त करना केवल पुरुष का ही विशेषाधिकार नहीं है, अपितु पुरुष और स्त्री दोनों का अधिकार समान है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय व्यवस्था को एवं स्वयं अपने को क्षति पहुँचाये बिना स्त्री और पुरुष में से कोई भी अकेला प्रगति नहीं कर सकता है। दोनों की शिक्षा में संतुलन करने का समय आ गया है। हमारा यह निश्चित मत है कि समग्र रूप से भारतीय शिक्षा की प्रगति के हित में शिक्षा-विस्तार की प्रत्येक योजना में स्त्री-शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिये।"[1]

मुसलमानों की शिक्षा (१९२१–१९३७)

भारतीय शिक्षा आयोग ने मुसलमानों की शिक्षा को विस्तृत करने के लिये अनेकों सुझाव दिये थे। सरकार ने हिन्दुओं का एक प्रतिद्वन्द्वी वर्ग निर्मित करने के उद्देश्य से उन सभी सुझावों को कार्य-रूप में परिणत किया था। परिणामतः १९२१ तक मुस्लिम-शिक्षा की निर्बाध प्रगति हुई। १९२१ से १९३७ तक की अवधि में उसका इतना अधिक प्रसार हुआ कि समग्र रूप में मुसलमानों में हिन्दुओं से अधिक साक्षरता थी। १९३७ में ३६,८८,८३९ मुसलमान शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, जिनमें से २८,८५,५५५ लड़के और ८,०३,२८४ लड़कियाँ थीं।

1. "The whole case of women's education rests on the claim that education is not the privilege of one sex, but equally the right of both and that neither one sex nor the other can advance by itself without a strain on the social and national system and injury to itself. The time has come to redress the balance.....We are definitely of opinion that, in the interest of the advance of Indian education as a whole, priority should now be given to the claims of girls' education in every scheme of expansion." *Hartog Committee Report*, p. 183.

हर्टाग समिति एवं मुस्लिम-शिक्षा

हर्टाग समिति ने मुस्लिम-शिक्षा का विशेष रूप से अध्ययन किया और इस सम्बन्ध में अपने विचार निम्नांकित प्रकार से व्यक्त किये :—

१. **मुस्लिम-शिक्षा की स्थिति**—मुस्लिम-शिक्षा अब भी पिछड़ी हुई दशा में है और सरकार ने मुसलमानों को विविध प्रकार की सुविधायें प्रदान करके उनकी शिक्षा को विकसित करने की चेष्टा की है।

२. **पृथक् एवं विशिष्ट स्कूल**—मुसलमानों की शिक्षा के लिये लगभग प्रत्येक स्तर पर पृथक् स्कूल और कॉलेज हैं। इनके अतिरिक्त विशिष्ट स्कूल भी हैं। इन स्कूलों से मुसलमानों की शिक्षा में विस्तार अवश्य हुआ है, परन्तु यह बात भी निर्विवाद है कि .इन स्कूलों के कारण अन्य जातियों की अपेक्षा मुसलमानों की शिक्षा का स्तर निम्नतर हो गया है। इससे मुस्लिम छात्रों का अत्यधिक अहित हो रहा है, क्योंकि वे शिक्षा-जगत् में अन्य जातियों के समकक्ष योग्यता नहीं प्राप्त कर पाते हैं। पृथक् एवं विशिष्ट स्कूल भारत के लिये घातक सिद्ध हो रहे हैं, क्योंकि वे साम्प्रदायिकता तथा वैमनस्य के बीज बो रहे हैं। अतः यह वांछनीय होगा कि मुसलमानों को सामान्य स्कूलों में शिक्षा दी जाय।[1]

दुर्भाग्यवश समिति के सुझावों की सरकार द्वारा उपेक्षा की गई और मुसलमानों के पृथक् तथा विशिष्ट स्कूल बन्द नहीं किये गये। इन स्कूलों ने मुसलमानों और हिन्दुओं के मध्य एक गहरी खाई निर्मित कर दी, जिसके भावी परिणाम अति घातक सिद्ध हुए।

हरिजनों की शिक्षा (१९२१–१९३७)

देश के नेताओं, समाज-सुधारकों, दलित वर्गों के पथ-प्रदर्शकों और स्वयं हरिजनों के आन्दोलनों के परिणामस्वरूप युगों से पददलित अछूत वर्गों में जागरण प्रारम्भ हो गया था। १९२१ में प्रान्तीय शिक्षा का संचालन-सूत्र भारतीय मंत्रियों के हाथ में आ जाने के कारण हरिजन-शिक्षा की प्रगति में

1. "Both in the public interest and in the interest of the Muhammadan coummunity, the sooner the segregate Muhammadan institutions are replaced by a system under which Muhammadan pupils in all stages will take their place in ordinary schools, side by side with pupils of other commnuties the better." *Report of the Hortog Committee*, p. 203.

तेज़ी आ गई। इस काल में हरिजनों की शिक्षा का विकास करने के लिये जो चेष्टायें की गईं, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है :—

१. **राजकीय प्रयास**—विभिन्न प्रान्तों में हरिजन-शिक्षा का विस्तार करने के लिये विभिन्न कार्य-क्रम अपनाया गया। कुछ प्रान्तों के विभिन्न भागों में पृथक् नीति का अनुसरण किया गया। पर इन सब का ध्येय समान था। हरिजनों को शिक्षा प्राप्त करने की प्रत्येक सम्भव सुविधा दी गई और विविध विधियों द्वारा उनको शिक्षा से लाभ उठाने के लिये आकृष्ट किया गया। १९३७ तक हरिजनों के लिये स्थापित किये गये सभी विशिष्ट स्कूलों को बन्द कर दिया गया, क्योंकि अनुभव ने बताया कि उन स्कूलों की उपस्थिति हिन्दुओं तथा हरिजनों के मध्य एक ऊँची दीवार खड़ी करती जा रही थी। १९३७ तक लगभग सभी प्रान्तों में हरिजन बालक सामान्य विद्यालयों में बिना किसी कठिनाई के अध्ययन करने लगे थे।

२. **महात्मा गांधी के प्रयास**—अस्पृश्यता के निवारण तथा हरिजन-शिक्षा की प्रगति में सर्वमहान् योग महात्मा गांधी ने दिया। अपने समस्त जीवन पर्यन्त गांधी जी ने हरिजनोत्थान के लिये अनवरत परिश्रम किया। १९२० में उन्होंने अति दृढ़तापूर्वक लिखा : "किसी भी कार्य क्रम में अस्पृश्यता को गौण स्थान प्रदान नहीं किया जा सकता है। इस कलंक को धोये बिना स्वराज्य एक निरर्थक शब्द है।"[1] "जब तक हम निर्बलों एवं असहायों की रक्षा नहीं करेंगे, तब तक स्वराज्य की बात करना व्यर्थ है।"[2] महात्मा गांधी के इन विचारों का सवर्ण हिन्दुओं पर १९३२ तक कोई व्यापक प्रभाव न पड़ा। उस वर्ष 'साम्प्रदायिक परिनिर्णय' (Communal Award) के विरोध में उन्होंने उपवास प्रारम्भ किया। ७ दिन के इस उपवास ने दलित वर्गों के विरुद्ध प्रवाहित होने वाली दूषित विचारधारा में आमूल परिवर्तन कर दिया और सम्पूर्ण भारत महात्माजी के निश्चय के समक्ष नवमस्तक होकर अस्पृश्यता को हिन्दू-समाज से समूल नष्ट करने के लिये तत्पर हो गया।

1. "Untouchability cannot be given a secondary place in the programme. Without the removal of that taint, Swaraj is a meaningless term." B. R. Ambedkar : *What Gandhi aad His Congress have done to the Untouchables*, p. 195.
2. "It is idle to talk of Swaraj so long as we do not protect the weak and the helpless." D. G. Tendulkar & Others, ***Gandhiji, His Life and Work***, p. 352.

१९३३ से गांधी जी ने 'हरिजन' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह लिखना अनावश्यक है कि गांधीजी के सतत परिश्रम के फलस्वरूप न केवल हरिजनों का काया-कल्प हुआ, अपितु उनमें शिक्षा का भी प्रचार हुआ।

३. **अम्बेदकर का प्रयास**—जो कार्य गांधी जी ने अखिल भारतीय पैमाने पर किया, उसी को डा० अम्बेदकर ने दलित-वर्गों के क्षेत्र में किया। अपने जातीय नेता, अम्बेदकर की अध्यक्षता में हरिजनों ने अपनी राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक मांगों को सरकार तथा जनता के समक्ष रखा और उनको उपलब्ध किया। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि हरिजनों में जागरण का सूत्रपात करने का श्रेय महात्मा गांधी के पश्चात् अम्बेदकर को ही प्राप्त है।

उपरिकथित प्रयासों के फलस्वरूप हरिजन-शिक्षा दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करने लगी।

अन्य पिछड़ी जातियों की शिक्षा

आदिवासी एवं पहाड़ी जातियाँ—खेद का विषय है कि भारतीय मंत्रियों ने आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा के प्रति ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप इस काल में उनकी शिक्षा की प्रगति बहुत मन्द रही। मिशनरियों ने अवश्य अपने शिक्षा-कार्य को जारी रखा। परिणामतः छात्रों की संख्या में वृद्धि तो हुई, परन्तु यथार्थ आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वृद्धि किस अनुपात में हुई।

अपराधी जातियाँ—पूर्व काल के समान इस अवधि में भी अपराधी जातियों को शिक्षित करने के लिये विशेष प्रयास किये गये। मद्रास प्रान्त में १९३७ में १,१०३ बालक एवं बालिकायें शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और शिक्षा उनके लिये अनिवार्य थी। बम्बई प्रान्त में अपराधी जातियों की शिक्षा की देख-भाल के लिये एक विशेष शिक्षा-अधिकारी नियुक्त किया गया। बालकों और बालिकाओं के लिये दिन और रात्रि दोनों में चलने वाले विद्यालय थे। बंगाल में अपराधी जातियों की शिक्षा के लिये मिशनरी लोग क्रियाशील थे और उन्होंने विद्यालय तथा छात्रावास निर्मित किये। संयुक्त प्रान्त में अपराधी जातियों की शिक्षा की व्यवस्था संतोषजनक थी, परन्तु पंजाब में उनके विद्यालयों की संख्या कम हो गई थी। बिहार और उड़ीसा में भी अपराधी जातियों के बालकों एवं बालिकाओं के लिये विशिष्ट स्कूलों का प्रबन्ध था।

राष्ट्रीय शिक्षा (१९२१–१९३७)

पिछले अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है कि असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन का भी १९२२ में अन्त हो गया। परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा की जिस विचारधारा को आन्दोलन ने जन्म दिया था, वह निरन्तर प्रवाहित होती रही। उससे प्रभावित होकर कुछ दूरदर्शी एवं विवेकी भारतीयों ने ऐसी राष्ट्रीय संस्थाओं का निर्माण किया, जिनमें नवयुवकों का मानसिक विकास तथा चारित्रिक उत्थान करना सम्भव हो गया। इन राष्ट्रीय विद्यालयों पर हम नीचे विहंगम दृष्टिपात कर रहे हैं।

१. **जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली**—इसकी स्थापना के कारण पर पिछले अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। १९२५ में इसे अलीगढ़ से उठा कर दिल्ली ले आया गया। यह संस्था अपने स्थापन-काल से ही राष्ट्रीय शिक्षा का विकास करने का अनुपम कार्य कर रही है और सरकार से आर्थिक सहायता नहीं लेती है। यह अपने अन्तर्गत निम्नाङ्कित संस्थाओं का संचालन कर रही है :—

(अ) **एक सावास कॉलेज**—इसमें साहित्यिक विषयों तथा समाज-विज्ञानों की उच्च शिक्षा प्रदान की जाती है।

(ब) **एक सावास हाई स्कूल**—यह बिल्कुल आधुनिक ढंग का है और इसमें कला-कौशल की कुशलता को समुन्नत करने के लिये विद्यार्थियों को प्रत्येक प्रकार की सुविधा उपलब्ध है।

(स) **एक सावास प्राथमिक स्कूल**—इसका संचालन 'प्रोजेक्ट पद्धति' (Project Method) के अनुसार किया जाता है।

(द) **उर्दू अकादमी**—यह अकादमी (Acadamy) उर्दू का साहित्य प्रकाशित करती है।

२. **विश्व भारती**—यह अखिल भारतीय संस्था भी आर्थिक सहायता के लिये सरकार की कृपा पर निर्भर नहीं है। इसकी स्थापना ६ मई १९२२ को कवि-सम्राट, रवीन्द्रनाथ टैगोर ने की थी। इस संस्था के प्रमुख उद्देश्य हैं—(१) प्राच्य संस्कृतियों में सामंजस्य स्थापित करके उनमें घनिष्टता उत्पन्न करना; (२) पाश्चात्य विज्ञान तथा संस्कृति का समरूप अध्ययन करना; और (३) पूर्व तथा पश्चिम में निकट सम्पर्क स्थापित करके विश्व-शान्ति की दशाओं को जन्म देना।

विश्व-भारती सावास एवं सह-शिक्षा की संस्था है, और यहाँ न केवल

भारत के अपितु सुदूर एशिया तथा यूरोप से भी छात्र एवं छात्रायें अध्ययन करने आते हैं। इस संस्था में अग्रलिखित विभाग हैं :—(१) **विद्याभवन**—इसमें भारतीय भाषाओं, भारतीय दर्शन आदि का अनुसंधान-कार्य किया जाता है;(२) **शिक्षा-भवन**—यह एक कॉलेज है जिसमें उच्च शिक्षा दी जाती है; (३) **चीन-भवन**—इसमें भारतीय छात्रों को चीनी संस्कृति और चीनी छात्रों को भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है; (४) **शिल्प-भवन**—इसमें कुटीर-उद्योग-धंधों की शिक्षा दी जाती है; (५) **श्री-निकेतन**—यहाँ छात्रों में ग्रामों के पुनर्संङ्गठन करने के कार्य में अभिरुचि उत्पन्न की जाती है; (६) **कला-भवन**—इसमें ललित कलाओं और विशेष रूप से चित्र-कला की शिक्षा की व्यवस्था है; और (७) **संगीत-भवन**—इसमें संगीत और नृत्य की शिक्षा दी जाती है।

३. **गुरुकुल विश्वविद्यालय**—इसकी स्थापना १९०२ में पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा ने की थी। १९२४ में इसको उठाकर कांगड़ी ले आया। यह सरकार से सहायता-अनुदान नहीं लेती है। इसमें शिक्षा की अवधि १४ वर्ष की है। यहाँ 'स्नातक' (Graduate) और 'वाचस्पति' (Doctorate) की उपाधियाँ दी जाती हैं। लड़के लड़कियाँ दोनों इस विश्वविद्यालय में प्रवेश ले सकते हैं और उनको प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुसार शिक्षा दी जाती है।

४. **दारुल-उलूम, देवबन्द**—इसे विश्व का चतुर्थ मुस्लिम विश्वविद्यालय माना जाता है। यह सावास संस्था है और इसमें अध्ययन करने के लिये संसार के विभिन्न भागों से विद्यार्थी आते हैं। यहाँ अरबी, फ़ारसी और यूनानी चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा प्रदान की जाती है।

५. **दारुल-उलूम नदवत्तुल उलेमा**—यह भी सावास विद्यालय है। इसकी रूप-रेखा बहुत कुछ आधुनिक ढंग के विश्वविद्यालय की सी है। परन्तु इसके साथ ही मुस्लिम परम्पराओं का परित्याग नहीं किया गया है।

प्रौढ़-शिक्षा[1] (१९२१-१९३७)

इस काल की एक प्रमुख विशेषता थी प्रौढ़ शिक्षा की योजना को कार्यान्वित करना। इसका श्रेय भारतीय मंत्रियों को है, जिन्होंने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ किया। यद्यपि उनके प्रयास अनियमित एवं अपर्याप्त थे, फिर भी उन्होंने अपने देशवासियों और सरकार को ऐसे क्षेत्र में कार्य करने के लिये अनुप्राणित किया, जहाँ शिक्षा प्रसार की अत्यधिक आवश्यकता थी, क्योंकि १९४१ में भी उस वर्ष की जनगणना रिपोर्ट के अनु-

1. Adult Education.

सार भारत में ८८ प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर थे। सुविधा की दृष्टि से हम प्रौढ़-शिक्षा का अध्ययन दो कालों के अन्तर्गत करेंगे :—(१) १९२१ से पूर्व; और (२) १९२१ से १९३७ तक।

१९२१ से पूर्व प्रौढ़-शिक्षा

१९१७ से पूर्व प्रौढ़-शिक्षा के लिये किये गये प्रयास प्रायः नगण्य थे। निसन्देह कुछ रात्रि-विद्यालयों[1] का देश के विभिन्न भागों में निर्माण किया गया था, परन्तु उनका उद्देश्य फेक्ट्रियों आदि में कार्य करने वाले उन बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देना था, जिन्हें दिन में अध्ययन करने के लिये समय नहीं मिलता था। कुछ वयस्क भी उनमें शिक्षा ग्रहण करते थे, परन्तु विद्यालयों का प्रमुख ध्येय उन्हें शिक्षा देना नहीं था।

भारतीय शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट के अनुसार बम्बई प्रान्त में १८८१-८२ में १३४ वर्नाक्यूलर रात्रि-विद्यालय थे, जिनमें ३,९१९ छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अतिरिक्त दिवा-विद्यालयों[2] से सम्बद्ध २२३ रात्रि-विद्यालय थे, जिनमें ४,९६२ वयस्क उपस्थित होते थे। इन वयस्क-विद्यालयों में साधारण लिखना, पढ़ना और अंकगणित की शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयों की लोकप्रियता एवं माँग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। इनकी सफलता देखकर आयोग ने सिफारिश की कि देश में सभी सम्भव स्थानों पर रात्रि-विद्यालय का संचालन किया जाय। परन्तु दुर्भाग्यवश इस ओर रंच मात्र भी ध्यान नहीं दिया गया और वयस्क-साक्षरता[3] की प्रगति न हो सकी। यदि सरकार ने आयोग के सुझाव स्वीकार करके अंशकालिक[4] रात्रि-विद्यालय स्थापित कर दिये होते, तो आज यह देश निरक्षरता की कालिमा से मुक्त होता।

१९०१-०२ में केवल मद्रास, बम्बई और बंगाल में रात्रि-विद्यालय संचालित थे, जिनमें प्रौढ़-शिक्षा का प्रबन्ध था। परन्तु सरकार की उपेक्षा के फलस्वरूप ये परिपल्लवित न हो सके और १९१७ तक इनकी संख्या में निरन्तर ह्रास होता चला गया।

१९१९ के अधिनियम द्वारा भारतीयों को अति विशाल संख्या में मतदान का अधिकार प्राप्त हो गया। अतः प्रौढ़-शिक्षा में जन-साधारण की रुचि उत्पन्न होना स्वाभाविक था, क्योंकि यह अनुभव किया गया कि शिक्षा के

1. Night-Schools. 2. Day Schools. 3. Adult Literacy.
4. Part-time.

अभाव में भारतीय अपने मताधिकार का उचित उपयोग नहीं कर सकेंगे। इस परिवर्तित दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप देश में वयस्क-साक्षरता के लिये क्रियात्मक पग उठाये गये। सरकार ने भी आर्थिक सहायता देकर इस पुनीत कार्य में योग दिया। परिणामतः संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बम्बई, मध्य प्रान्त, बंगाल और मद्रास में रात्रि-विद्यालयों तथा रात्रि-कक्षाओं का आयोजन किया गया।

प्रौढ़-शिक्षा (१९२१-३७)

१९२१ में भारतीय मंत्रियों ने प्रौढ़-शिक्षा की समस्या में अत्यधिक रुचि व्यक्त की। फलस्वरूप १९२७ तक भारत के विभिन्न प्रान्तों में वयस्क-साक्षरता को लोकप्रिय बनाने के लिये अनवरत परिश्रम किया गया। १९२७ तक सम्पूर्ण भारत में ११,१५८ स्कूल और कक्षायें पुरुषों के लिये तथा ४७ स्त्रियों के लिये संचालित की जा चुकी थीं। इनमें पुरुषों एवं स्त्रियों की संख्या क्रमशः २८९,००१ और १,३५१ थी। परन्तु प्रौढ़-शिक्षा ने समतल धरातल पर अपना अभियान प्रारम्भ किया ही था कि १९२७ के विश्वव्यापी-आर्थिक संकट ने उसके मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। धनाभाव में वयस्क-साक्षरता की ओर से सरकार और जनता दोनों ने मुख मोड़ लिया। फलतः प्रौढ़-विद्यालयों की संख्या क्षीण होती चली गई। १९३७ में इस प्रकार के पुरुष-विद्यालयों की संख्या २,०१६ और स्त्री-विद्यालयों की ११ रह गई। उनमें क्रमशः ६२,६९१ पुरुषों तथा ९४६ स्त्रियों को साक्षर बनाया जा रहा था।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि १९३७ तक प्रौढ़-शिक्षा के लिये जो चेष्टायें की गईं, उनका कोई महत्वपूर्ण परिणाम नहीं निकला। परन्तु यह बात सर्वमान्य है कि उन चेष्टाओं ने वयस्क-शिक्षा की नींव डाल दी और उसी नींव पर उपयुक्त परिस्थितियों के उत्पन्न हो जाने पर प्रौढ़-शिक्षा के भवन का निर्माण किया गया। जिसकी छाया में असख्यों निरक्षर वयस्क साक्षर बन कर देश के बुद्धिमान नागरिक और समाज के लाभप्रद सदस्य बन सके।

सारांश

द्वैध शासन की स्थापना— १९१९ के अधिनियम के अनुसार भारत में द्वैध शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई। प्रान्तों में दोहरा शासन स्थापित

हो गया। शिक्षा-विभाग को भारतीय मंत्रियों की अध्यक्षता में हस्तान्तरित कर दिया गया। मंत्रियों ने शिक्षा-प्रसार का कार्य प्रारम्भ किया। परन्तु उन्हें अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सर्व महान् कठिनाई यह थी कि उन्हें पर्याप्त धन नहीं मिलता था, क्योंकि वित्त-विभाग पर अँग्रेज मंत्रियों का अधिकार था। फिर भी मंत्रियों की चेष्टाओं के फलस्वरूप शिक्षा का सराहनीय विस्तार हुआ।

हर्टाग समिति—१९२७ में हर्टाग समिति की नियुक्ति हुई। इस समिति ने भारतीय शिक्षा के सभी अंगों का अध्ययन किया और उनकी उन्नति के लिये अमूल्य सुझाव दिये।

उच्च शिक्षा—इस काल में उच्च शिक्षा की आशाजनक उन्नति हुई। दिल्ली, नागपुर, आंध्र, आगरा और अन्नमलई विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ और पुराने विश्वविद्यालयों का पुनर्गठन किया गया। विश्वविद्यालयों में अनुसंधान-कार्य को प्रोत्साहित किया गया, सैनिक शिक्षा की व्यवस्था की गई और छात्रों के स्वास्थ्य की देख-भाल के लिये चिकित्सक नियुक्त किये गये। हर्टाग समिति ने विश्वविद्यालयों के सुधार के लिये अनेकों सुझाव दिये।

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा की उतनी प्रगति नहीं हुई, जितनी विश्वविद्यालय शिक्षा की। फिर भी माध्यमिक शिक्षा की आश्चर्यजनक उन्नति हुई। अधिकांश स्कूलों में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें थीं। शिक्षकों की दशा में सुधार किया गया। हर्टाग समिति ने सिफ़ारिश की कि हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम में औद्योगिक एवं व्यापारिक विषयों को स्थान दिया जाय।

प्राथमिक शिक्षा—प्राथमिक शिक्षा की अति तीव्र प्रगति हुई। बम्बई, आसाम, संयुक्त प्रान्त और बङ्गाल में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये अधिनियम पारित किये गये। हर्टाग समिति ने प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति पर ज़ोर दिया और कहा कि इस शिक्षा में होने वाले अपव्यय तथा अवरोधन को रोकना आवश्यक है।

व्यावसायिक शिक्षा—इस काल में व्यावसायिक शिक्षा का प्रवाह निर्बाध रहा। सबसे अधिक प्रगति क़ानून की शिक्षा की हुई। चिकित्सा-शिक्षा के लिये कॉलेज एवं स्कूल खोले गये। इंजीनियरिंग, पशु-चिकित्सा, वन-विज्ञान, वाणिज्य, कला, कृषि और तकानीकी तथा औद्योगिक शिक्षा की भी व्यवस्था की गई।

स्त्रियों की शिक्षा—स्त्रियों की शिक्षा का अपूर्व प्रसार हुआ। इसमें शारदा एक्ट और गांधी जी ने विशेष योग दिया। स्वयं स्त्रियों ने अपनी

शिक्षा के लिये आन्दोलन किये। सह-शिक्षा के प्रति विरोध समाप्त हो गया। हर्टाग समिति ने स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये विशेष रूप से सिफ़ारिश की।

मुसलमानों की शिक्षा—मुसलमानों की शिक्षा का इतना विस्तार हुआ कि हिन्दुओं की अपेक्षा उनमें अधिक साक्षरता हो गई। हर्टाग समिति ने मुसलमानों के लिये पृथक् तथा विशिष्ट स्कूलों की निन्दा की और उनको बन्द करने का सुझाव दिया।

हरिजनों की शिक्षा—हरिजनों में शिक्षा का प्रसार करने का श्रेय गांधीजी और अम्बेदकर को है। सरकार ने भी हरिजनों की शिक्षा को प्रोत्साहित किया।

अन्य जातियों की शिक्षा—आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा की ओर सरकार ने विशेष ध्यान नहीं दिया। अपराधी जातियों के बालकों तथा बालिकाओं की शिक्षा के लिये मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त प्रान्त, बिहार और उड़ीसा में उचित व्यवस्था थी।

राष्ट्रीय शिक्षा—राष्ट्रीय शिक्षा के लिये कुछ कर्मठ भारतीयों ने विशिष्ट शिक्षा-संस्थायें स्थापित कीं। इनमें प्रमुख थीं:—जामिया मिलिया इस्लामिया, विश्व-भारती, गुरुकुल विश्वविद्यालय, दारुल-उलूम और दारुल-उलूम नदवत्तुल उलेमा।

प्रौढ़ शिक्षा—प्रौढ़-शिक्षा इस काल की एक प्रमुख विशेषता थी। १९१७ से पूर्व प्रौढ़-शिक्षा के लिये प्रायः कुछ भी नहीं किया गया था। १९०२ तक केवल मद्रास, बम्बई और बंगाल में रात्रि-विद्यालय संचालित थे। १९२१ के पश्चात् प्रौढ़-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसके लिये भारतीय मंत्री प्रशंसा के पात्र हैं।

TEST QUESTIONS

1. Examine critically the main recommendations of the Hartog Committee regarding the improvements necessary in Primary Education.
2. What were the views of the Hartog Committee on 'wastage' and 'stagnation' in Primary Education? What measures did it suggest to over come them?

3. Write a short essay on the progress of Adult Education up to the year 1937.
4. Trace, in brief, the development of women's education from 1921 to 1937. What, in your opinion, is the contribution of the Hartog Committee to women's education ?
5. Trace the development of vocational education between 1921 and 1937.
6. Trace the growth of University Education in India from 1921 to 1937.

अध्याय १५

प्रान्तीय स्व-शासन में शिक्षा की प्रगति

(१९३७-१९४७)

अपने स्वभावगत दोषों एवं भारतीय कांग्रेस के विरोध के परिणामस्वरूप द्वैध-शासन प्रणाली असफल सिद्ध हुई। वह न तो निर्वाचक-मण्डल को राजनीतिक जागरण का प्रकाश ही दे सकी और न उत्तरदायी शासन की वास्तविक शिक्षा ही। अतः कांग्रेस ने यह राष्ट्रीय मांग ऊँची की कि भारत के लिये शीघ्र ही पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर संविधान बनाने के लिये एक गोलमेज़ सम्मेलन बुलाया जाय। १९३० से १९३२ तक गोलमेज़ सम्मेलन के तीन अधिवेशन लन्दन में हुए। सम्मेलन ने जो भी निश्चय किये वे भारतीय राष्ट्रीयता की दृष्टि से अत्यन्त असन्तोष-प्रद थे। परन्तु इन्ही निर्णयों के आधार पर १९३५ का 'भारत-सरकार अधिनियम' (Government of India Act) बनाया गया और अप्रैल १९३७ में प्रचलित कर दिया गया।

प्रान्तीय स्व-शासन की स्थापना

१९३५ के अधिनियम ने द्वैध शासन को समाप्त कर दिया और प्रान्तीय प्रशासन के सम्पूर्ण क्षेत्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना की। प्रान्तों में संरक्षित एवं हस्तान्तरित विषयों का भेद मिटा दिया गया और समस्त प्रान्तीय

विषय लोक-प्रिय भारतीय मंत्रियों के उत्तरदायित्व के क्षेत्र में समाविष्ट कर दिये गये। शिक्षा भी इन्हीं विषयों में से एक थी। नये संविधान के अन्तर्गत १९३७ में ११ प्रान्तों में से ६ में कांग्रेस के मंत्रिमंडल बने। अतः यह आशा की जाने लगी कि इन मंत्रिमंडलों की अध्यक्षता में शिक्षा का पुनर्गठन करने का कार्य दृढ़ता, सुचारुता एवं कुशलता पूर्वक सम्पन्न किया जायगा। पर दैव को कुछ और ही मंजूर था। भारतीयों की इच्छा के विरुद्ध देश को द्वितीय विश्व-युद्ध में फँसा देने के प्रश्न को लेकर कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने नवम्बर १९३९ में अपने पदों से त्यागपत्र दे दिये। युद्ध के आवरण में ब्रिटिश भारत में निरंकुश शासन प्रारम्भ हो गया और प्रान्तीय सरकारों पर केन्द्रीय सरकार का पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो गया। फलस्वरूप देश में शिक्षा-विकास की जो आशा व्याप्त थी, उस पर असमय ही तुषारापात हो गया। युद्ध के उपरान्त १९४५-४६ के सामान्य निर्वाचन में कांग्रेस को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। इस बार अप्रैल १९४६ में ६ के स्थान पर ८ प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने। उस समय से लेकर १५ अगस्त १९४७ तक कांग्रेसी मंत्रिमंडल अपने पद पर रहे।

इस प्रकार प्रान्तीय स्व-शासन की १० वर्ष की अवधि में केवल ५ वर्ष प्रान्तीय शासन का सूत्र जन-प्रिय मंत्रियों के हाथ में रहा। परन्तु इस अवधि में भी अंग्रेजों के निरंकुश शासन के नग्न रूप के विरुद्ध कांग्रेस का आन्दोलन चलता रहा और सम्पूर्ण जनता का ध्यान उसी पर केन्द्रित रहा। ऐसी परिस्थिति में यह आश्चर्य की बात नहीं है कि राष्ट्रीय नेता शिक्षा के पुनर्गठन के लिये पर्याप्त धन और समय नहीं दे सके। अतः प्रान्तीय स्व-शासन में शिक्षा का वैसा विस्तार एवं विकास न हो सका जैसा कि होना चाहिये था।

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा कार्य (१९३७–४७)

द्वैध शासन में केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा से किसी प्रकार का प्रयोजन नहीं रखा था। १९३५ के अधिनियम ने शिक्षा के कार्यों को दो स्पष्ट भागों में विभक्त कर दिया—केन्द्रीय एवं प्रान्तीय। अतः १९३७ से केन्द्रीय सरकार पुनः पूर्व के समान शिक्षा में रुचि लेने लगी। १९४६ में बनने वाली अन्तरिम सरकार (Interim Government) में पं० जवाहरलाल नेहरू वाइसराय की कार्यकरिणी समिति के उपसभापति नियुक्त हुए। फलतः केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-विभाग पर भारतीयों का अधिकार स्थापित हो गया। उसी समय से पं० नेहरू की अध्यक्षता में केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देना प्रारम्भ किया और विभिन्न समितियों तथा संस्थाओं का निर्माण किया, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख थीं :—

१. केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड[1]

इस बोर्ड की स्थापना १९२० में हुई थी। इसका प्रमुख उद्देश्य प्रान्तीय एवं केन्द्रीय शिक्षा-नीतियों में सामंजस्य स्थापित करना और केन्द्रीय सरकार को शिक्षा-सम्बन्धी महत्वपूर्ण विषयों पर परामर्श देना था। यद्यपि बोर्ड ने अति लाभप्रद कार्य किया तथापि आर्थिक संकट के कारण इसके अस्तित्व का अन्त कर दिया गया। हर्टाग समिति ने इस केन्द्रीय बोर्ड के भंग किये जाने पर दुख प्रकट किया और इसके पुनर्निर्माण का सुझाव दिया। फलस्वरूप १९३५ में इसको पुनर्जीवित किया गया। १९३७ से १९४७ तक की अवधि में इसे समुचित रूप से संगठित करके भारतीय शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था करने का कार्य इसको सौंप दिया गया। उसी समय से यह बोर्ड, भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में विविध कार्यों का अति कुशलता से संचालन करता चला आ रहा है। इसका अध्यक्ष केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री और इसके सदस्य प्रान्तीय शिक्षा-मंत्री एवं शिक्षा-संचालक होते हैं। अपने वार्षिक अधिवेशन में बोर्ड, शिक्षा की प्रगति पर पुनर्विचार करता है और प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा-प्रसार के सम्बन्ध में परामर्श देता है। समय-समय पर शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने के लिये समितियों की नियुक्ति भी करता है। उदाहरणार्थ इसी बोर्ड की सिफ़ारिश के फलस्वरूप 'एबट व वुड समिति' की नियुक्ति हुई थी।

२. केन्द्रीय शिक्षा-सचिवालय[2]

इस सचिवालय का निर्माण १९४५ में हुआ और स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त इसको मंत्रालय (Ministry) का रूप प्रदान किया गया। यह भारत सरकार के शिक्षा-परामर्शदाता की अध्यक्षता में कार्य करता है। केन्द्रीय सरकार के समस्त शिक्षा-कार्यों पर इसी का नियंत्रण है और यही उनका नियोजन करता है।

३. केन्द्रीय शिक्षा-सूचना कार्यालय[3]

इस कार्यालय का प्रमुख कार्य शिक्षा-सम्बन्धी तथ्यों तथा आंकड़ों को एकत्रित करना और प्रान्तीय सरकारों एवं शिक्षा-संस्थाओं की शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना है। यह भारतीय शिक्षा का विवरण एवं शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें तथा पत्रिकायें भी प्रकाशित करता है।

1. Central Advisory Board of Education.
2. Central Secretariat in Education.
3. Central Bureau of Education.

४. विश्वविद्यालय अनुदान-समिति[1]

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की सिफ़ारिश के अनुसार इस समिति का निर्माण १९४५ में किया गया। प्रारम्भ में इसका अधिकार-क्षेत्र केवल बनारस, अलीगढ़ और दिल्ली विश्वविद्यालयों तक ही सीमित था। परन्तु १९४७ में इसको पुनर्संगठित करके सभी विश्वविद्यालयों को इसके अन्तर्गत रख दिया गया। यह समिति विभिन्न विश्वविद्यालयों की शिक्षा में सामंजस्य रखती है, उनके लिये सहायता-अनुदान की केन्द्रीय सरकार से सिफ़ारिश करती है और इस प्रकार दिये गये अनुदान की देख-भाल रखती है।

ऐबट व वुड रिपोर्ट (१९३६—३७)[2]

'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' की सिफ़ारिश के अनुसार 'ऐबट व वुड' समिति की नियुक्ति की गई। ए० ऐबट (A. Abbott) इंगलैन्ड के शिक्षा-बोर्ड के टेकनिकल स्कूलों का भूतपूर्व चीफ़ इंसपेक्टर (Chief Inspector of Technical Schools, Board of Education) था। एस० एच० वुड (S. H. Wood) इंगलैन्ड के शिक्षा-बोर्ड का डाइरेक्टर ऑफ़ इंटेलिजेन्स (Director of Intelligence) था। भारत-सरकार के निमंत्रण पर ये दोनों शिक्षा-विशेषज्ञ १९३६-३७ की शरद् ऋतु में भारत आये। उनके पास समय का अभाव था। अतः उन्होंने केवल पंजाब, दिल्ली और संयुक्त प्रान्त का परिभ्रमण करके तत्कालीन शिक्षा की जाँच की और जून १९३७ में सरकार के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। यही रिपोर्ट 'ऐबट व वुड रिपोर्ट' के नाम से विख्यात है। यह रिपोर्ट दो भागों में विभाजित है—(१) वुड द्वारा लिखी गई सामान्य शिक्षा एवं उसके संगठन पर रिपोर्ट, और (२) ऐबट द्वारा लिखी गई व्यावसायिक शिक्षा पर रिपोर्ट। शिक्षा के इन अंगों पर दिये गये सुझावों का विवरण निम्नांकित है :[3]—

(क) सामान्य शिक्षा सम्बन्धी सुझाव[4]

१ निम्न कक्षाओं में शिक्षण का कार्य दीक्षित अध्यापिकाओं द्वारा किया जाय।

२. प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षा को विद्यार्थियों की स्वाभाविक अभिरुचियों तथा क्रियाओं पर आधारित किया जाय, न कि पुस्तकों पर।

---

1. University Grants Committee.
2. Abbott and Wood Report.
3. *Abbott and Wood Report*. pp. 100-19.
4. Recommendations on General Education.

३ निम्न-माध्यमिक (Lower Secondary) कक्षाओं में अंग्रेजी के अध्ययन पर बल न दिया जाय।

४. हाई स्कूल तक की शिक्षा भारतीय भाषाओं के माध्यम से दी जाय।

५. अंग्रेजी के शिक्षण को साहित्यिक रूप न दिया जाय, अपितु उसे अधिक व्यावहारिक बनाया जाय।

६. रचनात्मक हस्तकार्य की शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाय और उसे सभी स्कूलों के पाठ्य-क्रम में स्थान दिया जाय।

. ग्रामीण मिडिल स्कूलों के पाठ्य-क्रम में ग्रामीण परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार विषयों को सम्मिलित किया जाय।

८. अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय। प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक कम से कम मिडिल पास हों। उनके लिये दीक्षा-काल ३ वर्ष का हो। अध्यापकों के लिये अभिनवन पाठ्य-क्रम की व्यवस्था की जाय।

९. शिक्षा का प्रबन्ध करने वाली स्थानीय संस्थाओं पर सरकार अधिक नियंत्रण रखे।

१०. विद्यालयों के नियमित निरीक्षण के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति की जाय और उन्हें कार्य करने की स्वतंत्रता दी जाय।

(ख) व्यावसायिक शिक्षा-सम्बन्धी सुझाव[1]

१. व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार देश के उद्योगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया जाय।

२. प्रत्येक प्रान्त में व्यावसायिक शिक्षा का रूप वहाँ के उद्योगों, व्यापारों तथा परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित किया जाय।

३. व्यावसायिक शिक्षा को उसी पद और स्तर पर रखा जाय, जिस पर साहित्यिक शिक्षा है।

४. सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षाओं को एक दूसरे से विभिन्न न समझा जाय, अपितु इन्हें एक निरन्तर होने वाली प्रक्रिया का पूर्वकालीन एवं उत्तरकालीन रूप माना जाय।

५. सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षाओं के साधन तथा लक्ष्य विभिन्न हैं। अतः दोनों प्रकार की शिक्षाओं के लिये पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था की जाय।

---

1. Recommendations on Vocational Education.

६. कुटीर उद्योग-धंधों में लगे हुए व्यक्तियों को उचित व्यावसायिक एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाय।

७. उद्योग एवं व्यापार और उद्योग एवं शिक्षा में निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिये प्रत्येक प्रान्त में 'व्यावसायिक शिक्षा परामर्शदात्री समिति[1]' का संगठन किया जाय।

८. उद्योगपति, भवन, सामग्री और धन देकर व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित करें।

९. पूर्ण सामयिक व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना की जाय। ये विद्यालय दो प्रकार के होने चाहिये—(१) जूनियर वोकेशनल स्कूल, और (२) सीनियर वोकेशनल स्कूल। जूनियर स्कूल में छात्र ८ वीं कक्षा पास करके प्रवेश करेंगे और उनका पाठ्य-क्रम ३ वर्ष का होगा। सीनियर स्कूल में ११ वीं कक्षा के उपरान्त २ वर्ष का पाठ्य-क्रम होगा।

१०. जो व्यक्ति विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए हैं, उनको शिक्षा देने के लिये 'अंशकालिक व्यावसायिक स्कूल' स्थापित किये जायँ। इनमें शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक कर्मचारियों को मालिकों द्वारा एक सप्ताह में २½ दिन की छुट्टी दी जाय।

११. व्यावसायिक स्कूलों का पाठ्य-क्रम पूर्ण करने वाले छात्रों को प्रमाण-पत्र (Certificates) प्रदान किये जायँ।

१२. जिन औद्योगिक क्षेत्रों की जनसंख्या कम से कम ५० हजार हो, वहाँ जूनियर और सीनियर टेकनिकल स्कूलों का निर्माण किया जाय।

१३. कला एवं हस्तकौशल के विद्यालयों की स्थापना एवं संचालन में सरकार सहयोग प्रदान करे।

१४. व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त छात्रों को जीविकोपार्जन के लिये व्यवसाय निश्चित करने में सहायता देने के विचार से उचित परामर्श दिया जाय।

रिपोर्ट का मूल्याङ्कन

ऐबट और वुड अपने समय के प्रसिद्ध शिक्षा-मर्मज्ञ थे। ऐबट तो तत्कालीन व्यावसायिक शिक्षा में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका था। यद्यपि इन शिक्षा-मर्मज्ञों के पास समय का अभाव था और वे सम्पूर्ण भारत का परिभ्रमण नहीं कर सके, तथापि अपने सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर उन्होंने सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये, वे उस समय की परिस्थितियों तथा वास्तविक आवश्यकताओं को देखते हुए बहुमूल्य एवं व्यावहारिक थे। परन्तु भारत का दुर्भाग्य था कि इन सुझावों को क्रियान्वित

1. Advisory Council for Vocational Education.

न किया जा सका, क्योंकि शीघ्र ही द्वितीय महायुद्ध के भयंकर विस्फोट ने सम्पूर्ण विश्व को आतंकित कर दिया। इस संकटकालीन परिस्थिति का बहाना लेकर भारतीय शिक्षा के प्रति उदासीन ब्रिटिश सरकार ने 'एबट व वुड रिपोर्ट' के विषय में सोचना ही बन्द कर दिया।

उच्च शिक्षा (१९३७–१९४७)

इस अवधि में विश्वविद्यालय-शिक्षा का विशाल विस्तार हुआ और विश्वविद्यालयों में शिक्षा-ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। १९३७ में इन छात्रों की संख्या १२६, २२८ थी, परन्तु १९४७ में यह संख्या बढ़कर २४१, ७९४ हो गई। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि १९४७ में भारत के अन्तर्गत वे सभी विश्वविद्यालय नहीं थे, जो १९३७ में थे, क्योंकि उनमें से कुछ पाकिस्तान के अधिकार-क्षेत्र में पहुँच गये थे।

शिक्षा-विस्तार के कारण

१९३७ से १९४७ तक विश्वविद्यालय शिक्षा में विस्तार होने के अनेकों कारण थे, यथा :—

१. विश्व-युद्ध एवं 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के कारण जन-साधारण में आविर्भूत होने वाली सर्वव्यापक जागृति;
२. माध्यमिक शिक्षा का विस्तार;
३. स्त्रियों एवं पिछड़ी जातियों में उच्च शिक्षा ग्रहण करने की उत्कण्ठा;
४. युद्ध के कारण नगरीयकरण की तीव्र प्रक्रिया;
५. युद्ध-कालीन समय में व्यवसायी वर्ग को व्यापार में अत्यधिक लाभ और उनके द्वारा उच्च शिक्षा के लिये दी गई उदार धन-राशि; एवं
६. युद्ध में शिक्षित व्यक्तियों की मांग में अभिवृद्धि।

नवीन विश्वविद्यालयों का निर्माण

इस काल में अधोलिखित ४ विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ :—

१. **त्रावणकोर विश्वविद्यालय**—इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास १९३७ में किया गया। यह शैक्षिक एवं सम्बद्धीय विश्वविद्यालय है। इस विश्वविद्यालय का एक मुख्य उद्देश्य मलयालम और तामिल साहित्यों का विकास करना है। इस ध्येय की पूर्ति के लिये इसमें एक 'प्राच्य पांडुलिपि पुस्तकालय' (Oriental Manuscript Library) और 'पुस्तक प्रकाशन विभाग' (Publications Department) है।

२. **उत्कल विश्वविद्यालय**—१९३७ में उड़ीसा को बिहार से पृथक् करके एक नवीन प्रान्त का निर्माण किया गया। इस नवनिर्मित प्रदेश के लिये

एक विश्वविद्यालय की स्थापना आवश्यक थी। अतः १९४३ में एक शिक्षण तथा सम्बन्धक विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया गया।

३. **सागर विश्वविद्यालय**—इस विश्वविद्यालय की स्थापना १९४६ में सर हरीसिंह गौड़ से २० लाख रुपये की दान-स्वरूप प्राप्त-राशि से की गई। यह शैक्षिक एवं सम्बद्धीय विश्वविद्यालय है।

४. **राजपूताना विश्वविद्यालय**—राजपूताने के देशी नरेशों ने प्रति वर्ष २,६५,००० रुपया देने का निश्चय करके राजपूताना विश्वविद्यालय की आधार शिला १९४७ में रखी। प्रारम्भ में यह सम्बन्धक विश्वविद्यालय था और इसके अन्तर्गत २८ कॉलेज थे।

माध्यमिक शिक्षा (१९३७–१९४७)

इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा की तीव्र प्रगति हुई परन्तु वह पूर्व कालों की अपेक्षाकृत मन्द थी। १९३७ में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या १३,०५६ और उनमें शिक्षा का लाभ उठाने वाले छात्रों की संख्या २२,८७,८७२ थी। १९४७ में यह संख्या क्रमशः ११,९०७ और २६,८१,९८१ थी। यद्यपि १९४७ में कुछ माध्यमिक विद्यालयों के पाकिस्तान राज्य के अन्तर्गत चले जाने से उनकी संख्या में कमी हो गई थी, परन्तु विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि ही हुई थी। इस प्रकार माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों की संख्या में वृद्धि तो अवश्य हुई, परन्तु यह उस अनुपात में नहीं हुई जिसमें विश्वविद्यालयों के छात्रों की हुई।

शिक्षा की मन्द प्रगति के कारण

१९३७ से १९४७ तक माध्यमिक शिक्षा की मन्द प्रगति के अनेकों कारण दिये जा सकते हैं, यथा :—

१. इस काल में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की गति में शैथिल्य रहा। इसकी प्रतिक्रिया माध्यमिक शिक्षा पर होनी स्वाभाविक थी, क्योंकि प्राथमिक विद्यालयों के छात्र ही माध्यमिक स्कूल में प्रविष्ट होते थे।

२. यह काल विश्व-युद्ध के कारण आर्थिक संकट का काल था। जीवन की सभी आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो गई थी। इस मंहगाई का सब से बुरा प्रभाव मध्य वर्ग के व्यक्तियों पर पड़ा था। क्योंकि उन्हीं के बच्चे अधिकांश संख्या में माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ते थे और क्योंकि उनके पास धन का अभाव था, अतः उनके लिये इसके अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं था कि वे अपने बच्चों को विद्यालय जाने से रोक दें।

३. इस काल में शिक्षकों को मँहगाई देने के विचार से शुल्क में वृद्धि कर दी गई। साथ ही पुस्तकों आदि का भी मूल्य बढ़ गया। ऐसी दशा में

शिक्षा इतनी मंहगी हो गई कि आय के सामान्य साधन वाले व्यक्तियों के बच्चों को शिक्षा से लाभ उठाना स्वप्न की सी बात हो गई।

उपरिकथित कारणों का परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक विद्यालयों में केवल उन्हीं अभिभावकों के बच्चे प्रवेश करते थे जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। जहाँ तक निम्न मध्य वर्ग या श्रमिक श्रेणी के व्यक्तियों का प्रश्न था, उनके बच्चों के लिये इन स्कूलों के द्वार बन्द हो गये। ऐसी परिस्थिति में छात्रों की संख्या में ह्रास होना अनिवार्य था। मँहगाई जनित आर्थिक कठिनाई का एक दूषित परिणाम यह हुआ कि विद्यालय-प्रवेश का आधार योग्यता के स्थान पर धन हो गया। कितने ही तीव्र-बुद्धि बालक दरिद्रता के शिकंजे में फँसे होने के कारण विद्याध्ययन के लाभ से वंचित रह गये। फलतः माध्यमिक शिक्षा का स्तर गिर गया।

माध्यमिक शिक्षा की अन्य विशेषतायें

इस अवधि की माध्यमिक शिक्षा की कुछ अन्य विशेषतायें भी उल्लेखनीय हैं। प्रायः सभी माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें हो गईं। पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन किया गया और शब्दावली तैयार की जाने लगी। प्रान्तीय सरकारों ने टेकनिकल और कृषि हाई स्कूल खोले। वाणिज्य की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया। शिक्षण-विद्यालयों की संख्या में वृद्धि की गई। स्त्रियां अध्यापन-कार्य की ओर आकृष्ट हुईं।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

पूर्व कालों के समान इस अवधि में भी माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं का समाधान न किया जा सका और उसमें जो दोष उभर आये थे, वे यथावत् बने रहे। सारांश में ये दोष निम्नांकित थे :—

१. ग्रामीण विद्यालयों तथा लड़कियों के स्कूलों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रम नहीं तैयार किये गये।
२. 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की विशाल संख्या को कम करने के लिये कोई उपाय नहीं किया गया।
३. युद्धजनित मंहगाई के कारण जन-साधारण के बच्चों के लिये माध्यमिक विद्यालयों के द्वार बन्द हो गये।
४. सुयोग्य पर निर्धन छात्रों को विद्यालयों में प्रवेश न प्राप्त हो सकने के कारण शिक्षा का स्तर गिर गया।
५. मँहगाई के समय में भी शिक्षकों के वेतन में वृद्धि नहीं की गई। फलतः

उनमें इतना अधिक असंतोष व्याप्त हुआ कि उनमें से अनेकों ने हृदय-हीन शिक्षा-विभाग को ठुकरा कर अन्य विभागों को अपनी सेवायें अर्पित कर दीं। ऐसी दशा में विद्यालयों में प्रशिक्षित एवं सुयोग्य अध्यापकों का अभाव हो गया।

६. प्रशिक्षित अध्यापकों का स्थान अदीक्षित शिक्षकों ने ग्रहण किया। परिणामतः शिक्षण का स्तर निम्न हो गया।

७. अल्प वेतन होने के कारण उत्साही नवयुवकों ने प्रशिक्षण-विद्यालयों की ओर आँख उठाकर भी देखना बन्द कर दिया। ऐसी परिस्थिति में निम्न योग्यताओं के व्यक्तियों ने उनमें प्रवेश करना प्रारम्भ किया। इसकी प्रतिक्रिया विद्यालयों पर हुई और उनके अपकर्ष का सूत्रपात हुआ।

८. सुयोग्य, अनुभवी एवं प्रशिक्षित अध्यापकों की अनुपस्थिति में माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों को अपनी किशोरावस्था में उचित परामर्श एवं प्रेरणा का लाभ मिलना बन्द हो गया। फलतः विद्यार्थियों में अनुशासन-हीनता का श्रीगणेश हुआ। देश की राजनीतिक हलचलों ने इस अनुशासन-हीनता में योग दिया और धीरे-धीरे विकृत होकर यह आज एक ऐसी जटिल गुत्थी बन गई है, जिसे सुलझाने में देश के प्रख्यात शिक्षा-मर्मज्ञों की बुद्धि भी हैरान है।

प्राथमिक शिक्षा (१९३७–१९४७)

इस काल की महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा की युग प्रवर्त्तक घटना एवं प्राथमिक शिक्षा की अन्य नवीन योजनाओं पर अध्याय १६ में प्रकाश डाला जायगा। यहाँ हम पिछले अध्यायों के प्रसंग में प्राथमिक शिक्षा का विवरण दे रहे हैं।

जैसी कि आशा थी काँग्रेसी मंत्रिमंडलों ने प्राथमिक शिक्षा को विस्तृत करने की चेष्टा की, परन्तु अपने पद पर अल्प काल तक आसीन रहने के कारण, उन्हें विशेष सफलता हस्तगत नहीं हुई। काँग्रेसी मंत्रिमंडलों द्वारा किये गये प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी कार्य-कलापों का अध्ययन हम निम्नांकित दो शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे :—

१. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा

काँग्रेसी मंत्रिमंडलों ने भारत के विभिन्न प्रान्तों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को प्रचलित करने के प्रयत्न किये। उनके इस कार्य का स्पष्टीकरण हम आगे दी हुई तालिका से कर रहे हैं।

अनिवार्य शिक्षा के क्षेत्र

प्रान्त	शिक्षा पाने वाले बालक		शिक्षा पाने वाली बालिकायें	
	नागरिक क्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र	नागरिक क्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र
बिहार	१७	.....	.....	.....
बम्बई	९	१३४	११०	५,१०००
मध्य प्रदेश	३४	१,०३१	.....	.....
पूर्वी पंजाब	३७	१,४२०	.....	.....
मद्रास	१६	३१	१२	१,६०७
उड़ीसा	५	१	.....	.....
उत्तर प्रदेश	३६	१,३७१	३	३
पश्चिमी बंगाल	१	.....	.....	.....
दिल्ली	१	७	.....	.....
योग	१५२	३,९९५	१२५	६,७१०

२. प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी अन्य कार्य

प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के अतिरिक्त कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने प्राथमिक शिक्षा को विस्तृत करने के लिये विभिन्न साधनों का प्रयोग किया। उन्होंने उन ग्रामों में स्कूल खोले जहाँ प्राथमिक विद्यालय नहीं थे। स्थानीय संस्थाओं को अतिरिक्त सहायता-अनुदान दिया, जिससे वे प्राथमिक शिक्षा के विस्तार में होने वाले व्यय का भार वहन कर सकें। जिन स्थानों में मांग थी, वहाँ बालिका-विद्यालय निर्मित किये। प्राथमिक स्कूलों में अधिक शिक्षकों की नियुक्ति की, जिससे शिक्षण-कार्य दक्षता पूर्वक सम्पन्न किया जा सके।

प्राथमिक शिक्षा की विशेषतायें

प्राथमिक शिक्षा के प्रसंग में इस काल में उसकी विशेषताओं पर दृष्टिपात कर लेना युक्तियुक्त होगा। ये विशेषतायें मुख्य रूप से दो थीं :—

१. स्थानीय संस्थाओं के शिक्षाधिकारों में कमी—हर्टाग समिति की सिफ़ारिश के अनुसार स्थानीय संस्थाओं को प्राथमिक शिक्षा पर जो अधिकार प्राप्त थे, उनमें कमी कर दी गई। इस कार्य में बम्बई प्रान्त ने पथ-प्रदर्शन का कार्य किया। उसने १९३८ और १९४७ के प्राथमिक शिक्षा-अधिनियमों द्वारा स्थानीय संस्थाओं को दी गई शक्तियों को अत्यधिक मात्रा में कम कर दिया।

२. शिक्षकों के वेतन में वृद्धि—इस काल की एक अन्य विशेषता यह थी कि प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के अल्प वेतन की ओर ध्यान दिया गया और निश्चय किया गया कि उनको कम से कम इतना वेतन अवश्य दिया जाय कि वे अपने जीवन का निर्वाह कर सकें। विश्व-युद्धजनित मंहगाई के कारण अध्यापकों के जीवन की दर्दभरी कहानी से द्रवित होकर देश के विवेकी नेताओं ने उनकी आर्थिक दशा में सुधार करने का बीड़ा उठाया। प्रत्येक प्रांत में उनके वेतन में वृद्धि की गई और साथ ही उन्हें मंहगाई भी दी गई। परन्तु दुर्भाग्यवश, मंहगाई रूपी दानव की क्षुधा को तृप्त करने के लिये अध्यापकों की अभिवृद्धित धन-राशि अपर्याप्त रही और उनकी दुखद स्थिति की करुणा-गाथा प्रसारित किये जाने पर भी व्योम में विलीन हो गई।

व्यावसायिक शिक्षा (१६३७–१६४७)

यद्यपि इस अवधि में व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ प्रगति अवश्य हुई, परन्तु उसके विषय में कोई विशेष वर्णनीय बात नहीं है। व्यावसायिक शिक्षा के विभिन्न अवयवों का विवरण निम्नांकित है :—

क़ानून की शिक्षा

१६४७ में १३ कानून कालेज थे, जिनमें ५,३३२ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इस काल में क़ानून की शिक्षा के विषय में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि आंध्र एवं बम्बई विश्वविद्यालयों ने इन्टरमीडिएट परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को क़ानून की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दे दिया। अन्य विश्वविद्यालयों में केवल बी० ए० पास करने के उपरान्त ही छात्र इस शिक्षा के अधिकारी होते थे। प्रायः सभी विश्वविद्यालयों ने एल० एल० एम० या एल० एल० डी० की शिक्षा की व्यवस्था कर दी।

चिकित्सा-शिक्षा

१६४७ में प्रायः प्रत्येक प्रान्त में एक मेडिकल कॉलेज या मेडिकल स्कूल था। छात्रों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हो गई थी, परन्तु फिर भी देश के लिये जितने डाक्टरों की आवश्यकता थी, उतने उपलब्ध नहीं थे। इस काल की चिकित्सा-शिक्षा की दो प्रमुख विशेषतायें थीं :—(१) चिकित्सा की स्नातकोत्तर शिक्षा के लिये अधिक सुविधायें हो गई थीं; और (२) कांग्रेसी मंत्रिमंडल आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा-पद्धति को प्रोत्साहित कर रहे थे।

वाणिज्य की शिक्षा[1]

इस अवधि में वाणिज्य की शिक्षा की प्रगति हुई। सम्पूर्ण भारत में १४ वाणिज्य-कॉलेज एवं २९६ वाणिज्य-स्कूल थे, जिनमें क्रमशः ७,७८३ और १४,७८४ छात्र थे। आगरा, लखनऊ और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों में वाणिज्य की स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई।

कला की शिक्षा

१९३७ से १९४७ तक कला के प्रति नवयुवकों की रुचि बढ़ने के कारण कला की शिक्षा प्रदान करने के लिये कलाविद्यालयों का नवनिर्माण किया गया। १९४७ में भारत में १४ कला-विद्यालय थे, जिनमें १,६९८ विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

कृषि की शिक्षा

इस काल में कृषि की शिक्षा की आशाजनक उन्नति हुई और १२ नवीन संस्थाओं का निर्माण हुआ। १९४७ में १७ कृषि-कॉलेज थे जो १,५५१ छात्रों को स्नातक या स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षा प्रदान कर रहे थे। कृषि-शिक्षा की इतनी उन्नति के बावजूद भी यह भारत ऐसे खेतिहर देश की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये अपर्याप्त थी।

इंजीनियरिंग की शिक्षा

कृषि के समान इस अवधि में इंजीनियरिंग की शिक्षा का भी सराहनीय विस्तार हुआ। १९४७ में भारत में १७ इंजीनियरिंग कॉलेज थे, जिनमें २,५०० विद्यार्थी प्रति वर्ष प्रवेश करते थे। परन्तु अन्य देशों की अपेक्षा और स्वयं भारत की आवश्यकताओं को देखते हुए, यह देश इंजीनियरिंग की शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ था।

तकनीकी शिक्षा

अब तक तकनीकी शिक्षा की अवहेलना की गई थी, परन्तु इस अवधि में इसका अत्यधिक प्रसार हुआ। इसके तीन प्रमुख कारण थे :—(१) विश्व-युद्ध के कारण ऐसे व्यक्तियों की मांग बहुत बढ़ गई थी, जो तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर चुके हों। (२) युद्ध-सामग्री का उत्पादन करने के लिये भारत में नवीन उद्योगों की स्थापना हो गई थी और उनमें तकनीकी शिक्षा-प्राप्त मनुष्यों की आवश्यकता थी। (३) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों द्वारा बनाई गईं युद्धोत्तर विकास योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिये तकनीकी

1. Commercial Education.

शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की मांग बढ़ी। अतः तकनीकी शिक्षा का विस्तार होना स्वाभाविक था। १६४७ में ४६० संस्थायें थीं, जिनमें २७,६४० छात्र थे।

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा-समिति[1]—भारत सरकार ने 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' के परामर्श के अनुसार १६४६ में 'अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा-समिति' का निर्माण किया। इस समिति का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार को उच्च तकनीकी शिक्षा के संगठन एवं नियोजन में परामर्श देना था। इस समिति का एक अन्य कार्य तकनीकी शिक्षा-संस्थाओं में सामंजस्य स्थापित करना था। समिति ने भारत में उच्च तकनीकी शिक्षा की संस्थाओं को विस्तृत एवं समुन्नत करने के लिये सरकार के समक्ष एक योजना प्रस्तुत की। इसको क्रियान्वित करने में १५४ लाख रुपया व्यय होना था और तत्पश्चात् ३० लाख रुपये का वार्षिक व्यय था।

स्त्रियों की शिक्षा (१६३७–१६४७)

१६३७ से १६४७ तक स्त्री-शिक्षा की, विशेष रूप से उच्च शिक्षा की अति तीव्र प्रगति हुई। विश्व-युद्ध के दौरान में भारत के विभिन्न सरकारी विभागों एवं व्यापारिक कार्यालयों में शिक्षित व्यक्तियों की मांग बढ़ी। फलस्वरूप अनेकों स्त्रियाँ उनमें कार्य करने लगीं। नौकरी करने से स्त्रियों ने जिस आर्थिक स्वतन्त्रता के आनन्द का उपभोग किया, उससे उन्हें शिक्षा ग्रहण करने की अधिक प्रेरणा प्राप्त हुई। युद्ध-काल में मंहगाई अधिक हो जाने के कारण मध्यवर्ग के व्यक्ति आर्थिक संकट में थे। अतः उनमें से जो उदार विचार के थे, उन्होंने अपनी स्त्रियों को घर से बाहर जाकर नौकरी करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। इस परिवर्तित दृष्टिकोण ने स्त्री-शिक्षा के उन्नयन में अतिशय योग दिया। १६४७ में स्त्रियों के लिये सामान्य तथा विशिष्ट शिक्षा के लिये १७,४८५ संस्थायें थी, जिनमें ३२,६४,२४८ लड़कियाँ शिक्षा का लाभ उठा रही थीं।

मुसलमानों की शिक्षा (१६३७-१६४७)

हम पिछले अध्ययाय में देख चुके हैं कि १६३७ तक मुस्लिम शिक्षा का पर्याप्त विस्तार हो चुका था और जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न था, मुसलमान अन्य जातियों से पीछे नहीं थे। अतः सरकार के लिये मुसलमानों की शिक्षा एक समस्या न रह गई। ऐसी परिस्थिति में सरकार ने मुसलमानों में शिक्षा का प्रसार करने के भार से अपने आपको मुक्त पाया। इस काल में मुस्लिम-

1. All India Council of Technical Education.

शिक्षा के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि 'अखिल भारतीय मुस्लिम-शिक्षा सम्मेलन'[1] ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें मुस्लिम-शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नांकित मांगें सरकार के समक्ष रखी गईं :—

१. मुसलमानों के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य हो, परन्तु उन्हें बेसिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये बाध्य न किया जाय।
२. साम्प्रदायिक स्कूलों को भंग न किया जाय और उन्हें मान्यता प्रदान की जाय।
३. शिक्षा का माध्यम उर्दू हो।
४. शिक्षा का आधार धर्म हो।
५. मुस्लिम प्राथमिक विद्यालयों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रम हो।
६. मुस्लिम बालकों तथा बालिकाओं के लिये पृथक् स्कूलों की स्थापना की जाय।
७. विद्यालयों में मुस्लिम अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की संख्या निश्चित की जाय।
८. स्थानीय जनसंख्या के अनुपात में हाई स्कूलों, विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी संस्थाओं में मुस्लिम छात्रों के लिये स्थान सुरक्षित रखे जायें।

हरिजनों की शिक्षा (१९३७–१९४७)

कांग्रेस बहुत समय से हरिजनोत्थान एवं अस्पृश्यता के निवारण के लिये आन्दोलन कर रही थी। १९३७ में विभिन्न प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के हाथ में प्रशासकीय शक्तियाँ आ जाने से उन्हें ऐसा स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ, जब वे वास्तव में दलित वर्गों की पतनोन्मुख दशा में सुधार करके कुछ ठोस कार्य कर सकते थे। इस भावना से अनुप्राणित होकर कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने विभिन्न प्रान्तों में अस्पृश्यता का अन्त करने के उद्देश्य से अधिनियम बनाये। इसके अतिरिक्त, उन्होंने हरिजनों को शिक्षा प्राप्त करने के लिये सभी प्रकार के अवसर प्रदान किये। हरिजनों के लिये स्थापित किये गये विशिष्ट स्कूलों को समाप्त कर दिया और सभी सार्वजनिक विद्यालयों के द्वार उनके लिये खोल दिये गये। साथ ही उनकी आर्थिक कठिनाइयों को देखते हुए, उन्हें विशेष सुविधायें भी प्रदान की गईं, यथा :—छात्रवृत्तियों; पुस्तकों आदि के लिये अनुदान; परीक्षा-शुल्क से आंशिक या पूर्ण मुक्ति ; निःशुल्क शिक्षा; मेडिकल, इंजीनियरिंग आदि संस्थाओं में स्थानों की सुरक्षा; छात्रावासों की सुविधा; हरिजन शिक्षकों को विशेष सुविधायें; चमड़े आदि के कार्य की व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध; इत्यादि।

1. All India Muslim Educational Conference.

हरिजनों के सौभाग्य से १९४२ में डा० अम्बेडकर गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी समिति के कानून-सदस्य बने। उनके प्रयास के फलस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने पिछड़ी जातियों के छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देने की योजना स्वीकृत की। इस योजना का उद्देश्य उन हरिजन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देना था, जो 'मैट्रीकुलेशन' परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् वैज्ञानिक अथवा औद्योगिक विषयों का भारत में अध्ययन करना चाहते थे। यह योजना १९४४–४५ में क्रियान्वित की गई और ३ लाख रुपया छात्रवृत्तियों के लिये दिया गया।

यहाँ यह बात लिखनी युक्तसंगत होगी कि जिस प्रकार कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने हरिजनों को शिक्षा प्राप्त करने के लिये विशेष सुविधायें दीं, उसी प्रकार आदिवासियों, पहाड़ी जातियों तथा अन्य पिछड़े हुए वर्गों को भी दीं।

प्रौढ़-शिक्षा (१९३७-१९४७)

१९३७ में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के हाथ में प्रान्तीय स्वायत्त शासन की बागडोर आजाने से जन-शिक्षा के भाग्य ने पलटा खाया। शिक्षा-प्रसार के अपने कार्य-क्रम के अन्तर्गत कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा एवं हरिजन-शिक्षा के साथ-साथ प्रौढ़-शिक्षा को भी वरासन पर प्रतिष्ठित किया। आधुनिक प्रगतिशील युग में वयस्क-निरक्षरता भारत के लिये लज्जा एवं अपमान की बात थी। अतः कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने निरक्षरता की इस कलंक-कालिमा को धो डालने के लिये क्रियात्मक पग उठाये। अपने अधीनस्थ प्रान्तों की प्रौढ़-शिक्षा में यह अभिरुचि देखकर केन्द्रीय सरकार ने उनसे पीछे-रहने में अपनी मान-हानि समझी। अतः केन्द्रीय सरकार ने १९३९ में बिहार के शिक्षा-मंत्री, डा० सैयद महमूद की अध्यक्षता में वयस्क-साक्षरता के सम्बन्ध में व्यावहारिक सुझाव देने के लिये 'वयस्क-शिक्षा-समिति'[1] की नियुक्ति की।

प्रौढ़-शिक्षा के उद्देश्य एवं महत्त्व

डा० सैयद महमूद ने सभापति के पद से भाषण देते हुए वयस्क-निरक्षता के व्यपरोपण पर बल दिया। उन्होंने लेनिन (Lenin) का एक वाक्य उद्धरित करते हुए कहा : "निरक्षरता का व्यपरोपण एक राजनीतिक समस्या नहीं है। यह एक ऐसी आवश्यकता है जिसके बिना राजनीति की चर्चा करना असम्भव है।"[2] इस प्रकार प्रौढ़-शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डालने के उप-

1. Adult Education Committee.
2. "The liquidation of illiteracy is not a political problem ; it is a condition without which it is impossible to speak of politics." Lenin. Quoted by Syed Mahmud in the *Report of the Adult Education Committee* (1939) p. 54.

रान्त डा० महमूद ने भारत में इस शिक्षा के निम्नलिखित तीन उद्देश्य प्रतिपादित किये :—

१. निरक्षर वयस्क को लिखना, पढ़ना और अंकगणित सिखाना।
२. वयस्क को उसके जीवन से सम्बन्धित उपयोगी शिक्षा देना।
३. वयस्क को उत्तम नागरिक बनने की शिक्षा देना।

डा० महमूद ने अपने वक्तव्य में जनता से अपील की कि वह इस पुनीत कार्य में सरकार का हाथ बटावे, क्योंकि निरक्षरता को दूर करने के इस दुष्कर कार्य को केवल सरकार सम्पन्न नहीं कर सकती है। अपने भाषण में इस कार्य के महत्त्व का उल्लेख करते हुए डा० महमूद ने कहा :—"आज कोई भी सरकार प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की महान् आवश्यकता की अवहेलना नहीं कर सकती है; परन्तु बालकों तथा बालिकाओं की शिक्षा का प्रसार करने के लिये सहानुभूति पूर्ण वातावरण एवं अभिभावकों का हितकर सहयोग अति आवश्यक है; और यह सहयोग उस समय तक प्राप्त नहीं हो सकता है, जब तक कि स्वयं अभिभावक शिक्षा के महत्त्व का अनुभव न करने लगें।"[1]

प्रान्तों में प्रौढ़-शिक्षा कार्य

१९३७ से प्रान्तों में जन-प्रिय मंत्रिमंडलों की स्थापना के समय से ही प्रौढ़ों को साक्षर बनाने की योजनायें क्रियान्वित कर दी गईं। विभिन्न प्रान्तों में प्रौढ़-शिक्षा के लिये किये गये कार्यों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है :—

आसाम—इस प्रान्त में प्रौढ़-शिक्षा के लिये १९३७ तक जो कार्य किये गये थे, वे प्रायः नगण्य थे। आसाम में काँग्रेस का संयुक्त मंत्रिमंडल बना। अतः वयस्कों को साक्षर बनाने का कार्य उत्साह से प्रारम्भ किया गया। शिक्षा-विभाग को साक्षरता का कार्य सौंपा गया इस विभाग ने अपने अधीनस्थ कार्यालयों के सहयोग से साक्षरता एवं साक्षरता के उपरान्त भी शिक्षा की

1. "No Government can afford today to be blind to the imperative need of the expansion of primary education ; but for the speeding up of the tempo of the progress of education of boys and girls a sympathetic atmosphere and the helpful cooperation of the parents is an urgent necessity, and this cannot be achieved unless and until the parents themselves realize the importance of education." *Report of the Adult Education Committee* (1939), p. 54.

व्यवस्था की। एक वर्ष की अवधि में ही १८४० प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्र खोले गये और आगामी दो वर्षों में २,१६,७११ प्रौढ़ों को साक्षर बनाया गया।

बङ्गाल—बंगाल में १६३७ से पहिले से ही ग्राम सभायें अपनी प्रौढ़-पाठशालायें चला रही थीं। प्रान्तीय सरकार ने इन्हीं पाठशालाओं को विकसित करके तथा आर्थिक सहायता देकर प्रौढ़-शिक्षा की व्यवस्था की। बङ्गाल में १६३६ में प्रौढ़-शिक्षा के लिये १०,००० विद्यालय थे, १६४३ में यह संख्या बढ़ाकर २२,५७४ हो गई। इनमें क्रमशः १,५०,००० और ५,३०,१७८ प्रौढ़ साक्षर बनाये जा रहे थे।

बिहार—बिहार में काँग्रेसी मंत्रिमंडल के शिक्षा-मंत्री डा० सैयद महमूद की अध्यक्षता में प्रौढ़-शिक्षा का सबसे अधिक विस्तार हुआ। यहाँ एक ही वर्ष में ४,५०,००० वयस्क साक्षरता की परीक्षा में सम्मिलित हुए। प्रान्तीय सरकार ने प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिये निम्नलिखित कार्य किये :—

१. सभी लोअर प्राइमरी, अपर प्राइमरी एवं मिडिल स्कूलों में प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र खोले गये। प्रत्येक वयस्क को साक्षर बनाने के लिये सरकार की ओर से ५ आना आर्थिक सहायता दी जाती थी।
२. स्थान-स्थान पर साक्षरता केन्द्र खोले गये और उन्हें १५ रुपये वार्षिक आर्थिक सहायता दी गई।
३. कॉलेजों और हाई स्कूलों में साक्षरता कक्षाओं का संगठन किया गया।
४. जेलों में सभी बन्दियों को साक्षर बनाने का प्रयास किया गया।
५. पुलिस के सिपाहियों और चौकीदारों को साक्षर बनने की आज्ञा दी गई।
६. "अपना गृह साक्षर बनाओ" (Make your home literate) नामक आन्दोलन प्रारम्भ किया गया और प्रत्येक परिवार के एक शिक्षित व्यक्ति को अन्य सदस्यों को साक्षर बनाने का कार्य सौंप दिया गया।
७. उद्योगपतियों एवं मिल-मालिकों को अपने श्रमिकों को साक्षर बनाने के लिये आदेश दिया गया।
८. हजारों ग्रामों में पुस्तकालय एवं वाचनालय खोले गये।

बम्बई—इस प्रान्त के कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने १६३७ में डा० क्लिफ़र्ड मॉनशार्ट (Clifford Manshardt) की अध्यक्षता में प्रौढ़-शिक्षा की समस्या की जांच करने के लिये एक समिति नियुक्त की। इस समिति की रिपोर्ट के आधार पर एक 'प्रान्तीय प्रौढ़-शिक्षा परिषद्'[1] संगठित की गई। इस परिषद्

1. Provincial Board for Adult Education.

की एक समिति की अध्यक्षता में बम्बई नगर में प्रौढ़-शिक्षा का कार्य प्रारम्भ किया गया। कॉलिजों एवं स्कूलों के छात्रों को ग्रीष्मावकाश में नगर के प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिये अनुप्राणित किया गया। यह योजना इतनी अधिक सफल हुई कि बम्बई नगर के वयस्कों को साक्षर बनाने के उद्देश्य से 'बम्बई नगर वयस्क-शिक्षा-समिति'[1] का निर्माण किया गया और इसको वयस्क साक्षरता का कार्य सम्पन्न करने के लिये ५० हज़ार रुपया वार्षिक अनुदान दिया गया। परन्तु सरकार का ध्यान विशेष रूप से बम्बई नगर पर ही केन्द्रित रहा और ग्रामीण क्षेत्रों में वयस्कों को साक्षर बनाने का कार्य अधिक लगन के साथ नहीं किया गया।

१९३८ में बम्बई सरकार ने एक 'एड हक एजूकेशन एडवाइज़री बोर्ड'[2] नियुक्त किया। इसके अधिकांश गैर-सरकारी कर्मचारी थे। इस बोर्ड ने एस० आर० भगत (S. R. Bhagat) की अध्यक्षता में निरक्षरता-निवारण में प्रशंसनीय कार्य किया। १९३९ में सरकार ने नये पुस्तकालयों की स्थापना एवं पुराने पुस्तकालयों को अधिक सुसमृद्ध बनाने की योजना क्रियान्वित की। १९४१-४२ में सरकार ने प्रौढ़-शिक्षा के कार्य-कर्त्ताओं को प्रशिक्षित करने का कार्य प्रारम्भ किया। सरकार के इन सभी कार्यों के फलस्वरूप प्रौढ़-शिक्षा के कार्य को एक नवीन प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्राप्त हुई।

उड़ीसा—इस प्रान्त के कॉग्रेसी मंत्रिमण्डल ने निरक्षरता-निवारण के निमित्त १५,००० रुपये का अनुदान दिया। मंत्रिमंडल के कार्य-काल में वयस्क शिक्षा का कार्य अति तीव्र गति से आगे बढ़ा, परन्तु मंत्रियों के पद-त्याग करते ही इस कार्य का प्रवाह मन्द होकर क्षीण होता चला गया।

पंजाब—इस प्रान्त में सर सिकन्दर हयात खाँ का गैर-कॉंग्रेसी मंत्रिमंडल कार्य कर रहा था। अतः अन्य प्रान्तों के समान यहाँ प्रौढ़-साक्षरता का कार्य न किया गया। परन्तु फिर भी सरकार ने वयस्कों में हजारों पुस्तकों का बिना कोई मूल्य लिये वितरण किया। १९३८–३९ में ४२,००० प्राइमरें एवं ५०,००० अन्य उपयोगी पुस्तकें वितरित की गईं।

इस प्रान्त में प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार करने का श्रेय डा० लॉवक (Laubach) को है, जिसने मिशन स्कूलों को वयस्क-शिक्षा का केन्द्र बनाया। उसके प्रयास के परिणामस्वरूप पंजाब में प्रौढ़-शिक्षा का अच्छा प्रसार हुआ।

उत्तर-प्रदेश—इस प्रान्त के कॉंग्रेसी मंत्रिमंडल ने प्रौढ़-शिक्षा के प्रसार में स्तुत्य योग प्रदान किया। स्थान-स्थान पर प्रौढ़-शिक्षा के केन्द्र स्थापित

1. Bombay City Adult Education Committee.
2. Ad Hoc Education Advisory Board.

किये गये और वयस्कों के लिये पुस्तकों का प्रबन्ध किया गया। १९३९ से १९४२ तक इस प्रान्त में ७,२५,००० वयस्कों को साक्षर बनाया गया।

मैसूर—भारत के कुछ देशी राज्यों में भी वयस्क-शिक्षा के क्षेत्र में कार्य किया गया। इनमें मैसूर, हैदराबाद, जम्मू और काश्मीर उल्लेखनीय हैं, परन्तु इन सब में मैसूर सर्वोपरि था। उस समय से लेकर आज तक यह राज्य प्रौढ़-शिक्षा के कार्य में संलग्न है।

१९४० में मैसूर विश्वविद्यालय के छात्र-संघ (Students' Union) ने मैसूर नगर में निरक्षरता के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। १९४१ में 'मैसूर राज्य साक्षरता समिति'[1] का निर्माण हुआ। इस समिति द्वारा मैसूर राज्य में प्रौढ़ शिक्षा के निमित्त निम्नांकित कार्य किये गये :—

१. वयस्कों को शिक्षा देने के लिये साक्षरता-कक्षायें खोली गईं। जो वयस्क इन कक्षाओं की परीक्षा समाप्त कर लेते थे, उनकी परीक्षा ली जाती थी और सफल वयस्कों को प्रमाण-पत्र दिये जाते थे।

२. साक्षर वयस्कों के लिये कुछ ऐसे केन्द्र स्थापित किये गये, जहाँ पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं आदि की व्यवस्था की गई। यह प्रबन्ध इसलिये किया गया, जिससे साक्षर प्रौढ़ फिर निरक्षर न बन जायें।

३. राज्य की ओर से उन ग्रामों को जो ३० रुपये एकत्रित कर लेते थे, ७० रुपये का अनुदान दिया जाता था। इस सम्मिलित धन राशि से ग्राम में एक छोटा सा पुस्तकालय स्थापित कर दिया जाता था।

४. मैसूर राज्य ने नंजनगढ़ नामक स्थान पर डेन्मार्क के 'लोक हाई स्कूल'[2] के सिद्धान्त पर वयस्कों के लिये एक विद्यापीठ निर्मित की। इसमें वयस्कों को विभिन्न जीवनोपयोगी विषयों की शिक्षा दी जाती है। शिक्षा का काल ५ माह है। विद्यापीठ में प्रौढ़-शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध है।

निष्कर्ष

उपरिकथित विवरण के आधार पर यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि इस अवधि में पूर्व कालों की अपेक्षा प्रौढ़-शिक्षा के लिये कहीं अधिक और रचनात्मक कार्य किया गया। इसके लिये प्रान्तों के काँग्रेसी मंत्रिमंडल हमारी प्रशंसा के भाजन हैं। यदि १९३७ से १९४७ तक की १० वर्ष की अवधि में काँग्रेसी मंत्रिमंडल अपने पद पर आसीन रहते, तो वयस्क-शिक्षा का कार्य

1. Mysore State Literacy Council.
2. Folk High School.

और भी सफल होता। परन्तु विश्व-युद्ध के दौरान में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने अपने पदों का त्याग कर दिया और फलस्वरूप उनकी प्रौढ़ शिक्षा-सम्बन्धी योजनाओं को व्यर्थ समझ कर या मितव्ययता की नीति का अनुसरण करने के कारण सरकार ने बन्द कर दिया। सरकार की इस अनुदारता एव सकीर्ण हृदयता से प्रौढ़-शिक्षा को बड़ा धक्का लगा और अकारण ही उसकी प्रगति अवरुद्ध गई। परन्तु निरक्षरता-निवारण के उच्चादर्श से अभिप्रेरित कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने विश्व-युद्ध के उपरान्त एक बार फिर प्रशासकीय शक्ति को हस्त-गत करके प्रौढ़-शिक्षा के जीर्ण कलेवर में प्राण फूँक दिये।

सारांश

प्रान्तीय स्वशासन की स्थापना—१९३५ के 'भारत सरकार अधिनियम' को अप्रैल १९३७ में प्रचलित किया गया। संरक्षित एवं हस्तान्तरित विषयों का भेद समाप्त हो गया। ६ प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने और उन्होंने शिक्षा की प्रगति में योग दिया।

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-कार्य—केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा की ओर ध्यान दिया और 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड', 'केन्द्रीय शिक्षा सचिवालय', 'केन्द्रीय शिक्षा-सूचना कार्यालय' तथा 'विश्वविद्यालय अनुदान समिति' का संगठन किया।

ऐबट व वुड रिपोर्ट—यह रिपोर्ट जून १९३७ में प्रस्तुत की गई। इसमें सामान्य शिक्षा एवं उसके संगठन के सम्बन्ध में वुड द्वारा अनेक उत्तम सुझाव दिये गये। ऐबट ने व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार के लिये सुझाव दिये। द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो जाने के कारण सरकार ने इन सुझावों की ओर रंच-मात्र भी ध्यान नहीं दिया।

उच्च शिक्षा—इस काल में विश्वविद्यालय शिक्षा का अत्यधिक विस्तार हुआ। त्रावणकोर, उत्कल, सागर और राजपूताना विश्वविद्यालयों का शिला-न्यास किया गया।

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा की प्रगति विश्वविद्यालय शिक्षा की अपेक्षा कम हुई। मँहगाई के कारण साधारण स्थिति के योग्य बालक विद्यालयों में प्रवेश न कर सके। अतः शिक्षा का स्तर गिर गया। प्रायः सभी माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें हो गईं। तकनीकी, कृषि और वाणिज्य की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया।

प्राथमिक शिक्षा—कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में योग दिया। विभिन्न प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये

अधिनियम पारित किये गये। स्थानीय संस्थाओं के शिक्षाधिकारों में कमी कर दी गई। शिक्षकों के वेतन में वृद्धि हुई।

व्यावसायिक शिक्षा—व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति तो अवश्य हुई, परन्तु उसके सम्बन्ध में कोई विशेष बात नहीं है। पूर्व के समान क़ानून, चिकित्सा-शास्त्र, वाणिज्य, कला, कृषि, तकनीकी और इंजीनियरिंग की शिक्षायें चलती रहीं।

स्त्रियों की शिक्षा—आर्थिक कठिनाइयों के कारण मध्यवर्ग की अनेकों स्त्रियाँ नौकरी करने लगीं। युद्ध के कारण शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की माँग बढ़ी और स्त्रियों को दफ्तरों आदि में कार्य मिला। इन कारणों से स्त्री-शिक्षा का प्रवाह तीव्र हो गया।

मुसलमानों की शिक्षा—मुसलमान शिक्षा में अन्य जातियों से पीछे नहीं थे। अतः सरकार के लिये मुस्लिम-शिक्षा के प्रसार की कोई समस्या नही रह गई।

हरिजनों की शिक्षा—कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने हरिजनों के लिये सभी विद्यालयों के द्वार खोल दिये। छात्रवृत्तियाँ, पुस्तक-अनुदान, छात्रावास आदि की सुविधा देकर हरिजनों की शिक्षा को प्रोत्साहित किया। अम्बेदकर के प्रयास से केन्द्रीय सरकार ने वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक विषयों की शिक्षा प्राप्त करने वाले हरिजन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देनी प्रारम्भ कीं :

प्रौढ़-शिक्षा—कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने प्रौढ़-शिक्षा की ओर ध्यान दिया। केन्द्रीय सरकार ने डा० सैयद महमूद की अध्यक्षता में वयस्क-साक्षरता के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिये एक समिति नियुक्ति की। विभिन्न प्रान्तों में प्रौढ़-शिक्षा के लिये अनेकों कार्य किये गए। आसाम में प्रौढ़-शिक्षा का कार्य शिक्षा-विभाग को सौंपा गया। बङ्गाल में ग्राम सभाओं द्वारा प्रौढ़-पाठशालाओं का प्रबन्ध किया गया। बिहार में प्रौढ़-शिक्षा के लिए सबसे अधिक कार्य किया गया। स्कूलों और कॉलेजों में प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र खोले गये। पुलिस के सिपाहियों, जेलों के बन्दियों और चौकीदारों को साक्षर बनाया गया। बम्बई नगर के प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिये विशेष रूप से प्रयास किया गया, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक कार्य न किया गया। उड़ीसा सरकार ने वयस्क शिक्षा-कार्य के लिये १५,००० रुपये का अनुदान दिया। पंजाब में बिना मूल्य लिये प्रौढ़ों को पुस्तकें बाँटा गईं। इस प्रान्त में मिशनरियों ने वयस्क-शिक्षा की प्रगति में योग दिया। उत्तर प्रदेश में ७,२५,००० वयस्कों को साक्षर बनाया गया। मैसूर राज्य के विश्वविद्यालय के छात्र-संघ ने निरक्षरता के

विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। राज्य की ओर से एक समिति नियुक्त की गई, जिसने साक्षरता-कक्षायें खोलीं, प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र स्थापित किये, पुस्तकालयों का संगठन किया और एक विद्यापीठ का निर्माण किया।

TEST QUESTIONS

1. Summarize the views expressed by Messrs. Abbott and Wood on the development of vocational education in this country. How far have they been put into practice in Indian schools and colleges ?
2. Describe the attempts of the Provincial Governments to organise adult education between 1937 and 1947.
3. Give a brief account of the educational activities of the Central Government and the Congress Ministries from 1937 to 1947.
4. Write short notes on :—(a) Primary Education Acts ; (b) Education of the Harijans ; (c) Secondary education.

अध्याय १६

प्राथमिक शिक्षा की नवीन योजनायें

[विद्या-मन्दिर, वालंटरी स्कूल व बेसिक शिक्षा]

(१९३७—१९४७)

शिक्षा एक राष्ट्र की प्रगति की प्रतीक है। यदि आप किसी देश के उन्नयन एवं अवनयन का कारण जानना चाहते हैं, तो इसे उस देश के शिक्षा के इतिहास में खोजिये। स्वामी विवेकानन्द के इन लोकप्रसिद्ध शब्दों में सत्य का पूर्ण आभास मिलता है : "हमारा देश उन्नति क्यों नहीं कर रहा है ? इसमे शिक्षा का अभाव है। अतः यदि देश को समुन्नत बनाना है तो सर्वप्रथम जन-साधारण को शिक्षित करना है।"[1] स्वामी जी के इस सार-गर्भित सन्देश ने नवाभ्युत्थान के युग में कार्य-रत राष्ट्र-निर्माताओं में एक नई जान डाल दी। ज्यों-ज्यो राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़ता गया, स्वामी जी के इन शब्दों का अर्थ-विस्तार होता गया। जिस देश में केवल ७ प्रतिशत साक्षरता थी[2], उसके उत्थान की कल्पना भी निर्मूल थी। अतः जब दैवयोग से १९३७ में राष्ट्रीय

1. Swami Vivekananda : *Lectures from Colombo to Almora*, p. 127.
2. *Census Report*, 1931.

नेताओं ने भारत के विभिन्न प्रान्तों में उत्तरदायी शासन का सूत्र सम्हाला, तो उन्होंने सार्वजनिक कल्याण के कार्य-क्रम में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करके जन-शिक्षा-प्रसार कार्य को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया। प्राथमिक शिक्षा के विकास की पुरातन विधियों में उन्हें कोई आकर्षण नहीं मिला और वे अपनी नवीन योजनाओं का परीक्षण करने के लिये उतकण्ठित हो उठे। ये योजनायें निम्नांकित थीं :—

(१) विद्यामन्दिर-योजना (Vidya Mandir Scheme)
(२) वालंटरी स्कूलों की योजना (Scheme of Voluntary Schools)
(३) बेसिक शिक्षा की योजना (Scheme of Basic Education).

विद्यामन्दिर योजना

इस योजना को प्रतिपादित करने वाले मध्य प्रान्त के तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री पं० रविशंकर शुक्ल थे। १९३७-३८ की इस योजना का उद्देश्य नाम-मात्र को सरकारी व्यय पर मध्य प्रान्त के छोटे ग्रामों में प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्रदान करना था। इस योजना की प्रमुख विशेषतायें निम्न-लिखित थीं:—[1]

१. प्रत्येक ग्राम में जहाँ स्कूल नहीं है और जहाँ लगभग ४० बालक एवं बालिकायें शिक्षा प्राप्त करने योग्य हैं, वहाँ एक विद्यामन्दिर की स्थापना की जायगी।

२. अन्य प्राथमिक विद्यालयों के समान विद्यामन्दिर में भी लिखने, पढ़ने, अंकगणित एवं प्राथमिक स्कूलों के अन्य साधारण विषयों की शिक्षा दी जायगी।

३. विद्यामन्दिर सामान्य प्राथमिक विद्यालयों से कुछ बातों के कारण भिन्न होगा। विद्यामन्दिर में राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास किया जायगा। विद्यामन्दिर एवं स्थानीय ग्रामीण समाज में निकट सम्पर्क स्थापित किया जायगा। विद्यामन्दिर ग्रामोत्थान के लिये कार्य करेगा।

४. प्रत्येक विद्यामन्दिर को भवन तथा अन्य सामग्री दी जायगी। विद्या-मन्दिर के व्यय के लिये इतनी भूमि दी जायगी, जिससे २०० रुपया वार्षिक आय होगी। इसी आय से विद्यामन्दिर के व्यय की पूर्ति होगी।

५. विद्यामन्दिर की देख-भाल कृषि-विभाग करेगा। परन्तु यदि किसी गाँव

1. Pamphlet on the *Vidya Mandir Scheme* published by the Government of Central Provinces in 1938.

में ग्राम-पंचायत होगी, तो विद्यामन्दिर का संचालन एक स्थानीय समिति के द्वारा किया जायगा।

६. विद्यामन्दिर की आय का प्रमुख साधन दी हुई भूमि होगी। अत्यधिक आवश्यकता के समय सरकार आर्थिक सहायता देगी। ग्रामीण जनता दान इत्यादि के रूप में धन देकर विद्यामन्दिर की सहायता कर सकेगी।

७. एक विद्यामन्दिर में केवल एक शिक्षक होगा। वह कम से कम मिडिल पास और विशेष रूप से प्रशिक्षित होगा। उसे कम से कम १५ रुपए मासिक वेतन मिलेगा। उसकी सेवायें स्थायी हो जाने के पश्चात् उसका लगभग ५०० रुपये का जीवन बीमा (Life Insurance) करा दिया जायगा।

८. विद्यामन्दिर में शिक्षा-काल ४ से ७ वर्ष का होगा। अध्ययन के विषय ग्रामीण वातावरण से सम्बन्धित होंगे। औद्योगिक एवं कृषि-शिक्षा की व्यवस्था होगी।

विद्यामंदिर योजना की प्रगति

१९३८–३९ में विद्यामन्दिर-योजना को अति उत्साह से क्रियान्वित किया गया और लगभग ८० विद्यामन्दिरों की स्थापना की गई। दुर्भाग्य से कुछ ही समय पश्चात् १९३९ में कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने त्याग-पत्र दे दिया। इससे योजना को बड़ा आघात पहुँचा। प्रान्तीय सरकार ने उसमें तनिक भी रुचि नहीं ली। फलतः उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गई।

वालंटरी स्कूलों की योजना

थोड़े से सरकारी व्यय पर प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिये 'वालंटरी स्कूल' नामक एक अन्य योजना थी। इसको १९३८ में कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने बम्बई प्रान्त में क्रियान्वित किया। इस योजना के दो प्रमुख उद्देश्य थे :—(१) शिक्षा के लिये व्यक्तिगत प्रयास को प्रोत्साहन देना और इस प्रकार शिक्षा के व्यय को कम करना; (२) ऐसे ग्रामों में स्कूलों की स्थापना करना, जहाँ सरकार या स्थानीय संस्थाओं द्वारा स्कूलों के स्थापित करने में अत्यधिक व्यय होगा। वालंटरी स्कूलों की इस योजना का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

कुछ स्थानों में ऐसे स्कूल थे जो किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा संचालित किये जा रहे थे। क्योंकि उन क्षेत्रों में सरकारी स्कूलों की स्थापना में अत्यधिक व्यय होता, अतः राज्य की ओर से इन ग़ैर-सरकारी विद्यालयों को

उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी गई। इन स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने वाले प्रति बालक के लिये ४ रुपया और प्रति बालिका के लिये ६ रुपया वार्षिक अनुदान दिया जाता था। पिछड़ी जातियों के बालकों एवं बालिकाओं के लिये प्रति बच्चा ३ रुपया प्रति वर्ष के हिसाब से आर्थिक सहायता दी जाती थी। इसके अतिरिक्त स्कूलों की अन्य सामग्री के लिये भी धन दिया जाता था।

वालंटरी स्कूलों की इस योजना को आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई और बम्बई सरकार ने अल्प धनराशि व्यय करके प्राथमिक शिक्षा का पर्याप्त प्रसार किया। विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने और कांग्रेसी मंत्रिमंडल के त्यागपत्र देने से इस योजना को बड़ा आघात पहुँचा। कुछ वर्षों तक ये स्कूल ज्यों-त्यों करके चलते रहे। इनमें से थोड़े से तो बन्द भी हो गये। युद्ध के उपरान्त जब कांग्रेसी मंत्रिमंडल को पुनः शक्ति प्राप्त हुई, तब इस योजना के अनुसार स्कूलों का पुनर्संङ्गठन किया गया। फलस्वरूप १९४७ तक ६,६८४ वालंटरी स्कूलों का संचालन किया जा रहा था। इसमें ३,४८,७७० छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। लगभग सभी छोटे ग्रामों में वालंटरी स्कूल शिक्षा प्रदान करने का कार्य करने लगे थे।

बेसिक शिक्षा की योजना

जब १९३७ में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने प्रान्तीय स्वशासन का कार्य-भार सम्हाला, तब उन्होंने अपने को एक विचित्र दुविधा में पाया। एक ओर, वे कम से कम समय में सर्वव्यापी, निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करना चाहते थे, क्योंकि वे जनता की इस उचित मांग को पूर्ण करने के लिये वचन-बद्ध थे। दूसरी ओर, वे राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी की पूर्ण नशा-निरोध (Total Prohibition) की नीति को कार्यान्वित करना चाहते थे। शिक्षा-प्रसार के कार्य के लिये विशाल धन-राशि की आवश्यकता थी। परन्तु नशा-निरोध की नीति का अनुसरण करने से प्रान्तीय आय के एक उत्तम साधन को खो देना था। इन दोनों विरोधी कार्यों को एक साथ किस प्रकार सम्पन्न किया जाय? कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के समक्ष यह विषम समस्या थी। वह एक ही कार्य को कर सकती थी—प्राथमिक शिक्षा का प्रसार या नशा-निरोध। कांग्रेसी मंत्रिमंडलों का इस संकट से, उनके नेता महात्मा गांधी ने अपनी बेसिक शिक्षा की योजना प्रस्तुत करके, उद्धार किया।

महात्मा गांधी के शिक्षा-विषयक विचार

महात्मा गांधी न केवल एक उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे, अपितु वे एक

महान् समाज-सुधारक भी थे। समाज की विभिन्न समस्याओं—शिक्षा, अस्पृश्यता, धर्म आदि के विषय में उनके अपने मौलिक विचार थे। वे राष्ट्रीय-पुनर्निर्माण के लिये शिक्षा के महत्त्व से भली प्रकार अवगत थे। अतः १९३७ में भारत के अनेकों प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की स्थापना होते ही उन्होंने भारतीयों का ध्यान जन-शिक्षा की ओर आकर्षित करने के विचार से अपने समाचार-पत्र 'हरिजन' में शिक्षा-सम्बन्धी लेख लिखने प्रारम्भ किये। यही लेख 'बेसिक शिक्षा-योजना' के आधार बने। एक लेख में उन्होंने अपने शिक्षा-विषयक विचारों को अधोलिखित शब्दों में व्यक्त किया :—

"राष्ट्र के रूप में हम शिक्षा में इतने पिछड़े हुए हैं कि यदि हमने शिक्षा का यह कार्य-क्रम धन पर आधारित किया, तो हम राष्ट्र के प्रति शिक्षा के अपने उत्तरदायित्वों को इस पीढ़ी में थोड़े समय में निर्वाह करने की आशा नहीं कर सकते हैं। अतः मैंने अपनी रचनात्मक योग्यता की ख्याति को संकट में डालकर यह प्रस्ताव करने का साहस किया है कि शिक्षा आत्म-निर्भर होनी चाहिये। शिक्षा से मेरा अर्थ है बच्चे एवं मनुष्य की सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास। साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न आदि। यह तो अनेकों साधनों में से एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्य एवं स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है। साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं है। अतः मैं बच्चे की शिक्षा उसे एक उपयोगी हस्तशिल्प सिखा कर और जिस समय से वह अपनी शिक्षा प्रारम्भ करता है, उसी समय से उसे उत्पादन करने योग्य बना कर प्रारम्भ करना चाहता हूँ। इस प्रकार यदि राज्य विद्यालयों में निर्मित वस्तुओं को लेने का उत्तरदायित्व ले ले, तो प्रत्येक विद्यालय आत्म-निर्भर बनाया जा सकता है।[1]"

---

1. As a nation we are so backward in education that we cannot hope to fulfil our obligations to the nation in this respect in a given time during this generation, if this programme is to depend on money. I have, therefore, made bold, even at the risk of losing a reputation for constructive ability, to suggest that education should be self-supporting. By education, I mean an all-round drawing out of the best in child and man-body, mind and spirit. Literacy is not the end of education nor even the beginning. It is only one of the means whereby man and woman can be educated. Literacy in itself is no education. I would, therefore, begin the child's education by teaching it a useful handicraft and enabling it to produce from the moment it begins its training. Thus every school can be made self-supporting, the condition being that the State takes over the manufacture of these schools." *Harijan*, July 31, 1937.

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन[1]

गांधी जी के शिक्षा-विषयक विचारों ने देश में हलचल मचा दी। उनके प्रस्तुत शिक्षा-योजना के उभय पक्षों को लेकर विचारकों में असाधारण वाद-विवाद प्रारम्भ हो गया। अतः गांधी जी ने देश के शिक्षा-मर्मज्ञों द्वारा अपनी योजना की जाँच कराना निश्चित किया। उस समय महात्मा जी वार्धा में थे। वहाँ २२ और २३ अक्टूबर १९३७ को मारवाड़ी हाई स्कूल की रजतजयन्ती का समारोह होने वाला था। इस अवसर पर भारत के विभिन्न भागों से शिक्षा-विशेषज्ञों, राष्ट्रीय नेताओं एवं समाज-सुधारकों को आमंत्रित किया गया और 'अखिल-भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन', जिसे 'वार्धा शिक्षा-सम्मेलन' भी कहते हैं, का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में गांधी जी ने सभापति का स्थान ग्रहण किया। उन्होंने सम्मेलन में भाग लेने वाले शिक्षा-विशारदों के समक्ष अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचार व्यक्त किये। गम्भीर विचार-विमर्श के उपरान्त सम्मेलन ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये, जो बेसिक शिक्षा-योजना के आधार हैं :

१. राष्ट्र के प्रत्येक बच्चे को सात वर्ष तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाय।
२. शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो।
३. इस सम्पूर्ण अवधि में शिक्षा किसी हस्त एवं उत्पादक कार्य के माध्यम से दी जाय। अन्य विषय इस केन्द्रीय कार्य से सम्बन्धित रखे जायँ। बच्चों की अन्य सभी योग्यताओं का विकास या उसको दिया जाने वाला शिक्षण, उसके वातावरण से पूर्णतः सम्बन्धित हो।
४. सम्मेलन को आशा है कि शनैः-शनैः शिक्षा की इस प्रणाली से अध्यापकों का वेतन निकलने लगेगा।[2]

ज़ाकिर हुसेन समिति[3]

उपरिलिखित प्रस्तावों को पारित करने के उपरान्त सम्मेलन ने जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली, के आचार्य डा० ज़ाकिर हुसेन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इसे 'ज़ाकिर हुसेन समिति' के नाम से पुकारा जाता

1. All-India National Education Conference.
2. Hindustani Talimi Sangh, *Educaional Reconstruction*, p. 82.
3. Zakir Husain Committee.

है। इस समिति का उद्देश्य वार्धा शिक्षा-सम्मेलन में पारित प्रस्तावों के अनुसार एक विस्तृत पाठ्य-क्रम तैयार करना था। इस समिति ने दिसम्बर १९३७ और अप्रैल १९३८ में दो रिपोर्टें प्रस्तुत कीं। प्रथम रिपोर्ट में वार्धा-शिक्षा-योजना के आधारभूत सिद्धान्तों, उद्देश्यों, शिक्षकों तथा उनके प्रशिक्षण, विद्यालयों के संगठन, प्रशासन एवं निरीक्षण और कताई-बुनाई के विस्तृत पाठ्य-क्रम इत्यादि का विशद् वर्णन किया। द्वितीय रिपोर्ट में समस्त विषयों के पाठ्य-क्रम एवं उनको आधारभूत हस्त तथा उत्पादक कार्य से सम्बन्धित करने के उपायों पर अपना मत प्रकट किया।

इसी बीच ज़ाकिर हुसेन समिति की प्रथम रिपोर्ट फ़रवरी १९३८ में हरिपुरा में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन में विचार विनिमय के लिये रखी गई और भारतीय शिक्षा को पुनर्संगठित करने के लिये उसे कांग्रेस की योजना स्वीकार कर लिया गया। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये अप्रैल १९३९ में सेवाग्राम में 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद्'[1] की स्थापना की गई। इस परिषद् को 'हिन्दुस्तानी तालिमी संघ'[2] भी कहा जाता है। कारण यह है कि गांधी जी इस नवीन शिक्षा को 'नई तालीम'[3] के नाम से पुकारते थे।

योजना की रूप-रेखा

बेसिक शिक्षा की योजना की रूप-रेखा निम्नलिखित प्रकार से है :—

१. बेसिक शिक्षा की अवधि सात वर्ष की है। यह शिक्षा ७ वर्ष से १४ तक की आयु के बालकों और बालिकाओं के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य है।

२. शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा है और अँग्रेजी की शिक्षा नहीं दी जाती है।

३. सम्पूर्ण शिक्षा का सम्बन्ध किसी आधारभूत शिल्प (Basic Craft) से होता है, जिसे बच्चों की योजना तथा स्थान की आवश्यकताओं को देख कर चुना जाता है।

४. चुने हुए शिल्प की शिक्षा इस प्रकार दी जाती है कि वह बच्चों को उत्तम शिल्पी बना देती है और जो वस्तुयें वे बनाते हैं, ऐसी होती हैं

---

1. All India National Education Board.
2. Hindustani Talimi Sangh.
3. Nai Talim.

जिनका प्रयोग किया जा सकता है या जिनको बेच कर विद्यालय के व्यय के कुछ भाग की पूर्ति की जा सकती है।

५. इस शिल्प की शिक्षा यांत्रिक विधि से न दी जाकर इस प्रकार दी जाती है कि छात्र उसके सामाजिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व से परिचित हो जाते हैं।[1]

पाठ्य-क्रम

बेसिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम में निम्नलिखित विषय होते हैं :—

१. आधारभूत शिल्प :—अग्रलिखित आधारभूत शिल्पों में से कोई १ चुना जाता है—(क) कृषि; (ख) कताई-बुनाई; (ग) लकड़ी का काम; (घ) मिट्टी का काम; (ङ) चमड़े का काम; (च) मछली पालना; (छ) फल एवं शाक उद्यान-कर्म; (ज) बालिकाओं के लिये गृह विज्ञान; (झ) कोई अन्य शिल्प, जिसके लिये स्थानीय तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ अनुकूल हों।

२. मातृ-भाषा

३. गणित

४. सामाजिक अध्ययन—इतिहास, भूगोल एवं नागरिक शास्त्र।

५. सामान्य विज्ञान—(अ) प्रकृति अध्ययन; (ब) बनस्पति-शास्त्र; (स) प्राणि-शास्त्र; (द) रसायन-शास्त्र; (र) स्वास्थ्य विज्ञान; (ल) नक्षत्रों का ज्ञान; (व) महान् वैज्ञानिकों एवं अन्वेषकों की कहानियाँ।

६. कला—रेखा-चित्रण एवं संगीत आदि

७. हिन्दी (जहाँ मातृ-भाषा नहीं है)

८. शारीरिक शिक्षा (व्यायाम एवं खेल कूद)

पाँचवीं कक्षा तक सह-शिक्षा है और बालकों तथा बालिकाओं के लिये समान पाठ्य-क्रम है। इसके उपरान्त दोनों के लिये पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था की गई है। ६ ठी और ७ वीं कक्षाओं में बालिकायें आधारभूत शिल्प के स्थान पर गृह-विज्ञान में उच्च पाठ्य-विषय ले सकती हैं। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है, परन्तु राष्ट्रभाषा अर्थात् हिन्दी का अध्ययन सब छात्रों के लिये अनिवार्य है। हिन्दी देवनागरी लिपि में पढ़ाई जाती है। जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी नहीं है, वहाँ उन स्थानों की प्रादेशिक भाषा पाठ्य-क्रम में प्रमुख

---

1. K. G. Saiyidain in *Year-Book of Education* (Evans Bros.) 1840, p. 503.

भाषा के रूप में रहती है। पाठ्य-क्रम में धार्मिक शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया गया है।

अध्यापन विधि

बेसिक शिक्षा में अध्यापन विधि सामान्य शिक्षण-पद्धति से सर्वथा भिन्न है। बेसिक शिक्षण-प्रणाली में अध्यापन का कार्य, क्रियाओं एवं अनुभवों के माध्यम से किया जाता है। दूसरे शब्दों में शिक्षण-विधि इतनी व्यावहारिक होती है कि बच्चे विभिन्न विषयों का ज्ञान एक ही समय में अर्जित करते हैं। साथ ही उन्हें यह ज्ञान अल्प समय में ही उपलब्ध हो जाता है। विस्तार रूप से प्रत्येक कक्षा में शिक्षा निम्नांकित प्रकार से प्रदान की जाती है :—

प्रथम कक्षा में बच्चों को अपनी मातृभाषा का मौखिक ज्ञान कराया जाता है। तदनन्तर बच्चे पढ़ना और उसके बाद लिखना सीखते हैं। जिस समय वे लिखना सीखते हैं, उस समय किसी आधारभूत शिल्प की जानकारी भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ज्यों-ज्यों बच्चे आगे की कक्षाओं में पहुँचते हैं, वे विभिन्न विषयों के ज्ञान का अर्जन करते हैं। परन्तु उनको इन विषयों की शिक्षा स्वतंत्र रूप से प्रदान न की जाकर किसी आधारभूत शिल्प के माध्यम से दी जाती है। गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान आदि के शिक्षण में इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। यदि किसी विषय का कोई भाग आधारभूत शिल्प के माध्यम से नहीं पढ़ाया जा सकता है, तो उसे किसी अन्य विधि से पढ़ा दिया जाता है। पाठ्य-क्रम के समस्त विषय परस्पर-सम्बन्धित ज्ञान-क्षेत्रों के रूप में बच्चों के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार ७ वर्ष के अन्त में बच्चों को सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। साथ ही उन्हें आधारभूत शिल्प की इतनी अच्छी जानकारी हो जाती है कि उसकी सहायता से वे धनोपार्जन करने लगते हैं।

अध्यापक

बेसिक शिक्षा-प्रणाली में अध्यापकों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विद्यालयों के लिये उनका चुनाव करते समय उन अध्यापकों को वरीयता दी जाती है जो उस क्षेत्र के निवासी होते हैं, जहाँ विद्यालय स्थित है। शिक्षण कार्य के लिये पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिमान (Preference) दिया जाता है।

बेसिक विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापक ही नियुक्त किये जाते हैं। प्रशि-

क्षण-विद्यालयों में वे ही व्यक्ति प्रवेश कर सकते हैं जो या तो 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हों या वर्नाक्यूलर फ़ाइनल परीक्षा पास करने के उपरान्त कम से कम दो वर्ष तक किसी विद्यालय में अध्यापन कार्य कर चुके हों। प्रशिक्षण-विद्यालयों में दो प्रकार का पाठ्य-क्रम होता है :—(१) दीर्घकालीन प्रशिक्षण और (२) अल्पकालीन प्रशिक्षण। प्रथम में प्रशिक्षण की अवधि ३ वर्ष है और द्वितीय में १ वर्ष। इस अवधि में छात्राध्यापकों को बेसिक विद्यालयों के सभी विषयों की शिक्षण-विधि का ज्ञान प्रदान किया जाता है।

नामकरण के कारण

यहाँ यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस शिक्षा का नाम 'बेसिक शिक्षा' क्यों रखा गया है। 'बेसिक' (Basic) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है 'आधारभूत'। इसी प्रसङ्ग में 'बेसिक शिक्षा' के नामकरण के निम्नाङ्कित कारणों को समझा जा सकता है :—

१. यह शिक्षा भारत की राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति एवं शिक्षा-संगठन का आधार होगी।

२. प्रत्येक भारतीय बच्चे को, यदि वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ नहीं है, यह आधारभूत शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जायगी।

३. यह आधारभूत शिक्षा प्रत्येक भारतीय—पुरुष अथवा स्त्री, धनी अथवा दरिद्र, हिन्दू अथवा मुसलमान, हरिजन अथवा ब्राह्मण—की सामान्य सम्पत्ति होगी।

४. इस शिक्षा का बच्चों की आधारभूत आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों से घनिष्ट सम्बन्ध होगा।

५. यह शिक्षा सामुदायिक जीवन के आधारभूत व्यवसायों से सम्बन्धित होगी।

६. यह शिक्षा सभी भारतीयों को ऐसा आधारभूत ज्ञान प्रदान करेगी, जो उनको अपने वातावरण को बुद्धिमत्तापूर्वक समझने एवं प्रयोग करने में सहायक सिद्ध होगा।

७. इस शिक्षा का मध्यबिन्दु कोई आधारभूत शिल्प होगा, जिसका प्रयोग व्यक्तियों द्वारा अपने जीवन निर्वाह के लिये किया जा सकेगा।

बेसिक शिक्षा के उद्देश्य

बेसिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

१. नागरिकता के गुणों का विकास—प्रजातंत्र-शासन-व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति शासन के प्रति उत्तरदायी होता है। राज्य के प्रति उसके कर्त्तव्य बढ़ जाते हैं। साथ ही उसे अनेकों अधिकार भी प्राप्त हैं। वह इन कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का निर्वाह तभी कर सकता है, जब वह इनके प्रति सजग हो। इसके लिये ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो उसमें नागरिकता के गुणों का विकास करे। बेसिक शिक्षा में इस बात की ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया गया है। जाकिर हुसेन समिति ने इस विषय में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है : "आधुनिक भारत में नागरिकता देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन मे विस्तार से प्रजातांत्रिक होती है। नई पीढ़ी को कम से कम इस बात का अवसर अवश्य मिलना चाहिये कि वह अपनी समस्याओं, अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को समझे।"[1]

२. नैतिक विकास—आधुनिक समाज का उत्तरोत्तर नैतिक पतन होता जा रहा है। पार्थिव जीवन को प्रमुखता देने वाले व्यक्ति अपने स्वार्थों की दौड़ में अपने कर्त्तव्यों, सिद्धान्तों तथा आदर्शों को विस्तृत कर चुके हैं। समाज की इस पतनोन्मुख दशा को देख कर गांधी जी ने शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति में नैतिकता को समाविष्ट करना बताया। उनके अनुसार : "मैंने सब से ऊँचा स्थान हृदय की संस्कृति या चारित्रिक निर्माण को दिया है; और मुझे अनुभव हुआ है कि सब को समान रूप से नैतिक शिक्षा दी जा सकती है। इस बात से कोई प्रयोजन नहीं है कि उनकी आयु और पालन-पोषण में कितना ही अन्तर क्यों न हो।"[2]

बेसिक शिक्षा में नैतिक विकास की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया है। बच्चों

---

1. "In modern India citizenship is destined to become increasingly democratic in social, political, economic and cultural life of the country. The new generation must at least have an opportunity of understanding its own problems and rights and obligations." *Educational Reconstruction*, p. 95.
2. "I had given the top place to the culture of the heart or the building of character, and I felt confident that moral training could be given to all alike, no matter how different their ages or upbringing." Mahatma Gandhi : ***Autobiography***, p. 408.

को कर्त्तव्यपरायणता, दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान, पारस्परिक सहयोग और शान्ति एवं सत्यता के मार्ग का अनुसरण करने की शिक्षा दी जाती है।

३. **सांस्कृतिक उद्देश्य**—प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का एक मुख्य दोष यह है कि उसमें भारतीय संस्कृति का पाठ न पढ़ाया जाकर बच्चों को पाश्चात्य रंग में रंगा जाता है। वे अपनी परम्परागत संस्कृति से दूर हो जाते है। इससे होने वाली हानि के सम्बन्ध में गांधी जी ने लिखा है : "यदि किसी स्थिति पर जाकर एक पीढ़ी अपने पूर्वजों के प्रयत्नों से बिल्कुल अचेत हो जाती है या अपनी संस्कृति पर लज्जा करने लगती है, तो वह नष्ट हो जाती है।"[२] अतः गांधी जी ने अक्षरज्ञान से अधिक महत्त्व शिक्षा के सांस्कृतिक पहलू को दिया। इसीलिये बेसिक शिक्षा में भारतीय शिल्पों को स्थान दिया गया है और शिक्षा को सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाया गया है।

४. **त्रिविध विकास**—प्रचलित शिक्षा-प्रणाली मे केवल बुद्धि के विकास पर बल दिया जाता है और शारीरिक तथा आत्मिक विकास की पूर्णतः उपेक्षा की जाती है। अतः इस प्रकार व्यक्ति का केवल एकांगी विकास होता है, पूर्ण विकास नहीं। बेसिक शिक्षा में मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक विकास की ओर पूरा ध्यान दिया गया है। पाठ्य-क्रम के लिये इस प्रकार के विषय चुने गये हैं जिनसे तीनों प्रकार का विकास होना निश्चित हो जाता है।

५. **आर्थिक उद्देश्य**—बेसिक शिक्षा में आर्थिक उद्देश्य के दो अभिप्राय हैं। प्रथम, बच्चों द्वारा बनाई गई वस्तुओं से विद्यालय के व्यय की आंशिक पूर्ति करना। द्वितीय, बेसिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् बालकों का बड़े होकर किसी उद्योग के द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना।

६. **सर्वोदय समाज**—आज का भौतिकवादी समाज स्वार्थसिद्धि की नीति की नींव पर खड़ा है। समाज स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभाजित है—धनपति और धनहीन। दोनों ही वर्ग विकृत हैं। एक की विकृति का कारण धन की अधिकता है और दूसरे की विकृति का कारण धन का अभाव। धनपति शोषण की चिता पर खड़े होकर जीवन के आनन्द लूट रहे हैं। धनहीन व्यक्तियों को भर-पेट भोजन और तन ढकने के लिये कपड़े भी नसीब नहीं होते हैं।

बेसिक शिक्षा का उद्देश्य इस विकृत समाज के स्थान पर सर्वोदय समाज

2. "If at any stage one generation goes completely out of touch with the effort of its predecessors or in anywise gets ashamed of itself or its culture, it is lost." *Young India*, March 20, 1924.

की स्थापना करना है। सर्वोदय समाज में स्वार्थ का स्थान परमार्थ, संग्रह की वृत्ति का स्थान त्याग की वृत्ति और शोषण का स्थान सेवा लेगी। इस समाज में श्रम की महत्ता होगी, पैसे की नहीं, और सहयोग तथा स्नेह की भावनायें होंगी, ईर्ष्या और द्वेष की नहीं। इस समाज के निर्माण के लिये बेसिक शिक्षा इस बात पर बल देती है कि बच्चे सामूहिक तथा सहयोगी जीवन व्यतीत करें। इसीलिये बेसिक शिक्षा बच्चों में त्याग, आत्मविश्वास, समाजसेवा, प्रेम आदि की उच्च भावनाओं को कूट-कूट कर भरने का प्रयत्न करती है।

बेसिक शिक्षा की विशेषतायें

वार्धा-शिक्षा-योजना की विशेषताओं के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये गये हैं, उन्हें हम संक्षेप में नीचे दे रहे हैं :—

१. **जाकिर हुसेन समिति के अनुसार**—[1] (अ) एक शिल्प का विषय-प्रवेश; (ब) पाठ्य-क्रम के विषयों का समन्वय तथा सहसम्बन्ध (स) जीवन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध; (द) क्रिया द्वारा सीखने की विधि; (य) वैयक्तिक रुचि, और (र) वास्तविक उत्तरदायित्व की भावना।

२. **बेसिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम के अनुसार**[2]—(अ) क्रिया का केन्द्रीकरण; (ब) विषयों का सहसम्बन्ध; (स) अध्यापक को स्वतंत्रता; (द) उत्पादन पर बल; (द) हस्तकार्य के लिये आदर; और (र) नागरिकता का आदर्श।

३. **डा० पटेल के अनुसार**[3]—(अ) निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा; (ब) शिक्षण-केन्द्र के रूप में एक शिल्प; (स) योजना में आत्म-निर्भरता पर बल; (द) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा; (य) नागरिकता का आदर्श; (र) एक सहकारी समुदाय का आदर्श; और (ल) अहिंसा का आदर्श।

४. **हंसराज भाटिया के अनुसार**[4]—(अ) शिक्षण का केन्द्र बालक (ब) ज्ञान को एक "एकीकृत सम्पूर्ण" समझा जाना; (स) बच्चों का क्रिया अथवा आत्म-चेष्टा द्वारा सीखना; (द) क्रिया का प्रयोजन एवं उत्पादक होना; (य) शिक्षण किसी शिल्प-कार्य द्वारा किया जाना; (र) अध्यापकों एवं बालकों

---

1. *Educational Reconstruction*, p. 122.
2. *Syllabus for Basic Schools*, Ministry of Education, Government of India, 1956, pp. 5-6.
3. M. S. Patel : *The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi*, pp. 113-119.
4. Hans Raj Bhatia : *What Basic Education Means*, p. 12.

को कार्य करने की अधिक स्वतंत्रता; (ल) बच्चों द्वारा हस्त-कार्य का सम्मान किया जाना; (व) अध्यापकों एवं बच्चों द्वारा सामाजिक प्रगति के लिये कार्य किया जाना; और (श) अध्यापकों और बच्चों द्वारा सत्य और अहिंसा के आदर्श को दृष्टि में रखते हुए, विश्व-शान्ति में योग देना।

उपरोक्त सूचियों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वार्धा-शिक्षा-योजना की विभिन्न विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। परन्तु उनमें से अनेक विशेषतायें सामान्य हैं। इन विशेषताओं में अन्य अनेक विशेषतायें जोड़ी जा सकती हैं। किन्तु स्थानाभाव के कारण हम ऐसा न करके केवल दो अन्य प्रमुख विशेषताओं की ओर विद्यार्थियों का ध्यान नीचे आकर्षित कर रहे हैं:—

१. वार्धा-शिक्षा-योजना भारत की भौगोलिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है।

२. इस योजना में राष्ट्रीयता, देशभक्ति तथा असाम्प्रदायिकता की भावनायें निहित हैं।

बेसिक शिक्षा के दोष

वार्धा-शिक्षा-योजना के जिन दोषों की ओर संकेत किया गया है, वे निम्नलिखित हैं :—

१. यह योजना विशेष रूप से ग्रामों के लिये है, न कि नगरों के लिये।

२. इस योजना में उत्पादिता-सिद्धान्त (Priniciple of productivity) की अति है। अतः इसका अनुसरण करने से बेसिक विद्यालय कुटीर-उद्योगों में परिणत हो जायेंगे।

३. उत्पादिता-सिद्धान्त से अध्यापकों का नैतिक पतन हो जायगा, क्योंकि वे विद्यालयों को फ़ैक्ट्रियों एवं विद्यार्थियों को धनोपार्जन करने के साधन समझने लगेंगे।

४. यह युग वायुयानों एवं बमों का है और विज्ञानों की अति तीव्र गति से प्रगति हो रही है। ऐसे युग में कताई और बुनाई के समान मध्यकालीन उद्योगों के प्रयोग का उपदेश करके भारत की औद्योगिक प्रगति अवरुद्ध हो जायगी।

५. आधार भूत शिल्प द्वारा समस्त विषयों की शिक्षा दी जानी एक असम्भव बात है।

६. आधारभूत शिल्प की सहायता से न तो बच्चों का सर्वतोमुखी विकास करना सम्भव होगा और न उन्हें सामान्य शिक्षा ही दी जा सकेगी, क्योंकि वार्धा-शिक्षा-योजना में व्यावसायिक तथा बौद्धिक शिक्षा में उचित संतुलन का अभाव है।

७. तकली द्वारा कताई पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दिया गया है। क्योंकि इस कार्य द्वारा अधिक उत्पादन होना सम्भव नहीं है, अतः इसमें विद्यार्थियों का समय नष्ट होगा और उनके लिये शिक्षा मंहगी पड़ेगी।

८. वार्धा-शिक्षा-योजना में भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया है, पर धर्म को शिक्षा में कोई स्थान नहीं दिया गया है। अतः धर्मविहीन बेसिक शिक्षा उसी प्रकार की होगी, जिस प्रकार की आत्माविहीन बुद्धि।

९. बेसिक विद्यालय एक वर्ष में २८८ दिन खुलेंगे। इतने अधिक कार्य-दिवस रख कर बच्चों को अत्यधिक श्रम करने के लिये बाध्य किया जायगा।

१०. पाठ्य-क्रम के विभिन्न विषयों के लिये समय का विभाजन अत्यन्त त्रुटि-पूर्ण है। शारीरिक-शिक्षा के लिये प्रतिदिन केवल १० मिनट दिये गये हैं, जबकि आधारभूत शिल्प के लिये ३ घंटे २० मिनट का समय निर्धारित किया गया है।

११. प्राथमिक शिक्षा पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की उपेक्षा की गई है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि "यह योजना काल्पनिक है, एक अनावश्यक विश्वास है, एक मनःसृष्टि है, और वास्तविक व्यवहार से परे है। इस योजना में एक सुस्थित शिक्षा-दर्शन की अपेक्षा भावुकता अधिक है। इसे गांधी जी की महानता से प्रभावित व्यक्तियों ने भावुकतावश ही स्वीकार किया है।"[1]

उपसंहार

बेसिक-शिक्षा-योजना के उपर्युक्त गुण-दोषों के विवेचन के आधार पर हमें यह स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिये कि भारत जैसे निर्धन देश के लिये वार्धा-शिक्षा-योजना अत्यधिक कल्याणकारी सिद्ध होगी। वस्तुतः हमारे देश के लिये इससे अधिक उत्तम शिक्षा-योजना की कल्पना करना ही असम्भव है। इस योजना की महानतम देन है 'उत्पादक क्रिया का सिद्धान्त'। यह योजना गांधी जी की दूरदर्शिता की प्रतीक और उनकी देश-सेवा तथा तपस्या का अनुपम फल है। हमें दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रकार उनकी राजनीतिक योजनाओं में इस देश की राजनीतिक समस्याओं का समाधान करने

1. Jhingran and Sharma : *Reports on Indian Education*, p. 37.

के लिये अद्वितीय शक्ति विद्यमान रहती थी, उसी प्रकार उनकी वार्धा-शिक्षा-योजना में भारत की समस्त शिक्षा-समस्याओं को हल करने की पूर्ण क्षमता है।

बेसिक शिक्षा का इतिहास (१९३७-१९४७)

हम १९३७ से १९४७ तक बेसिक शिक्षा के इतिहास का अध्ययन तीन विभिन्न कालों के अंतर्गत करेंगे—(१) १९३७ से १९४० तक; (२) १९४० से १९४५ तक; और (३) १९४५ से १९४७ तक।

(१) बेसिक शिक्षा (१९३७-४०)

ज़ाकिर हुसेन समिति ने बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट दिसम्बर १९३७ में प्रस्तुत की। १९३८ में हरिपुरा में होने वाले काँग्रेस के अधिवेशन में बेसिक-शिक्षा-योजना को स्वीकृति प्रदान की गई और तत्काल ही इसे भारत के उन प्रान्तों में जहाँ काँग्रेसी मंत्रिमंडल थे क्रियान्वित कर दिया गया। बेसिक शिक्षा का प्रथम विद्यालय 'विद्यामंदिर प्रशिक्षण विद्यालय' था, जिसकी स्थापना अप्रैल १९३८ में वार्धा में की गई। इस विद्यालय का उद्देश्य बेसिक स्कूलों के लिये अध्यापकों को प्रशिक्षित करना था। इसके उपरान्त मध्य प्रान्त, उत्तर प्रदेश, बिहार, बम्बई और काश्मीर में बेसिक शिक्षा योजना को कार्यान्वित किया गया। इन स्थानों में बेसिक स्कूलों की स्थापना की गई, प्रशिक्षण विद्यालयों का निर्माण किया गया, शिक्षाधिकारियों की नियुक्ति की गई, अभिनवन पाठ्य-क्रमों का संगठन किया गया और बिहार, बम्बई और उड़ीसा में विशेष शिक्षाधिकारियों की अध्यक्षता में 'बेसिक शिक्षा-परिषदों'[1] की स्थापना की गई। काश्मीर राज्य के शिक्षा-संचालक के० जी० सयदीन ने बेसिक शिक्षा-योजना में विशेष रुचि ली। देश की कतिपय राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं ने भी बेसिक शिक्षा की योजना को कार्यान्वित किया, यथा—जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली; तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना; गुजरात विद्यापीठ इत्यादि। परन्तु द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ होने और काँग्रेसी मंत्रिमंडलों के त्याग-पत्र देने से बेसिक शिक्षा की योजना में शिथिलता आगई।

इस काल की एक प्रमुख घटना उल्लेखनीय है। अक्टूबर १९३९ में पूना में 'बेसिक राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन[2]' आयोजित किया गया। इसमें देश के विभिन्न भागों से बेसिक शिक्षा के कार्यकर्त्ता सम्मिलित हुए और उन्होंने विचार

1. Boards of Basic Education.
2. Basic National Education Conference.

विमर्श करके बेसिक शिक्षा-योजना को अधिक सफल बनाने के लिये उपाय निश्चय किये।

(२) बेसिक शिक्षा (१९४०–४५)

काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के पद-त्याग का वार्धा-शिक्षा-योजना पर अति विपरीत प्रभाव पड़ा और अब तक महान् उत्साह से चलाई जाने वाली इस योजना की प्रगति धीमी पड़ गई। १९४० में वार्धा का 'विद्या मंदिर प्रशिक्षण विद्यालय' बन्द कर दिया गया। जैसा कि काँग्रेस मंत्रिमंडल ने निश्चय किया था मध्य प्रान्त के नार्मल स्कूलों को 'बेसिक प्रशिक्षण विद्यालयों' में परिवर्तित नहीं किया गया। उड़ीसा सरकार ने बेसिक-शिक्षा-योजना को स्थगित कर दिया और 'बोर्ड ऑफ़ बेसिक ऐजूकेशन' को भंग कर दिया। परन्तु जिस कार्य की ओर से सरकार विमुख हो गई, उसको पूर्ण करने का संकल्प उड़ीसा के 'उत्कल मौलिक शिक्षा-परिषद्' ने किया।

इसके पाश्चात् १९४२ से १९४५ तक राष्ट्रीय आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। फलस्वरूप यत्र-तत्र बेसिक शिक्षा की प्रगति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगी।

इस अवधि की दो प्रधान घटनाओं का उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा। १९४१ में दिल्ली में जामियानगर नामक स्थान पर 'द्वितीय बेसिक शिक्षा-सम्मेलन' का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में बेसिक शिक्षा की प्रगति पर संतोष प्रकट किया गया।

जनवरी १९४५ में सेवाग्राम में 'अखिल-भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन' आयोजित किया गया। इस सम्मेलन का उद्देश्य बेसिक शिक्षा की प्रगति का पुनरवलोकन करना और भविष्य के लिये कार्य-क्रम तैयार करना था। गांधी जी ने सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों को बताया कि बेसिक शिक्षा को केवल प्राथमिक शिक्षा के स्तर तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये, अपितु शिक्षा के सभी स्तरों पर लागू करना वांछनीय होगा।[1] गाँधी जी के प्रस्ताव को स्वीकार करके बेसिक शिक्षा को निम्नलिखित चार प्रकार के स्कूलों में विभाजित किया गया[2] :—

(१) **पूर्व-बेसिक स्कूल**—इन स्कूलों में ३ से ६ वर्ष तक की आयु के बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

1. "Education in all stages of life from cradle to grave through manual work and rural handicrafts."
2. Pre-Basic, Basic, Post-Basic and Adult Schools.

(२) **बेसिक स्कूल**—इन स्कूलों में ७ वर्ष से १४ वर्ष तक के बालकों और बालिकाओं को शिक्षा दी जाय।

(३) **उत्तर-बेसिक स्कूल**—इस प्रकार के स्कूलों में १५ वर्ष से १८ वर्ष की आयु तक के लड़कों और लड़कियों को शिक्षा प्रदान की जाय।

(४)**प्रौढ़-स्कूल**—इन स्कूलों में प्रौढ़ों को शिक्षित बनाया जाय और उन्हें स्वस्थ, सुखी और स्वच्छ जीवन व्यतीत करने का पाठ पढ़ाया जाय।

(३) बेसिक शिक्षा (१९४५–४७)

विश्व-युद्ध के पश्चात् भारत के ८ प्रान्तों में काँग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने शासन-सूत्र सम्हाला। फलतः बेसिक शिक्षा में एक बार फिर स्फूर्ति आ गई। सभी प्रान्तों में बेसिक-शिक्षा-योजना को कार्यान्वित कर दिया गया। बम्बई के प्रधान मन्त्री एवं शिक्षा-मन्त्री बी० जी० खेर ने प्रान्तों के शिक्षा-मंत्रियों तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं का एक सम्मेलन किया, जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गये :—

१. प्रान्तों में बेसिक-शिक्षा-योजना को कार्यान्वित किया जाय।
२. यदि एक छात्र की मातृभाषा अंग्रेजी नहीं है, तो उसको बेसिक शिक्षा की ७ वर्ष की अवधि में अंग्रेजी की शिक्षा न दी जाय।
३. बच्चों की शिक्षा में उनके स्वास्थ्य, भोजन और अच्छी आदतों के निर्माण का विशेष रूप से ध्यान रखा जाय।

इस सम्मेलन के निश्चय के फलस्वरूप सभी प्रान्तों एवं राज्यों में बेसिक शिक्षा के प्रसार का कार्य उत्साह से प्रारम्भ किया गया और यह बात स्पष्ट हो गई कि राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में बेसिक शिक्षा के भवन का एक दृढ़ आधार पर भविष्य में निरन्तर निर्माण होता रहेगा।

बेसिक शिक्षा एवं केन्द्रीय सरकार

जब केन्द्रीय सरकार ने बेसिक शिक्षा में प्रान्तीय सरकारों की अभिरुचि देखी, तो उसने भी इस शिक्षा के क्षेत्र में क्रियात्मक पग उठाने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने १९३८ में बम्बई के प्रधान मन्त्री बी० जी० खेर की अध्यक्षता में 'वार्धा-शिक्षा-योजना' की जाँच करने के लिये एक समिति की नियुक्ति की। इस समिति को 'खेर समिति' के नाम से भी पुकारा जाता है।

प्रथम खेर समिति—१९३८ की प्रथम 'खेर समिति' ने 'बेसिक शिक्षा-योजना' का गहन अध्ययन करके अग्रलिखित सुझाव दिये :—

१. सर्व प्रथम बेसिक शिक्षा की योजना को ग्रामीण क्षेत्रों में क्रियान्वित किया जाय।
२. बेसिक शिक्षा ६ वर्ष से १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिये अनिवार्य हो, परन्तु ५ वर्ष की आयु वाले बच्चे भी बेसिक विद्यालयों में प्रवेश ले सकते हैं।
३. बेसिक स्कूलों को छोड़कर अन्य प्रकार के विद्यालयों में प्रवेश की अनुमति बच्चों को तभी दी जाय, जब वे ५ वीं कक्षा पास कर लें या ११ वर्ष से अधिक आयु के हों।
४. छात्रों को उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाय।
५. बेसिक विद्यालय का पाठ्य-क्रम समाप्त करने वाले छात्रों के लिये किसी वाह्य परीक्षा की आवश्यकता नहीं है। इसके लिये विद्यालय की आन्तरिक परीक्षा ही पर्याप्त होगी। उसमें उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को प्रमाण पत्र प्रदान किये जायँ।[1]

द्वितीय खेर समिति—'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने 'प्रथम खेर समिति' की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और १९३९ में 'द्वितीय खेर समिति' की नियुक्ति की। इस समिति का उद्देश्य बेसिक शिक्षा-प्रणाली और उच्च शिक्षा में समन्वय स्थापित करना था। इसके लिये समिति ने अधोलिखित सिफ़ारिशें कीं :—

१. बेसिक शिक्षा का शिक्षा-काल ८ वर्ष का हो। ६ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक बच्चे इस शिक्षा को ग्रहण करें।
२. ८ वर्ष की इस अवधि को दो प्रक्रमों (Stages) में विभाजित किया जाय—(अ) प्रथम प्रक्रम या जूनियर स्टेज, और (ब) द्वितीय प्रक्रम या सीनियर स्टेज। प्रथम में ५ वर्ष का और द्वितीय में ३ वर्ष का शिक्षा-काल हो।
३. जब विद्यार्थी जूनियर स्टेज की शिक्षा समाप्त कर लें अर्थात् जब वे ५ वीं कक्षा पास कर लें, तभी उनको उत्तर-प्राथमिक (Post-primary) शिक्षा के अन्य किसी विद्यालय में प्रविष्ट होने की आज्ञा दी जाय।[2]

'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने उपर्युक्त सिफ़ारिशों को स्वीकृत किया और 'सार्जेन्ट-शिक्षा-योजना' में उनको क्रियान्वित किया गया।

---

1. *Report of the Committee of the C. A. B. E. appointed to consider the Wardha Scheme of Education*, p. 12.
2. *Report of the Second Wardha Education Committee of C. A. B. E. 1939, together with the Decisions of the Board thereon*, p. 7.

सारांश

विद्यामन्दिर—इस योजना को १९३८-३९ में मध्य प्रान्त में क्रियान्वित किया गया। इस योजना के अनुसार उन ग्रामों में जहाँ लगभग ४० बालक एवं बालिकायें शिक्षा प्राप्त करने योग्य थे, स्कूल खोले गये। प्रत्येक विद्यामन्दिर को भवन और २०० रुपये वार्षिक आय की भूमि दी गई। सम्पूर्ण प्रान्त में लगभग ८० विद्यामन्दिर स्थापित किये गये।

बालंटरी स्कूल—यह योजना १९३८ में बम्बई प्रान्त में कार्यान्वित की गई। इसके अन्तर्गत समितियों या व्यक्तियों द्वारा स्थापित किये गये स्कूलों को प्रोत्साहित किया गया। १९४७ तक पूरे प्रान्त में ६,६८४ बालंटरी स्कूलों का संचालन किया जा रहा था।

बेसिक शिक्षा की योजना—शिक्षा के सम्बन्ध में गांधी जी के विचार मौलिक थे। शिक्षा से उनका अर्थ था बच्चे एवं मनुष्य की सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास। १९३७ में वार्धा में 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन' हुआ और गांधी जी ने उसके समक्ष अपनी शिक्षा की योजना प्रस्तुत की। यही योजना 'बेसिक-शिक्षा-योजना' के नाम से विख्यात हुई। ज़ाकिर हुसेन समिति ने इस योजना के लिये पाठ्य-क्रम तैयार किया।

बेसिक योजना की रूप-रेखा—बेसिक शिक्षा ७ वर्ष की आयु से लेकर १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिये अनिवार्य है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है और सम्पूर्ण शिक्षा का सम्बन्ध किसी आधारभूत शिल्प से होता है। पाठ्य-क्रम में आधारभूत शिल्प के अतिरिक्त मातृभाषा, हिन्दुस्तानी, गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान और कला सम्मिलित हैं। बेसिक शिक्षा प्रणाली में अध्यापन का कार्य, क्रियाओं एवं अनुभवों के माध्यम से किया जाता है।

बेसिक शिक्षा के उद्देश्य—(१) नागरिकता के गुणों का विकास; (२) नैतिक विकास; (३) सांस्कृतिक उद्देश्य, (४) त्रिविध विकास; (५) आर्थिक उद्देश्य; और (६) सर्वोदय समाज।

बेसिक शिक्षा की विशेषतायें—(१) निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा; (२) शिक्षण-केन्द्र के रूप में एक शिल्प; (३) शिक्षण का केन्द्र बालक; (४) पाठ्य-क्रम के विषयों का समन्वय तथा सहसम्बन्ध; (५) जीवन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध (६) अध्यापक और छात्रों की स्वतन्त्रता; (७) उत्पादन पर बल; (८) हस्तकार्य के लिये आदर; तथा (९) नागरिकता, अहिंसा और सहकारी समुदाय के आदर्श।

बेसिक शिक्षा के दोष—(१) विशेष रूप से ग्रामों के लिये; (२) उत्पादिता सिद्धान्त पर अत्यधिक बल; (३) विज्ञान के आधुनिक युग में मध्य-कालीन उद्योगों के प्रयोग की निरर्थकता; (४) धार्मिक शिक्षा का अभाव; (५) विभिन्न विषयों के लिये समय का विभाजन त्रुटिपूर्ण; और (६) प्राथमिकता शिक्षा पर अत्यधिक बल।

बेसिक शिक्षा का इतिहास—१९३८ में बेसिक शिक्षा-योजना मध्य-प्रान्त, उत्तर प्रदेश, बिहार, बम्बई, उड़ीसा और काश्मीर में कार्यान्वित की गई। काँग्रेसी, मंत्रिमंडलों के पद-त्याग करने पर योजना की प्रगति अवरुद्ध हो गई। विश्व-युद्ध के पश्चात् कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने इस योजना को फिर प्रसारित किया। 'खेर समिति' ने बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव दिये, जिन्हें 'सार्जेण्ट-शिक्षा-योजना' ने क्रियान्वित किया।

TEST QUESTIONS

1. Describe in detail, the fundamental features of the Basic Education, explaining the implications of a 'basic craft' and 'self-supporting' aspect of the education.
2. Write a reasoned criticism of the Wardha Scheme.
3. "The present system of education does not meet the requirements of the country in any shape or form." In what respects does the Wardha Scheme meet the requirements of this country.
4. Write short notes on :—(a) Vidya Mandir Scheme ; and (b) Scheme of Voluntary Schools.

—: ० :—

अध्याय १७

युद्धोत्तर शिक्षा-प्रगति

(सार्जेन्ट-योजना,[1] १९४४)

ज्योंही द्वितीय विश्व-युद्ध के दुखान्त अभिनय का अन्त हुआ, लगभग सभी युद्धग्रस्त देशों ने पुनर्निर्माण की योजनायें बनाना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि भारत ने प्रत्यक्ष रूप से युद्ध में भाग नहीं लिया था, तथापि वह उसके प्रभावो से अक्रान्त था। अतः भारतीय जीवन के विभिन्न पक्षों के युद्धोत्तर विकास की योजनाओं के निर्माण-कार्य की ओर रचनात्मक क़दम उठाये गये। इन योजनाओं में शिक्षा को भी स्थान मिला। अतः 'वाइसराय की प्रबन्धकारिणी कौंसिल की पुनर्निर्माण समिति'[2] ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा-सलाहकार, सर जॉन सार्जेन्ट (Sir John Sargent) को भारत में युद्धोत्तर शिक्षा-विकास पर एक स्मृतिपत्र (Memorandum) तैयार करने का आदेश दिया। सार्जेन्ट ने १९४४ में अपनी रिपोर्ट 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' के समक्ष प्रस्तुत की और बोर्ड द्वारा उसे स्वीकृति प्रदान की गई। इस रिपोर्ट को

1. Sargent Scheme.
2. Reconstruction Committee of the Viceroy's Executive Council.

'भारत में युद्धोत्तर शिक्षा-विकास योजना'[1] अथवा 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट'[2] अथवा 'सार्जेन्ट-योजना' के नाम से पुकारा जाता है। सार्जेन्ट-योजना को भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के निर्माण के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है।

सार्जेन्ट-रिपोर्ट में पूर्व-प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय-शिक्षा तक, शिक्षा की अन्य समस्याओं, उसके संगठन, उसके प्रमुख दोषों, उन दोषों के निवारण के उपाय एवं शिक्षा की भावी रूप-रेखा का अति विशद् वर्णन किया गया है। रिपोर्ट में दी हुई सभी सिफ़ारिशों को पूर्णतः क्रियान्वित करने में ४० वर्ष का समय लगेगा और युद्ध-पूर्व के प्रमापों के अनुसार ३१.२६० लाख रुपये की आवश्यकता होगी। इन संस्थाओं से 'सार्जेन्ट-रिपोर्ट' की सिफ़ारिशों के महत्व का सरलतापूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है। इन सिफ़ारिशों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि आज भी उनका महत्व पूर्ववत् है।

सार्जेन्ट-रिपोर्ट की सिफ़ारिशें

सार्जेन्ट-रिपोर्ट में भारत की सम्पूर्ण शिक्षा को १२ अध्यायों में विभाजित किया गया है। हम इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे हैं :—

१. पूर्व-प्रारम्भिक शिक्षा

३ से ६ वर्ष तक की अवस्था वाले शिशुओं के लिये शिक्षा-संस्थायें स्थापित की जायँ। ये संस्थायें समस्त शिक्षण-साधनों और सुयोग्य शिक्षकों से सम्पन्न हों। शिशु-शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बच्चों को सामाजिक अनुभव एवं शिष्टाचार सिखाना हो, न कि सामान्य शिक्षा प्रदान करना। यह शिक्षा निःशुल्क हो[3]।

२. प्राथमिक अथवा बेसिक शिक्षा

६ से १४ वर्ष तक की अवस्था के समस्त बच्चों के लिये सार्वभौमिक, निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक या बेसिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय। अपव्यय को रोकने के लिये शिक्षा को अनिवार्य बनाना आवश्यक है और अनिवार्यता को कार्यान्वित करने के लिये 'उपस्थिति निरीक्षक पदाधिकारी' (Attendance Officers) नियुक्त किये जायँ।

---

1. Scheme of Post-War Educational Development in India.
2. Report by the Central Advisory Board of Education. 1944.
3. *Report of the Central Advisory Board of Education on Post-War Educational Development in India, 1944. pp. 16-17.*

रिपोर्ट में बेसिक शिक्षा के मौलिक सिद्धान्तों का समर्थन, परन्तु शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाने का विरोध किया गया। कहा गया कि बच्चों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का विक्रय कठिन है। बेसिक शिक्षा के काल को दो भागों में विभक्त किया गया—जूनियर बेसिक (६-११) और सीनियर बेसिक (११-१४)। जूनियर बेसिक स्कूलों में सह-शिक्षा को अनुपयुक्त बताया गया। शिक्षा का माध्यम बच्चों की मातृभाषा हो। जूनियर बेसिक स्कूलों में अंग्रेजी की शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया गया, पर सीनियर बेसिक स्कूलों में इसका अन्तिम निर्णय करने का अधिकार प्रान्तीय शिक्षा-विभागों को दे दिया गया। वाह्य-परीक्षा के स्थान पर आन्तरिक परीक्षा को उचित बताया गया, जिसकी समाप्ति के उपरान्त प्रमाणपत्र देना आवश्यक बताया गया।[1]

३. हाई स्कूल-शिक्षा

हाई स्कूल की शिक्षा ११ वर्ष से १६ वर्ष तक की आयु के छात्रों के लिये होगी। इन स्कूलों में केवल असाधारण योग्यता के छात्र ही प्रवेश पा सकेंगे। ११ वर्ष से कम आयु के विद्यार्थियों को इन स्कूलों में प्रवेश नहीं मिलेगा। प्रत्येक छात्र जो हाई स्कूल में प्रवेश करेगा, कम से कम १४ वर्ष की आयु पूर्ण करने तक अनिवार्य रूप से शिक्षा ग्रहण करेगा। इसके उपरान्त भी यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि स्कूल-शिक्षा समाप्त करने से पूर्व छात्र स्कूल न छोड़ दें।

हाई स्कूलों में छात्रों से शुल्क लिया जायगा। परन्तु ५० प्रतिशत छात्रों को निःशुल्क शिक्षा दी जायगी और निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी जायँगी, जिससे कि वे शिक्षा के लाभ से वंचित न रह जायँ। सभी हाई स्कूलों में शिक्षा का माध्यम छात्रों की मातृभाषा होगी और अंग्रेजी की शिक्षा द्वितीय अनिवार्य विषय के रूप में दी जायगी।

हाई स्कूल दो मुख्य प्रकार के होंगे—साहित्यिक[2] और टेकनिकल[3]। दोनों प्रकार के हाई स्कूलों में कुछ विषयों की सामान्य रूप से शिक्षा दी जायगी, यथा—(१) मातृभाषा, (२) अँग्रेजी, (३) आधुनिक भाषायें, (४) भारत एवं विश्व का इतिहास, (५) भारत एवं विश्व का भूगोल, (६) गणित (७) विज्ञान, (८) अर्थ शास्त्र, (९) कृषि, (१०) कला, (११) शारीरिक शिक्षा। इन विषयों के अतिरिक्त साहित्यिक हाई स्कूलों में प्राच्य भाषाओं (Classical

1. *Report*, pp. 7-8.
2. Academic High School.
3. Technical High School.

Languages) और नागरिक शास्त्र की भी शिक्षा दी जायगी। टेकनिकल हाई स्कूलों में जिन अन्य विषयों की शिक्षा की व्यवस्था होगी वे हैं—काष्ठ कला, धातु कला, साधारण इंजीनियरिंग, ड्राइंग, वाणिज्य सम्बन्धी (Commercial) विषय, बुक-कीपिंग, शार्ट-हैन्ड, टाइप-राईटिंग, एकाउन्टेंसी, व्यापार पद्धति इत्यादि। बालिकाओं को गृह-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा होगी।[1]

४. विश्वविद्यालय-शिक्षा

विश्वविद्यालय की बी० ए० की उपाधि पाने के लिये न्यूनतम अवधि ३ वर्ष होनी चाहिये। अतः सार्जेण्ट-रिपोर्ट में यह सिफारिश की गई की इंटरमीडिएट कक्षा को भंग कर दिया जाय और उसकी १२ वीं कक्षा को विश्वविद्यालय में तथा ११ वीं कक्षा को हाई स्कूल के अन्तर्गत कर दिया जाय। विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने के नियमों में इतनी कठोरता कर दी जाय कि माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त १५ छात्रों में से केवल १ छात्र विश्वविद्यालय में प्रवेश पा सके। विश्वविद्यालयों की शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये योग्य अध्यापकों की नियुक्ति की जाय। उनके वेतनों में वृद्धि की जाय तथा उनके सेवा-प्रतिबन्धों में सुधार किया जाय। शिक्षकों एवं छात्रों के पारस्परिक सम्बन्ध में घनिष्टता उत्पन्न की जाय। भारत के समस्त विश्वविद्यालयों में साम्य एवं एक्य स्थापित करने के लिये 'विश्वविद्यालय अनुदान समिति' का संगठन किया जाय। उपकक्षा प्रणाली (Tutorial System) को और अधिक प्रचलित किया जाय।[2]

५. तकनीकी, वाणिज्य एवं कला-शिक्षा

तकनीकी, वाणिज्य एवं कला-शिक्षा के लिये पूर्ण-कालिक (Full-time) तथा अंशकालिक (Part-time) विद्यालय स्थापित किये जायें। भारतीय कलाओं तथा उद्योगों के लिये निम्नलिखित चार प्रकार के कार्यकर्त्ताओं की आवश्कता है :—

(१) उच्च श्रेणी—इस श्रेणी में भविष्य के मुख्य कार्याधिकारी (Executives) तथा अनुसंधानकर्त्ता आते हैं। इस श्रेणी के लिये शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थी टेकनिकल हाई स्कूल का पाठ्य-क्रम समाप्त करने के उपरान्त किसी विश्वविद्यालय के प्रौद्योगिक (Technological) विभाग या

1. *Report*, pp. 18-21.
2. *Report*, pp. 32-33.

किसी अन्य पूर्ण-कालिक टेकनिकल संस्था में प्रवेश लेकर शिक्षा ग्रहण करेंगे। ऐसे विद्यार्थियों के प्रवेश पर कड़ाई रखी जाय, जिससे योग्य छात्र ही प्रवेश पा सकें।

(२) **निम्न श्रेणी**—इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्न कार्याधिकारी, फोरमैन (Foreman) आदि आते हैं। इस श्रेणी के व्यक्तियों को शिक्षा देना टेकनिकल हाई स्कूलों का कार्य होगा। परन्तु टेकनिकल स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त छात्रों को 'राष्ट्रीय डिपलोमा'[1] या इसी प्रकार की कोई अन्य उच्च उपाधि अंशकालिक विद्यार्थियों के रूप में उपलब्ध करनी आवश्यक होगी।

(३) **कुशल शिल्पकार**—कुशल शिल्पकारों (Craftsmen) में उन छात्रों को भर्ती किया जायगा जो टेकनिकल हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण होंगे। परन्तु सीनियर बेसिक स्कूल में शिक्षा समाप्त करके और २ या ३ वर्ष तक किसी जूनियर टेकनिकल स्कूल या औद्योगिक विद्यालय में पूर्णकालिक छात्रों के रूप में शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी भी कुशल शिल्पकारों में भर्ती हो सकेंगे।

(४) **अर्द्धकुशल एवं अकुशल कारीगर**—इन कारीगरों में सीनियर बेसिक मिडिल स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने वाले वे छात्र भर्ती हो सकेंगे, जिन्होंने किसी शिल्प का अध्ययन किया होगा।

६. प्रौढ़-शिक्षा

प्रजातन्त्र के आदर्श को सफल बनाने के लिये प्रौढ़-शिक्षा की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। अतः १० वर्ष की आयु से ४० वर्ष की आयु वाले प्रौढ़ों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। बालकों, युवतियों, पुरुषों और स्त्रियों के लिये पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था की जाय। प्रौढ़-शिक्षा को रोचक तथा प्रभावपूर्ण बनाने के लिए चित्र, मैजिक लेन्टर्न, सिनेमा, ग्रामोफ़ोन, रेडियो, नृत्य, सगीत एवं अभिनय अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं। पुस्तकालयों एवं वाचनालयों का भी आयोजन किया जाय, पर सम्पूर्ण देश में इनकी स्थापना २० वर्ष में हो जानी चाहिए। एक कक्षा में २५ से अधिक वयस्क नहीं होने चाहिये।[2]

७. अध्यापकों का प्रशिक्षण

इस योजना को सफल बनाने तथा विविध प्रकार के स्थापित किये गए

1. National Diploma.
2. *Report*, pp. 48-52.

विद्यालयों के कुशल संचालन के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की एक बहुत बड़ी संख्या आवश्यक हो जाती है। वर्तमान प्रशिक्षण-विद्यालय इस अभाव की पूर्ति नहीं कर सकेंगे। कारण यह है कि पूर्व-बेसिक एवं जूनियर बेसिक स्कूलों में ३० विद्यार्थियों के लिए १ अध्यापक; सीनियर बेसिक स्कूलों में २५ विद्यार्थियों के लिए १ अध्यापक और हाईस्कूलों में २० विद्यार्थियों के लिए १ अध्यापक की आवश्यकता होगी। अतः योजना को क्रियान्वित करने के लिए एक बड़े पैमाने पर अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना आवश्यक होगा। इसके अतिरिक्त पूर्व-प्राथमिक शिक्षकों, बेसिक शिक्षकों तथा हाई स्कूल शिक्षकों की दीक्षा के लिये पृथक् प्रशिक्षण-विद्यालयों का निर्माण करना अनिवार्य होगा। शिक्षकों के लिये अभिनवन पाठ्य-क्रम की भी व्यवस्था करनी होगी। योग्य व्यक्तियों को शिक्षण-कार्य के प्रति आकर्षित करने के उद्देश्य से अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की जाय।

८. छात्रों का स्वास्थ्य

छात्रों के स्वास्थ्य की देख-भाल के लिए समुचित व्यवस्था की जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ६, ११ एवं १४ वर्ष की आयु में विद्यार्थियों के स्वास्थ्य का निरीक्षण डाक्टरों के द्वारा किया जाय। छात्रों का स्वास्थ्य-अभिलेख (Medical Record) रखा जाय, जिसमें उनके स्वास्थ्य की दशा, तोल एवं ऊँचाई आदि के सम्बन्ध में लिखा हो। एक विद्यालय से अन्य विद्यालय को जाते समय यह अभिलेख छात्र को दे दिया जाय। यदि शिक्षक किसी छात्र में किसी प्रकार की अस्वस्थता तथा रोग के लक्षण देखें, तो वे स्कूल हेल्थ आफ़िसर को इस सम्बन्ध में तुरन्त सूचना दें। अस्वस्थ छात्रों की निःशुल्क चिकित्सा की जाय। स्कूलों में साधारण रोगों तथा चोटों की चिकित्सा का प्रबन्ध किया जाय। शारीरिक शिक्षा को अनिवार्य किया जाय। जो छात्र कुपोषण (Malnutrition)के शिकार हों, उनकी ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। सभी छात्रों के लिये मध्याह्न के समय भोजन का प्रबन्ध हो। वे अपने घरों से भी भोजन ला सकते हैं। शिक्षार्थियों की कक्षायें स्वच्छ, प्रकाश-युक्त एवं हवादार हों और उनका फर्नीचर उपयुक्त हो।[1]

९. विकलांग छात्रों की शिक्षा

शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से विकलांग (Handicapped) छात्रों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। उनके लिये विशिष्ट स्कूलों की

1. *Report*, 64-73.

स्थापना की जाय और उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे कोई उत्पादक कार्य करके अपने जीवन का निर्वाह कर सकें। बिकलांग छात्रों के विशिष्ट विद्यालयों के शिक्षकों की दीक्षा के लिये संस्थायें स्थापित की जायँ।

१०. विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियायें[1]

प्रत्येक विद्यालय में छात्रों के लिये विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियाओं की व्यवस्था की जाय। आयु के अनुसार अग्रलिखित क्रियाओं में से जो उचित हों, उनका चयन किया जा सकता है—बाग़बानी, लोकनृत्य, शारीरिक व्यायाम, जूनियर रेड क्रास ग्रूप, अभिनय, बालचर, व्यासंग (Hobbies), वाद-विवाद, अन्तर्विद्यालय-प्रतियोगितायें, तरुण-कृषक-गोष्ठियाँ (Young Farmer's Clubs), स्काउटिंग, युवक आन्दोलन (Youth Movement)

११. सेवा योजनालय[2]

सेवा योजनालयों की स्थापना की जाय, जो सीनियर बेसिक, जूनियर टेकनिकल और हाई स्कूलों के छात्रों को व्यवसाय चुनने में सहायता दें। विश्वविद्यालयों के अपने स्वयं के सेवा योजनालय होने चाहिये। इन योजनालयों के पदाधिकारी, शिक्षा एवं उद्योग के व्यावहारिक ज्ञान रखने वाले दीक्षित विशेषज्ञ होने चाहिये।

१२. शिक्षा का प्रशासन

शिक्षा के प्रशासन की व्यवस्था के लिये मुख्य इकाई प्रान्त हों। परन्तु विश्वविद्यालय तथा उच्च टेकनिकल शिक्षा का प्रबन्ध तथा समन्वय अखिल-भारतीय पैमाने पर किया जाय। राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की स्थापना के लिये केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों के बीच अधिक निकट सहयोग होना चाहिये। इस ध्येय में सफलता प्राप्त करने के लिये केन्द्र पर एक प्रबल शिक्षा-विभाग का सर्जन किया जाय और इस दृष्टिकोण से 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' के कर्त्तव्यों तथा कार्यक्षेत्र में अभिवृद्धि करनी आवश्यक होगी।

सार्जेन्ट-योजना का मूल्यांकन

१८५४ के वुड के घोषणा-पत्र के पश्चात् अनेकों समितियों एवं आयोगों की नियुक्ति की गई थी और भारतीय शिक्षा के विकास तथा विस्तार के लिये बहुत-से 'सरकारी प्रस्ताव' प्रकाशित किये जा चुके थे, परन्तु न तो उनका

1. Recreational and Social Activities.
2. Employment Bureaus.

दृष्टिकोण ही व्यापक था और न उनके विचार ही स्पष्ट थे। इनके विपरीत, सार्जेन्ट-शिक्षा-योजना एक ऐसा व्यापक प्रयास था, जिसमें शिक्षा के सभी पक्षों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करके उनको समुन्नत करने के लिये बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किये गये। परन्तु इस विषय में शिक्षा-विदों में मतैक्यता नहीं है। अतः सार्जेन्ट-योजना के गुण-दोषों की विवेचना करना आवश्यक प्रतीत होता है।

गुण

१. यह योजना भारतीय शिक्षा के इतिहास में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात करने की दृष्टि से सर्व प्रथम राजकीय प्रयास है।[1]

२. "इस योजना की मुख्य विशेषता इसकी व्यापकता है। यह समग्र रूप में भारतीय शिक्षा का चित्र उपस्थित करती है। यह केवल उन विभिन्न प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का ही वर्णन नहीं करती है, जिनकी इस देश में आवश्यकता है, अपितु शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं का भी उल्लेख करती है, यथा स्कूल-स्वास्थ्य-सेवा, विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियायें, सेवा-योजनालय आदि।"[2]

३. यह बात उल्लेखनीय है कि इस योजना की अभिधारणायें अत्यन्त निर्भीक हैं। इसमें यह बात बड़ी निर्भीकता के साथ कही गई है कि वर्तमान प्रणाली पर शिक्षा की प्रभावोत्पादक संरचना का निर्माण नहीं किया जा सकता है।[3]

---

1. "As the first official attempt to plan a national system of education for India, it deserves a careful study." Nurullah and Naik : *op. cit.*, p. 834.

1. "Its chief virtue, however, lies in its comprehensiveness. It boldly visualises Indian education as a whole, and deals not only with the different types of institutions needed in the country, but also with allied problems of the School Medical Service Recreative and Social Activities, Employment Bureau etc." Bhagwan Dayal : *op. cit.*, p. 164.

3. "It may be noted that the Report is rather bold in its admissions and some of its remarks are noteworthy, e. g., 'The persent system does not provide the foundations on which an effective structure could be erected'." S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 253 (1951)

४. यह योजना भारतीय शिक्षा-प्रणाली के प्रमुख दोषों पर ही प्रकाश नहीं डालती है परन्तु उनमें सुधार करने के उपाय भी बताती है।[1]

५. राष्ट्रीय शिक्षा की यह प्रथम व्यापक योजना है। यह इस बात को स्वीकार नहीं करती है कि भारत, शिक्षा के क्षेत्र में अन्य राष्ट्रों से पिछड़ा हुआ रहेगा। यह योजना इस विश्वास पर आधारित है कि अन्य देशों के समान इस देश में भी शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति करने की क्षमता है।[2]

६. इस योजना में शिक्षा के विभिन्न प्रक्रमों पर सभी छात्रों को शिक्षा के लिये समान अवसर देने की इच्छा व्यक्त की गई है। निर्धन छात्रों को प्राथमिक शिक्षा से पूर्ण लाभ उठाने के उद्देश्य से न केवल निःशुल्क शिक्षा की, अपितु अन्य सुविधाओं की भी व्यवस्था की गई है, यथा मध्याह्न का भोजन, पुस्तकें, छात्रवृत्तियाँ, स्वास्थ्य-निरीक्षण एवं चिकित्सा। उच्चतर प्रक्रमों पर योग्य एवं प्रखर बुद्धि छात्रों के लिये निःशुल्क शिक्षा एवं छात्रवृत्तियों का प्रस्ताव किया गया है।[3]

७. यह योजना शिक्षण-व्यवसाय के महत्व पर स्पष्ट शब्दों में बल देती है और अध्यापकों के निम्न वेतन तथा सेवा-प्रतिबन्धों में सुधार करने का प्रस्ताव करती है।[4]

---

1. "It not only pointed out the main defects but suggested remedies too." *Ibid* p. 254.

2. "It is the first comprehensive scheme of national education; it does not start with the assumption that India was destined to occupy a positon of educational inferiority in the comity of nations; it is based on the conviction that what other countries have achieved in the field of education is well within the competence of this country." K. G. Saiyidain : *op. cit.*, p. 507.

3. "It is inspired by the desire to provide equality of opportunity at different stages of education. At the primary stage it envisages not merely the provision of free schooling but also of other facilities without which the poorer children cannot fully avail themselves of the educational opportunities–midday meals, books, scholarships, medical inspection and treatment. At higher stages free places and scholarships are proposed for bright and deserving students." *Ibid.*

4. "It stresses in clear terms the importance of the teaching profession and makes proposals for increasing its miserable standard of salaries and poor conditions of service." *Ibid.*

दोष

उपर्युक्त गुणों के होते हुए भी सार्जेन्ट-योजना पर अनेकों आक्षेप किये गये हैं। हम इन आक्षेपों के आधार पर योजना के दोषों की व्याख्या नीचे कर रहे हैं :—

१. "सार्जेन्ट योजना एक मौलिक लेख नहीं है। इसको पूर्व प्रतिवेदनों एवं योजनाओं द्वारा, जिनमें वार्धा-योजना सम्मिलित है, दिये गये लाभप्रद सुझावों का केवल उत्तम संक्षेप-मात्र कहा जा सकता है।"[1]

२. "भारतीय शिक्षा की समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिये समय-समय पर केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड द्वारा प्रकाशित किये गये प्रतिवेदनों को जोड़-गाँठ कर सार्जेन्ट योजना को तैयार किया गया है।"[2]

३. "यह योजना केवल प्राप्त किये जाने वाले आदर्श को प्रस्तुत करती है और शिक्षा के विकास के पूर्ण कार्य-क्रम का वर्णन नहीं करती है।"[3]

४. भारत के समक्ष इंगलैन्ड की शिक्षा-प्रणाली का आदर्श उपस्थित किया गया है। परन्तु वास्तविकता यह है कि भारत के लिये इंगलैण्ड आदर्श नहीं हो सकता है, क्योंकि दोनों देशों की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक दशायें एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न है।

५. सार्जेन्ट-रिपोर्ट में शिक्षा-योजना की केवल रूपरेखा ही प्रस्तुत की गई है। इसमें पाठ्य-क्रम, शिक्षण-विधियों, धार्मिक शिक्षा, स्त्री-शिक्षा और परीक्षाओं जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों का उल्लेख भी नहीं मिलता है।

६. इस योजना को राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की अपूर्ण रूपरेखा माना गया है, क्योंकि इसमें ग्रामीण-शिक्षा के महत्वपूर्ण प्रश्न पर किसी प्रकार का विचार नहीं किया गया है।

---

1. "The Sargent Report is not an original document. At best it is only a good summary of the useful suggestions made by previous reports and schemes including the Wardha Scheme." Bhagwan Dayal : *op. cit.*, p. 164.
2. "The Report is, however, a patch-work of different reports published from time to time by the C.A.B.E. to consider the different aspects of Indian Educational Problems. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 250 (1951).
3. "It is pointed out that the scheme merely describes the ideal to be reached and does not give a detailed programme of development." Nurullah and Naik : *op. cit.*, p. 847.

७. यह योजना बहुत खर्चीली है। इसको क्रियान्वित करने में लगभग ३१३ करोड़ रुपये व्यय होंगे। भारत ऐसे निर्धन देश के लिये इतना धन व्यय करना सम्भव नहीं है। इसीलिये इस योजना को काल्पनिक कहा गया है।

८. इस योजना को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के लिये ४० वर्ष की अवधि निर्धारित की गई है। भारत की स्थिति की आवश्यकता का विचार करते हुए यह योजना बहुत लम्बी है। स्वतन्त्र भारत के राष्ट्र-निर्माता इतना समय इस प्रतीक्षा में नहीं व्यतीत कर सकते हैं कि ४० वर्ष के उपरान्त भारतीयों के शिक्षा का स्तर ऊँचा हो जायगा। तब तक तो सम्भवतः अन्य देश कहीं आगे निकल जायेंगे।

निष्कर्ष

जब हम सार्जेन्ट-योजना के उपरिलिखित गुण-दोषों पर विचार करते हैं, तो गुण की अपेक्षा दोष ही अधिक दिखाई देते हैं। इसी आधार पर योजना पर भारी आरोप लगाये गये हैं और उसको काल्पनिक, अराष्ट्रीय, बिलम्ब-कारी, और खर्चीली कह कर भारत ऐसे निर्धन देश के लिये अनुपयुक्त ठह-राया गया है। पर वास्तविकता यह है कि योजना-निर्माण के समय से लेकर अब तक की १६ वर्ष की अवधि में भारतीय शिक्षा-प्रणाली को न तो उन दोषों से मुक्त किया जा सका है, जिनका उल्लेख योजना में किया गया है और न उन गुणों से युक्त किया गया है, जो योजना में विद्यमान हैं। आज भी हमारी शिक्षा-प्रणाली अपने पूर्व रूप में चली आ रही है। यदि हमने योजना का छिद्रान्वेषण न करके और आलोचना करने के अपने अभ्यास का परित्याग करके योजना को १६ वर्ष पूर्व क्रियान्वित कर दिया होता, तो आज भारतीय शिक्षा की रूप-रेखा ही कुछ और होती।

सार्जेन्ट योजना एवं केन्द्रीय सरकार

केन्द्रीय सरकार ने सार्जेन्ट-रिपोर्ट में वर्णित योजना को अति दीर्घ-कालीन एवं अव्यावहारिक समझ का क्रियान्वित नहीं किया, परन्तु रिपोर्ट में प्रतिपादित सिद्धान्तों को देश की शिक्षा के लिये हितकर अवश्य समझा। अतः उनको दृष्टिकोण में रखकर केन्द्रीय सरकार ने निम्नलिखित कार्य किये :—

१. १९४५ में केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय शिक्षा-विभाग को अपने अन्तर्गत रखते हुए भी एक स्वतन्त्र इकाई का रूप प्रदान किया।

२. केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय सरकारों को आदेश दिया कि वे सार्जेन्ट-

योजना के सुझावों के आधार पर पंचवर्षीय योजनायें बनायें। अतः १९४७-५२ के लिये पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया गया। इनमें से कुछ प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं को १९४६ में ही क्रियान्वित कर दिया गया था।

३. १९४७-४८ में केन्द्र ने प्रान्तीय सरकारों को ४० करोड़ रुपये की आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया, जिससे कि प्रान्तीय शिक्षा-योजनाओं को सुचारु रूप से चलाया जा सके।

४. इस योजना के सुझाव के अनुसार 'अखिल भारतीय टेकनिकल शिक्षा-समिति' की स्थापना की गई और दिल्ली में एक 'पॉलीटेकनीक कॉलेज' (Polytechnic College) का निर्माण किया गया।

५. योजना के सुझाव को स्वीकार करके १९४५ में 'शिक्षा-योजनालय' (Educational Bureau) एवं 'विश्वविद्यालय-अनुदान-समिति' का संगठन किया गया।

६. योजना के सुझावों के अनुसार शिक्षकों की वेतन-वृद्धि, ६ से ११ वर्ष तक के बच्चों के लिये निःशुल्क तथा अनिवार्य बेसिक शिक्षा, विश्व-विद्यालयों में सुधार, वैज्ञानिक अनुसंधान एवं टेकनिकल और वयस्क-शिक्षा से लिये क्रियात्मक पग उठाये गये।

७. योजना की ४० वर्ष की अवधि को घटा कर १६ वर्ष कर दिया गया था।

सारांश

द्वितीय विश्व-युद्ध के उपरान्त तत्कालीन भारतीय शिक्षा-सलाहकार, सर जॉन सार्जेन्ट ने सरकार के आदेशानुसार भारत में युद्धोत्तर शिक्षा-विकास के लिये एक योजना तैयार की। इस योजना में पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक, शिक्षा की अन्य समस्याओं, उसके संगठन, उसके प्रमुख दोषों, उन दोषों को दूर करने के उपाय एवं शिक्षा की भावी रूप-रेखा का अति विशद् वर्णन किया गया है।

योजना के विषय—यह योजना १२ अध्यायों में विभाजित की गई है—(१) पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा, (२) प्राथमिक एवं बेसिक शिक्षा, (३) हाई स्कूल शिक्षा, (४) विश्वविद्यालय-शिक्षा, (५) तकनीकी, वाणिज्य एवं कला-शिक्षा, (६) प्रौढ़ शिक्षा, (७) अध्यापकों का प्रशिक्षण, (८) छात्रों का स्वरूप, (९) बिकलांग छात्रों की शिक्षा, (१०) विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियायें, (११) सेवा-योजनालय, और (१२) शिक्षा का प्रशासन।

योजना का मूल्यांकन—भारतीय शिक्षा के इतिहास में राष्ट्रीय शिक्षा

प्रणाली का सूत्रपात करती है। इसकी मुख्य विशेषता इसकी व्यापकता है। इसकी अभिधारणायें अत्यन्त निर्भीक हैं। भारतीय शिक्षा-प्रणाली के दोषों पर प्रकाश डालती है। शिक्षा के विभिन्न प्रक्रमों पर सभी छात्रों को शिक्षा का समान अवसर देती है। शिक्षकों की दशा में सुधार करने का सुझाव देती है। परन्तु इन गुणों के साथ-साथ योजना में कुछ दोष भी हैं—मौलिक लेख नहीं है, केवल प्राप्त किये जाने वाले आदर्श को प्रस्तुत करती है; शिक्षा-योजना की केवल रूपरेखा प्रस्तुत करती है; अराष्ट्रीय, बिलम्बकारी, काल्पनिक और खर्चीली है।

TEST QUESTIONS

1. Explain the importance of the Sargent Report and summarise its main recommendations.
2. Write a reasoned criticism of the Sargent Plan as a scheme of National Education.
3. What are the recommendations of the Scheme of Central Advisory Board of Education (Sargent Report) with regard to the Primary and High School Education ? On what grounds has the scheme been criticised.

—: o :—

अध्याय १८

अँग्रेजी शासन-काल में शिक्षा

(सिंहावलोकन)

१५ अगस्त १९४७ को एक लम्बे संघर्ष के बाद भारत ने परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त होकर विश्व के स्वतन्त्र राष्ट्रों में अपना स्थान ग्रहण किया। हम पिछले अध्याय में पराधीन भारत में अंग्रेजों द्वारा प्रचलित की गई शिक्षा-प्रणाली का वर्णन समाप्त कर चुके हैं। परन्तु इससे पूर्व कि हम स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का विवरण प्रारम्भ करें, यह युक्ति संगत प्रतीत होता है कि हम अंग्रेजी शासन-काल में शिक्षा का सिंहावलोकन कर लें। भारतीय नेताओं एवं शिक्षा-विशारदों का मत है कि अंग्रेजों की शिक्षा-नीति तथा अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति भारत के लिये सर्वथा अनुपयुक्त, अहितकर एवं अराष्ट्रीय थी। इसके विपरीत, भारत के अंग्रेज शासकों का कथन है कि अंग्रेजी शिक्षा तथा अंग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था भारत के लिये एक ऐसा श्रेष्ठ वरदान है, जो इस देश के शिक्षा के इतिहास में बेजोड़ है। समस्त ब्रिटिश-कालीन शिक्षा के अध्ययन के पश्चात् यदि हम उस शिक्षा के गुणागुण का तटस्थतापूर्वक विवेचन करें तो हम जान सकते हैं कि दोनों दृष्टिकोणों में सत्य का कितना अंश है।

अंग्रेजी शिक्षा के लाभ

अंग्रेजी की नवीन शिक्षा एवं उसका प्रसार करने के लिये अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति की कतिपय भारतीयों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वे निस्संकोच रूप से स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी शिक्षा ने भारत में युग-परिवर्तन का कार्य किया। इसी शिक्षा के फलस्वरूप अन्तर्प्रान्तीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध घनिष्ट हुए; भारतीयों के सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोणों में परिवर्तन हुआ; शिक्षा पर एक विशेष जाति का एकाधिकार समाप्त होकर, वह सभी भारतीयों की सामान्य सम्पत्ति हो गई; भारतीय-वैधानिकों, कलाकारों, कवियों तथा राजनीतिज्ञथों को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई; और भारत में नवजागरण तथा नवाभ्युत्थान का युग प्रारम्भ हुआ, जिसके फलस्वरूप उसने शताब्दियों तक पदाक्रान्त होने के उपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपना प्राचीन एवं गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया। अतः अंग्रेजी शिक्षा एवं तत्सम्बन्धित शिक्षा-व्यवस्था भारत के लिये एक अनुपम देन है।' जिन कारणों पर यह विचार-धारा आधारित है, उनकी ओर हम नीचे संकेत कर रहे हैं :—

१. पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान से सम्पर्क

अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारतीयों का पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान से सम्पर्क स्थापित हो गया। यह सम्पर्क ऐसे समय में स्थापित हुआ जब भारतीय अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को विस्मृत करके पतनोन्मुख हो रहे थे। ऐसे समय में अंग्रेजी की नवीन शिक्षा ने इस देश के निवासियों का पथ आलोकित किया। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली को अपनाकर पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों से परिचय प्राप्त किया और उन्नति के पथ पर अग्रसर हुए।

२. भारतीय समाज का आधुनीकरण

अंग्रेजी शिक्षा की एक अन्य महान् देन भारतीय समाज का आधुनीकरण है। जिस समय भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई, उस समय यहाँ के समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। इसमें सती-प्रथा, शिशु-हत्या, बाल-विवाह, अस्पृश्यता एवं जाति-भेद की हानिप्रद कुरीतियाँ प्रचलित थीं और उनसे देश का अधःपतन हो रहा था। अंग्रेजी की शिक्षा से प्रभावित होकर भारतीयों ने इन सामाजिक दूषणों के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ करके उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की और भारतीय समाज को एक नवीन रूप प्रदान किया।

३. साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागृति

भारत में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागृति करने का श्रेय अंग्रेजी शिक्षा

को प्राप्त है। अंग्रेज विद्वानों ने संस्कृत का अध्ययन किया और संस्कृत की पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस प्रकार उन्होंने भारत के लुप्त गौरव का प्रामाणिक परिचय हमारे समक्ष उपस्थित किया। अपने साहित्य तथा संस्कृति की जिन बातों को हम विस्तृत कर चुके थे, उनको हमने अँग्रेजी भाषा के द्वारा समझा। फलस्वरूप देश में बौद्धिक जागरण प्रारम्भ हुआ और हमें अपने साहित्य तथा संस्कृति में पुनः अभिरुचि उत्पन्न हुई। इसका सबसे बड़ा एवं विलक्षण परिणाम प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य का विकास है।

४. वैज्ञानिक उन्नति

ब्रिटिश शासन की स्थापना के उपरान्त जब अंग्रेजी शिक्षा के परिणाम-स्वरूप भारत में नवजागरण प्रारम्भ हुआ; तब राजा राममोहन राय आदि नेताओं ने यह अनुभव किया कि पश्चिम की अभूतपूर्व प्रगति का एक प्रमुख कारण विज्ञान की उन्नति है। अतः उन्होंने अंग्रेजी के द्वारा भारतीयों को वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा दिये जाने की माँग की। प्रारम्भ में तो सरकार इस ओर उदासीन रही, पर वह बहुत समय तक इस मांग को न टाल सकी। १८९७ में जगदीशचन्द्र बोस ने भौतिक विज्ञान-विषयक अपनी खोजों से यूरोप के विद्वानों को आश्चर्यचकित कर दिया। फलतः भारतीयों में यह आत्म-विश्वास जाग्रत हुआ कि वैज्ञानिक क्षेत्र में वे भी प्रगति कर सकते हैं। उसी समय से वे विज्ञान के अध्ययन में जुट गये और अनेकों भारतीयों ने व्यक्तिगत रूप से विज्ञान के अध्ययन के लिये संस्थाओं का निर्माण किया। अध्ययन की इस सुविधा के कारण ही अनेकों भारतीय वैज्ञानिकों को विश्व में उच्चतम वैज्ञानिक सम्मान प्राप्त हुआ। इनमें श्रीनिवास रामानुजम्, जगदीशचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर वेंकट रमण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

५. ललित कलाओं का पुनरुत्थान

भारत की ललित कलाओं के पुनरुत्थान का श्रेय अंग्रेजी को प्राप्त है। फ़र्ग्युसन ने अपने चिरस्मरणीय ग्रन्थ में भारत की वास्तुकला के भव्य स्मारकों का विशद् वर्णन करके ललित कलाओं के प्रति भारतीयों की रुचि को पुनः जागृत किया। भारत-सरकार ने बम्बई, मद्रास, कलकत्ता और लाहौर में कला-विद्यालय स्थापित करके भारतीय कलाओं को पुनर्जीवित किया। उसी समय से भारतीय, कला के क्षेत्र में उन्नति करने लगे। आज भी अवनीन्द्रनाथ टैगोर, नन्दलाल बोस, असितकुमार हालदार आदि के नाम गर्व से लिये जाते हैं।

६. लोकप्रिय राजनीतिक संस्थाओं का विकास

अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप ही भारत में लोकप्रिय राजनीतिक संस्थाओं की वृद्धि एवं विकास हुआ। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके ही भारतीयों के हृदय में लोकतंत्रवाद की विचारधारायें दृढ़ होती गईं एवं प्रजातन्त्र की संस्थाओं का क्रमशः विकास होता गया।

७. शिक्षा-प्रसार के नवीन साधन

शिक्षा-प्रसार के नवीन साधन भी अंग्रेजों की देन हैं। उन्होंने अपनी शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत मुद्रणालयों, पुस्तकालयों, वाचनालयों, रेडियो, चलचित्रों आदि को महत्वपूर्ण स्थान दिया। स्वतन्त्र भारत ने इनको शिक्षा-प्रसार के साधनों में स्थान दिया है और इनकी सहायता से शिक्षण तथा निरक्षरता के निवारण का कार्य किया जा रहा है।

८. भारतीय पुनर्जागरण

भारतीय पुनर्जागरण का एक प्रमुख कारण अंग्रेजी की शिक्षा है। स्कूलों एवं कॉलेजों में प्रदान की जाने वाली अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों के विचारों तथा दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन कर दिया। अंग्रेजी की शिक्षा ने भारतीय मस्तिष्क के बौद्धिक पृथकत्व का अन्त कर दिया तथा पाश्चात्य साहित्य, इतिहास एवं विज्ञान से उसका सम्पर्क स्थापित कर दिया। परिणामस्वरूप इस देश में उसी प्रकार की विशाल मानसिक प्रगति हुई, जैसी कि यूरोप में पन्द्रहवीं तथा सोलहवी शताब्दियों में पुनर्जागरण के समय हुई थी। वास्तव में भारतीय पुनर्जागरण का सूत्रपात अंग्रेजी साहित्य, विज्ञान तथा आधुनिक दर्शन के अध्ययन से हुआ।

अंग्रेजी शिक्षा की हानियाँ

अंग्रेजी शिक्षा एवं उसकी व्यवस्था के सम्बन्ध में जो विचार ऊपर व्यक्त किये गये हैं, उनसे अनेकों भारतीय सहमत नहीं हैं। उनके मतानुसार विदेशियों द्वारा भारत पर लादी गई शिक्षा-प्रणाली ने यहाँ की सभ्यता, संस्कृति, साहित्य तथा सामाजिक एवं नैतिक उच्चादर्शों पर कुठाराघात करके उनको मरणासन्न कर दिया। अंग्रेजी शिक्षा एवं उसकी व्यवस्था पर जो दोषारोपण किये गये हैं, हम उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दे रहे हैं।

१. अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली देश के वातावरण के प्रतिकूल

विदेशियों द्वारा आयोजित की जाने के कारण अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली

इस देश के वातावरण के प्रतिकूल थी। यह एक विदेशी वृक्ष था जो भारत भूमि में उचित प्रकार से पल्लवित नहीं हो सकता था। इसीलिये इसका अनियमित रूप में विकास हुआ।[1]

२. राष्ट्रीय विशेषताओं का विनाश

अंग्रेजी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय विशेषताओं का विनाश करना और यहाँ के निवासियों को भारतीय होते हुए भी पसन्द, व्यवहार तथा विचार में अंग्रेज बनाना था। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारत को एक ईसाई देश बनाने की चेष्टा की गई।[2]

३. अँग्रेजी शिक्षा का निकृष्ट ध्येय

अँग्रेजों द्वारा १८३५ में जिस शिक्षा-नीति का प्रतिपादन किया गया, जिसका १८५४ में अनुसरण किया गया और जिस पर १८८२ में बल दिया गया, उसका एक मात्र ध्येय अँग्रेजी दफ्तरों के लिये 'बाबू वर्ग' को तैयार करना था।

४. अँग्रेजी माध्यम के दुष्परिणाम

भारतवासियों को अँग्रेजी माध्यम के द्वारा शिक्षा दी गई। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उनको अपने साहित्य तथा भाषाओं का समुचित ज्ञान न प्राप्त हो सका। साथ ही भारतीय भाषाओं एवं भारतीय मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो गया।[3]

५. धर्महीनता एवं नैतिक पतन

अँग्रेजी विद्यालयों में भारतीयों के धर्म की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं

1. "Indian Educational Policy.....is described as a foreign plant, not suited to the Indian soil and therefore showing an unseemly growth." M. R. Pranjpe : *op. cit.*, p. v.
2. "It is described as an attempt to make India lose her national characteristics and make the people, Indian by birth but English in taste, manners and outlook. It is believed to have been an attempt to make India a Christian nation." *Ibid.*
3. "By enforcing a foreign medium of instruction, it is believed to have arrested the development of Indian languages and Indian intellect." *Ibid.*

की गई। शिक्षा को पूर्णतया लौकिक बना दिया गया। धार्मिक शिक्षा के अभाव में व्यक्तियों में न केवल धर्महीनता की वृद्धि हुई अपितु धर्म के अभाव में उनका नैतिक पतन भी होना प्रारम्भ होगया। इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि नवयुवकों में अनुशासनहीनता तथा भक्तिहीनता की भावनाओं का समावेश हुआ।[1]

६. शिक्षा का मन्द विकास

अँग्रेजों पर एक दोषारोपण यह भी किया जाता है कि यद्यपि उन्होंने अपनी शिक्षा और उसकी पद्धति को इस देश में प्रचलित किया, परन्तु उन्होंने अँग्रेजी शिक्षा का प्रसार करने में कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। फलतः शिक्षा के विकास की गति अत्यन्त मन्द रही। लगभग १५० वर्षों में अँग्रेजी शिक्षा-प्रणाली द्वारा केवल १५ प्रतिशत भारतीयों को शिक्षित बनाया जा सका। इसका प्रमुख कारण यह था कि अँग्रेजी की शिक्षा-नीति का आधार निस्यन्दन सिद्धान्त (Filtration Theory) था। अँग्रेजों ने अपना ध्यान केवल उच्च वर्ग की शिक्षा पर केन्द्रित रखा और जनसाधारण की शिक्षा की सर्वथा अवहेलना की।

राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विकास में असफलता

भारत के अँग्रेज शासकों पर सर्वमहान् दोषारोपण यह किया जाता है कि वे भारत में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का निर्माण एवं विकास नहीं कर सके। इस आक्षेप को निर्मूल नहीं कहा जा सकता है। १९१९ के 'भारत-सरकार-अधिनियम' के अनुसार भारतीय शिक्षा को लोक-प्रिय मंत्रियों को हस्तान्तरित कर के अँग्रेजों ने इस देश की शिक्षा से अपना हाथ खींच लिया। इसके विपरीत, यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि अँग्रेजों ने १९४४ की 'सार्जेन्ट-योजना' में शिक्षा का एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया, जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के अनेकों लक्षण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। यह तर्क निराधार नहीं है, परन्तु इसका खंडन करते हुये हम निःशंक रूप से कह सकते हैं कि 'सार्जेन्ट-योजना' में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की केवल कल्पना ही की गई थी और अंग्रेजों के भारत-प्रस्थान की शुभ बेला तक वह निरी कल्पना ही रही।

1. "The Indian education of the last hundred years is charged with making India less religious and therefore less moral; or again less willing to accept the dictum of elders and therefore less disciplined, and less loyal to authorities." *Ibid.*

१५ अगस्त १९४७ तक अर्थात् ३ वर्ष की लम्बी अवधि में उस कल्पना को यथार्थता में परिवर्तित करने के लिये एक भी क्रियात्मक पत्र नहीं उठाया गया। सारांश में, अँग्रेज़ भारत में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का निर्माण एवं विकास करने में पूर्णतः असफल रहे। इस असफलता के प्रमुख कारणों की ओर हम नीचे संकेत कर रहे हैं।

१. प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय न करना

अँग्रेजी शिक्षा-पद्धति का प्रमुख दोष यह था कि वह प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय करने में असफल रही। भारत और इङ्गलैंड के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं नैतिक आदर्शों में किसी प्रकार का साम्य नहीं था। एक आध्यात्मिकता में विश्वास करता था, तो दूसरा भौतिकवादिता में। अँग्रेज़ मिशनरियों ने अपनी संस्कृति और धर्म को श्रेष्ठ समझा और भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओं को घृणा की दृष्टि से देखा। उन्होंने भारतीय धर्म को नष्ट करके उसके स्थान पर ईसाइयत को प्रतिष्ठित करने में पृथ्वी और आकाश को एक कर दिया।

अँग्रेज़ शासकों ने राज और धन के मद में बेसुध होकर इस बात का स्वप्न में भी विचार नहीं किया कि प्राच्य एवं पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय भी किया जा सकता है। यदि उनमें से कुछ चैतन्य प्रशासकों के मस्तिष्क में यह विचार आया भी तो किपलिंग (Kipling) ऐसे लेखकों ने यह लिखकर उन्हें हतोत्साह कर दिया—"पूर्व और पश्चिम संसार के दो छोर हैं, और इन दोनों का मिलन असम्भव है।"[1]

इसके अतिरिक्त अँग्रेज़ों ने इस देश के शासक होने के नाते अपने को भारतीयों से श्रेष्ठतर समझा। शासकों एवं शासितों के मध्य एक दीवार खड़ी हो गई और वह क्रमशः ऊँची होती चली गई। होटलों, रेलों के डिब्बों, क्लबों और स्कूलों में प्रवेश करने की नीति भी भेद-भाव पर आधारित कर दी गई। विभिन्न संस्थाओं पर यह छाप लगा दी गई—"केवल यूरोपियनों के लिये।" नवाभ्युत्थान के युग में राष्ट्रीय नेताओं ने अँग्रेज़ों की नीति का उत्तर पाश्चात्य संस्कृति एवं आदर्शों का तिरस्कार करके देना प्रारम्भ किया। ऐसी स्थिति में पूर्व और पश्चिम का संयोग वास्तव में असम्भव सिद्ध हो गया।

२. साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण

अँग्रेज़ भारत को अपने साम्राज्य का एक अविच्छिन्न अङ्ग समझते थे और

1. "East is East and West is West; and never the twain shall meet."

प्रत्येक सम्भव नीति से इस पर अपने प्रभुत्व को बनाये रखना चाहते थे। उन्होंने इस बात की कभी कल्पना ही नहीं की कि भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करके सम्मानित पद भी दिया जा सकता है। अपने शासन-काल के आदि से अन्त तक उन्होंने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये इस देश का शोषण किया। उनका विश्वास था कि दैव ने उनको इस असभ्य देश को सभ्य बनाने का कार्य सौंपा है। अँग्रेज़ धर्म प्रचारकों का विचार था कि ईसाई धर्म को स्वीकार करके ही भारतीयों को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। जहाँ इस प्रकार की भावनायें कार्य कर रहीं थीं, वहाँ राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के निर्माण की बात सोचना बिल्कुल असम्भव था।

३. शिक्षा के उद्देश्यों में अस्थिरता

भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में अँग्रेज़ प्रशासकों के विचारों में कभी स्थिरता नहीं रही। उद्देश्यों का रूप समय तथा अवसर के अनुसार सदैव परिवर्तित होता रहा। उदाहरणार्थ, हेस्टिंग्ज़ और डंकन शिक्षा के द्वारा उन व्यक्तियों की क्षति-पूर्ति करना चाहते थे, जिन्हें अँग्रेजी शासन की स्थापना से हानि हुई थी। १८१३ के 'आज्ञा-पत्र' में प्राच्य साहित्य तथा ज्ञान को प्रोत्साहित करने का आदेश दिया गया। १८५४ के घोषणा-पत्र में शिक्षा का उद्देश्य भारतीयों की बौद्धिक एवं चारित्रिक उन्नति करने के साथ-साथ अँग्रेजी शिक्षा द्वारा ऐसे व्यक्तियों को उत्पन्न करना बताया गया जो राज्य को सुदृढ़ बना सकें। १९१३ के 'सरकारी प्रस्ताव' में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य चरित्र निर्माण करना निर्धारित किया गया। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों में निरन्तर परिवर्तन होता रहा। ऐसी दशा में राष्ट्रीय शिक्षा का विचार न आना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

४. शिक्षा-प्रसार की दोषपूर्ण विधियाँ

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अँग्रेजों ने भारत में शिक्षा-प्रसार की जितनी विधियों का अनुसरण किया, वे सभी दोषपूर्ण थीं। सर्वप्रथम उन्होंने भारत की देशी शिक्षा-व्यवस्था को बेमौत मार डाला। उनका विचार था कि देशी विद्यालयों के स्थान पर अँग्रेजी ढंग के स्कूलों की स्थापना करके शिक्षा-प्रसार का कार्य सुगमता पूर्वक किया जा सकेगा। परन्तु वे अपने इस कार्य में असफल हुए। इसी प्रकार उनका 'निस्यन्दन सिद्धान्त' भी निरर्थक सिद्ध हुआ। शिक्षा के माध्यम के रूप में अँग्रेजी को प्रतिष्ठित करना, माध्यमिक स्कूलों एवं कॉलेजों में अँग्रेजी की शिक्षा को प्रधानता देना एवं

भारतीय भाषाओं की अवहेलना करना, शिक्षा-प्रसार की दोषपूर्ण विधियों के कुछ अन्य ज्वलन्त उदाहरण हैं।

५. शिक्षा-विभाग की अवहेलना

अँग्रेजों ने जितना ध्यान अन्य विभागों की ओर दिया, उसका शतांश भी शिक्षा विभाग की ओर नहीं दिया। जिस प्रकार के सुयोग्य एवं कुशल मनुष्यों को अन्य विभागों में कार्य करने के लिये इंङ्गलैंड से भारत भेजा गया, उस प्रकार के मनुष्यों को भारतीय शिक्षा-विभाग में नियुक्त नहीं किया गया। सर माइकेल सैडलर (Sir Michael Sadler) एवं सर एलैक्ज़ैण्डर ग्रान्ट (Sir Alexander Grant) की सी प्रतिभा वाले शिक्षा-विशेषज्ञ और नहीं थे। १८९६ में आई० ई० एस० के पद का निर्माण किया गया, पर इसके सेवा प्रतिबन्धों को उनसे कहीं कम आकर्षक रखा गया जितने कि आई० सी० एस० थे। ऐसी दशा में सुयोग्य व्यक्तियों के भारत आने का प्रश्न ही नहीं उठता था। जो व्यक्ति आये भी उनमें इतनी कार्य-क्षमता नहीं थी कि वे इस देश के लिये राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की योजना बना सकते।

निष्कर्ष

उपरिलिखित ब्रिटिश-कालीन शिक्षा एवं अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली के लाभ-हानियों अथवा गुण-दोषों पर दृष्टि डालने से सहसा यही विचार उत्पन्न होता है कि अंग्रेजों ने अपनी भाषा और शिक्षा-पद्धति को परवश भारत पर लाद कर एक ऐसा जघन्य अपराध किया है, जिसके लिये वे अक्षम्य हैं। पर यदि हम अपनी भावुकता के वशीभूत न होकर निष्पक्ष एवं तटस्थ रूप से विचार करें, तो हमें यह स्वीकार करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा कि अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था हमारे लिए एक अद्वितीय वरदान बनकर आई। अंग्रेजी के अध्ययन से ही हमारे देश में पिछले सौ वर्षों में युगान्तर हुआ है। इसका श्रीगणेश उस समय हुआ, जब हमने ज्ञान एवं प्रकाश के लिये अपना मुँह पूर्व दिशा से पश्चिम की ओर मोड़ा। पाश्चात्य साहित्य, शिक्षा तथा विचार-धारा से प्रभावित होकर भारतीयों ने देश में सर्वतोमुखी सुधार की ज्योति को जागृत किया, धर्मान्धता एवं बुद्धिहीन श्रद्धा का स्थान विवेक तथा तर्क ने ग्रहण किया; उदारता एवं स्वतन्त्र विचार ने मूर्खता पूर्ण कट्टरता तथा शास्त्रवाद पर विजय प्राप्त की। धार्मिक रूढ़ियों एवं सामाजिक कुरीतियों की बेड़ियों से भारत को मुक्ति प्राप्त होने लगी। सती-प्रथा, शिशु-हत्या आदि कुत्सित दूषणों की अन्त्येष्टि हुई। जातीय भेद-भाव का अभेद्य दुर्ग ध्वंस हो

रहा है और सर्वत्र अस्पृश्यता का जनाज़ा निकाला जा रहा है। पाश्चात्य देशों में प्रतिपादित समानता, स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों ने हमारे देश पर अमिट छाप लगा दी है। भारतीय विधान सभा द्वारा स्वीकृत नवीन शासन-विधान पर इसकी स्पष्ट छाया दृष्टिगोचर होती है। पश्चिम में किये गये वैज्ञानिक आविष्कारों एवं यन्त्रों को ग्रहण करके भारत के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का कायाकल्प हो रहा है। इन सब के लिये हम अंग्रेजी शिक्षा के ऋणी हैं। यदि भारत में अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली का प्रचलन न किया गया होता, तो हम आज भी सम्भवतः अन्य असभ्य जातियों के समान अंधकार में अपना मार्ग टटोल रहे होते।

सारांश

अंग्रेजी शिक्षा के लाभ—(१) पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान से सम्पर्क; (२) भारतीय समाज का आधुनीकरण; (३) साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागृति; (४) वैज्ञानिक उन्नति; (५) ललित कलाओं का पुनरुत्थान; (६) लोकप्रिय राजनीतिक संस्थाओं का विकास; (७) शिक्षा-प्रसार के नवीन साधन; और (८) भारतीय पुनर्जागरण।

अंग्रेजी शिक्षा की हानियाँ—(१) अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली देश के वातावरण के प्रतिकूल; (२) राष्ट्रीय विशेषताओं का विनाश, (३) अंग्रेजी शिक्षा का निकृष्ट ध्येय; (४) अंग्रेजी माध्यम के दुष्परिणाम, (५) धर्म हीनता एवं नैतिक पतन; और (६) शिक्षा का मन्द विकास।

राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विकास में असफलता—(१) प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय न करना; (२) साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण; (३) शिक्षा के उद्देश्यों में अस्थिरता; (४) शिक्षा-प्रसार की दोषपूर्ण विधियाँ; और (५) शिक्षा-विभाग की अवहेलना।

TEST QUESTIONS

1. Discuss critically the view that the British totally failed to evolve a national system of education for India.
2. "The British educational administration did several good things which India will always acknowledge." Elucidate and comment.
3. "The cultural contributions of the British people will remain with us for all time and will be ultimately absorbed in the dynamic and complex pattern that Indian culture has always been." Do you agree with this view? Give reasons in support of the view you hold.

—: o :—

अध्याय १९

प्राथमिक एवं बेसिक शिक्षा

(१९४७—१९५९)

"राष्ट्र का विकास उसके निवासियों की शिक्षा पर निर्भर है।" स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में भारत ने अपने नवनिर्माण के लिये शिक्षा-प्रसार की आवश्यकता का अनुभव किया। ऐसा करना स्वाभाविक था, क्योंकि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय ६ से ११ वर्ष वाले वय-वर्ग (Age Group) के केवल ३० प्रतिशत बच्चे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अतः देश की राष्ट्रीय सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क सार्वभौमिक तथा अनिवार्य बनाने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से स्वतन्त्र भारत के संविधान की ४५ वीं धारा में स्पष्ट रूप से १० वर्ष के अन्दर सभी बच्चों के लिये प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने की घोषणा की गई।[1] परन्तु इस घोषणा से पूर्व भारत

1. "The State shall endeavour to provide within a period of ten years from the commencement of this Constitution for the free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years." *Article 45 of the Constitution Adopted by Free India on January* 26, 1950.

के विभिन्न प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के सफल प्रयास किये जा चुके थे।

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा

पराधीन भारत में भी राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारतीय जन-असन्तोष के फलस्वरूप अनेकों प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये अधिनियम पारित किये जा चुके थे। इनका वर्णन पहिले किया जा चुका है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त अग्रलिखित प्रान्तों ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के निमित्त अधिनियम पास किये :—आसाम (१९४७), बम्बई (१९४७), मध्यभारत (१९३९), और विन्ध्य प्रदेश (१९५२)

उपर्युक्त तथा अन्य प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के प्रयास के परिणामस्वरूप इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा की आशातीत प्रगति हुई। १९४७ में प्राथमिक स्कूलों एवं उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या क्रमशः १,३४,९६६ और १,००,४७,३१७ थी। १९५६ में यह संख्या बढ़ कर क्रमशः २,७८,१३५ और २,२९,१९,७३४ हो गई।[1] १९५५-५६ में प्राथमिक शिक्षा पर ५३,७२,७२,०६६ रुपया सरकार द्वारा व्यय किया गया।[2]

१९५५-५६ तक अनुसूची के भाग १ के राज्यों, अनुसूची के भाग २ के राज्यों, हैदराबाद, मध्यभारत, पेप्सू, त्रावनकोर-कोचीन और अनुसूची के भाग ३ के राज्यों, अजमेर, दिल्ली और बिन्ध्य-प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी और १०८१ नगरों और ३९,२७६ ग्रामों में बच्चे प्राथमिक शिक्षा से लाभ उठा रहे थे।[3]

प्राथमिक शिक्षा पर विहंगम दृष्टिपात

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित शिक्षा-विकास के कार्य-क्रमों के अन्तर्गत अन्य बातों के साथ-साथ ११ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिये प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है। योजना-आयोग (Planning Commission) के शिक्षा-सम्बन्धी पेनल (Panel) की सिफ़ारिशों एवं सितम्बर १९५७ में हुई शिक्षा-मंत्रियों की कांफ्रेंस के अनुमोदन के अनुसार देश में १९६५-६६ तक ६ से ११ वर्ष तक के आयु के बच्चों के लिये

1. *Education in India* 1955-56, (Ministry of Education), pp. 17 & 23.
2. *Ibid*, p. 30.
3. *Ibid*, p. 67.

सार्वजनिक, निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी है। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने राज्य सरकारों के परामर्श से इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आवश्यक क़दम उठाये हैं।

१ जुलाई १९५७ को स्थापित किये गये 'अखिल-भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद्'[1] ने अपनी गतिविधि को जारी रखा है। प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिये परिषद् द्वारा की गई सिफ़ारिशों में से उल्लेखनीय सिफ़ारिश प्राथमिक शिक्षा के लिये एक आदर्श विधान का प्रारूप तैयार करना है। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा तैयार किये गये प्रारूप को अंतिम रूप प्रदान किया जा रहा है। जब वह बन जायगा, तब राज्य-सरकारें उसमें अपनी स्थानीय आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन तथा संशोधन करके उसे स्वीकार कर लेंगी। चार राज्यों की सरकारें तथा दिल्ली निगम से चुने हुए सामुदायिक विकास खंडों अथवा राष्ट्रीय विस्तार सेवा-खंडों में निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा-योजना को छोटे रूप में क्रियान्वित करना स्वीकार कर लिया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार एवं शिक्षित वर्ग की बेकारी को कम करने के लिये एक योजना तैयार की गई है, जिसके अन्तर्गत द्वितीय पंचवर्षीय योजना की शेष-अवधि में ६० हज़ार शिक्षकों तथा १,२०० निरीक्षकों की नियुक्ति की जायगी एवं अध्यापिकाओं के लिये ६ हज़ार क्वार्टर्स निर्मित किये जायेंगे। राज्य सरकार ने केन्द्रीय सहायता से योजना को क्रियान्वित करना प्रारम्भ कर दिया है।

बेसिक शिक्षा

स्वतन्त्र भारत ने सार्जेन्ट-योजना में प्रतिपादित बेसिक शिक्षा की साधारण रूप-रेखा को तो स्वीकार किया, परन्तु उसमें निश्चित की गई ४० वर्ष की अवधि को उन्होंने बहुत लम्बा माना। अतः जनवरी १९४८ में बी० जी० खेर के तत्वावधान में एक समिति की नियुक्ति की गई और उसको ऐसे सुझाव देने का आदेश दिया गया, जिसमें देश में बेसिक शिक्षा की योजना को शीघ्रातिशीघ्र लागू किया जा सके।

'खेर समिति' के सुझाव

'खेर समिति' ने बेसिक-शिक्षा की योजना को क्रियान्वित करने के विषय में अग्रांकित सुझाव दिये :—

1. All India Council for Elementary Education.

१. सार्वभौमिक अनिवार्य बेसिक-शिक्षा भारत में १६ वर्ष के अन्दर २ पंच-वर्षीय एवं १ षड्वर्षीय योजनाओं द्वारा कार्यान्वित की जा सकती है।
२. प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा ६ से ११ वर्ष वाले के वय-वर्ग के बच्चों के लिये बेसिक शिक्षा को अनिवार्य किया जाय।
३. षड्वर्षीय योजना द्वारा अनिवार्यता की सीमा को १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिये बढ़ा दिया जाय।
४. बेसिक शिक्षा पर जितना व्यय हो उसका १० प्रतिशत राज्य-सरकारों और स्थानीय संस्थाओं द्वारा दिया जाय तथा शेष केन्द्रीय सरकार द्वारा।

बेसिक शिक्षा की प्रगति

भारत सरकार ने 'खेर-समिति' के सुझावों को मान्यता प्रदान की और अपनी शिक्षा-नीति में घोषित कर दिया कि भारत की प्राथमिक शिक्षा, बेसिक शिक्षा प्रकार की होगी। 'खेर-समिति' के सुझाव के अनुसार ६ से ११ वर्ष तक के बच्चों में बेसिक-शिक्षा को अनिवार्य करने के उद्देश्य से सरकार ने यह कार्य योजना-आयोग को सौंप दिया।

पंचवर्षीय योजनाओं में प्रगति

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में ६ से ११ वर्ष वाले वय-वर्ग के लगभग ५० प्रतिशत बच्चों को शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो गई। इनमें ६८ प्रतिशत बालक और ३२ प्रतिशत बालिकायें थीं। ११ से १४ वर्ष वाले वय-वर्ग में जिन बच्चों को सुविधा प्राप्त हुई, उनकी संख्या बढ़ कर १४ से २७ प्रतिशत हो गई, पर इनमें लड़कियाँ केवल २० प्रतिशत ही थीं।[1]

द्वितीय योजना के अन्त तक ६ से ११ वर्ष वाले वय-वर्ग के ६० प्रतिशत तथा ११ से १४ वर्ष वाले वय-वर्ग के १९ प्रतिशत बच्चों के लिये शिक्षा की सुविधा प्राप्त होगी। प्राथमिक कक्षाओं में ६६ लाख छात्र बढ़ेंगे, जिनके लिये ६०,००० नए प्राथमिक स्कूलों की आवश्यकता पड़ेगी। आशा की जाती है कि बेसिक स्कूलों की संख्या १२,००० हो जायगी।[2]

बेसिक-शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम योजना-काल में जो सफलता प्राप्त हुई है एवं द्वितीय योजना-काल में जो लक्ष्य निर्धारित किया गया है उसका विवरण आगे की तालिका से स्पष्ट हो जाता है।[3]

---

१. **दूसरी पंचवर्षीय योजना** (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृष्ठ १८७.
२. **वही**, पृष्ठ १८७-१८८.
3. *India*, 1958, Publication Division, Government of India p. 102.

कार्य-क्षेत्र	१९५५—५६	११६०—६१
१. प्राइमरी / जूनियर बेसिक स्कूल	२,७७,१९७	३२६,८००
२. जूनियर बेसिक स्कूल	४२,८२४	६४,९१९
३. मिडिल / सीनियर बेसिक स्कूल	२१,७०२	२२,७२५
४. सीनियर बेसिक स्कूल	१,५२९	४,५७१

केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रगति में योग

केन्द्रीय सरकार द्वारा बेसिक शिक्षा की प्रगति में विशेष रूप से योग दिया जा रहा है। जो राज्य बेसिक शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं, उनको केन्द्रीय सरकार किए जाने वाले व्यय का ३० प्रतिशत वार्षिक सहायता-अनुदान के रूप में देती है। जो राज्य प्राथमिक स्कूलों को बेसिक प्राथमिक स्कूलों का रूप देना चाहते हैं, उन्हें केन्द्रीय सरकार कुल व्यय का ७५ प्रतिशत देती है। नवीन बेसिक स्कूलों की स्थापना में किये गये व्यय का २५ प्रतिशत भार केन्द्रीय सरकार द्वारा वहन किया जाता है।

उपरिलिखित कार्यों के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ने बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में परामर्श लेने के लिए एक 'स्थायी बेसिक शिक्षा समिति[1]' स्थापित की है। अप्रैल १९५६ में इस समिति ने देश में बेसिक शिक्षा का प्रसार करने के उद्देश्य से एक विस्तृत योजना तैयार की और बेसिक शिक्षा के प्रति सरकार की नीति भी निर्धारित की। इस समिति ने सिफ़ारिश की है कि राज्यों में अधिक से अधिक संख्या में उत्तर-बेसिक स्कूल स्थापित किये जायँ, माध्यमिक स्कूलों में बेसिक शिक्षा प्रदान की जाय एवं बेसिक स्कूलों में अंग्रेजी की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय।

राज्यों में प्रगति

भारत के प्रमुख राज्यों में बेसिक शिक्षा की प्रगति पर हम आगे प्रकाश डाल रहे हैं :—

1. Standing Committee of the Central Advisory Board of Education on Basic Education.

बिहार—बेसिक शिक्षा की प्रगति में बिहार अग्रणी है। यहाँ समीपवर्ती ग्रामीण बेसिक स्कूलों का एक इकाई में संगठन किया जाता है। स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ग्रामीण छात्र 'जनता कॉलिज' में प्रवेश करते हैं। यहाँ उनको अन्य विषयों के साथ स्वास्थ्य तथा सामाजिक विषयों की विशेष रूप से शिक्षा प्रदान की जाती है। इस राज्य में अनेकों प्रशिक्षण-विद्यालय हैं और उनके समीपवर्ती सभी बेसिक स्कूलों का उनसे सम्बन्ध रहता है। सम्बन्धित स्कूल प्रशिक्षण-विद्यालय के दृश्य-साधनों (Visual Aids) एवं पुस्तकालय से लाभ उठाते हैं। इस प्रकार बेसिक शिक्षा के सभी स्कूल एक संगठित इकाई के रूप में शिक्षा का प्रसार करते हैं।

इस राज्य में सामान्य शिक्षा के स्कूलों में भी बेसिक शिक्षा को प्रचलित करने का प्रयास किया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये १९५६ में एक समिति नियुक्त की गई, जिसको बेसिक तथा प्राथमिक स्कूलों से सम्बन्धित एवं दोनों के लिये एक उपयुक्त पाठ्य-क्रम तैयार करने का भार सौंपा गया।

बम्बई—बिहार के समान बम्बई राज्य ने भी बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति की है। यहाँ बेसिक स्कूलों का एक इकाई के रूप में उसी प्रकार संगठन किया जाता है और उन्हें प्रशिक्षण-विद्यालयों से उसी प्रकार सम्बन्धित कर दिया जाता है, जैसा कि बिहार में किया जाता है। इस राज्य की एक मुख्य विशेषता यह है कि प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिणत करने का कार्य अति उत्साह से किया जा रहा है।

पंजाब—पंजाब में बेसिक शिक्षा का सराहनीय प्रसार हो रहा है। प्राथमिक स्कूलों में कृषि, कताई, बुनाई; मिट्टी का काम आदि विषयों की शिक्षा प्रारम्भ कर दी गई है, जिससे उन्हें सरलता पूर्वक बेसिक स्कूलों में परिणत किया जा सके। माध्यमिक शिक्षा में भी बेसिक शिक्षा-प्रणाली को क्रियान्वित करने का निश्चय किया गया है और इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के विचार से चंडीगढ़ में एक सीनियर बेसिक प्रशिक्षण-विद्यालय का निर्माण किया गया है।

उत्तर-प्रदेश—इस राज्य के सभी प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिणत कर दिया गया है और उनमें बेसिक शिक्षा-प्रणाली को सफलतापूर्वक अपनाया जा चुका है। इन स्कूलों के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण स्कूलों तथा प्रशिक्षण कॉलिजों की समुचित व्यवस्था है। शिक्षकों के लिये अभिनवन पाठ्य-क्रम का भी प्रबन्ध है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में १२,३५० प्राथमिक बेसिक स्कूलों की स्थापना की। द्वितीय

योजना में लगभग ३४ करोड़ रुपया व्यय करके ६,६५० बेसिक स्कूलों के निर्माण का विचार किया गया है।

बेसिक शिक्षा-प्रसार के आधारभूत तत्व

बेसिक शिक्षा-प्रसार के दो आधारभूत तत्व हैं:—(१) सार्वभौमिक, अनिवार्य तथा नि.शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करना; और (२) वर्तमान प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित करना।

प्रथम कार्य में अभी तक जो सफलता प्राप्त हुई है, उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। द्वितीय कार्य में विभिन्न कठिनाइयों का अनुभव किया जा रहा है, जिनकी ओर हम नीचे संकेत कर रहे हैं :—

१. बेसिक विद्यालयों के लिये पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित अध्यापक उपलब्ध नहीं हैं।
२. बेसिक विद्यालयों के पास उपयुक्त भवन, शिक्षण-सामग्री तथा धन का अभाव है।
३. भारत के अनेकों राज्यों में लोगों ने बेसिक शिक्षा का क्रियात्मक रूप से विरोध किया है।
४. यद्यपि बेसिक शिक्षा बालकों के लिये अति रोचक एवं आकर्षक है, परन्तु शिक्षकों के लिये पर्याप्त कठिन है। इस पद्धति को अपनाने में अध्यापकों को कठोर परिश्रम करना पड़ता है। आधुनिक परिस्थितियों में जब कि अध्यापक अपने अल्प वेतन के कारण असंतुष्ट हैं, वे परिश्रम से बचना चाहते हैं। ऐसी दशा में बेसिक विद्यालयों की उन्नति होना सम्भव नहीं है।

बेसिक शिक्षकों का प्रशिक्षण

बेसिक विद्यालयों को सुचारु रूप से चलाने के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों का होना अति आवश्यक है। अतः बेसिक शिक्षा के प्रशिक्षण की दिशा में लगभग सभी राज्य सरकारों ने रचनात्मक कार्य प्रारम्भ कर दिया है। आसाम में 'गुरू प्रशिक्षण केन्द्रों' (Guru Training Centres) को बेसिक प्रशिक्षण-संस्थाओं में परिणत कर दिया गया है। इस समय वहाँ इस प्रकार की १६ संस्थायें हैं, जिनमें १ हजार से अधिक छात्राध्यापकों को दीक्षित किया जाता है। बिहार में ६३ बेसिक ट्रेनिंग स्कूल व ४ बेसिक ट्रेनिंग कॉलेज हैं और उनमें इतने अध्यापक प्रतिवर्ष प्रशिक्षित हो जाते हैं कि प्रायः सभी बेसिक प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक प्रशिक्षित होते हैं। स्कूलों के निरीक्षक भी बेसिक शिक्षा-प्रणाली में प्रशिक्षित होते हैं। बम्बई राज्य में ६० बेसिक ट्रेनिंग स्कूल

और ३ बेसिक ट्रेनिंग कॉलिज हैं, जिनमें ३,५००० से अधिक शिक्षकों को दीक्षित किया जाता है। उत्तर प्रदेश में ९७ बेसिक ट्रेनिङ्ग स्कूल तथा ५ बेसिक ट्रेनिङ्ग कॉलेज हैं, जिनमें ६ हजार से अधिक अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाता है। इसी प्रकार भारत के सभी प्रान्तों में राजकीय प्रशिक्षण विद्यालय हैं।

कुछ व्यक्तिगत संस्थायें भी बेसिक शिक्षा प्रणाली के अनुसार अध्यापकों को प्रशिक्षित करने का कार्य कर रही हैं, यथा—जामिया मिलिया इस्लामिया टीचर्स ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट, दिल्ली; श्री रामकृष्ण मिशन विद्यालय टीचर्स बेसिक सेन्टर, कोयम्बटूर; नई तालीम भवन, सेवाग्राम; ग्रेजुएट बेसिक ट्रेनिंग सेन्टर, बम्बई; सर्वोदय महाविद्यालय, तर्की, बिहार; विद्या भवन, उदयपुर तथा विद्या भवन, शान्ति निकेतन।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में बेसिक अध्यापकों का प्रशिक्षण

प्रथम पंचवर्षीय योजना से अन्तर्गत राज्य सरकारों द्वारा उत्तर-बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित किये गये हैं। इन प्रशिक्षण विद्यालयों से एक प्रदर्शन स्कूल (Demonstration School) सम्बन्धित होता है। प्रशिक्षण विद्यालयों के उद्देश्य निम्नांकित हैं :—

१. बेसिक स्कूलों के लिये अध्यापकों, निरीक्षकों एवं निर्देशकों को तैयार करना।
२. बेसिक शिक्षा-योजना में कार्य करने के लिये प्रशासकों तथा आयोजकों को प्रशिक्षत करना।
३. पूर्व-बेसिक तथा उत्तर-बेसिक प्रशिक्षण विद्यालयों और बेसिक ट्रेनिंग स्कूलों के लिये अध्यापकों को तैयार करना।
४. बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में नये अनुसंधान तथा परीक्षण करना।
५. बेसिक विद्यालयों में शिक्षण के लिये नवीन विधियों की खोज करना।
६. शिक्षण के लिये सहायक सामग्री तैयार करना, यथा-पुस्तकें, माँडल, चार्ट और श्रव्य तथा दृश्य साधन।
७. बेसिक शिक्षकों की ज्ञान-वृद्धि के लिये उपयुक्त पुस्तकें एवं पढ़ने योग्य अन्य साहित्य प्रकाशित करना।
८. बेसिक शिक्षकों, निरीक्षकों एवं अन्य शिक्षाधिकारियों द्वारा अनुभव की जाने वाली कठिनाइयों को दूर करना।

उपरिकथित योजना के अनुसार अब तक भारत के १५ राज्यों में उत्तर-बेसिक प्रशिक्षण-विद्यालय खोले गये हैं—आसाम, बंगाल, बिहार, उड़ीसा,

उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, मध्य भारत, मध्यप्रदेश, बम्बई, मद्रास, दिल्ली, मैसूर, हैदराबाद और सौराष्ट्र। इन राज्यों में प्रायः सभी प्रशिक्षण-विद्यालय राजकीय हैं, परन्तु कुछ व्यक्तिगत संस्थायें भी उनमें सम्मिलित कर ली गई हैं, यथा—जामिया मिलिया इस्लामिया टीचर्स ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट, दिल्ली; विद्याभवन, उदयपुर और श्री रामकृष्ण मिशन विद्यालय टीचर्स बेसिक सेण्टर, कोयम्बटूर।

योजना के अन्तर्गत उत्तर-बेसिक प्रशिक्षण विद्यालयों के अतिरिक्त पूर्व-बेसिक प्रशिक्षण विद्यालयों का भी निर्माण किया गया है। इन सभी विद्यालयों के लिये राज्यों की सरकारों को केन्द्रीय सरकार द्वारा निम्नलिखित आवर्तक तथा अनावर्तक सहायता अनुदान दिया गया है :—

अनुदान	१९५२-५३	१९५३-५४	१९५४-५५	१९५५-५६
आवर्तक	६० प्रतिशत	६० प्रतिशत	५० प्रतिशत	३३$\frac{१}{३}$ प्रतिशत
अनावर्तक	६६ प्रतिशत	६६ प्रतिशत	६६ प्रतिशत	६६ प्रतिशत

बेसिक शिक्षा की समस्यायें व कठिनाइयाँ

बेसिक शिक्षा-योजना १९३८ में भारत के विभिन्न प्रान्तों में क्रियान्वित की गई थी। इस समय से लेकर आज तक २२ वर्ष की लम्बी अवधि व्यतीत हो चुकी है, परन्तु बेसिक शिक्षा की उतनी प्रगति नहीं हुई है, जितनी कि आशा थी। यद्यपि बेसिक शिक्षा-प्रणाली प्राचीन शिक्षा-पद्धति से कहीं उत्तम है, तथापि इसके परिणाम सुन्दर नहीं निकले हैं।[1] इसके अतिरिक्त बेसिक शिक्षा को लोकप्रियता भी नहीं प्राप्त हुई है।[2] इन सब बातों का कारण यह है कि बेसिक शिक्षा की अनेकों समस्यायें हैं, अनेकों कठिनाइयाँ हैं। जब तक इन समस्याओं का समाधान न किया जायगा और जब तक बेसिक शिक्षा के

1. "While the superiority of Basic over the old system is admitted by almost everyone, results have not always been commensurate with the hopes entertained about the system." *Progress of Education in India* (1947-52) p. 27.
2. "The masses have not much liking for it." D. Mujumdar; "Nai Talim in the Crucible," *Modern Review*, April, 1955, p. 312.

मार्ग में रोड़े अटकाने वाली कठिनाइयों को दूर नहीं किया जायगा, तब तक न तो संतोषजनक परिणाम ही निकलेंगे और न बेसिक शिक्षा की प्रगति ही होगी। हम इन समस्याओं तथा कठिनाइयों पर नीचे प्रकाश डाल रहे हैं :—

सरकार की उदासीनता

प्राथमिक अथवा बुनियादी शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा संरचना का आधार है। इसी आधार पर शिक्षा के विशाल भवन का निर्माण किया जाता है। परन्तु १८५४ से १९५९ तक के सौ वर्षों में इस सिद्धान्त को स्वीकार करने के बावजूद भी कि प्राथमिक शिक्षा का विकास तथा संगठन करना सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य है, इस दिशा में कोई भी रचनात्मक कदम नहीं उठाया गया है। १९५० के भारतीय संविधान में यह बात लेखबद्ध कर दी गई है कि दस वर्ष के अन्दर ६ से १४ वाले वय-वर्ग के बालकों तथा बालिकाओं के लिये सरकार की ओर से निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था कर दी जायगी। परंतु खेद है कि इसके लिये कोई ठोस प्रयत्न नहीं किया गया है। जो कार्य-क्रम सरकार द्वारा बनाये गये हैं, उनके आधार पर यह आशा की जाती है कि मार्च १९६१ तक ६ से ११ वर्ष वाले वय-वर्ग के ६० प्रतिशत, तथा ११ से १४ वर्ष वाले वय-वर्ग के १९ प्रतिशत बच्चों के लिये शिक्षा सुविधायें प्राप्त होंगी।[1] सरकार की इस प्रत्यक्ष असफलता का प्रमुख कारण यह है कि उसने प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीनता की नीति का अनुसरण किया है। जब कि विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक शिक्षा के विकास और विस्तार तथा उसकी समस्याओं के समाधान के लिये सुझाव देने के उद्देश्य से आयोगों की नियुक्ति की गई है, प्राथमिक बेसिक शिक्षा के लिये इस प्रकार का कोई कार्य नहीं किया गया है। स्पष्ट रूप से सरकार ने अपने एक पुनीत कर्त्तव्य की अवहेलना की है और अपने एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व का पालन नहीं किया है।

बेसिक शिक्षा-प्रणाली से जनता की अनभिज्ञता

अपने दीर्घकालीन अस्तित्व के कारण सामान्य शिक्षा-पद्धति से भारतीय पूर्णतः अवगत हो चुके हैं और उसके गुण-दोषों को भली प्रकार समझते हैं। परन्तु १९३७ में प्रतिपादित बेसिक शिक्षा-प्रणाली से जनसाधारण को पूर्ण परिचय प्राप्त नहीं हुआ है। सरकार ने इस देश की अधिकांश निरक्षर जनता का ध्यान बेसिक शिक्षा की विधियों एवं उससे होने वाले लाभों की ओर किसी

---

१. दूसरी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृष्ठ १८७

भी प्रकार के प्रचार द्वारा आकर्षित नहीं किया है। यही कारण है कि कुछ क्षेत्रों में जनता ने बेसिक शिक्षा का घोर विरोध किया है ।[२] ऐसी परिस्थिति में बेसिक शिक्षा के प्रसार एवं उसकी लोकप्रियता का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता है।

बेसिक शिक्षा की ग़लत धारणा

बेसिक शिक्षा का सिद्धान्त प्रतिपादित करते समय गांधी जी का मुख्य उद्देश्य यह था कि बालक को किसी लाभप्रद हस्तशिल्प के द्वारा शिक्षा प्रदान की जाय। बेसिक शिक्षा-योजना को कार्यान्वित करने वाले व्यक्ति महात्मा जी के इस आदर्श को विस्मृत कर चुके हैं। लगभग सभी बेसिक स्कूलों में कताई पर बल दिया जाता है और प्रत्येक विषय के शिक्षण की अवधि कठोरतापूर्वक निश्चय कर दी गई है। फलतः अध्यापकों एवं छात्रों को वह स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त है, जिसके लिये महात्मा गांधी अपनी योजना में प्रयत्नशील थे । ऐसी दशा में बेसिक शिक्षा को लाभ होने की अपेक्षा हानि होने की ही अधिक सम्भावना है।

उच्च वर्ग के व्यक्तियों का दृष्टिकोण

भारत में समाज के समाजवादी रूप की स्थापना का नारा हमारे नेतागणों द्वारा बुलन्द किया जा रहा है । वे एवं अन्य धनी-मानी व्यक्ति बेसिक शिक्षा का गुणगान करते हैं और उसके प्रसार के लिये लम्बे-लम्बे व्याख्यान देते हैं। परन्तु जब स्वयं उनके बच्चों की शिक्षा का प्रश्न उपस्थित होता है, तब वे उन्हें बेसिक प्राथमिक स्कूल में न भेजकर किसी उत्तम व्यक्तिगत संस्था अथवा पब्लिक स्कूल में भेजते हैं और इस प्रकार की संस्थाओं का आये दिन शिलान्यास होता रहता है। जब तक यह वर्ग-भेद समाप्त न होगा, जब तक देश के धनी व्यक्तियों, निर्धन कृषकों एवं दरिद्र श्रमिकों के बच्चे एक साथ एक ही प्रकार के प्राथमिक स्कूलों में अध्ययन नहीं करेंगे, तब तक बेसिक शिक्षा-योजना की सफलता का विचार एक कल्पना-मात्र रहेगा । केवल निम्न वर्गों के लिये इस योजना को उपयुक्त बताना केवल एक हास्यास्पद तथा लज्जाजनक बात है।

---

1. "In some cases, the introduction of Basic education appears to have met with resistance from the people and the teaching profession." *Progress of Education in India* (1947-52), p. 27

अभिभावकों का दृष्टिकोण

बेसिक शिक्षा के प्रति अभिभावकों में किसी प्रकार का उत्साह परिलक्षित नहीं होता है। उनका कथन है कि वे अपने बच्चों को स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से भेजते हैं, न कि कताई व बुनाई और गुड़ाई व निकाई के लिये। ये कार्य तो वे घर पर ही कर सकते हैं और अपने इस कार्य से माता-पिता का हाथ भी बंटा सकते हैं। अतः उन्हें स्कूल भेजना व्यर्थ है। जब अभिभावकों का बेसिक शिक्षा के प्रति यह दृष्टिकोण है, तब उसकी प्रगति की आशा करना ही व्यर्थ है।

शिक्षकों का अभावपूर्ण जीवन

बेसिक स्कूलों के अध्यापकों को इतना अल्प वेतन मिलता है कि सुख-सुविधा की वस्तुओं को जुटाने की बात तो पृथक रही, वे अपने जीवन की दैनिक आवश्यकताओं को भी पूर्ण करने में असमर्थ रहते हैं। इन असंतुष्ट एवं अर्द्ध-क्षुधित अध्यापकों से बेसिक शिक्षा की कठिन प्रणाली को कठिन परिश्रम करके चलाने की आशा की जाती है। कितनी हास्यप्रद बात है। जब तक बेसिक विद्यालयों के अध्यापकों की आर्थिक दशा में सुधार नहीं किया जायगा, तब तक बेसिक शिक्षा की योजना केवल परिहास का ही कारण रहेगी।

स्कूल-भवनों का अभाव

बेसिक शिक्षा की असफलता का एक अन्य कारण यह है कि स्कूलों के लिये उपयुक्त भवनों का अभाव है। अनेकों स्कूल-भवन ऐसे हैं, जिनकी छतें बरसात में टपकती हैं, जिनमें छात्रों के बैठने के लिये पर्याप्त स्थान नहीं है और जो अस्वस्थ तथा अस्वच्छ वातावरण में स्थित हैं। कितने ही ग्रामीण विद्यालय टूटे-फूटे खंडहरों व पुरानी झोंपड़ियों में चलते हैं। ऐसे विद्यालयों के छात्रों को वर्ष के अधिकांश भाग में वृक्षों की शरण लेनी पड़ती है और प्रकृति के प्रतिकूल थपेड़ों को सहन करना पड़ता है। ऐसी दशा में बेसिक शिक्षा में न तो छात्रों की रुचि ही उत्पन्न हो सकती है और न शिक्षा का स्तर ही ऊँचा उठ सकता है।

अन्य समस्यायें एवं कठिनाइयाँ

बेसिक शिक्षा की अन्य समस्याएँ व कठिनाइयाँ अग्रलिखित हैं—प्रशिक्षण का भारी, व्यय ग्रामीण जनता की निर्धनता एवं निरक्षरता, उपयुक्त पाठ्य-

पुस्तकों तथा शिक्षण-सामग्री का अभाव, दोषपूर्ण पाठ्य-क्रम और स्थानीय संस्थाओं की घृणास्पद राजनीति।

यदि बेसिक शिक्षा-योजना को सम्पूर्ण भारत में क्रियान्वित किया जाना है और यदि बेसिक-शिक्षा के कार्य-क्रम को सफल बनाना है, तो हमें बेसिक शिक्षा को उपर्युक्त समस्याओं तथा कठिनाइयों से मुक्त करना पड़ेगा। इस विशाल कार्य को केवल सरकार सम्पन्न नहीं कर सकेगी। जनता को सरकार के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य में संलग्न होना पड़ेगा। तभी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा-योजना को सफलता प्राप्त होगी।

बेसिक शिक्षा का विहंगावलोकन

बेसिक शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। बेसिक शिक्षा में प्रगति तो अवश्य हुई है, परन्तु उसे उत्साहवर्धक नहीं कहा जा सकता है। बेसिक प्राथमिक शिक्षा को और भी अधिक सम्पन्न बनाने, प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिणत करने तथा सामान्य और बेसिक विद्यालयों के भेदभाव को कम करने के लिये एक राष्ट्रीय कार्य-क्रम तैयार किया गया है। इस कार्यक्रम की दो प्रमुख विशेषतायें ये हैं कि इसके लिये न तो अधिक धन की आवश्यकता है, और न उच्च-शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की।

१९५८-५९ में केन्द्रीय सरकार ने राज्य-सरकारों को पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक (जिनमें बेसिक भी सम्मिलित है) एवं बालिकाओं की प्राथमिक स्तरीय शिक्षा के लिये ७५५.५५ लाख की आर्थिक सहायता दी।[1]

नवीन जूनियर एवं सीनियर बेसिक स्कूलों को प्रारम्भ करने तथा सामान्य शिक्षा के स्कूलों और अध्यापक प्रशिक्षण-विद्यालयों को बेसिक ढङ्ग में परिणत करने एवं नवीन बेसिक अध्यापक-प्रशिक्षण-संस्थाओं का निर्माण करने के साथ-साथ परवर्ती बेसिक क्षेत्र के सुधार की ओर भी ध्यान दिया गया है। १९५८-५९ में एक योजना क्रियान्वित की गई जिसके अन्तर्गत स्वैच्छिक संगठनों एवं राज्य सरकारों को नवीन परवर्ती-बेसिक स्कूल, जिनमें माध्यमिक शिक्षा दी जा सके और वर्तमान माध्यमिक बेसिक स्कूलों में सुधार करने तथा सीनियर बेसिक स्कूलों में उच्च कक्षाओं की व्यवस्था करने के लिये आर्थिक सहायता दी गई।

'राष्ट्रीय बेसिक शिक्षा-संस्था' अपने आरम्भिक काल, फ़रवरी १९५६ से ही प्रशिक्षण, अनुसंधान एवं साहित्य प्रकाशन के कार्यों को सफलतापूर्वक

---

१. आज़ादी का बारहवाँ वर्ष (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस प्रकाशन १९५८-५९), पृष्ठ ७८

सम्पन्न कर रही है। इस संस्था ने 'बच्चों की पुस्तकों की पुरस्कार प्रतियोगिता' बच्चों की पुस्तकों के लेखकों को प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से 'साहित्य रचनालयों' (Literacy Workshops) के आयोजन एवं बच्चों के निमित्त आदर्श पुस्तकों के प्रकाशन की योजनाओं के साथ-साथ बेसिक शिक्षा के अध्यापकों एवं छात्रों के लिये उपयोगी साहित्य और टीकाओं, सहायक पाठ्य-सामग्री तथा मूलाधार पुस्तकों के उत्पादन की योजनाओं का भी श्रीगणेश कर दिया है।

बेसिक शिक्षा से सम्बन्धित सुधार अभी तक ग्रामीण क्षेत्रों में ही किये गये हैं। सरकार नागरिक क्षेत्रों में भी बेसिक शिक्षा का विस्तार करने की चेष्टा कर रही है। सरकार ने दिल्ली में एक केन्द्रीय बेसिक स्कूल स्थापित करने का निश्चय किया है, जिससे कि वह नागरिक क्षेत्रों के बेसिक स्कूलों के लिये उदाहरण स्वरूप हो और उन्हें यह दिखा सके कि वे कितनी उन्नति कर कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, देश के पब्लिक स्कूलों में शिक्षा की बेसिक प्रणाली को क्रियान्वित करने के प्रश्न पर विचार करने के हेतु एक विशेष समिति की नियुक्ति हो चुकी है।

सारांश

प्राथमिक शिक्षा—प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये आसाम (१९४७), बम्बई (१९४७), मध्यभारत (१९४९) और बिन्ध्य प्रदेश (१९५२) में अधिनियम परित किये गये। १९५५-५६ में १०८१ नगरों और ३९,२७६ ग्रामों में बच्चे अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा से लाभ उठा रहे थे।

बेसिक शिक्षा—१९४८ में 'खेर समिति' ने सुझाव दिया कि २ पंचवर्षीय एवं १ षड्वर्षीय योजनाओं द्वारा बेसिक शिक्षा को सार्वभौमिक तथा अनिवार्य बना दिया जाय। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में ६ से ११ वर्ष वाले वय-वर्ग के लगभग ५० प्रतिशत बच्चों को शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो गई। द्वितीय योजना के अन्त तक यह सुविधा लगभग ६० प्रतिशत बच्चों को प्राप्त होगी।

बेसिक शिक्षा की प्रगति—केन्द्रीय सरकार बेसिक शिक्षा की प्रगति में योग दे रही है। वह राज्य सरकारों द्वारा बेसिक शिक्षा पर किये व्यय का ३० प्रतिशत वार्षिक सहायता-अनुदान के रूप में देती है। बिहार एवं बम्बई में बेसिक शिक्षा की सबसे अधिक प्रगति हुई है। पंजाब में माध्यमिक शिक्षा में बेसिक शिक्षा-प्रणाली को क्रियान्वित करने का निश्चय किया गया है। उत्तर प्रदेश में सभी प्राथमिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिणत कर दिया गया है।

बेसिक शिक्षकों का प्रशिक्षण—बेसिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये प्रत्येक राज्य में राजकीय बेसिक ट्रेनिंग स्कूल और कॉलेज हैं। कुछ व्यक्तिगत संस्थायें भी इस दिशा में कार्य कर रही हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत १५ राज्यों में उत्तर-बेसिक-प्रशिक्षण-विद्यालय खोले गये।

बेसिक शिक्षा की समस्यायें व कठिनाइयाँ—(१) सरकार की उदासीनता (२) बेसिक शिक्षा-प्रणाली से जनता की अनभिज्ञता;(३) बेसिक शिक्षा की गलत धारणा; (४) उच्च वर्ग के व्यक्तियों का दृष्टिकोण; (५) अभिभावकों का दृष्टिकोण; (६) शिक्षकों का अभावपूर्ण जीवन; (७) स्कूल-भवनों का अभाव; (८) प्रशिक्षण का भारी व्यय; (९) ग्रामीण जनता की निर्धनता एवं निरक्षरता; और (१०) दोष पूर्ण पाठ्य-क्रम तथा उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों का अभाव।

TEST QUESTIONS

1. How has the Government of India tried to tackle the various problems connected with Basic Education during the last five years.
2. "While the superiority of Basic over the old system is admitted by almost everyone, results have not always been commensurate with the hopes entertained about the system." Comment on the statement and give reasons in support of your answer.
3. "Basic Education should not only be looked at as a revolution in the field of education, but as a means of bringing about a revolution in the social, economic and psychological structure of the Indian society itself." To what extent has Basic Education helped the realization of this objective ?

—: o :—

अध्याय २०

माध्यमिक शिक्षा एवं उसके दोष

(१९४७—१९५९)

हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा का समुचित संगठन किया जाना अति आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा का व्यक्तियों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दशाओं पर अत्यधिक व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए स्वतन्त्र भारत में समितियों एवं आयोगों की नियुक्तियाँ की गईं, जिसमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

१. **ताराचन्द समिति**[1] (१९४८)—इस समिति की अनेकों सिफ़ारिशों में से एक महत्वपूर्ण सिफ़ारिश यह थी कि माध्यमिक स्कूल बहुमुखी (Multilateral) होने चाहिये, परन्तु स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये एकमुखी (Unilateral) स्कूलों को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। समिति की एक सिफारिश यह भी थी कि माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं की जाँच करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति की जाय।

२. **विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग**[2] **(१९४८-४९)**—इस आयोग का

1. Tarachand Committee.
2. University Education Commission.

प्रमुख उद्देश्य विश्वविद्यालय-शिक्षा की जाँच करना था, परन्तु इसने माध्यमिक शिक्षा का भी परीक्षण किया और अनेकों महत्वपूर्ण सुझाव दिये। आयोग के मतानुसार शिक्षा की सम्पूर्ण संरचना में माध्यमिक शिक्षा सबसे निर्बल कड़ी (Weakest link) थी। आयोग ने कहा कि स्कूल या इन्टरमीडिएट कॉलेज में १२ वर्ष अध्ययन करने के उपरान्त ही छात्रों को विश्वविद्यालय में प्रवेश करने की अनुमति दी जाय। इस आयोग का विस्तृत वर्णन आगे किया जायेगा।

३. **माध्यमिक शिक्षा आयोग**[1] (१९५२-५३)—'ताराचन्द समिति' और 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' की सिफारिशों के फलस्वरूप 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की गई जिसने माध्यमिक शिक्षा का अध्ययन किया और उसके सुधार के सम्बन्ध में बहुमूल्य सुझाव दिये। इस आयोग का विस्तृत वर्णन अध्याय २१ में किया जायगा।

माध्यमिक विद्यालयों के प्रकार

इस समय भारत के विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार के विद्यालय दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमें माध्यमिक शिक्षा प्रदान की जाती है, यथा—मिडिल स्कूल, हाई स्कूल, उच्चतर माध्यमिक स्कूल, बहु उद्देशीय स्कूल (Multipurpose Schools), सीनियर बेसिक स्कूल, उत्तर बेसिक स्कूल (Post Basic Schools) और इन्टरमीडिएट कॉलेज।

स्वतन्त्र भारत में माध्यमिक विद्यालयों के निर्माण की दिशा में अति सराहनीय प्रगति हुई है। १९४७ में १८,१४१ माध्यमिक विद्यालय थे, जिनमें २,९७५,३७२ छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।[2] १९४७-४८ में माध्यमिक शिक्षा पर १३०,१६९,८२२ रुपये व्यय किये गये। १९५६ में माध्यमिक विद्यालयों और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या क्रमशः ३२,५६८ और ८५,२६,५०९ थी।[3] १९५५-५६ में माध्यमिक शिक्षा पर ५३०,१९४,६१९ रुपये व्यय किये गये।

केन्द्रीय सरकार एवं माध्यमिक शिक्षा

केन्द्रीय सरकार माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन एवं उसमें सुधार करने के लिये ठोस कदम उठा रही है। माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफ़ारिश के

1. Secondary Education Commission.
2. *Progress of Education in Ihdia;* 1937-47, vol. I; p.80.
3. *Education in India.* 1955-56. pp. 122-129.

अनुसार सरकार ने १९५५ में 'अखिल भारतीय माध्यमिक परिषद्'[1] की स्थापना की। इसका प्रमुख उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करना और इस शिक्षा के सम्बन्ध में केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों को परामर्श देना है। माध्यमिक विद्यालयों के प्रशिक्षण के लिये दिल्ली में स्थित 'सेन्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ़ ऐजूकेशन'[2] को विस्तृत किया गया है। माध्यमिक विद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकों में सुधार करने के निमित्त दिल्ली में 'केन्द्रीय पाठ्य-पुस्तक अनुसंधान ब्यूरो'[3] की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त अँग्रेजी शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के विचार से १९५८ में हैदराबाद में 'सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ़ इङ्गलिश[4]' स्थापित किया गया। इस संस्था में अँग्रेजी शिक्षण के सम्बन्ध में अनुसंधान कार्य और शिक्षकों का प्रशिक्षण भी किया जाता है।'[5]

पंचवर्षीय योजनाओं में माध्यमिक शिक्षा

'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' ने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन के सम्बन्ध में जो ढाँचा बताया था, उसे कार्यान्वित करने का कार्य पंचवर्षीय योजनाओं में प्रारम्भ कर दिया गया है। द्वितीय योजना में इस कार्य के लिये ४३ करोड़ रुपये की धन-राशि निर्धारित की गई है, जब कि प्रथम योजना में केवल २२ करोड़ रुपये की ही थी। इस प्रकार यह आशा की जाती है कि माध्यमिक शिक्षा का नवीनकरण एक क़दम और आगे बढ़ेगा। अन्य कार्यक्रमों में इस समय वर्तमान हाई स्कूलों का एक अनुपात उच्चतर माध्यमिक स्कूलों और बहुउद्देशीय स्कूलों में परिणत किया जायगा। प्रथम योजना में लगभग २५० बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना हुई है। द्वितीय योजना-काल में बहुउद्देशीय स्कूलों की संख्या बढ़कर १,१८७ हो जायगी और हाई स्कूलों तथा उच्च माध्यमिक स्कूलों की संख्या (जिनमें साधारणतः मिडिल स्कूल सम्मिलित हैं) १०,८०० से बढ़कर द्वितीय योजना के अन्त तक ११,३०० हो जायगी। अगली योजना-काल में १४ से १७ के वय-वर्ग में छात्र संख्या २२ लाख से बढ़ कर २६ लाख हो जायगी।

माध्यमिक शिक्षा का विहंगावलोकन

माध्यमिक शिक्षा के पुनर्संङ्गठन के लिये केन्द्र द्वारा विभिन्न राज्य-सरकारों

1. *All India Council for Secondary Education,*
2. Central Institute of Education.
3. Central Bureau of Text-Book Research.
4. Central Institute of English.
5. *Hindustan Year Book*, 1960. p.236.

को उदारता पूर्वक आर्थिक सहायता दी जा रही है। १९५८-५९ में ३.६३ करोड़ रुपये की सहायता दी गई। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निर्धारित १,१८७ बहुउद्देशीय स्कूलों में से १९५४-५५ से लेकर सितम्बर १९५८ तक १,१०० बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना की जा चुकी थी। इस योजना के अन्तर्गत फ़रवरी १९५९ तक १,२५० उच्च माध्यमिक स्कूल स्थापित किये जा चुके थे।[1]

फ़रवरी १९५९ तक २४ व्यक्तिगत शिक्षा-संस्थाओं को माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में आर्थिक सहायता के लिये ९,८१,८५५ रुपये की धन-राशि स्वीकृत की गई। माध्यमिक शिक्षा सम्बन्धी अनुसंधान की समस्याओं के निमित्त २८ फ़रवरी १९५९ तक २४ संगठनों तथा संस्थाओं को १,५७,४१२ रुपये का सहायता-अनुदान दिया गया।[2]

१९५८-५९ में 'अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्' ने अपनी गति-विधि को जारी रखा। परिषद् ने गोष्ठियों और प्रयोगशालाओं के अपने नियमित कार्यक्रमों के अतिरिक्त प्रशिक्षण-महाविद्यालयों में 'विस्तार सेवा-विभागों' को चलाया एवं नवीन 'विस्तार-सेवा-विभाग' स्थापित किये, जिससे कि माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों को नौकरी के साथ-साथ प्रशिक्षण की अधिकाधिक सुविधायें भी उपलब्ध हो सकें। माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा के सुधार के लिये परिषद् ने १९५७-५८ में स्थापित १३० 'विज्ञान-क्लबों' के अतिरिक्त २०० 'विज्ञान-क्लब' और स्थापित किये। हाल ही में 'अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्' को केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय में एक 'निदेशालय' के रूप में परिवर्तित कर दिया है, जिससे कि वह 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' और राज्य-सरकारों के सहयोग से अपने कार्य को और भी उत्तम रीति से सम्पन्न कर सके। 'केन्द्रीय पाठ्य-पुस्तक अनुसंधान ब्यूरो' प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पढ़ाये जाने वाले हिन्दी, अंग्रेजी, गणित, सामाजिक विषय एवं विज्ञान के विषयों का एक नवीन एकीकृत पाठ्य-क्रम बनाने में व्यस्त है। ब्यूरो द्वारा तैयार की गई एक पुस्तिका 'भारत में पाठ्य-पुस्तक निर्माण-पद्धति' का प्रकाशन हो चुका है।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

शिक्षा की संरचना में माध्यमिक शिक्षा का स्थान अति महत्वपूर्ण है। यह प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा को जोड़ने वाली एक कड़ी है। परन्तु

---

१. आजादी का बारहवाँ वर्ष, पृष्ठ ७९

२. वही

खेद का विषय है कि यह सबसे निर्बल कड़ी है। आज माध्यमिक शिक्षा में इतने दोष उत्पन्न हो गये हैं कि जब तक उनका निराकरण नहीं किया जायगा, तब तक समग्र रूप से भारतीय शिक्षा का उन्नयन असम्भव है। यही कारण है कि आधुनिक भारत में माध्यमिक शिक्षा की अति कटु आलोचना हो रही है और सर्वत्र उसमें सुधार करने के लिये आवाज़ बुलन्द की जा रही है। संक्षेप में हमारी माध्यमिक शिक्षा के दोष निम्नांकित हैं :—

उद्देश्य विहीनता

माध्यमिक शिक्षा उद्देश्य विहीन है। स्वतन्त्र भारत में भी शिक्षा का वही उद्देश्य है, जो परतन्त्र भारत में था। शिक्षा केवल इस उद्देश्य से प्राप्त की जाती है कि कोई नौकरी मिल जाय। आवश्यकता इस बात की है कि माध्यमिक शिक्षा को उच्च शिक्षा की पूरक न रखकर एक स्वतन्त्र इकाई बना दिया जाय। माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये छात्रों को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की क्षमता प्रदान करना। अतः यह आवश्यक है कि माध्यमिक शिक्षा छात्रों की व्यावसायिक एवं उत्पादक क्षमता का विकास करे।

अनुपयुक्त पाठ्य-क्रम

माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्य-क्रम एक-मार्गीय (Single Track) है। सभी विद्यार्थियों को एक पूर्व-निर्धारित पाठ्य-क्रम का अध्ययन करना पड़ता है। छात्रों को अपनी रुचि एवं जिज्ञासा के अनुसार विषयों के चयन का अवसर नहीं प्राप्त होता है। परिणाम यह होता है कि उनके मौलिक विचारों एवं मानसिक शक्तियों का विकास नहीं हो पाता है। साथ ही पाठ्य-क्रम का विद्यार्थियों के वातावरण और वास्तविक एवं व्यावहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है, फ़लतः जीवन-क्षेत्र में पदार्पण करने पर वे अपने को एक ऐसी विचित्र स्थिति में पाते हैं, कि वे सामाजिक वातावरण से अपना सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते हैं।[1] आवश्यकता इस बात की है कि पाठ्य-क्रम का विस्तार किया जाय और उसमें विभिन्न उद्योगों, व्यवसायों तथा कृषि सम्बन्धी

1. "The education given in our schools is isolated from life. The curriculum as formulated and as presented through the traditional methods of teaching does not give the students insight into the everyday world in which they are living. When they pass out of school, they feel ill-adjusted and cannot take thier place confidently and competently in the community." *Report of the Secondary Education Commission*. p. 22.

विषयों का समावेश किया जाय और छात्रों को उनकी रुचियों के अनुसार विषयों को चुनने में विशेषज्ञों द्वारा सहायता दी जाय।

अनुशासनहीनता

वर्तमान माध्यमिक शिक्षा का एक प्रमुख दोष है अनुशासनहीनता। छात्रों पर अनुशासनहीन होने का आक्षेप लगाना अनुचित है। वस्तुतः शिक्षा-प्रणाली, परीक्षा-पद्धति, उद्देश्यविहीन शिक्षा आदि कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके फलस्वरूप छात्रों में अनुशासनहीनता की उत्पत्ति पर आश्चर्य नहीं किया जा सकता है। हम यह स्वीकार करने को उद्यत हैं कि राजनीतिक आन्दोलन छात्रों में अनुशासनहीनता के लिये कुछ सीमा तक उत्तरदायी हैं, परन्तु पूर्णतः नहीं। निम्न सामाजिक मूल्यों का भी समाज के सदस्य के रूप में छात्रों पर प्रभाव पड़ा है। फिर आर्थिक कठिनाइयों में ग्रस्त अध्यापकों ने इस बात की चिन्ता करना छोड़ दिया है कि विद्यार्थी समाज किस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है। इन कारणों के अतिरिक्त भद्दे चलचित्रों, कामोद्दीपक फ़िल्मी गानों एवं जातीय पक्षपात ने भी छात्रों की अनुशासनहीनता में अत्यधिक योग प्रदान किया है। अतः यदि हम इस देशव्यापी अनुशासनहीनता का निराकरण करने के इच्छुक हैं, तो हमें उपर्युक्त सभी दोषों के निवारण की ओर समुचित ध्यान देना पड़ेगा। साथ ही छात्रों को जीवन में अनुशासन का महत्व बताकर उनके अन्तर में अनुशासन के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा की भावना को जागृत करना होगा। यह कार्य तभी सम्पन्न किया जा सकेगा, जब सरकार, जनता और अभिभावक दृढ़ निश्चय करके इस दिशा में एक साथ क्रियात्मक पग उठावें।

व्यक्तिगत स्कूलों की अवांछनीय वृद्धि

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा-प्रसार के नाम पर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में असाधारण वृद्धि हुई है। परन्तु यह वृद्धि अवांछनीय होने के साथ-साथ छात्रों, अध्यापकों एवं अन्त में देश के लिये अभिशाप सिद्ध हुई है। इनमें से अधिकांश स्कूल किसी जाति विशेष, राजनीतिक दल या सेठ-साहूकार की निजी सम्पत्ति हैं, जिनमें जातीयवाद का ताण्डव नृत्य होता है, जिन्हें राजनीतिक रंगमंच में परिणत कर दिया है और जो प्रबन्धकों की आय के निश्चित साधन हो गये हैं। अध्यापकों को अल्प वेतन पर नियुक्त किया जाता है, उनके वेतन में से कटौती की जाती है और ग्रीष्मावकाश में उनसे त्याग पत्र ले लिया जाता है। ऐसे स्कूलों के अनुशासन, शिक्षा स्तर एवं शिक्षकों और छात्रों के चरित्र का अनुमान सरलता पूर्वक लगाया जा सकता है। स्कूल निरीक्षक भी ऐसे स्कूलों के प्रति या तो स्वयमेव उदासीन हो जा

हैं, या कोई कड़ी कार्यवाही करने की इच्छा करने पर भी अपने को असमर्थ पाते हैं, क्योंकि उनमें स्कूल प्रबन्धकों से लोहा लेने की शक्ति नहीं होती है। ये व्यक्तिगत स्कूल माध्यमिक शिक्षा के भाल पर ऐसे कलंक-बिन्दु हैं, जिनको शीघ्रातिशीघ्र धो डालना आवश्यक है। यह कार्य करने की सामर्थ्य केवल सरकार में है और केवल शिक्षा का राष्ट्रीयकरण ही एकमात्र उपाय है।

शिक्षा का निम्न स्तर

माध्यमिक शिक्षा का एक अन्य स्पष्ट दोष यह है कि शिक्षा का स्तर निम्न है। इसके लिये मुख्य रूप से हमारी सरकार उत्तरदायी है, क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त सरकार का ध्यान शिक्षा-प्रसार पर केन्द्रित रहा है और उसकी गुणात्मक उन्नति की ओर तनिक भी नहीं गया है। परन्तु इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं। युद्धजनित मंहगाई के कारण सभी वस्तुओं के मूल्यों में कई गुना वृद्धि हो गई है, परन्तु शिक्षकों का वेतन वही है, जो युद्ध से पूर्व था। सरकार शिक्षकों की दशा की ओर पूर्णतः उदासीन रही है। जब कि अन्य विभागों में कर्मचारियों को पर्याप्त वेतन और मंहगाई दी जा रही है। शिक्षकों को इतना वेतन नहीं मिलता है कि वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति कर लें। ऐसी दशा में उनकी कार्य-क्षमता कम हो जाना और उनके द्वारा कार्य की उपेक्षा किया जाना स्वाभाविक है। फिर अनेकों विद्यालय ऐसे हैं, जिनके पास इतना भी धन नहीं है कि वे उपयुक्त भवन और पाठन-सामग्री की व्यवस्था कर लें, इन सभी बातों ने शिक्षा के स्तर पर अपना कुप्रभाव डाला है और उसका स्तर निम्न हो गया है। वर्तमान परिस्थितियों में सरकार का यह स्पष्ट कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इन स्कूलों की ओर ध्यान दे और उनके शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाने का पूरा-पूरा प्रयास करे।

दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली

माध्यमिक परीक्षा-प्रणाली में एक नहीं अपितु अनेकों दोष भरे हुए हैं। इस प्रणाली में जितने ही दोषों का उल्लेख किया जाय, उतने ही कम हैं। वस्तुतः यह भारत की साम्प्रदायकवादी सामाजिक एवं राजनीतिक प्रणाली से भी अधिक बुरी है। 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा का सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा पर शासन है। एक विद्यालय और उसके शिक्षकों तथा छात्रों की श्रेष्ठता परीक्षा की कसौटी पर जाँची जाती है। वही विद्यालय उत्तम समझा जाता है, जिसका परीक्षा-फल उत्तम होता है, ऐसी परिस्थिति में अध्यापक उत्तम परीक्षा

फल देने के लिये अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं। विद्यार्थी ज्ञान के अर्जन से वास्तविक लाभ उठाने की अपेक्षा केवल पुस्तकों को यंत्रवत् रटते हैं, जिससे उन्हें परीक्षा में अच्छे अङ्क प्राप्त हों। परिणाम यह होता है कि उनके मस्तिष्क तथा व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है। परीक्षा ही छात्रों के ज्ञान और अध्यापकों की कार्य-क्षमता की वास्तविक कसौटी नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि वर्तमान परीक्षा-प्रणाली में इस प्रकार परिवर्तन किया जाय, जिससे छात्र अर्जित ज्ञान से लाभान्वित हो सकें और अध्यापकों की कार्य क्षमता को भी आँका जा सके।

सुसंगठित सामाजिक जीवन का अभाव

विद्यालयों में सुसंगठित सामाजिक जीवन का सर्वथा अभाव है। कारण यह है कि खेल, पर्यटन, शारीरिक व्यायाम, एवं विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियाओं का कोई भी आयोजन नहीं किया जाता है, जिससे छात्रों में सम्पर्क स्थापित हो और उनमें घनिष्टता बढ़े। इसके अतिरिक्त स्कूलों में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का पूर्ण अभाव है। इस प्रकार सामान्यतः एक साधारण स्कूल एक फैक्ट्री के समान होता है, जिसका प्रमुख उद्देश्य छात्रों को 'मेट्रीकुलेशन' परीक्षा में उत्तीर्ण करना होता है। इसके अतिरिक्त भी स्कूलों का कुछ और कार्य है। उन्हें छात्रों को देश के भावी नागरिकों के रूप में तैयार करना है। अतः जब तक छात्रों को विद्यालयों में सुसंगठित सामाजिक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा नहीं दी जायगी, तब तक वे देश के कुशल एवं कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक नहीं बन सकेंगे।

निष्कर्ष

हमने ऊपर माध्यमिक शिक्षा के दोषों की ओर संकेत किया है। यहाँ यह कहना आवश्यक नही है कि इन दोषों का शीघ्रातिशीघ्र उन्मूलन आवश्यक है। बिना ऐसा किये उच्च शिक्षा में सुधार और देश की प्रगति की आशा करना व्यर्थ है। इस प्रकार की दोष पूर्ण शिक्षा प्राप्त करके हमारे नवयुवक कदापि देश के योग्य नागरिक नहीं बन सकेंगे। विद्यालय ही वे स्थान हैं, जहाँ छात्रों के चरित्र एवं देश के भावी नागरिकों का निर्माण होता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि हमारे विद्यालय और उनमें प्रदान की जाने वाली शिक्षा पूर्णतः दोष रहित हो। हमारी शिक्षा प्रणाली में माध्यमिक शिक्षा सबसे दुर्बल संस्थान (Weakest Spot) है। हमें उसे सबसे शक्तिशाली संस्थान बनाना है। तभी हम सभ्य देशों के साथ दौड़ में आगे निकल सकेंगे। "सारांश में, हमारी माध्यमिक शिक्षा स्वतन्त्र भारत की आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं

के अनुरूप होनी चाहिये। इसे भारत के प्रत्येक नवयुवक को अपने देश का योग्य नागरिक बनाना चाहिये।"[१]

सारांश

माध्यमिक शिक्षा--माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन की आवश्यकता का अनुभव करके 'ताराचन्द समिति', 'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग' और 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' की नियुक्तियाँ की गईं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् माध्यमिक विद्यालयों और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में अति सराहनीय प्रगति हुई है।

केन्द्रीय सरकार एवं माध्यमिक शिक्षा--केन्द्रीय सरकार ने माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिये 'अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्' की स्थापना की है, 'सेन्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ़ ऐजूकेशन' को विस्तृत किया है और 'केन्द्रीय पाठ्य-पुस्तक अनुसंधान ब्यूरो' का निर्माण किया है।

पंचवर्षीय योजनाओं में माध्यमिक शिक्षा—पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' द्वारा बनाये गये ढाँचे को कार्यान्वित करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। प्रथम योजना में इस कार्य पर २२ करोड़ रुपया व्यय किया गया। द्वितीय योजना में ४३ करोड़ रुपया व्यय किया जायगा। प्रथम योजना में २५० बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना की गई। द्वितीय योजना में १,१८७ बहुउद्देशीय स्कूल स्थापित किये जायेंगे।

माध्यमिक शिक्षा के दोष—(१) उद्देश्य विहीनता; (२) अनुपयुक्त पाठ्य-क्रम; (३) अनुशासनहीनता; (४) व्यक्तिगत स्कूलों की अवांछनीय वृद्धि; (५) निम्न शिक्षा-स्तर; (६) दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली; और (७) सुसंगठित सामाजिक जीवन का अभाव।

TEST QUESTIONS

1. Secondary Education is considered to be the weakest link in our educational system. What are its major weaknesses and how are they sought to be removed ?

---

1. "In short our education must be brought in to line with the aspirations and requirements of free India. It should train every young Indian to be a worthy son of his motherland". *Seven Years of Freedom*. Ministry of Education), p.5.

2. Government upon the view that the present system of secondary education in India is the gift of the British regime and needs drastic changes. What modification would you like to introduce to suit present needs ?
3. Secondary education in India is said to be excessive in quantity and defective in quality. Discuss the reforms that you would like to introduce in Secondary Education.

अध्याय २१

माध्यमिक शिक्षा आयोग[1] (१९५२-५३)

(मुदालियर कमीशन)[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में अति तीव्र विकास हुआ। अनेकों माध्यमिक विद्यालयों का नवनिर्माण किया गया और उनमें अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। स्वतन्त्र भारत में राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा था अतः उनसे सामंजस्य स्थापित करने के लिये माध्यमिक शिक्षा के पुनर्निर्माण की आवश्यकता का अनुभव किया गया। १९४८ में 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने सरकार के समक्ष प्रस्ताव रखा कि माध्यमिक शिक्षा की जाँच करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति की जाय। १९५१ में बोर्ड ने अपनी मांग को फिर दोहराया। उसने बलपूर्वक कहा कि माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन की अत्यधिक आवश्यकता है, क्योंकि माध्यमिक शिक्षा एक मार्गीय (Unilateral) बन चुकी है। उसे समाप्त करने वाले छात्रों के समक्ष विश्व-विद्यालयों में प्रवेश करने या नौकरी की खोज में भटकने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि माध्यमिक शिक्षा को

1. Secondary Education Commission.
2. Mudaliar Commission.

छात्रों की अभिरुचियों (Interests) एवं अभिनतियों (Inclinations) के अनुकूल बनाया जाय जिससे वे शिक्षा से वास्तविक लाभ उठा सकें।

आयोग की नियुक्ति

केन्द्रीय बोर्ड के सुझाव को स्वीकार करके भारत सरकार ने २३ सितम्बर १९५२ को 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की। इसके प्रमुख सदस्य निम्नलिखित थे :—

१. डा० लक्ष्मणस्वामी मुदालियर (A. Lakshmanswami Mudaliar), उपकुलपति, मद्रास विश्वविद्यालय, आयोग के अध्यक्ष।
२. प्रिंसिपल जॉन क्रिस्टी (John Christie), जीसस कॉलेज, आक्सफोर्ड।
३. डा० केनेथ रास्ट विलियम्स (Kenneth Rast Williams), एसोशिएट डाइरेक्टर, अमेरिका, (Associate Director, Southern Regional Education Board, Atlanta, U. S. A.)
४. श्रीमती हंसा मेहता, उपकुलपति, बड़ौदा विश्वविद्यालय।
५. के० जी सैयादीन, भारत सरकार के ज्वाइण्ट सेक्रेटरी।
६. प्रिंसिपल ए० एन० बसु, सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ ऐजूकेशन, दिल्ली; आयोग के सेक्रेटरी।

अध्यक्ष के नाम पर इस आयोग को मुदालियर शिक्षा आयोग भी कहा जाता है।

आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य

आयोग की नियुक्ति के दो उद्देश्य थे:—

१. भारत की तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करके उस पर प्रकाश डालना।

२. माध्यमिक शिक्षा के पुनर्संगठन एवं सुधार के लिये निम्नलिखित के सम्बन्ध में अपने सुझाव देना—

(क) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, संगठन एवं विषयवस्तु।
(ख) माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक बेसिक तथा उच्च शिक्षा से सम्बन्ध।
(ग) विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों का पारस्परिक सम्बन्ध।
(घ) माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित अन्य समस्यायें [1]।

आयोग ने माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित अनेक विचारणीय विषयों की एक प्रश्नावली (Questionnaire) तैयार की और उसे उत्तर के लिये भारत के शिक्षा-विशेषज्ञों, अध्यापकों एवं शिक्षा-संस्थाओं के पास प्रेषित

1. *Secondary Education Commission Report. p.2.*

किया। उनसे प्राप्त हुए उत्तरों के आधार पर आयोग ने तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा की दशा की पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली। इसके अतिरिक्त आयोग ने विभिन्न राज्यों का भ्रमण करके शिक्षा के प्रत्येक पहलू का ज्ञान प्राप्त किया। तदुपरान्त आयोग ने १४ अध्यायों में विभाजित २४४ पृष्ठ की एक रिपोर्ट तैयार की और २९ अगस्त १९५३ को उसे भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया।

आयोग के विचार एवं सुझाव

माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न अवयवों एवं उनसे सम्बन्धित समस्याओं के विषय में आयोग द्वारा जो विचार व्यक्त किये गये और जो सुझाव दिये गये, उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१. माध्यमिक शिक्षा के दोष

आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के निम्नांकित दोषों की ओर संकेत किया—

(१) माध्यमिक शिक्षा का जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(२) इस शिक्षा से व्यावहारिक जगत का किंचित मात्र भी ज्ञान नहीं प्राप्त होता है।

(३) अध्यापन की रीतियाँ परम्परागत है और वे छात्रों को प्रभावित करने में असमर्थ हैं।

(४) माध्यमिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम छात्रों को दिन प्रतिदिन के उस विश्व के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं देता है, जिसमें वे रह रहे हैं।

(५) माध्यमिक शिक्षा एकपक्षीय एवं संकीर्ण है और छात्रों की रुचि के अनुकूल नहीं है।

(६) माध्यमिक शिक्षा विद्यार्थियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को शिक्षित एवं विकसित करने में विफल रहती है।

(७) अँग्रेजी भाषा, शिक्षा का माध्यम एवं अध्ययन का अनिवार्य विषय हैं। अतः जिन छात्रों को इस भाषा का समुचित ज्ञान नहीं होता है, वे इसके अध्ययन में कठोर परिश्रम करके अपने समय तथा शक्ति को नष्ट करते हैं।

(८) शिक्षण-विधियाँ इतनी दोषपूर्ण हैं कि वे छात्रों में विचार की स्वतंत्रता अथवा क्रिया की रुचि का विकास करने में विफल रहती हैं।

(९) शिक्षण-विधियाँ छात्रों में सहकारिता की भावना उत्पन्न करने की अपेक्षा स्पर्धा की भावना पर अधिक बल देती हैं।

(१०) कक्षाओं में छात्रों की संख्या इतनी अधिक होती है कि अध्यापकों एवं छात्रों में व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता है।

(११) वर्तमान शिक्षा में छात्रों के चरित्र निर्माण की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया जाता है। फलतः छात्रों में अनुशासनहीनता की वृद्धि हो रही है।

(१२) परीक्षा-प्रणाली अत्यधिक दोष पूर्ण है। यह अध्यापन की निर्जीव तथा यांत्रिक रीतियों को प्रोत्साहित करती है और अमहत्वपूर्ण वस्तुओं पर बल देती है। इससे छात्रों के ज्ञान की वास्तविक परीक्षा नहीं हो पाती है।

२. माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य

लोकतंत्र भारत की शैक्षणिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किये—

(१) **लोकतन्त्रात्मक नागरिकता का विकास**[1]—भारत एक स्वतन्त्र राज्य है और उसका उद्देश्य धर्म-निर्पेक्ष गणतंत्र की स्थापना करना है। अतः शिक्षा द्वारा ऐसे नागरिकों का निर्माण किया जाना चाहिये जो भारत के नवीन वातावरण के अनुकूल हों। आदर्श नागरिकों में विचार-स्वच्छता, भाषण एवं लेखन में स्पष्टता, सामाजिकता, अनुशासन, सहयोग, सहिष्णुता, सच्ची देशभक्ति और विश्व-नागरिकता की भावना के गुणों का होना अनिवार्य है। अतः हमारी शिक्षा का उद्देश्य छात्रों में इन गुणों का विकास करना होना चाहिये। ऐसा करने पर ही वे अपने देश के आदर्श नागरिक बन सकेंगे और गणतन्त्र को सफल बना सकेंगे। संक्षेप में माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य लोकतन्त्रात्मक नागरिकता का विकास करना होना चाहिये।

(२) **व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि**[2]—माध्यमिक शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य नागरिकों में व्यावसायिक कुशलता की वृद्धि करना है। अतः छात्रों को औद्योगिक शिक्षा दी जानी आवश्यक है। यह शिक्षा उन्हें किसी व्यवसाय को करने के लिये उपयुक्त बनायेगी और उन्हें नौकरी की खोज में इधर-उधर नहीं भटकना पड़ेगा।

(३) **व्यक्तित्व का विकास**[3]—शिक्षा का तीसरा उद्देश्य नागरिकों के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना है। अतः शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए जिससे छात्रों का साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास करके भारत में राष्ट्रीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान सम्भव हो सके। इसके

1. Development of Democratic Citizenship.
2. Improvement of Vocational Efficiency.
3. Development of Personality.

लिये यह आवश्यक है कि पाठ्य-क्रम में कला, हस्तशिल्प, संगीत, नृत्य एवं व्यासंगों (Hobbies) को सम्मानित पद प्रदान किया जाय।

(४) **नेतृत्व का विकास**[1]—प्रजातंत्र उसी दशा में सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है जब कि उसका प्रत्येक नागरिक अनुशासन एवं नेतृत्व में शिक्षा प्राप्त कर चुका हो। अतः माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को अनुशासन के साथ-साथ नेतृत्व की भी शिक्षा प्रदान करना है। विद्यालयों में इस प्रकार के अनेक अवसर आते हैं, जब छात्रों पर अपने समाज का नेतृत्व करने का भार आ पड़ता है। यह आवश्यक है कि ऐसे अधिक से अधिक अवसर छात्रों की दिये जायँ, जिससे उनमें नेतृत्व के गुणों का विकास हो सके। ऐसे विद्यार्थी ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त कर सकेंगे। कारण यह है कि वे सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक अथवा सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने में संकोच नहीं करेंगे और उसका निर्वाह भी कर सकेंगे।

३. माध्यमिक शिक्षा का नवीन संगठन[2]

आयोग के विचारानुसार माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संङ्गठन किया जाना आवश्यक है और इस विषय में उसने निम्नांकित सुझाव दिये:—

१. माध्यमिक शिक्षा की अवधि ७ वर्ष की होनी चाहिये।

२. यह शिक्षा ११ से १७ वर्ष तक की आयु के बालकों तथा बालिकाओं के लिये होनी चाहिये।

३. शिक्षा-काल दो भागों में विभाजित किया जाय:—(क) ३ वर्ष की जूनियर माध्यमिक शिक्षा, और (ख) ४ वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा।

४. वर्तमान इंटरमीडिएट कक्षा को तोड़ दिया जाय। उसकी ११ वीं कक्षा को माध्यमिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम में और १२ वीं कक्षा को डिग्री कोर्स में सम्मिलित कर दिया जाय।

५. डिग्री कोर्स ३ वर्ष का कर दिया जाय। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों से विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने वाले छात्रों के लिये १ वर्ष का 'पूर्व-विश्वविद्यालय' (Pre-university) कोर्स रखा जाय।

६. बहुउद्देशीय (Multipurpose) स्कूलों की स्थापना की जाय। छात्रों के विविध उद्देश्यों, योग्यताओं एवं क्षमताओं की पूर्ति करने के लिये इन स्कूलों का पाठ्य-क्रम उनकी विभिन्न रुचियों के अनुकूल हो।

---

1. Development of leadership.
2. New Organisational Pattern of Secondary Education.

७. ग्रामीण विद्यालयों में कृषि की शिक्षा का विशेष रूप से प्रबन्ध किया जाय। इन विद्यालयों में उद्यान-विज्ञान (Horticulture), पशुपालन एवं कुटीर उद्योग-धन्धों की शिक्षा की भी व्यवस्था की जाय।

८. बहुत बड़ी संख्या में टेकनिकल स्कूलों की स्थापना की जाय। ये स्कूल या तो स्वतन्त्ररूप से स्थापित किये जायँ या बहुउद्देशीय स्कूलों से सम्बद्ध हों।

९. बड़े नगरों में केन्द्रीय टेकनिकल इंस्टीट्यूटों का निर्माण किया जाय, जिससे कि वे अनेकों स्थानीय स्कूलों की माँग की पूर्ति कर सकें।

१०. यथासम्भव टेकनिकल स्कूलों की स्थापना विभिन्न उद्योगों में संलग्न कारखानों के पास की जाय और वे कारखानों के घनिष्ट सहयोग में कार्य करें।

११. अधिनियम द्वारा यह अनिवार्य कर दिया जाय कि कल-कारखाने, टेकनिकल स्कूलों के छात्रों को व्यवहारिक शिक्षा प्रदान करें।

१२. उद्योगों पर 'उद्योग-शिक्षा-कर' (Industrial Education Cess) लगाया जाय और इससे प्राप्त धन को टेकनिकल शिक्षा के विस्तार में व्यय किया जाय।

१३. पब्लिक स्कूलों को कुछ समय तक यथावत् चलने दिया जाय, परन्तु एक निश्चित अवधि में उनकी शिक्षा का संगठन उसी प्रकार का कर दिया जाय, जैसा कि अन्य माध्यमिक स्कूलों का हो।

१४. बालकों तथा बालिकाओं के पाठ्य-क्रम में किसी प्रकार की विभिन्नता की आवश्यकता नहीं है, परन्तु बालिकाओं को 'गृह-विज्ञान' के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जाय।

४. भाषाओं का अध्ययन[1]

स्कूलों में भाषाओं के अध्ययन के सम्बन्ध में आयोग ने अधोलिखित सुझाव दिये:—

१. माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा (Regional Language) होनी चाहिये। परन्तु अनेक भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों के लिये (Linguistic Minorities) 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' के सुझावों के अनुसार विशेष प्रकार की सुविधायें प्रदान की जानी चाहिये।

२. मिडिल स्कूलों में प्रत्येक छात्र को कम से कम दो भाषायें सिखाई जानी

1. Study of Languages.

चाहिये। अँग्रेजी और हिन्दी की शिक्षा जूनियर बेसिक स्तर के बाद दी जानी चाहिये। परन्तु इस सिद्धान्त पर ध्यान रखा जाय कि एक ही वर्ष में दोनों भाषाओं की शिक्षा प्रारम्भ न कर दी जाय।

३. हायर सेकेन्डरी स्तर पर कम से कम दो भाषाओं की शिक्षा दी जाय। इनमें से एक मातृभाषा हो और दूसरी क्षेत्रीय भाषा।

५. माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्य-क्रम

माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम के सम्बन्ध में आयोग ने अधोलिखित सुझाव दिये:—

१. पाठ्य-क्रम ऐसा होना चाहिये, जिससे छात्रों की विभिन्न योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास किया जा सके।

२. पाठ्य-क्रम में विविधता तथा लचीलापन होना चाहिये, जिससे कि उसे छात्रों की आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों के अनुकूल बनाया जा सके।

३. पाठय-क्रम का सामाजिक जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिये।

४. पाठ्य-क्रम ऐसा होना चाहिये, जिससे छात्रों को न केवल कार्य करने अपितु अवकाश का सदुपयोग करने के लिये शिक्षित किया जा सके।

५. पाठ्य-क्रम में ऐसे विषय नहीं होने चाहिये, जिनका एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध न हो, अपितु पाठ्य-क्रम के समस्त विषयों में अन्तर्सम्बन्ध होना आवश्यक है।

६. पाठ्य-क्रम के विषय

उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर आयोग ने माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम के लिये निम्नलिखित विषय निर्धारित किये :—

(क) मिडिल अथवा जूनियर हाई स्कूल—(१) भाषायें, (२) समाज विज्ञान, (३) सामान्य विज्ञान, (४) गणित, (५) कला एवं संगीत, (६) शिल्प (Craft), और (७) शारीरिक शिक्षा (Physical Education)

(ख) हायर सेकेन्डरी स्कूल—इन स्कूलों के पाठ्य-क्रम में विविधता (Diversification) की आवश्यकता है, जिससे छात्रों की अभिरुचियों तथा योग्यताओं का विकास किया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये पाठ्य-क्रम में अग्रलिखित ७ समूह होने चाहिये :—(१) मानव-विज्ञान (Humanities), (२) विज्ञान, (३) टेकनिकल विषय, (४) वाणिज्य-विषय (Commercial Subjects), (५) कृषि-विज्ञान, (६) ललित कलायें (Fine Arts) और (७) गृह-विज्ञान।

छात्र उपरोक्त समूहों में से किसी भी समूह के विषयों को ले सकते हैं,

परन्तु सभी समूहों के विद्यार्थियों के लिये कुछ आन्तरक विषय (Core Subjects) होंगे, जिनका अध्ययन सब विद्यार्थियों को करना पड़ेगा। ये विषय हैं :—(१) भाषा, (२) सामान्य विज्ञान, (३) समाज विज्ञान और (४) शिल्प।

७. शिक्षण की प्रावैगिक विधियाँ[1]

शिक्षण-विधि के विषय में आयोग ने अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. विद्यालयों में शिक्षण-विधियों का उद्देश्य केवल कुशलता पूर्वक ज्ञान प्रदान करना ही नहीं होना चाहिये, अपितु छात्रों में उपयुक्त मूल्यों (Desirable Values), उचित दृष्टिकोणों (Proper Attitudes) एवं कार्य करने की आदतों का भी समावेश करना चाहिये।

२. शिक्षण में मौखिक बातों (Verbalism) एवं कंठस्थ करने की क्रिया (Memorization) पर बल नहीं दिया जाना चाहिये। इसके विपरीत, शिक्षण ऐसी परिस्थितियों के माध्यम द्वारा किया जाना चाहिये जो साभिप्रायिक (Purposeful), मूर्त (Concrete) एवं वास्तविक हों। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये शिक्षण-विधियों में 'क्रिया पद्धति' (Activity Method) और 'योजना पद्धति' (Project Method) को स्थान देना चाहिये।

३. समस्त विषयों के शिक्षण में बोलने और लिखने में स्पष्ट रूप से विचार करने एवं स्पष्ट रूप से विचारों को व्यक्त करने पर विशेष बल दिया जाना चाहिये।

४. शिक्षण विधियों का उद्देश्य छात्रों को अधिक से अधिक ज्ञान देना नहीं होना चाहिये, अपितु उन्हें इस बात की शिक्षा देना होना चाहिये कि वे व्यक्तिगत प्रयासों से किस प्रकार ज्ञान का अर्जन कर सकते हैं।

५. छात्रों को समुदायों में कार्य करने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करने चाहिये, जिससे उनमें सामुदायिक जीवन का विकास हो सके।

८. चरित्र-निर्माण की शिक्षा[2]

आयोग ने छात्रों के चरित्र-निर्माण पर अत्यधिक बल दिया और इस सम्बन्ध में निम्नाङ्कित सुझाव दिये :—

१. छात्रों के चरित्र का निर्माण करना सभी अध्यापकों का विशेष उत्तर-

1. Dynamic Methods of Teaching.
2. Education of Character.

दायित्व है। अतः स्कूल के प्रत्येक कार्य-क्रम में चरित्र-निर्माण की शिक्षा दी जानी चाहिये।

२. उत्तम अनुशासन के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षकों एवं छात्रों में घनिष्ट सम्पर्क स्थापित किया जाय।

३. सामूहिक लेखों एवं सह-पाठ्य-क्रियाओं (Co-curricular Activities) को प्रोत्साहित किया जाय और उनकी शैक्षिक सम्भावनाओं (Educational Possibilities) को खोज कर उनसे अधिक से अधिक लाभ उठाया जाय।

४. राजनीतिक चुनावों एवं प्रचार-कार्य में १७ वर्ष से कम आयु के छात्रों का प्रयोग न किया जाय। एक कानून बनाकर इसको दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया जाय।

५. अतिरिक्त पाठ्य-क्रियाओं (Extra-curricular Activities) को विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा का अभिन्न अंग समझा जाय और सब अध्यापकों को इन क्रियाओं में अपने समय का एक निश्चित भाग व्यय करना अनिवार्य कर दिया जाय।

६. सब स्कूलों में एन० सी० सी०, फ़र्स्ट ऐड और जूनियर रेड क्रास कार्य को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

९. माध्यमिक विद्यालयों में मार्गप्रदर्शन एवं समुपदेशन[1]

आयोग ने अनुभव किया कि माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों का मार्ग-प्रदर्शन एवं समुपदेशन किया जाना आवश्यक है, जिससे कि वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के व्यवसायों एवं कार्यों को भली-भाँति समझ लें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आयोग ने निम्नाङ्कित सुझाव दिये :—

१. शिक्षाधिकारियों द्वारा छात्रों के शैक्षिक-मार्गप्रदर्शन पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये।

२. यह आवश्यक है कि छात्र, उद्योगों के विभिन्न व्यवसायों के क्षेत्र, प्रकृति एवं महत्व की जानकारी प्राप्त करें। अतः विभिन्न उद्योगों से सम्बन्धित कार्यों के फ़िल्म तैयार किये जायँ और उन्हें छात्रों को दिखाया जाय। साथ ही छात्रों को विभिन्न उद्योगों के कल कारखानों में ले जाया जाय।

३. विद्यालयों में प्रशिक्षित मार्गप्रदर्शन अधिकारियों (Guidance Officers) और जीविकोपार्जन शिक्षकों (Career Masters) की नियुक्ति की जाय।

---

1. Guiding and Counselling in Secondary Schools.

४. केन्द्रीय सरकार मार्गप्रदर्शन अधिकारियों तथा जीविकोपार्जन शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करे। राज्य की सरकारें अध्यापकों तथा अन्य उपयुक्त व्यक्तियों को केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित प्रशिक्षण-संस्था में ट्रेनिंग प्राप्त करने के लिये भेजें।

१०. छात्रों का शारीरिक कल्याण[1]

आयोग के मतानुसार छात्रों के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है, क्योंकि स्वस्थ शरीर ही स्वस्थ मस्तिष्क का सूचक है। अतः छात्रों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आयोग ने नीचे लिखे सुझाव दिये :—

१. सब राज्यों में 'स्कूल स्वास्थ्य सेवा' (School Medical Service) को उचित रूप से सङ्गठित किया जाय।

२. विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सब छात्रों की प्रतिवर्ष पूर्ण रूप से स्वास्थ्य-परीक्षा की जाय।

३. जो छात्र गम्भीर रोगों से पीड़ित हों या जो निरन्तर अस्वस्थ रहते हों, उनकी स्वास्थ्य-परीक्षा बार-बार की जाय।

४. सभी रोगी छात्रों की विद्यालय-स्वास्थ्य-अधिकारी (School Health Officer) द्वारा चिकित्सा की जाय।

५. छात्रावासों और निवास-विद्यालयों (Residential Schools) में संतुलित एक पौष्टिक आहार की व्यवस्था की जाय।

६. स्कूलों के कुछ अध्यापकों को प्राथमिक चिकित्सा (First Aid) तथा स्वास्थ्य के सामान्य सिद्धान्तों में प्रशिक्षित किया जाय।

७. छात्रों को स्वस्थ रखने के लिये उनसे शारीरिक श्रम करवाया जाय।

८. ४० वर्ष से कम आयु के शिक्षक, छात्रों के साथ शारीरिक श्रम के कार्य करें, जिससे छात्रों के समक्ष एक सुन्दर उदाहरण उपस्थित हो और वे शारीरिक श्रम करने में संकोच न करें।

११. परीक्षा एवं शैक्षिक मूल्याङ्कन[2]

परीक्षाओं के सम्बन्ध में आयोग का दृष्टिकोण बिल्कुल नया है, जिसका परिचय हमें निम्नलिखित बातों से प्राप्त होता है :—

१. बाह्य परीक्षाओं (External Examinations) की संख्या में कमी की जाय।

२. परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों के ढंग में इस प्रकार परिवर्तन किया

1. Physical Welfare of Students.
2. Examination and Educational Evolution.

जाय कि परीक्षा निबन्धात्मक ढंग (Essay Type) की न रह जाय।

३. छात्रों के कार्य का अन्तिम मूल्याङ्कन करते समय आन्तरिक परीक्षाओं (Internal Examinations) के साथ-साथ नियतकालिक परीक्षाओं (Periodical Tests) और विद्यालय-अभिलेखों (School Records) को भी उचित महत्व प्रदान किया जाय।

४. बाह्य तथा आन्तरिक परीक्षाओं में छात्रों के कार्य का मूल्याङ्कन अंकों में न किया जा कर प्रतीकात्मक (Symbolic) होना चाहिये।

५. प्रत्येक छात्र का एक 'विद्यालय अभिलेख' रखा जाय, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में उसके द्वारा किये गये कार्यों एवं उनमें प्राप्त सफलता का उल्लेख हो।

६. सेकेन्डरी स्कूल का सम्पूर्ण पाठ्य-क्रम समाप्त होने के उपरान्त ही केवल एक सार्वजनिक परीक्षा ली जाय।

१२. अध्यापकों की उन्नति

आयोग के मतानुसार माध्यमिक शिक्षा के पुनर्निर्माण में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक अध्यापक है। किसी विद्यालय की विख्याति उसमें कार्य करने वाले शिक्षकों पर निर्भर है। अतः आयोग ने शिक्षकों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करके उनकी स्थिति में सुधार करने के लिये अधोलिखित सिफ़ारिशें कीं :—

१. सम्पूर्ण देश में शिक्षकों के चुनाव एवं नियुक्ति की विधि एकसी होनी चाहिये।

२. व्यक्तिगत विद्यालयों एवं स्थानीय संस्थाओं द्वारा संचालित स्कूलों में शिक्षकों के चुनाव के लिये एक समिति होनी चाहिये। समिति के सदस्यों में स्कूल का प्रधानाचार्य भी होना चाहिये।

३. प्रशिक्षित अध्यापकों की परिवीक्षा (Probation) की अवधि १ वर्ष होनी चाहिये।

४. माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापक प्रशिक्षित स्नातक होने चाहिये। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की वही योग्यता होनी चाहिये जो इन्टरमीडिएट कॉलेजों के अध्यापकों की होती है।

५. समान योग्यता एवं समान कार्य करने वाले को समान वेतन दिया जाना चाहिये।

६. अध्यापकों को पर्याप्त वेतन नहीं मिलता है। अतः विशिष्ट समितियों की नियुक्ति की जाय, जो इस बात का सुझाव दें कि वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्यापकों को कितना वेतन दिया जाना चाहिये।

७. अध्यापकों को अपनी और अपने आश्रित सम्बन्धियों की चिन्ताओं से मुक्त करने के लिये प्रत्येक राज्य में त्रिमुखी लाभ-योजना कार्यान्वित की जानी चाहिये। इसके अन्तर्गत अध्यापकों को पेन्शन, प्रॉविडेन्ट फण्ड और जीवन बीमा की सुविधायें दी जायँ।

८. अध्यापकों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दी जाय; विद्यालयों के समीप उनके निवास की व्यवस्था की जाय; स्वास्थ्य-वर्द्धक स्थानों, कैम्पों, शिक्षा-सम्मेलनों आदि में जाने के लिये उन्हें किराये में रियायत और छुट्टी दी जाय तथा चिकित्सालयों में मुफ्त इलाज की सुविधा दी जाय।

९. अध्यापकों की कठिनाइयों पर विचार करने और उनकी शिकायतें सुनने के लिये विवाचन मण्डन (Arbitration Boards) अथवा समितियों की नियुक्ति की जाय।

१०. शिक्षकों द्वारा ट्यूशन पढ़ाने की प्रथा समाप्त कर दी जाय।

१३. अध्यापकों का प्रशिक्षण

आयोग ने अध्यापकों के प्रशिक्षण के विषय में नीचे लिखे हुए सुझाव दिये :—

१. प्रशिक्षण-विद्यालय केवल दो प्रकार के होने चाहिये :—(क) प्रथम उनके लिये जो माध्यमिक शिक्षा प्राप्त हैं। इनका प्रशिक्षण-काल दो वर्ष का होना चाहिये; (ख) द्वितीय उनके लिये जो स्नातक हैं। इनका प्रशिक्षण-काल इस समय एक वर्ष रहे, परन्तु कुछ समय के पश्चात् दो वर्ष कर दिया जाय।

२. छात्राध्यापकों को एक या अधिक अतिरिक्त पाठ्य-क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाय।

३. प्रशिक्षण-विद्यालयों में अभिनवन पाठ्य क्रमों (Refresher Courses) विशेष विषयों के लघु गहन पाठ्य-क्रमों (Short Intensive Courses) और कार्य-शाला में व्यावहारिक प्रशिक्षण (Practical Training in Workshops) की व्यवस्था की जाय।

४. प्रशिक्षण-विद्यालयों में छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क न लिया जाय। सब छात्राध्यापकों को राज्य की ओर से उपयुक्त शिष्यवृत्तियाँ (Stipends) दी जायँ। जो शिक्षक किसी स्कूल में कार्य कर रहे हों, उन्हें प्रशिक्षण काल के लिये पूर्ण वेतन पर छुट्टी दी जाय।

५. स्त्री-अध्यापिकाओं के अभाव की पूर्ति करने के लिये अंशकालिक प्रशिक्षण पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था की जाय।

१४ प्रशासन की समस्यायें[1]

माध्यमिक शिक्षा सम्बन्धी प्रशासन की समस्याओं का समाधान करने के लिये आयोग ने निम्नांकित सुझाव दिये :—

१. प्रशासन की समस्याओं पर शिक्षा मन्त्री को परामर्श देने का उत्तरदायित्व शिक्षा-संचालक पर होना चाहिये। शिक्षा मन्त्री तक उसकी सीधी पहुँच होनी चाहिये और उसका पद संयुक्त शिक्षा-सचिव के समकक्ष होना चाहिये।

२. केन्द्र एवं राज्यों में एक समिति का निर्माण किया जाना चाहिये, जो शिक्षा सम्बन्धी मामलों पर विचार करके उपयुक्त योजनायें बनाये।

३. लोक शिक्षा-संचालक की अध्यक्षता में २५ सदस्यों का एक माध्यमिक शिक्षा-परिषद् स्थापित किया जाय, जो माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित नीतियों को निर्धारित करे।

४. परिषद् की एक उप-समिति परीक्षाओं की व्यवस्था करे।

५. एक 'शिक्षक-प्रशिक्षण परिषद्' (Teacher's Training Board) की स्थापना की जाय, जो अध्यापकों के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था करे।

६. विद्यालय-निरीक्षक स्कूलों की समस्याओं का अध्ययन करके, उनमें सुधार करने के लिये सुझाव दें और समय-समय पर अध्यापकों को शिक्षण-कार्य के सम्बन्ध में परामर्श दें।

७. विद्यालयों को मान्यता तभी प्रदान की जाय, जब वे मान्यता सम्बन्धी सभी शर्तों को पूर्ण कर दें।

८. मान्यता-प्राप्त विद्यालयों का संचालन सरकार द्वारा स्वीकृत प्रबन्धकारिणी समिति करें। समिति का कोई सदस्य विद्यालय के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करे।

माध्यमिक शिक्षा-आयोग का मूल्यांकन

मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्संङ्गठन के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये हैं उनको प्रायः सभी शिक्षा-विशारदों ने व्यावहारिक और लाभ-प्रद माना है। परन्तु कुछ विचारक ऐसे भी हैं, जिनका दृष्टिकोण भिन्न है। अतः आयोग द्वारा दिये गये सुझावों के गुण-दोषों का विवेचन करके एक निष्कर्ष पर पहुँचना आवश्यक हो जाता है।

1. Problems of Administration.

७. अध्यापकों को अपनी और अपने आश्रित सम्बन्धियों की चिन्ताओं से मुक्त करने के लिये प्रत्येक राज्य में त्रिमुखी लाभ-योजना कार्यान्वित की जानी चाहिये। इसके अन्तर्गत अध्यापकों को पेन्शन, प्रॉविडेन्ट फण्ड और जीवन बीमा की सुविधायें दी जायँ।

८. अध्यापकों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दी जाय; विद्यालयों के समीप उनके निवास की व्यवस्था की जाय; स्वास्थ्य-वर्द्धक स्थानों, कैम्पों, शिक्षा-सम्मेलनों आदि में जाने के लिये उन्हें किराये में रियायत और छुट्टी दी जाय तथा चिकित्सालयों में मुफ्त इलाज की सुविधा दी जाय।

९. अध्यापकों की कठिनाइयों पर विचार करने और उनकी शिकायतें सुनने के लिये विवाचन मण्डन (Arbitration Boards) अथवा समितियों की नियुक्ति की जाय।

१०. शिक्षकों द्वारा ट्यूशन पढ़ाने की प्रथा समाप्त कर दी जाय।

१३. अध्यापकों का प्रशिक्षण

आयोग ने अध्यापकों के प्रशिक्षण के विषय में नीचे लिखे हुए सुझाव दिये :—

१. प्रशिक्षण-विद्यालय केवल दो प्रकार के होने चाहिये :—(क) प्रथम उनके लिये जो माध्यमिक शिक्षा प्राप्त हैं। इनका प्रशिक्षण-काल दो वर्ष का होना चाहिये; (ख) द्वितीय उनके लिये जो स्नातक हैं। इनका प्रशिक्षण-काल इस समय एक वर्ष रहे, परन्तु कुछ समय के पश्चात् दो वर्ष कर दिया जाय।

२. छात्राध्यापकों को एक या अधिक अतिरिक्त पाठ्य-क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाय।

३. प्रशिक्षण-विद्यालयों में अभिनवन पाठ्य क्रमों (Refresher Courses) विशेष विषयों के लघु गहन पाठ्य-क्रमों (Short Intensive Courses) और कार्य-शाला में व्यावहारिक प्रशिक्षण (Practical Training in Workshops) की व्यवस्था की जाय।

४. प्रशिक्षण-विद्यालयों में छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क न लिया जाय। सब छात्राध्यापकों को राज्य की ओर से उपयुक्त शिष्यवृत्तियाँ (Stipends) दी जायँ। जो शिक्षक किसी स्कूल में कार्य कर रहे हों, उन्हें प्रशिक्षण काल के लिये पूर्ण वेतन पर छुट्टी दी जाय।

५. स्त्री-अध्यापिकाओं के अभाव की पूर्ति करने के लिये अंशकालिक प्रशिक्षण पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था की जाय।

१४ प्रशासन की समस्यायें[1]

माध्यमिक शिक्षा सम्बन्धी प्रशासन की समस्याओं का समाधान करने के लिये आयोग ने निम्नांकित सुझाव दिये :—

१. प्रशासन की समस्याओं पर शिक्षा मन्त्री को परामर्श देने का उत्तरदायित्व शिक्षा-संचालक पर होना चाहिये। शिक्षा मन्त्री तक उसकी सीधी पहुँच होनी चाहिये और उसका पद संयुक्त शिक्षा-सचिव के समकक्ष होना चाहिये।

२. केन्द्र एवं राज्यों में एक समिति का निर्माण किया जाना चाहिये, जो शिक्षा सम्बन्धी मामलों पर विचार करके उपयुक्त योजनायें बनाये।

३. लोक शिक्षा-संचालक की अध्यक्षता में २५ सदस्यों का एक माध्यमिक शिक्षा-परिषद् स्थापित किया जाय, जो माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित नीतियों को निर्धारित करे।

४. परिषद् की एक उप-समिति परीक्षाओं की व्यवस्था करे।

५. एक 'शिक्षक-प्रशिक्षण परिषद्' (Teacher's Training Board) की स्थापना की जाय, जो अध्यापकों के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था करे।

६. विद्यालय-निरीक्षक स्कूलों की समस्याओं का अध्ययन करके, उनमें सुधार करने के लिये सुझाव दें और समय-समय पर अध्यापकों को शिक्षण-कार्य के सम्बन्ध में परामर्श दें।

७. विद्यालयों को मान्यता तभी प्रदान की जाय, जब वे मान्यता सम्बन्धी सभी शर्तों को पूर्ण कर दें।

८. मान्यता-प्राप्त विद्यालयों का संचालन सरकार द्वारा स्वीकृत प्रबन्धकारिणी समिति करें। समिति का कोई सदस्य विद्यालय के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करे।

माध्यमिक शिक्षा-आयोग का मूल्यांकन

मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्संङ्गठन के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये हैं उनको प्रायः सभी शिक्षा-विशारदों ने व्यावहारिक और लाभ-प्रद माना है। परन्तु कुछ विचारक ऐसे भी हैं, जिनका दृष्टिकोण भिन्न है। अतः आयोग द्वारा दिये गये सुझावों के गुण-दोषों का विवेचन करके एक निष्कर्ष पर पहुँचना आवश्यक हो जाता है।

---

1. Problems of Administration.

गुण

१. आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करके अति अभिनन्दनीय कार्य किया है। इस बात में मत-विभिन्नता नहीं हो सकती है कि हमारी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य लोकतन्त्रात्मक नागरिकता का विकास करना होना चाहिये।

२. पाठ्य-क्रम की विविधता से माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायगा। सभी बालकों की अभिरुचियाँ तथा अभियोग्यतायें समान नहीं होती हैं। अतः पाठ्य-क्रम को उनकी अभिरुचियों एवं अभियोग्यताओं के अनुसार होना आवश्यक है।

३. बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना से शिक्षा का रूप व्यावहारिक हो जायगा और छात्र अपनी व्यक्तिगत योग्यताओं के अनुसार विषयों का चयन कर के अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकेंगे।

४. भारत ऐसे कृषि-प्रधान देश के ग्रामीण विद्यालयों में कृषि की शिक्षा को अनिवार्य बनाये जाने का सुझाव अति महत्त्वपूर्ण है।

५. स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश का औद्योगीकरण अति तीव्र गति से किया जा रहा है। नवीन उद्योगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये टेकनिकल शिक्षा की व्यवस्था का सुझाव देकर आयोग ने अति प्रशंसनीय कार्य किया है।

६. आयोग की इस सिफ़ारिश को सभी शिक्षा-विदों ने स्वीकार किया है कि शिक्षण की विधियों में क्रिया-रीतियों को स्थान दिया जाय और पाठन-सामग्री के प्रयोग से उनको सजीव बनाया जाय।

७. माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के चरित्र-निर्माण की अति आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में जो सुझाव दिये गये हैं वे छात्रों को चरित्रवान एवं अनुशासन प्रिय बनाने में सहायक सिद्ध होंगे।

८. छात्रों का मार्ग प्रदर्शन करने का सुझाव वस्तुतः अद्वितीय है। अनेकों बालक अपनी योग्यताओं से परिचित न होने के कारण ग़लत व्यवसायों तथा कार्य-क्षेत्रों में प्रवेश करके असफलता को आमंत्रित करते हैं। अनुभवहीन बालक प्रशिक्षित व्यक्तियों से मार्ग प्रदर्शन का लाभ उठाकर अपनी शक्तियों का उचित दिशाओं में प्रयोग कर सकेंगे।

९. परीक्षा एवं शैक्षिक मूल्याङ्कन के विषय में आयोग के सुझाव माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में युग-प्रवर्त्तक सिद्ध होंगे। यदि आयोग के सभी सुझावों को स्वीकार कर लिया जाय, तो हमारी दोष-पूर्ण शिक्षा-प्रणाली दोष-मुक्त हो जायगी।

१०. अध्यापक शिक्षा के केन्द्र-बिन्दु हैं। इसी विचार को ध्यान में रखते हुए आयोग ने शिक्षकों की दशा, सेवा-प्रतिबन्धों (Conditions), वेतन, प्रशिक्षण आदि के सम्बन्ध में बहुमूल्य सुझाव दिये हैं। उन सुझावों को कार्यान्वित करने से हमारी शिक्षा का कायाकल्प हो जायगा।

दोष

उपर्युक्त गुणों के साथ-साथ आयोग की सिफ़ारिशों में कुछ स्पष्ट दोष भी परिलक्षित होते हैं, जिनकी ओर नीचे संकेत किया जा रहा है :—

१. माध्यमिक शिक्षा के प्रशासन के सम्बन्ध में दिये गये सुझाव सर्वथा अपूर्ण हैं। व्यक्तिगत विद्यालयों की प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यों की योग्यताओं के विषय में कुछ नहीं कहा गया है।

२. किसी भी राष्ट्र के उत्थान में सुशिक्षित स्त्रियों की अत्यधिक आवश्यकता होती है। आयोग ने स्त्री-शिक्षा के विस्तार के सम्बन्ध में कोई भी महत्वपूर्ण सुझाव नहीं दिया है।

३. इन्टरमीडिएट कक्षा को तोड़ने का सुझाव उपयुक्त नहीं प्रतीत होता है। जिस स्तर पर विश्वविद्यालयों तथा डिग्री कॉलेजों में इस कक्षा के विद्यार्थियों को शिक्षा दी जा रही है, उस स्तर पर माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा देना सम्भव नहीं होगा। इसके अतिरिक्त इस योजना को कार्यान्वित करने में एक बड़ी धनराशि की आवश्यकता होगी।

४. माध्यमिक स्तर पर प्रत्येक छात्र को तीन भाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक होगा—मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा, हिन्दी और अंग्रेजी। तीन भाषाओं के अतिरिक्त आन्तरिक विषयों का भी अध्ययन अनिवार्य होगा। इन सब के साथ-साथ एक समूह के विषय और लेने पड़ेंगे। इस प्रकार छात्रों के लिये पाठ्य-क्रम बहुत भारी हो जाता है।

५. बालकों तथा बालिकाओं के पाठ्य-क्रम में भेद नहीं किया गया है।

निष्कर्ष

माध्यमिक शिक्षा-आयोग के उपरोक्त सुझावों के गुणागुण की विवेचना करने के उपरान्त यह बात निर्विवाद रूप से मान्य है कि अधिकांश सुझाव अति महत्वपूर्ण और श्लाघनीय हैं। यदि उनके अनुसार हमारी माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संङ्गठन किया जाय, तो उसका रूप पूर्णतः परिवर्तित हो जायगा और वह देश के नवयुवकों का हित करके अन्ततोगत्वा देश का कल्याण करेगी।

आयोग के सुझावों का कार्यान्वयन

आयोग के अधिकांश सुझावों को केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकार करके

कार्यान्वित कर दिया गया है। हम उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे हैं :—

१. वर्तमान स्कूलों को बहुउद्देशीय स्कूलों में बदल कर नया रूप दिया जाना।

२. कृषि-शिक्षा का विस्तार करने के लिये 'ग्रामीण उच्च शिक्षा समिति' और 'ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा के लिये राष्ट्रीय परिषद्' की स्थापना।

३. टेकनिकल शिक्षा के लिये इंजीनियरिंग के कॉलेजों तथा प्रविधि विद्यालयों (Polytechnics) का निर्माण।

४. माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य रूप से तीन भाषाओं का अध्यापन।

५. छात्रों के शारीरिक कल्याण के लिये 'अखिल भारतीय क्रीड़ा-परिषद्' की स्थापना और केन्द्रीय सरकार द्वारा कैम्पों तथा सन्तरण-तड़ागों (Swimming Pools) आदि के लिये सहायता-अनुदान।

६. विज्ञान आदि विषयों के अध्यापन में सुधार, मिडिल स्कूलों में दस्तकारी की शिक्षा देने तथा अध्यापकों के प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था करने की सुविधाओं का आयोजन।

७. माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को परामर्श देने के लिये 'अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा-परिषद्' की स्थापना।

सारांश

माध्यमिक शिक्षा के पुनर्निर्माण की आवश्यकता का अनुभव करके 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने एक माध्यमिक शिक्षा-आयोग की नियुक्ति की सिफ़ारिश की। अतः भारत सरकार ने मद्रास विश्वविद्यालय को उपकुलपति डा० लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में 'माध्यमिक शिक्षा आयोग' की नियुक्ति की। इसमें दो विदेशी विद्वानों को भी स्थान दिया गया।

आयोग के सुझाव—आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के दोषों की विशद् व्याख्या की और उनको दूर करने के लिये अग्रलिखित सुझाव दिये :—(१) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य; (२) माध्यमिक शिक्षा का नवीन संगठन; (३) भाषाओं का अध्ययन; (४) माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्य-क्रम; (५) पाठ्य-क्रम के विषय; (६) शिक्षण की प्रावैगिक विधियाँ; (७) चरित्र-निर्माण की शिक्षा; (८) माध्यमिक विद्यालयों में मार्ग प्रदर्शन एवं समुपदेशन; (९) छात्रों का शारीरिक कल्याण; (१०) परीक्षा एवं शैक्षिक मूल्यांकन; (११) अध्यापकों की उन्नति; (१२) अध्यापकों का प्रशिक्षण; एवं (१३) प्रशासन की समस्यायें।

सरकार द्वारा सुझावों का कार्यान्वयन—(१) बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना; (२) 'ग्रामीण उच्च शिक्षा समिति', 'अखिल भारतीय क्रीड़ा परिषद्', और 'अखिल-भारतीय माध्यमिक शिक्षा-परिषद्' की स्थापना; (३) कृषि शिक्षा का विस्तार; (४) इंजीनियरिंग के कॉलेजों एवं प्रविधि विद्यालयों का निर्माण; और (५) माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाओं का अध्यापन।

TEST QUESTIONS

1. "Teacher-Training has not received the attention it deserves in the development of our educational system." Explain.
   What are the recommendations of the Mudaliar Commission of 1953 in regard to this ?
2. Critically examine the recommendations of Mudaliar Commission for the reorganization of Secondary Education in India. What steps have been taken so far towards their implementation ?
3. Discuss the pattern of Secondary Education as recommended in the Report of the Secondary Education Commission.

—: o :—

अध्याय २२

विश्वविद्यालय-शिक्षा (१९४७-१९५९)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त विश्वविद्यालयों की संख्या में श्लाघनीय वृद्धि हुई है। देश के विभाजन से पूर्व भारत में २१ विश्वविद्यालय थे परन्तु उसके उपरान्त १९ रह गये। उस समय से लेकर आज तक १८ नये विश्वविद्यालयों की स्थापना हो चुकी है। इस प्रकार अब हमारे देश में ३७ विश्वविद्यालय हैं।

स्वतन्त्र भारत में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। १९४७ में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या १,९९,२५३ थी,[1] परन्तु १९५६ में यह संख्या बढ़कर ५,७५,२४७ हो गई।[2] १९५५-५६ में सरकार द्वारा उच्च शिक्षा पर २८,३८,२५,६८८ रुपया व्यय किया गया।

विश्वविद्यालयों के प्रकार

विश्वविद्यालय ३ प्रकार के हैं—(१) सम्बन्धक (Affiliating) विश्वविद्यालय जिनमें अध्यापन-कार्य नहीं होता है, अपितु ये परीक्षाओं के संचालन

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 362
2. *Education in India* (1955-56) ,p. 182.

आदि की व्यवस्था करते हैं; (२) सम्बन्धक तथा शिक्षण (Affiliating & Teaching) विश्वविद्यालय जो उपर्युक्त कार्य के साथ-साथ अध्यापन एवं शोध-कार्य की सुविधायें भी प्रदान करते हैं; और (३) सावास तथा शिक्षण (Residential & Teaching) विश्वविद्यालय जो सभी प्रकार के अध्यापन कार्य की व्यवस्था करते हैं और उनका अपने अधीन कॉलेजों पर नियंत्रण रहता है।

भारत के विश्वविद्यालय[1]

विश्वविद्यालय	स्थापन तिथि	प्रकार	सम्बद्ध कॉलेज
१. अन्नमलई	१९२९	सावास व शिक्षण	.....
२. अलीगढ़	१९२०	,, ,,	२
३. आगरा	१९२७	शिक्षण व सम्बन्धक	६०
४. आन्ध्र, वाल्टेयर	१९२६	,, ,,	४९
५. इलाहाबाद	१८८७	सावास व शिक्षण	४
६. उत्कल, कटक	१९४३	शिक्षण व सम्बन्धक	२१
७. उस्मानिया, हैदराबाद	१९१८	सावास व शिक्षण	३४
८. एस० एन० डी० टी० महिला, बम्बई	१९५१	शिक्षण व सम्बन्धक	६
९. कलकत्ता	१८५७	,,	१४८
१०. कर्नाटक, धारवाड़	१९४९	,, ,,	२५
११. केरल, त्रिवेन्द्रम	१९३७	,, ,,	६६
१२. कुरुक्षेत्र	१९५६	सावास व शिक्षण	.....

1. *Hindusta ≥ Year Book*, 1960, pp. 242-244.

विश्वविद्यालय	स्थापन तिथि	प्रकार	सम्बद्ध कॉलेज
१३. गुजरात. अहमदाबाद	१९४९	शिक्षण व सम्बन्धक	४५
१४. गोरखपुर	१९५७	,,	१२
१५. गोहाटी	१९४८	,, ,,	२६
१६. जबलपुर	१९५७	,, ,,	१७
१७. जम्मू तथा काश्मीर श्रीनगर	१९४८	शिक्षण व सम्बन्धक	२५
१८. जाधवपुर	१९५५	सावास व शिक्षण	२
१९. दिल्ली	१९२२	शिक्षण व सम्बन्धक	२२
२०. नागपुर	१९२३	,, ,,	२८
२१. पंजाब, चंडीगढ़	१९४७	,, ,,	११६
२२. पटना	१९१७	सावास व शिक्षण	१०
२३. पूना	१९४९	शिक्षण व सम्बन्धक	३९
२४. वड़ौदा	१९४९	सावास व शिक्षण	३
२५. बनारस	१९१६	,, ,,	२१
२६. बम्बई	१८५७	संघीय व शिक्षण	४२
२७. बिहार, पटना	१९५२	शिक्षण व सम्बन्धक	७६
२८. मद्रास	१८५७	,, ,,	१०५
२९. मैसूर	१९१६	,, ,,	५३
३९. राजस्थान, जयपुर	१९४७	,, ,,	४१

विश्वविद्यालय	स्थापन तिथि	प्रकार	सम्बद्ध कॉलेज
३१. रुड़की	१९४८	सावास व शिक्षण	.....
३२. लखनऊ	१९२१	,, ,,	१३
३३. विक्रम, उज्जैन	१९५७	शिक्षण व सम्बन्धक	२६
३४. विश्वभारती शान्तिनिकेतन	१९५१	सावास व शिक्षण	६
३५. श्री वेंकटेश्वर, निरुपति	१९४५	शिक्षण व सम्बन्धक	१२
३६. सरदार बल्लभभाई विद्यापीठ, वल्लभ-नगर, आनन्द	१९५५	सम्बन्धक	४
३७. सागर	१९४६	शिक्षण व सम्बन्धक	२३

विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग[1] (१९५३)

सरकार द्वारा १९४८ में नियुक्त 'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग'[2] के सुझाव के अनुसार १९५३ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की गई। १९५६ में संसद के एक अधिनियय द्वारा इसे एक स्वतंत्र संस्था स्वीकार कर लिया गया। इस अधिनियम के अनुसार अध्यक्ष के अतिरिक्त 'विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग' के ९ सदस्य होंगे। इनमें से ३ विश्वविद्यालयों के उपकुलपति ४ प्रसिद्ध भारतीय शिक्षा-मर्मज्ञ एवं २ केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि होंगे।

आयोग की स्थिति—१ मई १९५९ को आयोग की स्थिति इस प्रकार थी:—**अध्यक्ष**—सी० डी० देशमुख, **सदस्य**—एच० एन० कुँजरू, के० एस० कृष्णन, ए० एल० मुदालियर, दीवान आनन्दकुमार, जी० सी० चटर्जी, एन० के० सिद्धान्त, के० जी० सैयादीन और एन० एन० वाँचू, **सचिव**—सैमुअल मथाई।[3]

---

1. University Grants Commission.
2. University Education Commission.
3. **भारत** (वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ) १९५९, पृष्ठ ८२.

आयोग के कर्त्तव्य—'विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग' के कर्त्तव्य निम्न-लिखित हैं:—

१. विश्वविद्यालय-शिक्षा में सुधार करने और शिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये विश्वविद्यालयों को परामर्श देना।

२. भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा के स्तर में समन्वय रखने और विश्व-विद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं पर एक विशेषज्ञ-संस्था के रूप में केन्द्रीय सरकार को सलाह देना।

३. विश्वविद्यालयों की आर्थिक आवश्यकताओं की जाँच करना और केन्द्रीय सरकार द्वारा उनको सहायता-अनुदान में दिये जाने वाले धन के संबंध में सुझाव देना।

४. विश्वविद्यालयों को अपने कोष में से दिये जाने वाले धन का वितरण करना और इस सम्बन्ध में अपनी नीति निर्धारित करना।

५. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना एवं पुराने विश्वविद्यालयों के कार्य-क्षेत्र की वृद्धि पर पूछे जाने पर अपना मत व्यक्त करना।

६. केन्द्रीय सरकार एवं विश्वविद्यालयों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देना और उनकी शंकाओं का समाधान करना।

७. विश्वविद्यालयों द्वारा विविध सेवाओं के लिये प्रदान की गई उपाधियों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार एवं राज्य-सरकारों को अपनी सम्मति देना।

८. विश्वविद्यालयों के लिये उपयुक्त समझी जाने वाली सूचनाओं को भारत तथा विदेशों से एकत्रित करके विश्वविद्यालयों को प्रेषित करना।

९. विश्वविद्यालयों से उनकी परीक्षाओं, पाठ्य-क्रमों शोध-कार्यों आदि के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करना।

१०. विश्वविद्यालय-शिक्षा के विस्तार एवं विकास से सम्बन्धित आवश्यक कार्यों को सम्पन्न करना।[1]

हर्ष का विषय है कि 'विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग' अपने कर्त्तव्यों का सतर्कता से पालन कर रहा है, जिसके फलस्वरूप विश्वविद्यालय-शिक्षा के क्षेत्र में अभिनन्दनीय विकास हो रहा है। वस्तुतः भारत-सरकार ने आयोग की स्थापना करके एक महान् आवश्यकता की पूर्ति की है।

विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा

एक अध्ययन-मंडली ने, जिसने अपनी रिपोर्ट जनवरी, १९५७ में सरकार को दी, सामान्य शिक्षा (General Education) की दो योजनायें तैयार

1. *University Grants Commission Act*, 1956; Section 12.

की हैं। इसकी मुख्य योजना में प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि से सम्बन्धित मूल विषयों के अध्ययन की सामान्य शिक्षा सभी स्नातक-पूर्व (Undergraduates) गैर-व्यावसायिक (Non-Professional) संकायों के लिये अनिवार्य होगी। वैकल्पिक योजना में डिग्री पाठ्य-क्रम के प्रथम एवं द्वितीय वर्ष में सामान्य शिक्षा के लिये सप्ताह में ६ घंटों (Periods) के अध्यापन की व्यवस्था की जायगी। भारत के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा के पाठ्य-क्रम को लागू करना स्वीकार कर लिया है और अधिकांश ने इस सम्बन्ध में कार्य भी प्रारम्भ कर दिया है।

त्रि-वर्षीय डिग्री पाठ्य-क्रम[1]

देश की नवीन आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों को ध्यान में रख कर विश्वविद्यालय की शिक्षा के पुनर्संगठन के लिये प्रयास किये गये हैं। इस क्षेत्र में किये गये अधिक महत्वपूर्ण निर्णयों में एक निर्णय 'त्रि-वर्षीय डिग्री पाठ्य-क्रम' प्रारम्भ करने का है। भारत के १८ विश्वविद्यालयों में इस सुधार को क्रियान्वित किया जा रहा है। दिल्ली एवं जादवपुर के विश्वविद्यालयों में इसे क्रमशः १९४३-४४ और १९५६-५७ में ही प्रारम्भ किया जा चुका है। बम्बई विश्वविद्यालय ने इस योजना को अभी तक स्वीकार नहीं किया है और गोरखपुर विश्वविद्यालय इस पर विचार कर रहा है। शेष सभी विश्व-विद्यालयों ने इसे क्रियान्वित करना स्वीकार कर लिया है। इस सुधार को क्रियान्वित करने में जो भी धन व्यय होगा उसे 'त्रि-वर्षीय डिग्री पाठ्य-क्रम अनुमान व्यय समिति' की सिफ़ारिश के अनुसार एक ओर 'केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय' और 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' एवं दूसरी ओर राज्य-सरकार तथा प्रबन्धक समान रूप में वहन करेंगे। शिक्षा मंत्रालय ने द्वितीय पंच-वर्षीय योजना-काल में इस पाठ्य-क्रम को प्रारम्भ करने के लिये केन्द्रीय सहायता के रूप में ४ करोड़ रुपये की धन-राशि निश्चित की है।

विश्वविद्यालय-शिक्षा के दोष

१८५२ में विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य बताते हुए न्यूमैन (Newman) ने लिखा : "यदि विश्वविद्यालय की शिक्षा का कोई व्यावहारिक उद्देश्य है, तो मैं कह सकता हूँ कि यह समाज के उत्तम नागरिकों को प्रशिक्षित करना

---

1. Three-Year Degree Course.

है।"[1] एक राष्ट्र के विश्वविद्यालयों की शिक्षा का स्तर वहाँ के निवासियों के बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर का मानदण्ड है। "देश का वैभव विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित होता है। दूषित विश्वविद्यालय सम्पूर्ण राष्ट्र को दूषित कर देते हैं।"[2] विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य न केवल बुद्धिमान नागरिकों का अपितु सुयोग्य व्यक्तियों का भी निर्माण करना है। 'विश्वविद्यालय-शिक्षा आयोग' ने भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों का भ्रमण करते समय इस बात का अनुभव किया कि सभी व्यक्ति राष्ट्रीय कल्याण के लिये विश्वविद्यालय-शिक्षा के महत्व से अवगत थे परन्तु वे वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की अपर्याप्तता से क्षुब्ध थे। भावी नागरिकों का निर्माण करने वाले विश्वविद्यालय, शिक्षा की प्राचीन पद्धति से आबद्ध नहीं रह सकते हैं। समाज की अभिवृद्धित जटिलता तथा परिवर्तनशील रूप के कारण यह आवश्यक हो गया है कि यदि वे हमारे राष्ट्रीय जीवन में प्रभावपूर्ण रूप से कार्य करना चाहते हैं, तो वे अपने उद्देश्यों तथा विधियों में परिवर्तन करें।[3] अपने जिन दोषों का निराकरण करके विश्वविद्यालय राष्ट्रीय जीवन में उपयुक्त स्थान ग्रहण कर सकते हैं, उन पर हम नीचे प्रकाश डाल रहे हैं।

विश्वविद्यालय शिक्षा में अपव्यय[4]

विश्वविद्यालय-शिक्षा में अत्यधिक अपव्यय है। इस सम्बन्ध में 'विश्व-

1. "If a practical end must be assigned to a university course, then I say it is training of good members of society."Cardinal Newman : *The Scope and Nature of University Education.* Discourse 6.
2. "The property of the country is linked up with the university. A vicious university is like a contaminated fountain which is bound to imperil the health of those who drink from it." R. K. Singh : *Our Universities.* p. 9.
3. "We were everywhere struck by a deep general awareness of the importance of higher education for national welfare and an uneasy sense of the inadequacy of present pattern.....The universities as the makers of the future canot persist in the old patterns,.....With the increasing complexity of society and its shifting pattern, universities have to change their objectives and methods, if they are to function effectively in our national life." *Report of the University Education Commission,* pp. 5-6.
4. Wastage in University Education.

विद्यालय-शिक्षा-आयोग' ने अपने विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है : "सार्वजनिक धन का प्रतिवर्ष महान् अपव्यय हो रहा है, परन्तु इससे भी अधिक दुख की बात यह है कि सार्वजनिक धन की गम्भीर हानि के प्रति उतनी ही उदासीनता है जितनी कि छात्रों और उनके अभिभावकों के समय, शान्ति और धन के नाश, तथा उनकी आशाओं और अभिलाषाओं पर भयंकर तुषारापात के प्रति।"[1] विश्वविद्यालय शिक्षा में होने वाले अपव्यय का अनुमान नीचे की तालिका से लगाया जा सकता है।

विभिन्न परीक्षाओं के फल (१९५५–५६)[2]

परीक्षा	सम्मिलित होने वाले	उत्तीर्ण होने वाले	प्रतिशत
इण्टर	३,००,५·३	१,३१,७३९	४४
बी० ए०	७९,९२०	३७,९९२	४७.५
बी० एससी०	३२,६६७	१५,९९७	४९.०
एम० ए०	१३,२१७	९,३१३	७०.५
एम० एससी०	३,१४२	२.४५६	७८.२
व्यावसायिक विषय	४८,४५०	३५,७७२	७३.८

इस अपव्यय को रोकने के लिये यह आवश्यक है कि केवल योग्य छात्रों को ही विश्वविद्यालयों में प्रवेश दिया जाय। 'सार्जेण्ट-रिपोर्ट' के अनुसार हाई स्कूल परीक्षा में सफल होने वाले छात्रों में से १५ में से केवल १ को प्रवेश दिया जाय।[3] इसके अतिरिक्त पाठ्य-क्रम में इस प्रकार सुधार किया जाय कि वह साहित्यिक न रह कर व्यावहारिक हो जाय अन्यथा अनुत्तीर्ण छात्रों की संख्या में कमी न हो सकेगी। परीक्षा-प्रणाली में सुधार करना और अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के पद से हटाना भी आवश्यक है। तभी विश्वविद्यालय-शिक्षा के अपव्यय को कम किया जा सकेगा।

1. "A deplorable wastage of public funds goes on year after year but what is worse, there is an unconcerned complacency about this serious loss of public funds on the one hand, and waste of time, energy and funds of students and their parents besides terrible frustration of their hopes and aspirations. on the other." *Report of the University Education Commission*, p. 86.
2. *Education in India*, (1955-56) p. 197.
3. *Sargent Report*, p. 32.

दोष पूर्ण पाठ्य-क्रम

हमारे विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम विभिन्न प्रकार के छात्रों की अभिरुचियों की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। फलस्वरूप उनका मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। इस दोष का निवारण करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रमों में उसी प्रकार की विविधता आयोजित की जाय, जैसी कि मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम के लिये निर्धारित की है। विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम का लचीला होना आवश्यक है, जिससे उसको परिवर्तनशील समाज की परिस्थितियों और उसके सदस्यों की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया जा सके। "शिक्षा-प्रणालियों का निर्माण कुछ समय के लिये न कि सदैव के लिये किया जाता है। मानव को शिक्षा देने की कोई स्थायी विधियाँ नहीं हैं। जो पाठ्य-क्रम वैदिक काल या पुनरुत्थान के युग में उपयुक्त था, उसे २० वीं शताब्दी में बिना परिवर्तित किये प्रयोग नहीं किया जा सकता है।"[1] अतः यह आवश्यक है कि हमारे विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में यथाशीघ्र सुधार किया जाय।

शिक्षा में विशिष्टीकरण[2]

विश्वविद्यालय-शिक्षा का एक स्पष्ट दोष यह है कि विभिन्न विषयों में विशिष्टीकरण पर बल दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त छात्रों को किसी विशेष विषय में तो दक्षता प्राप्त हो जाती है; परन्तु उनका दृष्टिकोण असंतुलित रहता है और वे पूर्णतया शिष्ट व्यक्ति नहीं बन पाते हैं। सैग्लादीन ने उचित ही लिखा है: "विशिष्टीकरण में एक प्रकार की संकीर्णता एवं अकाल्पनिकता होती है जिसका परिणाम यह होता है कि विज्ञान के छात्रों को कला और कविता तथा सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का कोई ज्ञान नहीं होता है और आर्ट्स के विद्यार्थियों को इस बात का ज्ञान नहीं होता है कि विज्ञान तथा

---

1. "Educational systems are built for a time and not for all time. There are changeless ways of educating human nature. A curriculum which had vitality in the Vedic period or the Renaissance cannot continue unaltered in the 20th Century." *Report of the University Commission* p. 44.

1. Specialisation in Education.

वैज्ञानिक विधियों ने उस संसार को जिसमें वे निवास करते हैं किस प्रकार परिवर्तित कर दिया है।"[1]

विश्वविद्यालय शिक्षा में इस अलौकिक विशिष्टीकरण का निराकरण करने के विचार से 'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग' ने सुझाव दिया है कि 'सामान्य शिक्षा' (General Education) को विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में स्थान दिया जाय। इस शिक्षा का उद्देश्य वर्तमान पाठ्य-क्रम में असंतुलित विशिष्टीकरण के दोषों का उन्मूलन करना है।

छात्रों के पथ-प्रदर्शन की व्यवस्था न होना[2]

हमारे विश्वविद्यालयों में छात्रों का पथ-प्रदर्शन करने और उनको परामर्श देने की कोई व्यवस्था नहीं है। इसके अभाव में छात्र स्वयं अपनी इच्छा से या किसी अनुभवहीन व्यक्ति के परामर्श से पाठ्य-क्रम के विषयों का चयन करते हैं। परिणाम यह होता है कि अनेकों छात्र ऐसे विषयों का चुनाव कर लेते हैं जो या तो उनकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल होते हैं या जिनका अध्ययन करने की उनमें क्षमता नहीं होती है। जब उन्हें इस बात का ज्ञान होता है, तब इतना बिलम्ब हो जाता है कि वे अपने को कुछ करने में असमर्थ पाते हैं। फलतः उन्हें छात्र-जीवन में असफलता और इस असफलता के परिणाम-स्वरूप व्यावहारिक जीवन में निराशा का सामना करना पड़ता है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि विश्वविद्यालय-जीवन में आदि से लेकर अन्त तक छात्रों को अनुभवी तथा प्रशिक्षित व्यक्तियों का पथ-प्रदर्शन एवं परामर्श प्राप्त हो। इस सम्बन्ध में जो व्यवस्था 'मुदालियर कमीशन' ने माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के लिये की है, वैसी ही व्यवस्था विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिये भी की जानी चाहिये।

शिक्षा का निम्न स्तर

हमारे कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की शिक्षा का स्तर पर्याप्त निम्न है। आयंगर ने उचित ही लिखा है : "हमारे ज्ञान और शिक्षण का स्तर वैसे तो

1. "There is a certain narrow, unimaginative types of specialisation which results in the Science students being complacently ignorant of art and poetry, and Arts students having no appreciation of how science and the scientific technique have transformed the world in which they are living." K. G. Saiyidain : *Education, Culture and Social Order*, p. 163.
2. No provision of Student's Guidance and Counselling.

कभी भी ऊँचा नहीं था, परन्तु अब वह अति तीव्रता से नीचे की ओर जा रहा है।[२]" इसके अनेकों कारण प्रस्तुत किये जाते हैं। यह बात सर्वविदित है कि कॉलिजों और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों पर कार्य का भार अत्यधिक है। फलस्वरूप वे अपने व्याख्यानों को पूर्ण रूप से तैयार करने के लिये समय नहीं निकाल पाते हैं। कक्षाओं में इतने अधिक छात्र होते हैं कि उनमें और अध्यापकों में व्यक्तिगत सम्पर्क असम्भव होता है। ट्यूटोरियल पद्धति, विमर्श-गोष्ठियों और पुस्तकालय में अध्ययन करने की प्रथा का पूर्ण अभाव है। फिर अध्यापकों का वेतन इतना न्यून है कि उन्हें अपने कार्य में रुचि लेने की कोई इच्छा ही नहीं होती है। साथ ही छात्रों को प्रतिदिन इतने घंटे कॉलिजों में अध्ययन करना पड़ता है कि कुछ घंटों के पश्चात् रोचक व्याख्यान भी उनके लिये अरुचिकर प्रतीत होने लगता है। राधाकृष्णन कमीशन ने विश्व-विद्यालयों के अध्यापन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये कुछ बहुमूल्य सुझाव दिये हैं, जिनमें से प्रमुख हैं :-अध्यापकों की वेतन-वृद्धि, उनके द्वारा सप्ताह में १८ घंटे अध्यापनकार्य, सेवा-प्रतिबन्धों में सुधार, ट्यूटोरियल कक्षाओं की व्यवस्था, पुस्तकालयों एवं प्रयोग-शालाओं का सुसंगठन एवं विमर्शगोष्ठियों को प्रोत्साहन।

शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होना

हमारे देश को स्वतंत्र हुए आज १३ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, पर अब भी विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के पद पर अंग्रेज़ी भाषा प्रतिष्ठित है। हमारी दीर्घकालीन दासता ने हमें अंग्रेज़ी से इतना मोह उत्पन्न कर दिया है कि हम अब भी उसका आंचल पकड़े हुए हैं। परन्तु इससे हमारे नवयुवकों का कितना अनर्थ हो रहा है इस बात को हमने कभी शान्त मस्तिष्क से नहीं विचारा है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का कथन था : "विदेशी माध्यम ने राष्ट्र की शक्ति को क्षीण कर दिया है। इसने व्यक्तियों की आयु कम कर दी है, इसने उनको जनसाधारण से पृथक् कर दिया है, इसने शिक्षा को अनावश्यक रूप से मंहगा बना दिया है।"[२] इन दोषों को देखते हुए यह

1. "Our standards whether in scholarship or teaching, never very high or exating are now fast racing, to the bottom." K. R. S. Iyengar : *A New Deal for Our Universities*, p. 29
2. "The imposition of a foriegn medium has sapped the energy of the nation. It has shortened the lives of the people, it has estranged them from the masses, it has made education unnecessarily expensive."

आवश्यक प्रतीत होता है कि अंग्रेजी को शीघ्रातिशीघ्र शिक्षा के माध्यम के पद से हटा देना चाहिये। विश्वविद्यालय आयोग ने सुझाव दिया है कि प्रादेशिक भाषा या संघीय भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। अधिक उपयुक्त यह होगा कि संघीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय जिससे देश के विभिन्न राज्यों के व्यक्तियों के मध्य सम्पर्क स्थापित करने और अखिल भारतीय सेवाओं की परीक्षा लेने में सुविधा हो।

दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली

हमारे विश्वविद्यालयों की परीक्षा-प्रणाली अनेकों दोषों से युक्त है। आज तक जितनी भी समितियाँ एवं आयोग नियुक्त किये गये हैं, उन सब ने इन दोषों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। १९०२ के 'भारतीय विश्वविद्यालय आयोग' का कथन था : "भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा का सर्वमहान् दोष यह है कि शिक्षण परीक्षा के अधीन है, न कि परीक्षा शिक्षण के।"[1] १९४९ के 'विश्वविद्यालय-आयोग' का मत था : "यदि हम विश्वविद्यालय-शिक्षा के केवल एक विषय में सुधार का सुझाव दें, तो वह परीक्षाओं के सम्बन्ध में होना चाहिये।[2]" इस सुधार के विषय में 'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग' ने कुछ बहुमूल्य सुझाव दिये हैं, जिनमें से मुख्य हैं :—वैज्ञानिक पद्धतियों को परीक्षा-पद्धति में क्रियान्वित करना, छात्रों का प्रगति-परीक्षाओं द्वारा परीक्षण करना, वस्तुगत-प्रगति-परीक्षाओं का कुलक तैयार करना और प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के लिये ७०,५५ और ४० प्रतिशत अंक निर्धारित करना।

अन्य दोष

विश्वविद्यालय-शिक्षा में और भी अनेकों दोष हैं, यथा :—धार्मिक शिक्षा का अभाव जिससे छात्रों का नैतिक पतन हो रहा है। स्वास्थ्य-शिक्षा की व्यवस्था न होने से विद्यार्थियों का शारीरिक विकास अवरुद्ध हो गया है।

1. "The greatest evil from which university education in India suffers is that teaching is subordinated to examination, and not examination to teaching." *Report of the Universities Commission.*
2. "If we are to suggest one single reform in university education, it should be that of examination." *Report of the University Education Commission*, p. 328.

कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के अध्यापक प्रशासन-कार्य में रुचि लेने के कारण शिक्षण-कार्य की अवहेलना करते हैं। उच्च शिक्षा-संस्थायें धनाभाव के कारण शिक्षण-सामग्री, छात्रावासों, व्यायामशालाओं आदि का प्रबन्ध नहीं कर पाती हैं। विश्वविद्यालयों में अनुसंधान-कार्य पर कम ध्यान दिया जाता है।

निष्कर्ष

उपरिकथित प्रायः सभी दोषों की ओर 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' का ध्यान आकर्षित हुआ है और उसने उनके निराकरण के लिये अपने प्रतिवेदन में अनेकों उपचारों का प्रस्ताव किया है, जिनमें से अधिकांश को सरकार द्वारा स्वीकार करके कार्यान्वित कर दिया गया है। हमें आशा है कि विश्वविद्यालय-शिक्षा अपने वर्तमान दोषों से मुक्त होकर भारत के नवयुवकों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने के साथ-साथ उनकी बौद्धिक एवं शारीरिक शक्तियों को भी विकसित करके, उन्हें देश के योग्य नागरिक बनायेगी।

विश्वविद्यालय शिक्षा की प्रमुख समस्यायें

स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में छात्रों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई है। १९५६ में इनकी संख्या ७,२०,००० थी, जबकि १९५१ में ४,२०,००० ही थी। आर्ट्स, वाणिज्य एवं विज्ञान में जो छात्र डिग्री प्राप्त कर रहे हैं, उनकी संख्या १९५१ से १९५६ तक की अवधि में ४१,००० से बढ़कर ५८,००० हो गई। इन आँकड़ों से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में कितनी शक्ति व्यर्थ जा रही है। विश्वविद्यालय एवं कॉलेज की शिक्षा के प्रकार को उन्नत करने एवं अपव्यय को कम करने के लिये 'विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग' कुछ उपाय कर रहा है। माध्यमिक कक्षाओं में विविधतायुक्त शिक्षा के प्रवर्त्तन से कदाचित् कॉलेजों में छात्रों की भीड़ कुछ कम हो जाय। यह भी प्रश्न उपस्थित हुआ है कि सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती की दृष्टि से किसी सीमा तक डिग्री पर निर्भर किया जाय या बिल्कुल ही न किया जाय। इस पर केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त की गई एक समिति विचार कर रही है। विश्वविद्यालयों के अन्तर्मुक्त कॉलेज जिनमें से अनेकों में मानदण्ड असन्तोषजनक हैं, एक और महत्त्वपूर्ण समस्या उपस्थित करते हैं और केन्द्रीय सरकार इस पर भी विचार कर रही है। यह बात निर्विवाद है कि माध्यमिक कक्षाओं एवं विश्वविद्यालयों के स्तर पर और सार्वजनिक सेवाओं की भर्ती की शर्तों एवं विधियों में उपयुक्त परिवर्तन से विश्वविद्यालय की शिक्षा को बृहत्तर उद्देश्य, अर्थ एवं दिशा प्राप्त होगी और इस प्रकार राष्ट्रीय विकास में अधिक सहायता मिल सकेगी।

सारांश

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत में १८ विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। इस समय देश में ३७ विश्वविद्यालय हैं। विश्वविद्यालय ३ प्रकार के हैं—सम्बन्धक, शिक्षण तथा सम्बन्धक और सावास तथा शिक्षण।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग—इसकी स्थापना १९५३ में की गई, और १९५६ में संसद के एक अधिनियम द्वारा इसे स्वतन्त्र संस्था स्वीकार कर लिया गया। इस आयोग को विश्वविद्यालय-शिक्षा सम्बन्धी अधिकांश मामलों की देख-रेख का भार सौंपा गया है। आयोग को विभिन्न विश्वविद्यालयों को अनुदान देने तथा उनकी विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने का भी अधिकार प्राप्त है। आयोग में अध्यक्ष के अतिरिक्त ९ सदस्य होते हैं :—३ विश्वविद्यालयों के उपकुलपति, ४ प्रसिद्ध भारतीय शिक्षा-विशेषज्ञ और २ केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि।

सामान्य शिक्षा—विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिये सामान्य शिक्षा की योजना तैयार की गई है। प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि से सम्बन्धित मूल विषयों के अध्ययन की सामान्य शिक्षा सभी स्नातक-पूर्व गैर-व्यावसायिक संकायों के लिये अनिवार्य होगी।

त्रि-वर्षीय डिग्री पाठ्य-क्रम—१८ विश्वविद्यालयों में इस योजना को क्रियान्वित किया जा रहा है। बम्बई विश्वविद्यालय ने इसे स्वीकार नहीं किया है और गोरखपुर विश्वविद्यालय इस पर विचार कर रहा है। शेष विश्वविद्यालयों ने इसे क्रियान्वित करना स्वीकार कर लिया है।

विश्वविद्यालय शिक्षा के दोष—(१) विश्वविद्यालय-शिक्षा में अपव्यय; (२) दोषपूर्ण पाठ्य-क्रम; (३) शिक्षा में विशिष्टीकरण, (४) छात्रों के पथ-प्रदर्शन की व्यवस्था न होना; (५) शिक्षा का निम्न स्तर; (६) शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी होना; और (७) दोष पूर्ण परीक्षा-प्रणाली।

समस्यायें—(१) छात्रों की संख्या में असाधारण वृद्धि; (२) उनकी शक्ति का बेकार जाना; (३) सार्वजनिक सेवाओं के लिये डिग्री पर निर्भर होना और अनेकों कॉलेजों में शिक्षा का निम्न स्तर।

TEST QUESTIONS

1. What are the present developments in University Education in India? Write a critical essay giving your views on the reorganization of University Education.
2. Summarise briefly the defects of the University Education.
3. Write notes on:-(a) University Grants Commission, (b) Scheme of General Education, and (c) Three-Year degree Course.

अध्याय २३

विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग[1] (१९४८-४९)

(राधाकृष्णन कमीशन)[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त विश्वविद्यालयों और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में दिन प्रति दिन वृद्धि हुई। परन्तु विश्वविद्यालयों में जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जा रही थी, उससे जन साधारण में अत्यधिक असन्तोष था। विश्वविद्यालय-शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य छात्रों को किसी परीक्षा के लिये तैयार करना था। स्वतन्त्र भारत की नवीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों में इस प्रकार की शिक्षा देश के नवयुवकों के लिये सर्वथा अनुपयुक्त समझी गई और देश तथा वातावरण की आवश्यकताओं के अनुसार उसके नवनिर्माण की माँग की गई। अतः 'अन्तर्विश्वविद्यालय शिक्षा परिषद्[3]' और 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने सरकार से एक अखिल-भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग नियुक्त करने की सिफ़ारिश की, जो देश की नई माँगों के अनुकूल विश्वविद्यालय-शिक्षा के पुनर्गठन के लिये सुझाव दे।

1. University Education Commission.
2. Radhakrishnan Commission.
3. Inter-University Board of Education.

आयोग की नियुक्ति

उपर्युक्त सिफ़ारिश को स्वीकार करके भारत-सरकार ने ४ नवम्बर, १९४८ को 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की। इसमें १० सदस्य थे, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित थे :—

१. डा० एस० राधाकृष्णन (S. Radhakrishnan) आयोग के अध्यक्ष।
२. डा० सर जेम्स एफ० डफ (James F. Duff), उपकुलपति, डरहम विश्वविद्यालय।
३. डा० ज़ाकिर हुसेन, जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली।
४. डा० लक्ष्मणस्वामी मुदालियर, मद्रास विश्वविद्यालय।
५. श्री एन० के० सिद्धान्त, आयोग के सेक्रेटरी।

अध्यक्ष के नाम पर इस आयोग को 'राधाकृष्णन शिक्षा-आयोग' भी कहा जाता है।

आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य

आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य "भारतीय-विश्वविद्यालय-शिक्षा पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना और उन सुधारों तथा विस्तारों के विषय में सुझाव देना था, जो देश की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं के उपयुक्त होने के लिये वांछनीय हो सकें।"[1]

आयोग ने विश्वविद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित एक प्रश्नावली तैयार करके शिक्षा-विशेषज्ञों के पास भेजी। लगभग ६०० व्यक्तियों ने इस प्रश्नावली के उत्तर दिये। आयोग के सदस्य भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में गये। वहाँ उन्होंने शिक्षाधिकारियों, छात्रों की संस्थाओं के प्रतिनिधियों एवं अन्य शिक्षा-विदों से भेंट की और विश्वविद्यालय-शिक्षा के सभी अवयवों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की। तदुपरान्त आयोग ने अथक परिश्रम से अपनी रिपोर्ट तैयार की और २५ अगस्त, १९४९ को उसे सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया। यह रिपोर्ट १८ अध्यायों और ७४७ पृष्ठों में है।

आयोग के विचार एवं सुझाव

आयोग ने विश्वविद्यालय-शिक्षा के सभी पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त

1. "...to report on Indian University Education and suggest improvements and extensions that may be desirable to suit present and future requirements of the country." *Report of the University Education Commission*, p. 1.

किये हैं और उनमें सुधार करने के लिये सुझाव भी दिये। हम उनमें से महत्व-पूर्ण विषयों के सम्बन्ध में दिये गये सुझावों का संक्षिप्त विवरण नीचे दे रहे हैं :—

१. विश्वविद्यालय-शिक्षा के उद्देश्य[1]

भारतीय संविधान में न्याय, स्वतन्त्रता, समता तथा बन्धुता की प्राप्ति द्वारा लोकतन्त्रात्मक गणराज्य स्थापित करने का संकल्प किया गया है। इन्हीं आदर्शों को ध्यान में रखकर आयोग ने विश्वविद्यालय शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य बताये—

१. स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में महान परिवर्तन हो चुका है। अतः हमारे विश्व-विद्यालयों के कर्त्तव्यों तथा दायित्वों में वृद्धि हो गई है। अब उन्हें ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना है, जो राजनीतिक, प्रशासकीय तथा व्याव-सायिक क्षेत्रों में नेतृत्व ग्रहण कर सकें।

२. विश्वविद्यालय समाज-सुधार में महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं। अतः उनका उद्देश्य ऐसे नेताओं को जन्म देना होना चाहिये जो दूरदर्शी, बुद्धिमान तथा साहसी (Intellectual adventurer) हों।

३. विश्वविद्यालयों को ऐसे विवेकी व्यक्तियों को जन्म देना चाहिये, जो प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिये शिक्षा का प्रसार कर सकें, ज्ञान की निरंतर खोज कर सकें, मानव-जीवन का अर्थ तथा सार जान सकें, रोजगारों की व्यवस्था कर सकें और देश तथा समाज के विभिन्न भौतिक अभावों की पूर्ति के लिये साधनों को जुटा सकें।

४. शिक्षा का उद्देश्य जीवन और ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में समन्वय स्थापित करना है। अतः यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों में जो विषय पढ़ाये जायँ, वे पाठ्य-क्रम के अभिन्न अंग हों, जिससे कि छात्रों के मस्तिष्क में विभिन्न तत्वों का संकलन न हो, अपितु सम्पूर्ण तत्वों का एक ही साँचे में समावेश हो जाय।

५. छात्रों का आध्यात्मिक विकास करना विश्वविद्यालयों का एक प्रमुख कर्त्तव्य है।

६. विश्वविद्यालय देश की सभ्यता तथा संस्कृति के पोषक हैं। यदि हम सभ्य कहलाना चाहते हैं तो हमें दुखी-दरिद्रों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिये, स्त्रियों का सम्मान करना चाहिये, शान्ति एवं स्वाधीनता से

---

1. Aims of University Education.

प्रेम करना चाहिये, और अत्याचार तथा अन्याय से घृणा करनी चाहिये। विश्वविद्यालय की शिक्षा का उद्देश्य नवयुवकों में इन तत्वों का संचार करना होना चाहिये।

७. शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के जन्मजात गुणों को खोज निकालना और प्रशिक्षण द्वारा उन गुणों को विकसित करना है। विश्वविद्यालय अपने छात्रों के प्रति इन दोनों कर्त्तव्यों का पालन करें।

८. स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में निवास करता है। अतः विश्वविद्यालयों में छात्रों के न केवल मानसिक विकास, अपितु शारीरिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान दिया जाय। शारीरिक शिक्षा विद्यार्थियों में अनुशासन, साहस, नेतृत्व तथा सामूहिक भावना का विकास करेगी।

९. साहित्य मानवीय भावनाओं को स्पंदित तथा परिवर्द्धित करता है। अतः विश्वविद्यालयों को भाषा एवं मातृभाषा के साहित्य को सामान्य-शिक्षा में सर्व प्रथम स्थान देना चाहिये। साथ ही विश्वविद्यालयों में दार्शनिक अध्ययनों पर बल दिया जाना चाहिये, क्योंकि उनका जीवन के आचरणों तथा उद्देश्यों से घनिष्ट सम्बन्ध है।

१०. "हम न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुता की प्राप्ति द्वारा प्रजातंत्र की खोज में रत हैं।"[1] अतः यह आवश्यक है कि हमारे विश्वविद्यालय इन आदर्शों के प्रतीक तथा संरक्षक हों।

२. अध्यापक-वर्ग[2]

अध्यापकों की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालते हुए आयोग ने लिखा—

१. अध्यापकों को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं है। यही कारण है कि शिक्षण का स्तर गिरता चला जा रहा है। इसके लिये अध्यापक उतने उत्तरदायी नहीं हैं, जितने कि विश्वविद्यालय और सरकार। अध्यापकों को अन्वेषण तथा पुस्तकालयों की सुविधा नहीं प्राप्त है। यदि विश्वविद्यालय और सरकार आवश्यक साधनों को जुटा दें, तो अध्यापक अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता हो सकता है।

२. हमारे विश्वविद्यालयों में लोकतंत्रात्मक नियंत्रण तथा निर्वाचनों की पद्धति है। अतः अध्यापकों में विश्वविद्यालय के प्रशासनात्मक कार्यों में अधिक रुचि हो गई है और वे अपने अध्यापन कार्य की उपेक्षा करने लगे हैं।

1. "We are engaged in a quest for democracy through the realisation of justice, liberty, equality and fraternity." *Report of the University Education Commission*, p. 36.
2. Teaching staff.

३. अध्यापकों का वेतन न्यून है, उनकी सेवा की शर्तें आकर्षक नहीं हैं, और उन्हें अपना कार्य करने की प्रेरणा नहीं प्राप्त होती है।

उपरिलिखित त्रुटियों को दूर करने के लिये आयोग ने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये, यथा:—

१. अध्यापकों को प्राविडेन्ट-फंड की अधिक उत्तम सुविधा दी जाय। इसके लिये अध्यापक और विश्वविद्यालय दोनों आठ-आठ प्रतिशत दें।

२. विश्वविद्यालयों के समीप ही अध्यापकों के निवास की व्यवस्था की जाय।

३. अध्यापक अपने पद पर ६० वर्ष की आयु तक रहें और यदि उनका स्वास्थ्य अच्छा है, तो वे ६४ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकते हैं।

४. अध्यापकों के अध्ययन के लिये एक बार में १ वर्ष का अवकाश और अपने सम्पूर्ण सेवा-काल में ३ वर्ष का अवकाश मिलना चाहिये।

५. अध्यापकों को एक सप्ताह में अधिक से अधिक १८ घंटे (Periods) का अध्यापन कार्य दिया जाय।

६. अध्यापकों को ४ वर्गों में विभक्त किया जाय:—(क) प्रोफेसर, (ख) रीडर, (ग) लेक्चरर और (घ) इंसट्रक्टर। इनके अतिरिक्त अनुसंधान अभिसदस्य (Research fellows) भी हों। इनका वेतन-क्रम निम्न-लिखित होना चाहिये:—

विश्वविद्यालयों में

(क) प्रोफेसर	९००–५०–१,३५० रु०
(ख) रीडर	६००–३०–९०० रु०
(ग) लेक्चरर	३००–२५–६०० रु०
(घ) इंस्ट्रक्टर	२५०–२५–५०० रु०
(ड) अनुसंधान अभिसदस्य	२५०–२५–५०० रु०

सम्बद्ध स्नातक-कक्षा कॉलेज	स्नातकोत्तर-कक्षा कॉलेज
लेक्चरर २००-१५-३२०-२०-४००	२००-१५-३२०-२० ४००-२५-५००
सीनियर पोस्ट ४००-२५-६०० (प्रत्येक कालेज में दो)	५००-२५-८००
प्रिंसिपल ६००-४०-८००	८००-५०–१,०००

७. अध्यापकों को निम्न पद से उच्च पद पर उन्नति केवल योग्यता के आधार पर दी जाय।

८. जूनियर (लेक्चरर आदि) और सीनियर (रीडर व प्रोफेसर) पदों का अनुपात २:१ होना चाहिये ।

३. अध्यापन के स्तर[1]

हमारे विश्वविद्यालयों का अध्यापन-स्तर निम्न है । अतः इस बात की आवश्यकता है कि विश्वविद्यालय अपने शिक्षण-स्तर को उच्चतम बनावें । जब तक हमारे विश्वविद्यालय ऐसा नहीं करेंगे, तब तक हमारी उपाधियों को अपने देश और विदेशों में आदर नहीं प्राप्त होगा और छात्रों को एक बहुत बड़ी संख्या में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये दूसरे देशों को जाना पड़ेगा । विश्वविद्यालयों में शिक्षण-स्तर की अभिवृद्धि करने के लिये आयोग ने अधोलिखित सुझाव दिये:—

१. विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिये विद्यार्थी वर्तमान इंटरमीडिएट परीक्षा या उसके समकक्ष परीक्षा में उत्तीर्ण हों ।

२. प्रत्येक प्रान्त में अधिक संख्या में इंटरमीडिएट कालेज खोले जायँ, जिनमें योग्य शिक्षक और समुचित शिक्षण-सामग्री हो ।

३. हाई स्कूल एवं इंटर के उपरान्त छात्रों को व्यावसायिक एवं टेकनिकल स्कूलों में जाने के लिये प्रोत्साहित किया जाय, और इस प्रकार के स्कूल पर्याप्त संख्या में स्थापित किये जायँ ।

४. शिक्षण विश्वविद्यालयों की कला एवं विज्ञान कक्षाओं में ३,००० और सम्बद्ध कालेजों में १४०० से अधिक छात्र न रखे जायँ ।

५. परीक्षा-दिवसों को छोड़कर कार्य करने के दिन एक वर्ष में कम से कम १८० हों ।

६. शिक्षकों के व्याख्यान परिश्रम से तैयार किये जायँ, ट्यूटोरियल कक्षाओं की व्यवस्था की जाय और पुस्तकालय में अध्ययन तथा लिखित-कार्य पर बल दिया जाय ।

७. किसी भी कक्षा के लिये पाठ्य-क्रम निश्चित न किया जाय ।

८. व्यक्तिगत परीक्षार्थियों के ऊपर अधिक नियंत्रण रखा जाय ।

९. विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए व्यक्तियों के लिये सायंकाल के समय कक्षाओं का प्रबन्ध किया जाय ।

१०. पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं को पूर्ण रूप से सुसंगठित तथा आधुनिक ढंग से सुसज्जित किया जाय ।

११. विश्वविद्यालयों में हाईस्कूल तथा इन्टर कालेजों के अध्यापकों के

---

1. Standards of Teaching.

लिये अभिनवन पाठ्य-क्रम (Refresher course) की व्यवस्था की जाय।

१२. स्नातकोत्तर स्तर पर विमर्शगोष्ठियों (Seminars) को प्रोत्साहित किया जाय।

४. पाठ्य-क्रम[1]

पाठ्य-क्रम औपचारिक (Formal) शिक्षा के लिये अति आवश्यक है, क्योंकि पाठ्य-क्रम के द्वारा ही छात्रों को विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त कराया जा सकता है। परन्तु यह आवश्यक है कि ज्ञान की विभिन्न शाखाओं एवं अनुभवों में अन्तर्सम्बन्ध एवं सामंजस्य हो। जब तक छात्र ज्ञान तथा अनुभव की एकता का अनुभव नहीं करेंगे, तब तक उनके मस्तिष्क का संतुलित विकास सम्भव नहीं होगा। विश्वविद्यालयों, कॉलेजों और माध्यमिक स्कूलों में कला एवं विज्ञान की शिक्षा के साथ-साथ सामान्य-शिक्षा (General Education) की भी व्यवस्था की जाय, जिससे कला एवं साहित्य के छात्र विज्ञान के विषयों का और विज्ञान के छात्र कला एवं साहित्य के विषयों का ज्ञान अर्जित कर सकें। इस प्रकार सामान्य शिक्षा तथा विशेषीकृत शिक्षा (Specialization) में सामंजस्य स्थापित करके, सकुचित विशेषता को दूर किया जा सकेगा। साथ ही छात्रों के व्यक्तित्व का उपयुक्त विकास हो सकेगा और वे सुयोग्य नागरिक बन सकेंगे। सामान्य शिक्षा का पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-वस्तु विशिष्ट क्षेत्रों के अनुरूप होने चाहिये।

पाठ्य-क्रम के विषय में आयोग के कुछ प्रमुख सुझाव निम्नलिखित थे :—

१. स्नातक की उपाधि प्राप्त करने की अवधि ३ वर्ष हो। स्नातकोत्तर उपाधि 'आनर्स कोर्स' के १ वर्ष पश्चात् और स्नातक बनने के २ वर्ष उपरान्त प्रदान की जाय।

२. विश्वविद्यालयों तथा माध्यमिक स्कूलों में सामान्य शिक्षा के सिद्धान्तों तथा प्रयोगों का शिक्षण अविलम्ब प्रारम्भ कर दिया जाय।

३. छात्रों के वैयक्तिक तथा सामूहिक हितों को ध्यान में रख कर विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन किया जाय और सामान्य शिक्षा तथा विशेषीकृत शिक्षा में समन्वय स्थापित किया जाय।

५. स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं अनुसंधान[2]

मानव-सभ्यता ने उन विशेषज्ञों के कार्यों से अत्यधिक लाभ उठाया है,

1. Courses of Study
2. Post-Graduate Training and Research.

जिन्होंने प्रकृति के रहस्यों तथा मानव के व्यवहारों में गहराई तक प्रवेश किया है। आधुनिक जीवन अन्वेषण तथा अनुसंधान का ही परिणाम है। एक प्रगतिशील समाज अपने तीन समूहों के समावेश पर निर्भर करता है—विद्वान्, अन्वेषक (Discoverer) एवं आविष्कारक (Inventor)। विद्वान् अतीत की खोज करते हैं और बुद्धि, सौन्दर्य तथा श्रेष्ठता के आदर्शों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। अन्वेषक नवीन मतों की खोज करते हैं और आविष्कारक उन्हें हमारी वर्तमान आवश्यकताओं के लिये प्रयुक्त करते हैं। "विश्वविद्यालय इस प्रकार के मनुष्यों को जन्म देने के लिये मुख्य अभिकरण होते हैं, जो प्रगतिशील क्रियाओं का एक प्रभावपूर्ण साधन में एकीकरण करते हैं।"[1] विश्वविद्यालय ज्ञान का प्रसार करने के लिये उतने ही उत्तरदायी हैं, जितने कि नागरिकों को प्रशिक्षित करने के लिये। अनुसंधान विश्वविद्यालयों का प्रमुख कर्त्तव्य है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि हमारे विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक अन्वेषण को प्राथमिकता दी जाय। केवल तभी हमारे देश में ऐसे प्रशिक्षित अन्वेषण कर्त्ता उत्पन्न होंगे, जो बौद्धिक जीवन के आदर्श प्रभाव स्थापित करेंगे और देश की भौतिक प्रगति में सक्रिय योग देंगे। विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं अनुसंधान-कार्य को सफल बनाने के लिये आयोग ने अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. स्नातकोत्तर कक्षाओं के नियमों में साम्य होना चाहिये और उनके शिक्षण का संगठन भाषण, गोष्ठी (Seminar) एवं प्रयोगशाला कार्य पर आधारित होना चाहिये। उनके पाठ्य-क्रम में एक विशिष्ट विषय का उच्च अध्ययन एवं अनुसंधान की विधियों का प्रशिक्षण सम्मिलित किया जाना चाहिये।

२. पी० एचडी० के छात्रों को अखिल-भारतीय स्तर पर निर्वाचित किया जाय। उनके अनुसंधान-कार्य की अवधि कम से कम दो वर्ष होनी चाहिये।

३. पी० एचडी० एवं अन्य अनुसंधान कार्य करने वाले विद्यार्थियों के लिये छात्रवृत्तियों तथा अभिवृत्तियों (Research Fellowships) की व्यवस्था की जानी चाहिये।

४. डी० लिट्० एवं डी० एससी० की उपाधियाँ केवल उच्चकोटि की लौकिक कृतियों पर प्रदान की जायें।

1. "The Universities are the chief agencies for producing these types of men who will fuse progressive activities into an effective instrument." *Report of the University Education Commission*, p. 140.

५. शिक्षा-मंत्रालय विज्ञान में अनुसंधान-कार्य को प्रोत्साहित करने के लिये पर्याप्त संख्या में छात्रवृत्तियाँ दे।

६. विश्वविद्यालयों के विज्ञान-विभाग को अनुसंधान-कार्य के लिये सरकार द्वारा उदार सहायता अनुदान दिया जाय।

६. व्यावसायिक शिक्षा[1]

आयोग ने व्यावसायिक शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा : "व्यावसायिक शिक्षा वह प्रक्रिया है, जो पुरुषों और स्त्रियों को व्यावसायिक भावना के साथ परिश्रमपूर्ण एवं उत्तरदायी सेवा के लिये तैयार करती है।[2]" आयोग के मतानुसार व्यावसायिक शिक्षा पर महान् उत्तरदायित्व है। हमारी संकटपूर्ण सभ्यता उसी दशा में जीवित रह सकती है, जब हमारे व्यावसायिक मनुष्य अपनी नैतिक शक्तियों और मानसिक योग्यताओं का आधुनिक गहन समस्याओं का समाधान करने में प्रयोग करें। व्यावसायिक शिक्षा का आधार केवल व्यावसायिक कार्यपटुता ही नहीं होनी चाहिये, अपितु सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना, सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों तथा सम्बन्धों को समझने की क्षमता और बिना पूर्व द्वेष के यथार्थता को देखने की अनुशासित शक्ति भी होनी चाहिये। अतः यह आवश्यक है कि व्यावसायिक शिक्षा मनुष्य को ऐसा ज्ञान प्रदान करे, जिससे वह सम्पूर्ण मानवीय तथा सामाजिक रंगभूमि में अपने व्यवसाय को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने की योग्यता प्राप्त करे। यदि व्यावसायिक शिक्षा इस कार्य में असफल होती है, तो आधुनिक सभ्यता, शान्ति और व्यवस्था प्रदान करने में असफल रहेगी।[3]

इस प्रकार व्यावसायिक शिक्षा के महत्व तथा दायित्व पर प्रकाश डाल कर, आयोग ने भारत के विभिन्न व्यवसायों के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये उनकी ओर हम नीचे संकेत कर रहे हैं।

(क) कृषि—कृषि-शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग ने निम्नांकित सिफ़ारिशें कीं :—

१. भारत एक कृषि-प्रधान देश है। अतः कृषि-शिक्षा को एक प्रमुख राष्ट्रीय समस्या मान लेना चाहिये।

---

1. Professional Education.
2. "Professional education is the process by which men and women prepare for exacting, responsible service in the professional spirit." *Report of the University Education Commission*, p. 174.
3. *Ibid* pp. 174-175.

२. प्रजातन्त्रात्मक देश में कृषि की ठोस नीति का निर्माण उन्हीं व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है, जो कृषि का ज्ञान रखते हैं एवं कृषि कार्य में संलग्न हैं। अतः राष्ट्रीय आर्थिक योजना में प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में कृषि-शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

३. कृषि-शिक्षा, कृषि-अनुसंधान तथा कृषि-नीति का निर्माण यथासम्भव उन्हीं व्यक्तियों या संस्थाओं के हाथ में होना चाहिये, जिन्हें कृषि-जीवन का विशेष ज्ञान हो।

४. कृषि-शिक्षा की संस्थायें यथासम्भव ग्रामीण क्षेत्रों में होनी चाहिये, जिससे छात्रों को कृषि-जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हो सके।

५. वर्तमान कृषि-कॉलेजों को पर्याप्त आर्थिक सहायता देकर अधिक साधन-सम्पन्न बनाया जाय और उनमें योग्य शिक्षकों की नियुक्ति की जाय।

६. नवीन कृषि-कॉलेजों को यथासम्भव नवीन ग्रामीण विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध रखा जाय, जिससे कृषि-शिक्षा को अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित रख कर अधिक सम्पन्न बनाया जा सके।

७. केन्द्रीय और राज्य-सरकारों द्वारा प्रयोगात्मक कार्य खोले जायँ। कृषि-अनुसंधान-कार्य उन्हीं फ़ार्मों में किया जाय।

८. वर्तमान कृषि-अनुसंधानशालाओं को आर्थिक सहायता देकर विस्तृत किया जाय।

९. 'इण्डियन काउन्सिल ऑफ़ एग्रीकल्चरल रिसर्च' के साधनों में वृद्धि की जाय और वह विभिन्न कृषि-अनुसंधान-केन्द्रों के लिये संयोजक का कार्य करे।

१०. विश्वविद्यालयों में अनुसंधान-केन्द्रों की स्थापना की जाय।

(ख) वाणिज्य (Commerce)—आयोग ने विभिन्न स्तरों पर वाणिज्य की शिक्षा का वर्णन करने के उपरान्त उसके विषय में निम्नलिखित सुझाव दिये :—

१. विश्वविद्यालय में वाणिज्य की शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को ३ या ४ विभिन्न प्रकार की फ़र्मों में व्यावहारिक (Practical) कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाय।

२. स्नातक-परीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् छात्रों को किसी विशेष शाखा में विशेषज्ञ बनने का परामर्श दिया जाय और उन्हें व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जाय।

३. एम० कॉम० में पुस्तकीय ज्ञान कम रखा जाय और केवल कुछ ही छात्रों को यह कोर्स लेने की आज्ञा दी जाय।

(ग) शिक्षा-व्यवसाय (Teaching Profession) शिक्षा-व्यवसाय में सुधार करने के उद्देश्य से आयोग ने अधोलिखित सिफ़ारिशें कीं :—

१. प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्य-क्रम में सुधार किया जाय। पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा विद्यालयों में अध्यापन के अभ्यास को अधिक महत्व दिया जाय।

२. छात्रों के कार्य का मूल्यांकन करने में उनके अध्यापन की सफलता पर विशेष ध्यान रखा जाय।

३. अध्यापन के अभ्यास के लिये केवल उपयुक्त विद्यालयों को ही चुना जाय।

४. प्रशिक्षण-विद्यालयों में अधिकांश अध्यापक वे हों, जो स्कूलों में पढ़ाने का पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुके हों।

५. शिक्षा-सिद्धान्त (Theory of Education) के पाठ्यक्रम लचीले और स्थानीय वातावरण के अनुकूल हों।

६. एम० एड० डिग्री के लिये उन्हीं व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया जाय, जिन्हें कुछ वर्ष के शिक्षण का अनुभव हो।

७. प्रोफ़ेसरों तथा लेक्चररों द्वारा मौलिक कार्य अखिल भारतीय स्तर पर किया जाय।

(घ) इंजीनियरिंग एवं टेकनॉलॉजी—इंजीनियरिंग एवं टेकनॉलॉजी (Technology) की शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग की मुख्य सिफारिशें निम्नांकित थीं :—

१. वर्तमान इंजीनियरिंग तथा टेकनॉलॉजी की संस्थाओं को देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति माना जाय और उनकी उपयोगिता में वृद्धि करने के प्रयास किये जायँ।

२. फ़ोरमेन, ड्राफ़्टसमेन और ओवरसियरों को शिक्षा देने वाले इंजीनियरिंग स्कूलों की संख्या में वृद्धि की जाय।

३. इंजीनियरिंग स्कूलों और कॉलेजों में अध्ययन करने वाले छात्रों को कारखानों में कार्य करके व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर दिया जाय।

४. देश के विभिन्न उद्योगों की माँग को ध्यान में रखते हुए इंजीनियरिंग और टेकनॉलॉजी की संस्थाओं के पाठ्य-क्रम को विस्तृत किया जाय।

५. इंजीनियरिंग के प्रचलित पाठ्यक्रम में सुधार किया जाय। प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में छात्रों को इंजीनियरिंग की समस्त शाखाओं की शिक्षा दी जाय और तदुपरान्त विशिष्ट शाखा की।

६. वर्तमान इंजीनियरिंग और टेकनॉलॉजिकल कॉलेजों में स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान की यथासम्भव व्यवस्था की जाय।

७. उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिये टेकनॉलॉजिकल संस्थाओं का शीघ्रातिशीघ्र निर्माण किया जाय।

८. इंजीनियरिंग कॉलेजों को राजकीय विभागों तथा मन्त्रालयों के नियंत्रण में न रखकर विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध कर दिया जाय।

(ङ) **कानून**—कानून की शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग के सुझाव निम्नलिखित थे :—

१. देश के सभी कानून-कॉलेजों का पूर्णरूप से पुनर्गठन किया जाय।

२. क़ानून-विभाग के अध्यापकों की नियुक्ति विश्वविद्यालयों द्वारा उसी प्रकार की जाय, जिस प्रकार अन्य विभागों के अध्यापकों की की जाती है।

३. छात्रों को क़ानून की शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति तभी दी जाय जब वे तीन वर्ष का सामान्य डिग्री कोर्स पास कर लें।

४. कानून के विशेष विषयों का पाठ्य-क्रम ३ वर्ष का हो।

५. क़ानून के अध्यापक पूर्णकालीन और अंशकालीन दोनों प्रकार के होने चाहिये। पूर्णकालीन अध्यापक क़ानून के आधारभूत विषयों और अंशकालीन व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा दें।

६. क़ानून के छात्रों को अपने अध्ययन-काल में अन्य डिग्री कोर्स लेने की अनुमति केवल विशेष परिस्थितियों में दी जाय।

(च) **चिकित्सा**—चिकित्सा-शिक्षा के विषय में आयोग ने जो विचार प्रकट किये, उनमें से मुख्य इस प्रकार हैं :—

१. किसी भी मेडिकल कॉलेज में १०० से अधिक छात्रों को प्रवेश न दिया जाय।

२. कॉलेज के जिन विभागों का सम्बन्ध अस्पताल से हो, वे सब एक ही स्थान पर हों।

३. कॉलेज में प्रवेश लेने वाले प्रत्येक छात्र के लिये १० रोगी हों।

४. स्नातक-पूर्व एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के छात्रों को ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जाय।

५. स्नातकोत्तर शिक्षा केवल उन्हीं कॉलेजों में दी जाय, जिनमें सुयोग्य शिक्षक एवं उपयुक्त साधन हों।

६. सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सुश्रूषा (Nursing) को अधिक महत्व प्रदान किया जाय।

७. देशी चिकित्सा-प्रणालियों में अनुसंधान-कार्य के लिये विशेष सुविधायें प्रदान की जायँ।

८. मेडिकल कॉलेजों के प्रथम वर्ष में चिकित्सा-शास्त्र का इतिहास, भारतीय चिकित्सा-प्रणाली को विशेष रूप से ध्यान में रख कर पढ़ाया जाय।

७. धार्मिक शिक्षा

हिन्दू और मुस्लिम युगों में धार्मिक शिक्षा भारतीय शिक्षा-पद्धति का विशेष अंग थी। धार्मिक शिक्षा को छात्र के वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को नियंत्रित करने के लिये आवश्यक समझा जाता था। अंग्रेज़ शासकों ने धार्मिक तटस्थता की नीति का अनुसरण किया और धार्मिक शिक्षा को भारतीय शिक्षा-पद्धति में कोई स्थान नहीं दिया। परन्तु आधुनिक युग में भौतिकवाद से पीड़ित व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के लिये धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा है। स्वतन्त्र भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह धर्म की अवहेलना करता है। वह धार्मिक संकीर्णता का विरोधी है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म के अनुसरण की अनुमति देता है। यदि हमारे धर्म-निरपेक्ष राज्य का यह आधार है, तो धर्म-निरपेक्षता का अर्थ धर्म का निषेध नहीं है। इसका अर्थ है गहन आध्यात्मिकता न कि संकीर्ण धार्मिकता। अतः हमारे संविधान के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार आध्यात्मिक शिक्षा आवश्यक हो जाती है। इसी दृष्टिकोण को अपने समक्ष रख कर आयोग ने धार्मिक शिक्षा के विषय में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये :—

१. सभी शिक्षा-संस्थायें कुछ मिनट के मौन-चिन्तन के पश्चात् अपना दैनिक कार्य प्रारम्भ करें।

२. डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष में विश्व के महान् धार्मिक नेताओं-बुद्ध, कनफ्यूसियस, सुकरात, ईसा, शंकर, रामानुज, माधव, मुहम्मद, कबीर, नानक, गांधी—की जीवनियाँ पढ़ाई जायँ।

३. द्वितीय वर्ष में विश्व के धार्मिक ग्रन्थों में से सार्वभौमिक महत्व के चुने हुए भाग पढ़ाये जायँ।

४. तृतीय वर्ष में धर्म-दर्शन की प्रमुख समस्याओं का अध्ययन किया जाय।

८. शिक्षा का माध्यम

आयोग को विश्वविद्यालयों तथा अन्य उच्च शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षा के माध्यम की समस्या पर अति गम्भीर विचार करना पड़ा। कारण यह था कि

अन्य किसी समस्या पर शिक्षा-विशेषज्ञों का इतना मतभेद नहीं था, जितना कि शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर। इसके अतिरिक्त माध्यम की समस्या पर विचार करते समय आयोग को विभिन्न राज्यों और जातियों की भाषाओं का शिक्षा के माध्यम के रूप में निष्पक्ष होकर विचार करना पड़ा। अन्ततोगत्वा आयोग माध्यम के विषय में नीचे दिये हुए निष्कर्ष पर पहुँचा :—

१. संघीय भाषा में अन्य स्रोतों से आये हुए शब्दों का समन्वय किया जाय और इस प्रकार उसे समृद्ध बनाया जाय।

२. अन्तर्राष्ट्रीय प्राविधिक एवं वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों (International Technical and Scientific terminology) को अपनाया जाय और भारतीय भाषाओं की ध्वनि, प्रकृति एवं उच्चारण के अनुसार उनका भारतीयकरण किया जाय।

३. उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में यथाशीघ्र अंग्रेज़ी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा का प्रयोग प्रारम्भ किया जाय।

४. विभिन्न कठिनाइयों के फलस्वरूप संस्कृत को शिक्षा के माध्यम के स्थान पर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता है।

५. उच्चतर माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रों को तीन भाषाओं का ज्ञान कराया जाय :—प्रादेशिक भाषा (मातृभाषा), संघीय भाषा (राष्ट्रभाषा) और अंग्रेज़ी।

६. उच्च शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा (Regional Language) हो, परन्तु राष्ट्रभाषा को एक या अधिक विषयों की शिक्षा का माध्यम बनाया जा सकता है।

७. संघीय भाषा के लिये केवल देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाय और इस लिपि के वर्तमान दोषों को दूर किया जाय।

८. संघीय एवं प्रादेशिक भाषाओं को विकसित करने के लिये यथाशीघ्र क्रियात्मक पग उठाया जाय।

९. वैज्ञानिकों एवं भाषा-विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की जाय, जो सभी भारतीय भाषाओं में समान रूप से प्रयोग किये जाने के लिये एक वैज्ञानिक शब्द-कोष का निर्माण करे और जो सभी भारतीय भाषाओं में विभिन्न विज्ञानों की पुस्तकों का प्रकाशन करे।

१०. राज्य-सरकारें उच्चतर माध्यमिक स्कूलों, डिग्री कॉलेजों और विश्व-विद्यालयों की सभी कक्षाओं में संघीय भाषा की शिक्षा की व्यवस्था करें।

११ नवीन ज्ञान के सम्पर्क में रहने के लिये हाई स्कूलों और विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी का अध्ययन यथापूर्व रखा जाय।

६. परीक्षायें

भारतीय शिक्षा में परीक्षाओं की प्रधानता है। गत वर्षों में नियुक्त की गई समितियों और आयोगों ने प्रचलित परीक्षा-प्रणाली के दोषों की तीक्ष्ण आलोचना की है। इन दोषों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है और अभी तक उनके निराकरण का कोई प्रयास नहीं किया गया है। आयोग ने लिखा : "हमें विश्वास है कि यदि हम विश्वविद्यालय शिक्षा के केवल एक विषय में सुधार का सुझाव दें, तो वह परीक्षाओं के सम्बन्ध में होना चाहिये। यद्यपि परीक्षाओं के प्रति भारत तथा संसार में अत्यधिक असंतोष है और प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री एवं महत्वपूर्ण शिक्षा-संस्थायें उनके उन्मूलन के पक्ष में हैं, तथापि हम इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। यदि परीक्षाओं की उचित रूप से व्यवस्था की जाय, तो वे शिक्षा-प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकती हैं।"[1] इस विचार से प्रेरित होकर आयोग ने परीक्षाओं में सुधार करने के लिये अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. शिक्षा मंत्रालय और विश्वविद्यालयों में परीक्षा लेने की वैज्ञानिक पद्धतियों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय और इस अध्ययन के परिणामों को परीक्षा-पद्धति में क्रियान्वित करके, उसमें सुधार किया जाय।

२. प्रत्येक विश्वविद्यालय में तीन सदस्यों का एक पूर्णकालीन बोर्ड स्थापित किया जाय। इस बोर्ड के दो प्रमुख कार्य होंगे—

(क) विश्वविद्यालय अथवा कालेज के अध्यापकों को वस्तुगत परीक्षाओं (Objective Tests) की नवीन योजनायें बनाने में परामर्श देना और पाठ्य-क्रम में संशोधन के लिये सामग्री देना।

---

1. "We are convinced that if we are to suggest one single reform in university education it should be that of the examinations. We know that in India as elsewhere in the world, dissatisfaction with examinations has been so keen that eminent educations and important educational organisations have even advocated the abolition of examinations. We do not share that extreme view and feel that examinations rightly designed and intelligently used can be a useful factor in the educational process." *Report of the University Education Commission*. p. 328.

(ख) सम्बद्ध कालेजों के छात्रों का समय-समय पर प्रगति परीक्षाओं (Progressive Tests) द्वारा परीक्षण करना।

३. कक्षा में छात्रों की प्रगति का मूल्याङ्कन करने के लिये यथाशीघ्र वस्तुगत-प्रगति-परीक्षाओं (Objective Progressive Tests) का एक कुलक (Set) विकसित किया जाय।

४. राजकीय पदों के लिये विश्वविद्यालय की डिग्री को अनिवार्यता न दी जाय। सेवा-आयोग (Service Commissions) कुछ शुल्क लेकर परीक्षाओं की व्यवस्था करें और उनमें उत्तीर्ण होने वाले छात्रों में से चुनाव किया जाय।

५. कक्षा-कार्य को परीक्षाओं में कोई महत्व नहीं दिया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि परीक्षा के पूर्णाङ्कों का तृतीय भाग कक्षा-कार्य के लिये सुरक्षित कर दिया जाय।

६. तीन वर्ष के डिग्री पाठ्य-क्रम की परीक्षा तीन वर्ष उपरान्त न ली जाय, अपितु प्रत्येक वर्ष के अन्त में स्वतः पूर्ण इकाइयों (Self-contained Units) में परीक्षा ली जाय और विद्यार्थी को प्रत्येक विषय में पास होना आवश्यक हो।

७. परीक्षकों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया जाय। केवल वे ही व्यक्ति परीक्षक नियुक्त किये जायँ; जो अपने विषय को ५ वर्ष तक पढ़ा चुके हों।

८. परीक्षाओं के स्तर को ऊँचा करने के लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणियों के लिये न्यूनतम अङ्क क्रमशः ७०, ५५ और ४० प्रतिशत निर्धारित किये जायँ।

९. मौखिक परीक्षायें (Viva-Voce Tests) केवल स्नातकोत्तर एवं व्यावसायिक परीक्षाओं के लिये हों।

१०. छात्र, उनके कार्य तथा उनका कल्याण[1]

"नवयुवक की शिक्षा तथा नवीन सत्य की खोज विश्वविद्यालयों के प्रमुख कर्त्तव्य हैं। आज के बालक और बालिकायें कल के परिपक्व नागरिक हैं। छात्र का निर्माण विश्वविद्यालय के लिये नहीं होता है, अपितु विश्वविद्यालय छात्र का निर्माण करने के लिये होता है। अतः यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालय प्रत्येक सम्भव प्रयास और विधि से छात्रों की शारीरिक, मानसिक

1. Students, their activities and welfare.

और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण और अधिकतम विकास करें।"[1] अतः आयोग ने छात्रों के व्यक्तित्व के विकास और चरित्र-निर्माण के लिये निम्नांकित सुझाव दिये.—

१. विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में छात्रों को प्रवेश बिना किसी प्रकार का भेद-भाव किये केवल योग्यता के आधार पर दिया जाय।

२. प्रथम डिग्री कोर्स में विद्यार्थियों के लिये विभिन्न प्रकार के पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था की जाय।

३. विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर, व्यावसायिक एवं उच्च अनुसंधानकार्य पर अपना ध्यान केन्द्रित करें।

४. योग्य परन्तु निर्धन छात्रों को परीक्षाओं के आधार पर छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जायँ।

५. प्रवेश के समय और तदुपरान्त वर्ष में एक बार प्रत्येक छात्र और छात्रा की निःशुल्क स्वास्थ्य परीक्षा की जाय।

६. प्रत्येक विश्वविद्यालय में छात्रों की चिकित्सा के लिये अस्पताल हो।

७. संक्रामक रोगों से पीड़ित छात्रों को विश्वविद्यालय या कॉलेज में प्रवेश न दिया जाय।

८. छात्रों के सम्पर्क में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की एक वर्ष में एक बार स्वास्थ्य परीक्षा की जाय।

९. शिक्षा-संस्था के भवन, छात्रावास आदि सभी स्थानों की सफ़ाई रखी जाय और इस कार्य की रिपोर्ट नियमित रूप से उप-कुलपति को दी जाय।

१०. मध्यान्ह के समय उचित मूल्य पर छात्रों को पौष्टिक भोजन दिया जाय।

११. छात्रों के संक्रामक रोगों-चेचक, हैज़ा, टाइफ़ायड आदि के टीके लगाये जायें।

---

1. "Education of the youth and the discovery of new Truth are the principal functions of universities. The boys and girls of today are the matured citizens of tomorrow. ...The student is not created for the university but the university exists for the student and, therefore, it must spare no effort and omit no devices which may promote the fullest and most complete realization of the student's possibilities on all planes, physical, intellectual and spiritual." *Report of the University Education Commission*, pp. 344-345.

१२. प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक 'डाइरेक्टर आफ़ फ़िजीकल एजूकेशन' की नियुक्ति की जाय।

१३. छात्रों के खेल-कूद, जेमनेशियम आदि की उपयुक्त व्यवस्था की जाय।

१४. सभी शिक्षा-संस्थाओं में एन० सी० सी० की स्थापना की जाय। जो छात्र एन० सी० सी० दल के सदस्य न हों, उनके लिये दो वर्ष की शारीरिक शिक्षा अनिवार्य हो। एन० सी० सी० का समस्त व्यय केन्द्रीय सरकार द्वारा दिया जाय।

१५. छात्रों को समाज सेवा (Social Service) कार्य के लिये प्रेरणा दी जाय।

१६. विश्वविद्यालयों में छात्रावासों की उचित व्यवस्था की जाय। एक छात्रावास में ५० से अधिक विद्यार्थी न हों। उन्हें खेल, व्यायामशाला और सामुदायिक जीवन व्यतीत करने की सुविधा दी जाय।

१७. विश्वविद्यालयों के छात्र-संघ राजनीति से यथासम्भव कोई सम्बन्ध न रखें। छात्र-संघ में विश्वविद्यालय के अधिकारी किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें।

१८. छात्रों की उत्तम प्रशासन में रुचि उत्पन्न की जाय और 'प्रोक्टोरियल प्रणाली' (Procterial System) का विकास किया जाय।

१९. विश्वविद्यालयों में 'छात्र-कल्याण परामर्शदात्री समिति' (Advisory Board of Student Welfare) की स्थापना की जाय।

२०. अनुशासन बनाये रखने के लिये छात्रों को लाभदायक तथा रचनात्मक कार्यों में रत रखा जाय।

११. स्त्री-शिक्षा

स्त्री-शिक्षा पर बल देते हुए आयोग ने लिखा: "शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित व्यक्ति नहीं हो सकते हैं। यदि सामान्य शिक्षा पुरुषों या स्त्रियों तक सीमित रखी जाती है, तो स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जाना चाहिये, क्योंकि ऐसी दशा में शिक्षा को अन्य पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जा सकेगा।"[1] स्त्री-शिक्षा के महत्व और आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए,

1. "There cannot be an educated people without educated women. If general education had to be limited to men or women, that opportunity should be given to women, for then it would most surely be passed on to the next generation." *Report of the University Education Commission*, p. 393.

आयोग ने इस विषय में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये :—

१. स्त्रियों की शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे वे सुमाता और सुगृहिणी बन सकें।

२. पुरुषों के जिन कॉलेजों में स्त्रियों को शिक्षा दी जा रही है, उनमें स्त्रियों को जीवन की सामान्य सुविधायें तथा शिष्टाचारों की समुचित व्यवस्था की जाय।

३. स्त्रियों की शिक्षा-सुविधाओं में विस्तार किया जाय।

४. स्त्रियों को अपने हितों के अनुकूल शिक्षा प्राप्त करने में सुयोग्य पुरुषों और स्त्रियों द्वारा परामर्श दिया जाय।

५. शिक्षा प्राप्त करने में स्त्रियाँ, पुरुषों का अनुकरण न करें, अपितु स्त्रियोचित शिक्षा प्राप्त करें।

६. स्त्रियों एवं पुरुषों की शिक्षा अनेकों बातों में समान हो सकती है, परन्तु वह पूर्णतः एक सी नहीं होनी चाहिये।

७. शिक्षा-संस्थाओं का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये, जिससे स्त्रियाँ सामान्य समाज में अपना सामान्य स्थान ग्रहण कर सकें।

८. गृह-अर्थशास्त्र (Home Economics) और गृह-प्रबन्ध (Home Management) की शिक्षा प्राप्त करने के लिये स्त्रियों को प्रेरणा दी जाय।

९. सह-शिक्षा की संस्थाओं में स्त्रियों के प्रति शिष्ट व्यवहार किया जाय।

१०. समान कार्य के लिये अध्यापिकाओं को उतना ही वेतन दिया जाय जितना पुरुष शिक्षकों को दिया जाता है।

१२. ग्रामीण विश्वविद्यालय

भारत एक खेतिहर देश है। अतः उसकी उन्नति और आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये ग्रामीण कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है। इस दिशा में कार्य प्रारम्भ करना वांछनीय है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये छोटे-छोटे सावासिक स्नातक-पूर्व कॉलेज स्थापित किये जायँ। उनके केन्द्र में एक विश्वविद्यालय हो। कॉलेजों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या लगभग ३०० हो और समस्त कॉलेजों तथा विश्वविद्यालय के छात्रों की संख्या २,५०० से अधिक न हो।

सभी कॉलेजों में पृथक अध्यापक और शिक्षण की सुविधा हो। परन्तु जहाँ तक पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं आदि का प्रश्न है, वे सब कॉलेजों के लिये एक ही स्थान पर हो सकते हैं। इन कॉलेजों का प्रमुख ध्येय छात्रों का

सामान्य शिक्षा देना और उनकी व्यक्तिगत रुचियों का विकास करना होना चाहिये। जिस समय छात्र स्नातक-पूर्व कक्षा में अध्ययन कर रहे हों, उन्हें विश्वविद्यालय या व्यावसायिक स्कूल में किसी पाठ्य-क्रम को अध्ययन करने की सुविधा होनी चाहिये। इस प्रकार की सुविधा से उनका अधिक विकास सम्भव हो सकेगा और वे पूर्व-स्नातक शिक्षा के साथ-साथ किसी विषय की विशेष शिक्षा भी प्राप्त कर सकेंगे। स्नातक-पूर्व और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में कठोर विभाजन नहीं होना चाहिये, जिससे कि एक विद्यार्थी कुछ विषयों की स्नातक पूर्व शिक्षा प्राप्त करते हुए भी स्नातकोत्तर शिक्षा ग्रहण कर सके।

उपर्युक्त के अतिरिक्त आयोग ने विश्वविद्यालयों के संगठन, नियंत्रण व अर्थ-व्यवस्था और नवीन विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में भी कुछ सुझाव दिये।

राधाकृष्णन कमीशन का मूल्यांकन

राधाकृष्णन कमीशन ने विश्वविद्यालय-शिक्षा के सभी अङ्गों की विस्तृत समीक्षा करके, उनके सम्बन्ध में अपने सुझाव दिये हैं, जिनको सर्व-सम्मति से अद्वितीय माना गया है। कुछ विचारकों ने आयोग पर दोषारोपण लगाया है कि उसने स्त्री-शिक्षा के विषय में उत्तम, सिफारिशें नहीं की हैं, और धार्मिक शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है। हम इस आक्षेप को सर्वथा निराधार समझते हैं, क्योंकि भारत की वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टिकोण में रखते हुए आयोग ने स्त्री-शिक्षा और धार्मिक-शिक्षा के विषय में जो सुझाव दिये हैं, वे पर्याप्त रूप से अभिनन्दनीय हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि आयोग ललित कलाओं के सम्बन्ध में बिल्कुल मौन है, यद्यपि उसे इनके सम्बन्ध में भी अपनी सिफ़ारिशें देनी थीं।

आज तक विश्वविद्यालय-शिक्षा का परीक्षण करने के लिये जितने भी आयोगों और समितियों की नियुक्ति हुई है, उन सब में 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है। यदि आयोग की सभी सिफ़ारिशों को क्रियान्वित कर दिया गया, तो हमारे विश्वविद्यालयों की रूप-रेखा पूर्णतया परिवर्तित हो जायगी और वे वास्तव में राष्ट्र की बहुमूल्य निधि हो जायेंगे। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने आयोग के कार्यों की सराहना करते हुए लिखा है : "आयोग ने हमारी विश्वविद्यालय-शिक्षा की प्राप्तियों पर अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार करके एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है और साथ ही अति अमूल्य प्रस्ताव तथा सुझाव भी दिये

हैं।"[1] राष्ट्रपति ने आगे कहा है : "विश्वविद्यालय आयोग के प्रतिवेदन का महत्व अधिकांश रूप से इस बात में है कि वह इस देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में आधारभूत परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव करता है और इस आधार पर उसकी शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं की विवेचना करता है। यही कारण है कि प्रतिवेदन को अनेकों क्रान्तिकारी परिवर्तनों के सुझाव देने पड़े हैं। साथ ही प्रतिवेदन का एक गुण यह है कि वह अतीत से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करना चाहता है अपितु उसमें प्राप्य सर्वोत्तम बातों को सुरक्षित रखना चाहता है।"[2]

आयोग के सुझावों से प्रभावित होकर 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने अपनी २२ व २३ अप्रैल, १९५० की विशेष बैठकों में उनमें से अधिकांश को स्वीकार कर लिया। सरकार ने भी उन सुझावों को मान्यता प्रदान की और उन्हें क्रियान्वित करने का निश्चय किया।

सारांश

'अन्तर्विश्वविद्यालय शिक्षा-परिषद्' और 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' की सिफ़ारिश के अनुसार भारत-सरकार ने ४ नवम्बर १९४८ को 'विश्व-विद्यालय-शिक्षा-आयोग' की नियुक्ति की। आयोग ने २५ अगस्त १९४९ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में विश्वविद्यालय-शिक्षा के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डाला गया, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं : —

१. **विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्य**—राजनीतिक, प्रशासकीय तथा व्यावसिक क्षेत्रों में नेतृत्व करने की शिक्षा देना। दूरदर्शी, बुद्धिमान एवं सादृसो नवयुवकों का निर्माण करना। प्रजातंत्र को सफल बनाने वाले

1. "The commission has submittted a very valuable report containing a review of the achievements of our university education and also suggestions and recommendations which are of a far-reaching character." *Speeches of President Rajendra Prashad.* Publication Division, 1955, p.5.

2. "The value of the University Commission Report lies very largely, in the fact that it recognises in the necessity for a fundamental change in the set-up of things in this country and proceeds to deal with its educational problems on that basis. It has, therefore, had to recommende many revolutionary changes. It has further the merit of not contemplating a complete break with the past but of conserving the best that is available." *Ibid.*

व्यक्तियों को जन्म देना। छात्रों का मानसिक एवं शारीरिक विकास करना। विश्वविद्यालयों का न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुता के आदर्शों का प्रतीक होना।

२. **अध्यापक-वर्ग**—अध्यापकों को पुस्तकालय एवं अनुसंधान की सुविधा देना, वेतन-वृद्धि करना, प्राविडेन्ट फन्ड की उत्तम व्यवस्था करना, सप्ताह में १८ घंटे का अध्यापन कार्य देना और अध्यापकों का ४ वर्गों में विभक्त किया जाना—प्रोफेसर, रीडर, लेक्चरर और इंसट्रक्टर।

३. **अध्यापन का स्तर**—अध्यापन का स्तर उच्च करने के लिये शिक्षण सामग्री की व्यवस्था करना, इंटरमीडिएट कॉलेज खोलना, किसी कक्षा के लिये पाठ्य-क्रम निश्चित न करना, पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं को सुसंगठित करना और अध्यापकों के लिये अभिनवन पाठ्य-क्रम की व्यवस्था करना।

४. **पाठ्य-क्रम**—स्नातक की उपाधि प्राप्त करने की अवधि ३ वर्ष होना, सामान्य शिक्षा के सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाना, और सामान्य शिक्षा तथा विशेषीकृत शिक्षा में समन्वय करना।

५. **स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं अनुसंधान**—स्नातकोत्तर कक्षाओं के नियमों में साम्य होना, पी० एच-डी० की अवधि दो वर्ष होना, अनुसंधान करने वाले छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देना और विश्वविद्यालयों के विज्ञान-विभाग को अनुसंधान के लिये उदार आर्थिक सहायता देना।

६. **व्यावसायिक शिक्षा**—कृषि शिक्षा को प्रमुख राष्ट्रीय समस्या मानना, कृषि कॉलेजों को साधन सम्पन्न बनाना और नवीन कृषि कॉलेजों को नवीन ग्रामीण विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध करना। वाणिज्य के छात्रों के लिये व्यावहारिक शिक्षा का प्रबन्ध करना और एम० कॉम० में पुस्तकीय ज्ञान कम रखना। प्रशिक्षण संस्थाओं में सुधार करना, शिक्षा-सिद्धान्त का पाठ्य-क्रम लचीला होना और छात्राध्यापकों को छात्रवृत्तियाँ देना। इंजीनियरिंग और टेक्नोलॉजी की संस्थाओं को राष्ट्रीय सम्पत्ति समझना, इंजीनियरिंग के पाठ्य-क्रम में सुधार करना और उच्च शिक्षा के लिये टेकनॉलौजिकल संस्थायें स्थापित करना। कानून के कॉलेजों का पुनर्गठन करना और कानून के छात्रों को अन्य डिग्री कोर्स लेने की अनुमति कम देना। मेडिकल कॉलेजों में १०० से अधिक छात्र न होना और देशी चिकित्सा-प्रणालियों में अनुसंधान की सुविधायें देना।

७. **धार्मिक शिक्षा**—दैनिक कार्य आरम्भ करने से पूर्व कुछ मिनट

मौन चिन्तन करना, धार्मिक नेताओं की जीवनियाँ पढ़ाना और धर्म-दर्शन की प्रमुख समस्याओं का अध्ययन करना।

८. **शिक्षा का माध्यम**—उच्च शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषा होना, छात्रों को मातृभाषा, प्रादेशिक भाषा और अंग्रेजी का ज्ञान कराना और भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्द-कोष तैयार करना।

९. **परीक्षायें**—छात्रों का प्रगति-परीक्षाओं द्वारा परीक्षण करना, वस्तुगत-प्रगति-परीक्षाओं का कुलक तैयार करना और प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के लिये ७०, ५५ और ४० प्रतिशत अंक होना।

१०. **छात्र, उनके कार्य तथा उनका कल्याण**—छात्रों के प्रवेश में भेद-भाव न किया जाना, प्रथम डिग्री कोर्स के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था करना, अनुसंधान-कार्य पर ध्यान केन्द्रित करना, छात्रों की स्वास्थ्य-चिकित्सा होना, एन० सी० सी० की स्थापना करना और छात्र-कल्याण-परामर्शदात्री समिति का संगठन करना।

११. **स्त्री शिक्षा**—स्त्रियों को सुमाता और सुगृहिणी बनने की शिक्षा देना, गृह-अर्थशास्त्र और गृह-प्रबन्ध की शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित करना और स्त्री-शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार करना।

१२. **ग्रामीण विश्वविद्यालय**—ग्रामों में सावासिक स्नातक-पूर्व कॉलेज खोलना और उनके केन्द्र में एक विश्वविद्यालय होना। कॉलेजों का प्रमुख ध्येय छात्रों को सामान्य शिक्षा देना और स्नातक-पूर्व तथा स्नातकोत्तर पाठ्य-क्रमों में कठोर विभाजन न होना।

TEST QUESTIONS

1. What reforms have been suggested in the University Education in this country by the Radhakrishnan Commission ?
2. Comment upon the view that the Indian Universities, as they exist today, despite many admirable features, do not fully satisfy the requirements of a national system of education. How far do you think the implementations of the recommendations of the University Commission of 1948 can fulfil the needs of the country ?

—: • :—

अध्याय २४

शिक्षा के अन्य क्षेत्र

(१९४७—१९५९)

स्वातन्त्र्योत्तर काल में प्राथमिक, माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय-शिक्षा के अतिरिक्त शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में भी आशातीत प्रगति हुई है और विभिन्न प्रकार की शिक्षाओं की सरकार द्वारा समुचित व्यवस्था की गई है। हम उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दे रहे हैं।

ग्रामीण उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालय व कॉलेज)

ग्रामीण शिक्षा की वर्तमान स्थिति—भारत ग्रामों का देश है। १९५१ की जनगणना के अनुसार इस देश की ८३ प्रतिशत जनता ग्रामों में निवास करती है। परन्तु खेद का विषय है कि इस विशाल ग्रामीण जन-समुदाय की उच्च शिक्षा की सदैव से अवहेलना की गई है। इस बात की पुष्टि में हम कह सकते हैं कि शिक्षा पर किये जाने वाले सम्पूर्ण व्यय का केवल ३४·३ प्रतिशत ग्रामीण शिक्षा पर व्यय किया जाता है।[1] इस धन का अधिकांश भाग प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा पर व्यय कर दिया जाता है और उच्च शिक्षा

1. *Progress of Education in India* (1947-52), p. 4.

के लिये अति अल्प धन-राशि शेष रह जाती है। यही कारण है कि इतने बड़े देश की ग्रामीण जनता के लिये केवल ३ विश्वविद्यालय हैं—आनन्द, अन्नमलई और विश्वभारती। इनमें से प्रथम और तृतीय की स्थापना अभी कुछ ही वर्ष पूर्व १९५६ और १९५१ में क्रमशः हुई है। केवल अन्नमलई विश्वविद्यालय १९२९ से कार्य कर रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन तीनों विश्वविद्यालयों की स्थापना वैयक्तिक प्रयासों के फलस्वरूप ही हुई है। इनके निर्माण के लिये सरकार को कोई श्रेय नहीं दिया जा सकता है। इन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त ग्रामीण उच्च शिक्षा के लिये लगभग ६० कॉलिज हैं। ये समस्त तथ्य एवं आँकड़े सिद्ध करते हैं कि ग्राम-निवासियों को उच्च शिक्षा से वंचित रख कर कितना जघन्य अपराध किया गया है।

विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग—ग्रामीण उच्च शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान सर्व प्रथम १९४९ के 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' ने यह लिख कर आकर्षित किया : "सामान्य प्रकार का प्रबन्ध करने के लिये यह प्रस्ताव किया जाता है कि ग्रामीण विश्वविद्यालय से सम्बद्ध छोटे-छोटे सावासिक स्नातक-पूर्व कॉलिज हों। इन कॉलेजों के केन्द्र में विशिष्ट और उच्च शिक्षा की सुविधाओं के लिये एक विश्वविद्यालय हो।"[1] (अधिक जानकारी के लिये अध्याय २३ देखिये।)

ग्रामीण उच्चतर शिक्षा-परिषद्—'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' के सुझाव को मान्यता प्रदान करके भारत-सरकार ने अक्टूबर १९५४ में 'ग्रामीण उच्चतर शिक्षा परिषद्[2]' की स्थापना की। इस समिति को अग्रलिखित आधारों पर ग्रामीण विश्वविद्यालयों की रूपरेखा तैयार करने का आदेश दिया गया:—(१) ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा के उद्देश्य, संगठन एवं पाठ्य-क्रम, (२) उच्च शिक्षा का बेसिक तथा माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्ध, और (३) अन्य सम्बन्धित समस्यायें। परिषद् ने ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं को 'रूरल इंस्टीट्यूट्स' (Rural Institutes) में परिवर्तित करने की सिफ़ारिश की और इनके पाठ्य-क्रम के विषय में निम्नांकित सुझाव दिये :—

१. ग्रामीण सेवाओं के लिये ३ वर्ष का डिप्लोमा कोर्स।
२. शिक्षण-डिप्लोमा (Teaching Diploma) के लिये १ वर्ष का कोर्स।

---

1. *Report of the University Education Commission*, p. 575.
2. Rural Higher Education Commission.

३. शिक्षण-सर्टिफ़िकेट (Teaching Certificate) के लिये १ वर्ष का कोर्स।

४. ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं (Rural Health Workers-Women) के लिये २ वर्ष का सर्टिफ़िकेट-कोर्स।

५. ओवरसियरों के लिये २ वर्ष का सर्टिफ़िकेट-कोर्स।

६. कृषि-विज्ञान के लिये २ वर्ष का सर्टिफ़िकेट-कोर्स।[1]

ग्रामीण उच्च शिक्षा के लिये प्रयास—परिषद् की सिफ़ारिश के अनुसार १० संस्थाओं को 'रूरल इंस्टीट्यूट्स' में परिवर्तित कर दिया गया है और उन्होंने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है। ग्राम सेवाओं के डिप्लोमा को विश्वविद्यालय की सर्वप्रथम डिग्री के समान ही मान्यता प्रदान हो चुकी है।[2] यह मान्यता आरम्भ में केवल ५ वर्ष के लिये दी गई है। 'अन्तर्विश्वविद्यालय बोर्ड' इस डिप्लोमा को विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता दिये जाने के प्रश्न पर विचार कर रहा है। 'रूरल इंस्टीट्यूट्स' को ७३,०५,८५२ लाख रुपये के अनुदान की एवं उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले ७०८ विद्यार्थियों के लिये ३,०५०,४५१ लाख रुपये की छात्रवृत्ति के दिये जाने की सरकार द्वारा स्वीकृति दी गई।[3] ग्रामीण उच्च शिक्षा के कार्य-क्रम को सफल बनाने के लिये 'फ़ोर्ड फ़ाउनडेशन' (Ford Foundation) ने भारत-सरकार को ८१·८१ लाख रुपये दिये हैं।[4] ग्रामीण उच्च शिक्षा के लिये इस प्रकार प्रयास तो प्रारम्भ कर दिये गये हैं, पर उनको संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। ग्रामीण उच्च शिक्षा की समस्या का केवल १० विद्यालयों से समाधान नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार के विद्यालयों का तो जाल बिछ जाना चाहिये। फिर उनमें केवल स्नातक-पूर्व शिक्षा की ही व्यवस्था न रहे जैसी कि वर्तमान समय में है, अपितु स्नातकोत्तर शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जाय और ग्रामीण समस्याओं से सम्बन्धित सभी विषयों का पाठ्य-क्रम में समावेश कर दिया जाय।

कुछ सुझाव—ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना के सम्बन्ध में कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं:—

---

1. The Committee on Higher Education, *Rural Institutes* (Ministry of Education), p.64.
2. भारत (वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ), १९५९, पृष्ठ ८४.
3. आज़ादी का बारहवाँ वर्ष, पृष्ठ ८१.
4. *Education in India* (1955-56), p. 153.

१. भारत के प्रत्येक राज्य में कम से कम एक ग्रामीण विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय।
२. विश्वविद्यालय से सम्बन्धित प्रत्येक जिले में एक उच्चतर माध्यमिक स्कूल और उपयुक्त स्थानों पर 'रूरल इंस्टीट्यूट' हों।
३. स्कूल बहु-उद्देशीय हों जो हमारे ग्रामों के लिये विभिन्न प्रकार के कार्य-कर्त्ताओं का निर्माण कर सकें।[1]

ग्रामीण विश्वविद्यालय के कार्य—ग्रामीण विश्वविद्यालयों के निम्न-लिखित कार्य होने चाहिये :—

१. विश्वविद्यालय के क्षेत्राधिकार में स्थित ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों तथा स्नातक-पूर्व कॉलिजों को मान्यता प्रदान करना।
२. छात्रों को स्नातक-पूर्व और स्नातकोत्तर शिक्षा प्रदान करना।
३. ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर अनुसंधान करना।
४. ग्राम निवासियों को अपने समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के लिये प्रेरणा देना।[2]

प्रौढ़ अथवा समाज शिक्षा[3] (१९४७-५९)

देश के कर्मठ नेताओं ने स्वतंत्र भारत की विविध समस्याओं में प्रौढ़-शिक्षा की समस्या को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। उन्होंने अनुभव किया कि जिस देश में ८३.४ प्रतिशत निरक्षर व्यक्ति हैं, वहाँ किसी प्रकार की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रगति होना सम्भव नहीं है। अतः उन्होंने वयस्क निरक्षरों को साक्षर बनाने का संकल्प करके विभिन्न योजनाओं का निर्माण किया। सर्व प्रथम प्रौढ़-शिक्षा (Adult Education) को समाज शिक्षा (Social Education) का नाम देकर उसके रूप को अभिवृद्धित तथा परिवर्तित किया गया। यह निश्चय किया गया कि निरक्षर वयस्कों को साक्षर बनाने के साथ-साथ नागरिकता की भी शिक्षा प्रदान की जाय। इस प्रकार समाज शिक्षा के अन्तर्गत प्रौढ़-शिक्षा के दृष्टिकोण को अति व्यापक एवं विस्तृत बना दिया गया।

द्वादश सूत्रीय योजना—निरक्षर वयस्कों में नागरिकता के गुणों का विकास करने, उन्हें अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति जागरूक करने

1. S. N, Mukerji : *Education in India Today and Tomorrow*, p. 185.
2. *Ibid.*
3. Adult or Social Education.

और उनमें ज्ञान का प्रसार करने के लिये माननीय केन्द्रीय शिक्षा मंत्री ने ३१ मई, १९४८ को आयोजित किये गये प्रेस सम्मेलन के समक्ष अपनी 'द्वादश-सूत्रीय योजना' प्रस्तुत की। इस योजना को जनवरी, १९४९ में 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने स्वीकार किया। यह योजना निम्न-लिखित थी :—

१. ग्राम-विद्यालय ग्राम की सम्पूर्ण जनता के लिये शिक्षा, कल्याण-कार्य, खेल-कूद एवं मनोरंजन का केन्द्र होंगे।

२. विद्यालयों में बच्चों, किशोरों एवं प्रौढ़ों के लिये अलग-अलग समय निश्चित रहेगा।

३. सप्ताह में कुछ दिन केवल बालकों, बालिकाओं एवं स्त्रियों के लिये सुरक्षित रखे जायेंगे।

४. ग्राम-विद्यालय में ऐसी अनेकों मोटरें जाया करेंगी जो ध्वनि-विस्तारक यंत्र (Loudspeaker) एवं प्रक्षेपक (Projector) से सुसज्जित होंगी। चलचित्र, मैजिक लालटेन और ग्रामोफ़ोन का भी प्रयोग किया जायगा। ग्रामों के प्रत्येक स्कूल को एक सप्ताह में कम से कम एक बार मोटर की सेवा अवश्य उपलब्ध होगी।

५. ग्राम-विद्यालयों में रेडियो लगाये जायेंगे और बच्चों, किशोरों तथा प्रौढ़ों के लिये समाज शिक्षा के उपयुक्त कार्य-क्रम प्रसारित किये जायेंगे।

६. विद्यालयों में लोकप्रिय नाटकों के अभिनय की व्यवस्था की जायगी और सर्व श्रेष्ठ नाटक लिखने वालों को पुरस्कृत किया जायगा।

७. विद्यालयों में राष्ट्रीय एवं लोकगीतों में अभिरुचि उत्पन्न करने के लिये समुचित प्रबन्ध किया जायगा।

८. विद्यालयों में स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किसी हस्तशिल्प तथा व्यवसाय की सामान्य शिक्षा दी जायगी।

९. स्वास्थ्य, कृषि तथा श्रम-विभागों के सहयोग से ग्राम-निवासियों के लिये स्वास्थ्य-विज्ञान, कृषि की वैज्ञानिक प्रणालियों, कुटीर उद्योग-धंधों एवं सहकारिता का ज्ञान प्रदान करने के लिये व्याख्यान-मालाओं की आयोजना की जायगी।

१०. सूचना एवं प्रसार विभाग के सहयोग से विद्यालयों में चलचित्र तथा स्लाइड प्रदर्शित किये जायेंगे। ग्राम-निवासियों को राष्ट्रीय समस्याओं से अवगत कराने के लिये विद्वानों एवं नेताओं को आमंत्रित किया जायगा।

११. विद्यालयों तथा ग्रामीणों के मध्य दलों के आधार पर सामूहिक खेलों की व्यवस्था की जायगी।

१२. विद्यालयों में समय-समय पर मेलों एवं प्रदर्शिनियों का प्रबन्ध किया जायगा।

प्रान्तीय शिक्षा-मंत्रियों का सम्मेलन—फ़रवरी, १९४९ में दिल्ली में प्रान्तीय शिक्षा-मंत्रियों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें इस 'द्वादश-सूत्रीय-योजना' पर विचार-विनिमय किया गया। तदुपरान्त यह कार्य-क्रम बनाया गया कि ३ वर्ष की अवधि में १२ से ५० वर्ष की अवस्था वाले निरक्षर व्यक्तियों में से कम-से-कम ५० प्रतिशत को साक्षर बना दिया जाय। परन्तु केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस कार्यक्रम को कार्यान्वित न किया जा सका।

समाज शिक्षा की प्रगति—समाज शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रगति हुई है और उस पर जो धन व्यय किया गया है, वह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जाता है :—

सामाजिक शिक्षा (१९४९–१९५६)

वर्ष	केन्द्र, कक्षा व स्कूल	छात्र संख्या	व्यय (लाखों में)
१९४९–५०	४७,४६४	१,१५१,०६६	८५·६६
१९५०–५१	४८,५५६	१,२५६,०११	८४·६७
१९५१–५२	४३,४६३	१,०६१,२८०	७१·८३
१९५२–५३	४४,५९५	१,०८८,७८४	७३·७७
१९५३–५४	३९,९६५	९४८,८४७	६२·०५
१९५४–५५	४३,२२३	१,१११,४०५	७७·४६
१९५५–५६	४६,०९१	१,२७८,८२७	९६·८६

समाज-शिक्षा की नवीनतम योजनाएँ :—समाज-शिक्षा के अन्तर्गत एक 'पंचसूत्री कार्य-क्रम' बनाया गया है, जिसके उद्देश्य हैं :—(१) साक्षरता प्रसार, (२) स्वास्थ्य तथा सफ़ाई के नियमों के ज्ञान का प्रसार, (३) वयस्क व्यक्तियों के आर्थिक स्तर की उन्नति, (४) नागरिकता की भावना, अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जनता को जागरूक करना, और (५) समाज एवं व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था करना। योजनाओं को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व राज्यों पर है, जब कि केन्द्र मार्ग प्रदर्शन, आर्थिक सहायता एवं समन्वय की व्यवस्था करता है।

उच्च कर्मचारियों को समाज-शिक्षा के कार्य का प्रशिक्षण देने एवं प्रमुख

समस्याओं पर उपयुक्त अनुसंधान करने के लिये दिल्ली में एक 'राष्ट्रीय मूल-भूत शिक्षा केन्द्र' की स्थापना की गई है।

'केन्द्रीय चलचित्र संग्रहालय' में शिक्षा एवं संस्कृति सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर ४,९७४ चलचित्र आदि हैं, जो संग्रहालय की सदस्य शिक्षा-संस्थाओं को निःशुल्क दिये जाते हैं। १,०४५ शिक्षा-संस्थान एवं सामाजिक संगठन इस संग्रहालय के सदस्य हैं। 'श्रव्य-दृश्य शिक्षा' शीर्षक एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित की जाती है।

केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारें श्रव्य-दृश्य (Audio Visual) कार्यकर्त्ताओं की प्रशिक्षण गोष्ठियों का भी आयोजन करती रहती हैं। एक 'केन्द्रीय श्रव्य-दृश्य शिक्षा संस्था' स्थापित की जाचुकी है।

स्त्री-शिक्षा (१९४७-५९)

१९४७ के उपरान्त स्त्री-शिक्षा का श्लाघनीय विकास हुआ है। १९४७-४८ में सभी प्रकार की स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की संख्या १६,९५१ और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाली छात्राओं की संख्या ३,५५०, ५०३ थी।[1] १९५५-५६ में ये संस्थायें क्रमशः २४,८७६ और ९,१८८,७०७ हो गईं।[2] इनमें से लगभग ७० प्रतिशत लड़कियाँ लड़कों के विद्यालय में अध्ययन कर रही थीं। अतः हम कह सकते हैं कि सह-शिक्षा का पर्याप्त प्रचलन हो गया है।

१९५५-५६ में मेट्रीकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाली बालिकाओं की संख्या ७२,३२८ थी, जब कि १९५४-५५ में यह संख्या ६५,४८१ थी। अन्य उच्च परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वाली लड़कियों की तालिका नीचे दी हुई है।[3]

	१९५४-५५	१९५५-५६
इण्टर (आर्ट्स व विज्ञान)	१९,४८८	१९,९२१
बी० ए० व बी० एससी०	९,३९४	९,९४८
एम० ए० व एम० एससी०	१,८५१	२,१६६
व्यावसायिक विषय (केवल डिग्री)	३,५६७	३,८२१

स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय समिति[4] :—केन्द्रीय सरकार ने श्रीमती दुर्गा-

1. *Seven Years of Freedom*, p. 25.
2. *Education in India* (1955-56), p. 307.
3. *Ibid.*
4. The National Committee on Women's Education.

बाई देशमुख की अध्यक्षता में मई, १९५८ में 'स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय समिति' की नियुक्ति की। समिति का उद्देश्य स्त्री-शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं पर अपने सुझाव देना था। समिति ने जनवरी, १९५९ में अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। अभी इस रिपोर्ट पर विचार हो रहा है। रिपोर्ट में दिये गये मुख्य-मुख्य सुझाव निम्नलिखित हैं :—

१. स्त्री-शिक्षा को देश की समस्याओं में प्रमुख स्थान प्रदान किया जाना चाहिये।
२. पुरुषों एवं स्त्रियों की शिक्षा में जो विषमता है, उसे शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिये। दोनों की शिक्षा में समानता स्थापित करना सरकार का कर्त्तव्य है।
३. केन्द्रीय सरकार को स्त्री-शिक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर लेना चाहिये और स्त्री-शिक्षा के विकास एवं विस्तार के लिये एक योजना बना कर एक निश्चित समय में पूर्ण कर देनी चाहिये।
४. केन्द्रीय सरकार सभी राज्यों के लिये स्त्री-शिक्षा के विस्तार की नीति निर्धारित करे और उसका अनुसरण किये जाने के लिये राज्य-सरकारों को आर्थिक सहायता दे।
५. केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय में स्त्री-शिक्षा का एक पृथक् विभाग स्थापित किया जाना चाहिये।
६. राज्य में स्त्री-शिक्षा के प्रसार के निमित्त 'बालिका एवं स्त्री-शिक्षा की राज्य-समितियाँ,[1] स्थापित की जायँ।
७. ग्रामीण-क्षेत्रों में स्त्री-शिक्षा के प्रसार की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। इस व्यय का पूर्ण भार सरकार वहन करे।
८. द्वितीय पंचवर्षीय योजना में जितना धन स्त्री-शिक्षा के लिये निर्धारित किया गया है, उसके अतिरिक्त १० करोड़ रुपये और व्यय किये जायँ।

स्त्री-शिक्षा की नवीन योजनाएँ :—१९५७-५८ में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत लड़कियों की शिक्षा के विस्तार तथा अध्यापिकाओं की शिक्षा के लिये प्रारम्भ की गई योजना में १९५८-५९ के दौरान में उत्तम प्रगति हुई है। समस्त राज्यों एवं चार केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में १९५८-५९ के दौरान योजना को कार्यान्वित किया गया। केन्द्रीय सरकार ने स्त्री-शिक्षकों को प्रशिक्षण पाने के लिये वृत्ति देकर, लड़कियों की उपस्थिति के

1. State Councils of the Education of Girls and Women.

लिये छात्रवृत्तियाँ देकर एवं स्त्री-शिक्षकों के लिये बिना किराये के क्वार्टरों का निर्माण करके, विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में, सहायता दी।

अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा (१९४७-५९)

इन वर्गों को शिक्षा की अधिक से अधिक सुविधाएँ देने के लिए उपाय किये जा चुके हैं और व्यावसायिक तथा प्राविधिक प्रशिक्षण पर अधिक जोर दिया जा रहा है।

भारत सरकार ने १९४४-४५ में अनुसूचित जातियों के विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने की एक योजना आरम्भ की। १९४८–४९ में अनुसूचित आदिम जातियों के विद्यार्थियों को तथा १९४९-५० में पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों को भी यह लाभ दिया जाने लगा। १९५७-५८ में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों पर सरकार ने क्रमशः १ करोड़ ३७ हजार रुपये, १८·९७ लाख रुपये तथा ८२·१९ लाख रुपये व्यय किये।

भारत सरकार ने १९५३-५४ में इन वर्गों के योग्य विद्यार्थियों को विदेशों में अध्ययन के लिये भी छात्रवृत्तियाँ देने की एक योजना आरम्भ की। आसाम तथा बिहार राज्य की सरकारें पिछड़ी जातियों के विद्यार्थियों को विदेशों में अध्ययन के लिये भी छात्रवृत्तियाँ देती है।

केन्द्रीय सरकार ने सभी प्राविधिक तथा शिक्षा संस्थाओं में इन वर्गों के विद्यार्थियों के प्रवेश के लिये स्थान सुरक्षित रखने, आवश्यक उत्तीर्ण अङ्कों की मात्रा में कमी करने तथा अधिकतम आयु-सीमा में वृद्धि करने के सुझाव दिए जिनको देश की विभिन्न शिक्षा संस्थाओं ने कार्यरूप दिया है।

विकलाङ्गों की शिक्षा[1] (१९४७-५९)

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय तक भारत में विकलांगों की शिक्षा की बहुत कम व्यवस्था थी। अन्धों की शिक्षा के लिये कलकते में २, बिहार में २, बम्बई में ४, मध्यप्रान्त में १, मद्रास में ९, पंजाब में २, उत्तर प्रदेश में ६, अजमेर में १ और तुगलकाबाद (दिल्ली) में १ स्कूल था। इनके अतिरिक्त गूँगों और बहरों के लिये ३३, मानसिक दुर्बलता वालों के लिये २ और कोढ़ियों के लिये २ स्कूल थे। १३ सुधार-गृह (Reformatories) भी थे। इन स्कूलों में विकलांगों को साधारणतया बुनने, कातने, बेंत के काम, रस्सी

1. Education of the Handicapped.

बनाने आदि की शिक्षा दी जाती थी। अन्धों को ब्रेल-लिपि (Braille code) द्वारा, जिसका आविर्भाव १९४१ में हो चुका था, लिखने-पढ़ने की भी शिक्षा दी जाती थी। पटना के अन्धों के स्कूल में टाइप-राइटिंग की शिक्षा की व्यवस्था थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त राज्यों के शिक्षा-मंत्रालयों एवं शिक्षा-विभागों ने विकलांगों की शिक्षा का भार अपने ऊपर लिया। मई १९५२ में 'भारतीय बाल-कल्याण परिषद'[1] की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य बाल-कल्याण के क्षेत्र में अनुसन्धान करना है। एक अन्य महत्वपूर्ण संस्था 'समाज-कल्याण बोर्ड'[2] है। यह किशोर अपराधियों, विकलांगों एवं बाल-कल्याण के कार्यों की देखभाल करता है। मार्च १९५५ तक बोर्ड ने देश की विभिन्न बाल-कल्याण संस्थाओं को १३·५ लाख रुपये दिये।

एक 'राष्ट्रीय परामर्श परिषद्' सरकार को विकलांगों की शिक्षा, प्रशिक्षण एवं नियोजन सम्बन्धी समस्याओं पर परामर्श देती है। उच्चतर शिक्षा अथवा प्राविधिक अथवा व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिये अन्धे, बहरे एवं विकलांग छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं।

देहरादून के 'अन्ध (प्रौढ़) प्रशिक्षण केन्द्र' में लगभग १५० व्यक्तियों को दस्तकारी का प्रशिक्षण दिया जाता है। अन्धे व्यक्तियों के लिये एक काम-दिलाऊ दफ़्तर जुलाई १९५४ से मद्रास में कार्य कर रहा है।

अक्टूबर, १९५० से देहरादून में स्थापित 'केन्द्रीय ब्रेल मुद्रणालय' द्वारा भारतीय भाषाओं में ब्रेल साहित्य प्रकाशित किया जाता है। अन्धे बालक-बालिकाओं के लिये जनवरी १९५९ में स्थापित एक स्कूल में किंडरगार्टन एवं प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाती है। अन्तोगत्वा इसको माध्यमिक स्कूल में परिवर्तित कर दिया जायगा।

१९५५-५६ में भारत में ५,३१४ स्कूल विकलांगों के लिये थे जिन पर २३,९६, ८१८ लाख रुपया व्यय किया जा रहा था।[3]

प्राविधिक शिक्षा[4] (१९४७ ५९)

स्वातंत्र्योत्तर काल में देश के औद्योगीकरण के साथ-साथ प्राविधिक शिक्षा की भी अभिनन्दनीय प्रगति हुई है। १९४७ में केवल ६,६०० छात्रों को प्राविधिक

1. Indian Council of Child-Welfare.
2. Social Welfare Board.
3. *Education in India* (1955-56), p. 299.
4. Technical Education.

शिक्षा देने का प्रबन्ध था । १९५३ में १२,७०० छात्रों के लिये इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई । १९५८-५९ में इंजीनियरिंग एवं टेकनॉलॉजी के डिग्री पाठ्य-क्रम वाले ८३ कॉलेज तथा डिप्लोमा पाठ्य-क्रम के १४९ पॉलीटेकनीक थे, जिनमें प्रति वर्ष क्रमशः ११,१०० एवं १९,४०० छात्रों को प्रवेश की सुविधा थी । नवीन स्वीकृत परियोजनाओं के परिणामस्वरूप द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक डिग्री पाठ्य-क्रम में १३,००० से अधिक एवं डिप्लोमा पाठ्य-क्रम में २५,००० स्थानों का प्रबन्ध हो जायगा । १९५८-५९ में विभिन्न प्राविधिक एवं इंजीनियरिंग संस्थाओं के विकास के लिये १३३·२० लाख रुपये दिये जाने का अनुमान है एवं आगामी वर्ष में १४५·३९ लाख रुपये की व्यवस्था की गई है ।

द्वितीय एवं तृतीय योजना की परियोजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक कार्यकर्त्ताओं के अभाव को दूर करने के विचार से १९ कॉलेजों एवं ४१ पॉलीटेकनीकों को विकास के लिये चुना गया है, जिससे कि २,५६८ डिग्री स्तर के तथा ५,४०० डिप्लोमा स्तर के अतिरिक्त स्थान निकल सकें । १९५८-५९ में अतिरिक्त भर्ती किये गये छात्रों की संख्या डिग्री पाठ्य-क्रम में २,३७८ एवं डिप्लोमा पाठ्य-क्रम में ३,९७४ थी, जब कि १९५७-५८ में अतिरिक्त भर्ती किये छात्रों की संख्या इन पाठ्यक्रमों में क्रमशः २,०९६ एवं ३,३९९ थी । केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रस्तावित ८ क्षेत्रीय इंजीनियरिंग कॉलेजों एवं २७ पॉलीटेकनीकों एवं दिल्ली में एक इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना की योजना में कुल २,०३५ डिग्री पाठ्य-क्रम एवं ४,०२४ डिप्लोमा पाठ्य-क्रम के स्थानों की व्यवस्था की गई है । विभिन्न राज्यों की योजनाओं में सम्मिलित ८ इंजीनियरिंग कॉलेजों में से केवल आसाम के जोरहट कॉलेज के अतिरिक्त शेष सभी की स्थापना हो चुकी है । दिल्ली के कॉलेज का शिलान्यास २७ जनवरी, १९५९ को हिज रायल हाइनेस ड्यूक ऑफ़ एडिनबरा द्वारा किया गया था ।

१९५९ के वित्तीय वर्ष से राज्यों की प्राविधिक शिक्षा परियोजना सम्बन्धी केन्द्रीय सहायता प्रणाली में परिवर्तन कर दिया गया है । अब केन्द्रीय सरकार पूर्व-स्नातक पाठ्यक्रम की परियोजनाओं के व्यय का ५० प्रतिशत तथा स्नातकोत्तर एवं विशिष्ट या गवेषणात्मक पाठ्यक्रमों के व्यय का १०० प्रतिशत अंश देगी ।

सरकार ने निजी सङ्गठनों द्वारा संस्थापित प्राविधिक संस्थाओं के प्रति उदार नीति अपनाई है । इस प्रोत्साहन के फलस्वरूप निजी क्षेत्रों ने जो रुचि प्रदर्शित की है उससे देश की प्राविधिक शिक्षा के विकास में प्रशंसनीय सहयोग प्राप्त हुआ है ।

प्राविधिक संस्थाओं के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए कई परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं। योजना आयोग ने सिद्धान्त रूप में इन अध्यापकों की वेतन श्रेणी तथा काम की शर्तों के सुधार की बात को इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया है कि केन्द्र इससे सम्बन्धित समस्त अतिरिक्त व्यय को केवल पाँच वर्ष तक उठाये और उसके उपरान्त तृतीय वित्तीय आयोग स्थिति का पुनरावलोकन करे।

राष्ट्रपति ने २ फ़रवरी, १९५९ को भारतीय विज्ञान-संस्था, बंगलौर के स्वर्ण-जयन्ती समारोह का उद्घाटन किया। विगत ५० वर्षों से इस संस्था ने विज्ञान एवं टेकनोलॉजी की शिक्षा प्रदान की है।

चिकित्सा-शिक्षा (१९४७–५९)

शिक्षा व प्रशिक्षण—१९४७ से १९५९ की अवधि में चिकित्सा-शिक्षा की ओर सरकार द्वारा पर्याप्त ध्यान दिया गया है। १९४६–४७ मे देश में २६ मेडिकल कॉलेज और २५ मेडिकल स्कूल थे। १९५५-५६ में मानव-चिकित्सा एवं पशु चिकित्सा की ८४ संस्थायें थीं, जिनमें ४,३०८ लड़के और २,५६५ लड़कियाँ शिक्षा का लाभ उठा रहे थे। इस वर्ष चिकित्सा पर सरकार द्वारा २२,६२,११४ रुपये व्यय किये गये। १९५९ में देश में ५० चिकित्सा कॉलेज एवं ९ दन्त चिकित्सा कॉलेज और आधुनिक ठङ्ग की चिकित्सा प्रणाली का प्रशिक्षण देने वाली अन्य संस्थायें हैं।[1] द्वितीय योजना-काल में कानपुर, कुरनूल, कोज़ीकोड, जबलपुर, जामनगर, नई दिल्ली, पांडिचेरी, बीकानेर, भोपाल, रांची एवं हुबली में नवीन चिकित्सा कॉलेजों की स्थापना के लिये स्वीकृति दी गई। इसके अतिरिक्त १३ चिकित्सा-कॉलेजों के विस्तार के लिये भी स्वीकृति दी गई। चुने हुए चिकित्सकों को विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों एवं शल्य-चिकित्सा का स्नातकोत्तर प्रशिक्षण देने के लिये १२ चिकित्सा संस्थानों का स्तर ऊँचा किया जा चुका है। प्रथम योजना काल में ८ चिकित्सा कॉलेजों में 'सामाजिक तथा निरोधात्मक चिकित्सा विभाग' खोले गये और ६ अन्य कॉलेजों में भी यह विभाग खोले जाने के लिये स्वीकृति दी जा चुकी है।

अखिल-भारतीय चिकित्सा-विज्ञान संस्था—संसद के एक अधिनियम के अनुसार १९५६ में एक 'अखिल भारतीय चिकित्सा-विज्ञान संस्था' स्थापित की गई, जिसका उद्देश्य चिकित्सा-सम्बन्धी स्नातकोत्तर शिक्षा देने में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना है। चिकित्सा-कॉलेज के अतिरिक्त, इस संस्था में एक

---

१. भारत (वार्षिक सन्दर्भ-ग्रन्थ), १९५९, पृष्ठ १०७

दन्त-चिकित्सा कॉलेज, एक उपचारण (Nursing) कालेज, एक स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र एवं ६५० रोगीशय्याओं वाला एक अस्पताल है।

विशेष प्रशिक्षण—उपचारिकाओं (Nurses) के प्रशिक्षण की सुविधायें नई दिल्ली एवं बेल्लोर के उपचारण कॉलेजों एवं देश के लगभग सभी बड़े मेडिकल कॉलेजी में उपलब्ध हैं। मद्रास की आंध्र महिला सभा जैसे कई गैर-सरकारी सङ्गठनों ने भी केन्द्र से अनुदान प्राप्त करके उपचारिकाओं के अल्प-कालीन पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था की है। द्वितीय योजना के अन्तर्गत १,७००० स्वास्थ्य निरीक्षकों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था किये जाने का विचार है।

सहायक चिकित्सकों का प्रशिक्षण—१९५४ में स्वीकृत सहायक चिकित्सकों के प्रशिक्षण की एक योजना के अनुसार एक द्विवर्षीय पाठ्य-क्रम की व्यवस्था किये जाने का कार्यक्रम रखा गया है। इस प्रकार से प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्तियों से यह आशा की जाती है कि वे कम से कम ५ वर्षों तक चिकित्सकों के सहायकों के रूप में तथा राजकीय पदों पर काम करेंगे।

कृषि-शिक्षा (१९४७—५९)

स्वतन्त्र भारत में कृषि-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। १९५५-५६ में देश में ७७ कृषि-कालेज थे, जिनमें ५,२३० छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इस वर्ष कृषि-शिक्षा पर २५,९७,०५० रुपये व्यय किये गये। उच्चतर कृषि शिक्षा प्रदान करने के लिये क्रियात्मक पग उठाये जा रहे हैं। कृषि-मन्त्रालय ने रुद्रपुर में एक कृषि-विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिये उत्तर प्रदेश को आर्थिक सहायता देने के लिये कहा है। १९५९ में 'भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था' में कृषि-अध्ययन के लिये एक स्नातकोत्तर स्कूल और 'भारतीय पशु-चिकित्सा के विज्ञान के अध्ययन के लिये स्नातकोत्तर कॉलेज खोला गया है। इसके अतिरिक्त, स्नातकोत्तर शिक्षा के लिये क्षेत्रीय केन्द्र भी स्थापित किये जा रहे हैं। कृषि-सम्बन्धी सूचनाओं के प्रसार के लिये कृषि-अनुसंधान की भारतीय परिषद् अँग्रेजी और हिन्दी में पत्र और बुलेटिन प्रकाशित करती है। कुछ बुलेटिनों का इस वर्ष तामिल, तैलगू और पंजाबी में अनुवाद किया गया है।

कृषि-शिक्षा को सरकार द्वारा अधिक से अधिक महत्व किया जा रहा है। इस समय कृषि के आर्थिक पहलुओं का चार कृषि-अर्थ शोध-केन्द्रों में अध्ययन किया जा रहा है। ये केन्द्र १९५४-५५ में दिल्ली, शान्तिनिकेतन, पूना एवं मद्रास में स्थापित किये गये थे। द्वितीय योजनाकाल में दो और कृषि-अर्थ केन्द्र स्थापित करने का विचार है। योजना-आयोग की 'शोध कार्यक्रम समिति' की

अध्यक्षता में बम्बई, पंजाब, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं मद्रास में कृषि फार्मों के प्रबन्ध के विषय में अध्यापन किया जा रहा है।

द्वितीय योजनाकाल में कृषि-शिक्षा की उपलब्ध सुविधाओं में विस्तार करने पर भी भी विचार किया गया है। बिहार, राजस्थान, त्रावनकोर-कोचीन को नवीन कृषि-कॉलेज स्थापित करने में सहायता दी गई है। आसाम, हैदराबाद, मद्रास, मध्य प्रदेश और पंजाब के कृषि-कॉलेजों को अधिक समृद्ध किया गया है। मध्य भारत में दो नवीन कृषि-कॉलेजों की स्थापना की जा रही है। इस समय देश में २८ कृषि-कॉलेज हैं। ये कॉलेज द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कृषि-स्नातकों की जिनकी संख्या लगभग ६,५०० होगी, समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकेंगी। ग्राम सेवकों के प्रशिक्षण के लिये वर्तमान ५४ प्रारम्भिक कृषि-स्कूलों और ४४ विस्तार केन्द्रों के अतिरिक्त, २५ नवीन प्रारम्भिक कृषि-स्कूल, २१ विस्तार केन्द्र एवं १६ प्रारम्भिक कृषि-विभाग स्थापित किये जाने का विचार किया गया है।[1]

शिक्षा की नवीनतम गतिविधियाँ

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा के अन्य क्षेत्रों की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है और शिक्षा-मंत्रालय ने ठोस कदम उठाये हैं। हम उन नवीनतम गतिविधियों का संक्षिप्त परिचय नीचे दे रहे हैं।

शारीरिक शिक्षा एवं खेल-कूद

शारीरिक शिक्षा—शारीरिक शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं एवं कालेजों के विकास के लिये निर्मित की गई 'राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन योजना' को क्रियान्वित कर दिया गया है। इस योजना का उद्देश्य व्यायामशालाओं और अखाड़ों आदि को सभी सम्भव रीति से सहायता प्रदान करना है।

विभिन्न कार्यक्रमों के मध्य समन्वय स्थापित करने, और सरकार को परामर्श देने के लिये एक 'केन्द्रीय शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन परामर्श मण्डल' की स्थापना की जा चुकी है।

खेल-कूद—खेल कूद के कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिये निम्नाङ्कित उपाय किये गये हैं:—

(१) 'अखिल-भारतीय खेलकूद परिषद्' की स्थापना।

(२) विभिन्न राज्यों में राज्य खेलकूद परिषदों की स्थापना।

---

१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ २५३

(३) 'राजकुमारी खेल-कूद शिक्षण योजना' के अन्तर्गत देश में १९५३ से भारतीय एवं विदेशी खेलकूद विशेषज्ञों की देखभाल में शिक्षण केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है।

राष्ट्रीय अनुशासन योजना—देश के नवयुवकों में अनुशासन की भावना उत्पन्न करने एवं उन्हें नागरिकता के आदर्शों का पूर्ण रूप से ज्ञान कराने के विचार से विस्थापित बालक-बालिकाओं के लिये जुलाई, १९५४ में 'शारीरिक तथा सामान्य सामाजिक शिक्षण योजना' का श्रीगणेश किया गया। इसका प्रारम्भ सर्व प्रथम दिल्ली में 'कस्तूरबा निकेतन' में हुआ। यह योजना अन्य अनेकों राज्यों में भी क्रियान्वित की जा चुकी है। इस समय विभिन्न राज्यों में १ लाख से अधिक बालक बालिकायें प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

युवक कल्याण[1]

युवक-कल्याण के क्षेत्र में अनेकों गतिविधियों का उल्लेख किया जा सकता है। १९५४ से अन्तर्विश्वविद्यालय युवक समारोहों तथा अन्तर्कालिज समारोहों का आयोजन किया जा रहा है। 'युवक नेतृत्व प्रशिक्षण शिविरों' का संगठन किया जा रहा है। १९५८-५९ में शिक्षा मंत्रालय की श्रम एवं समाज सेवा की परियोजनाओं के कार्य का विस्तार किया गया और १,७८५ श्रम तथा समाज सेवा के शिविरों को आयोजन के लिये सरकार द्वारा ३८ लाख रुपये दिये गये। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व से स्थानों के लिये युवक यात्राओं के सम्बन्ध में किराये में रियायत और आर्थिक सहायता दी जाती है। मनोरंजन के लिये हॉल और सिनेमाघरों, रंगमंचों, व्यायामशालाओं, तैरने के लिये तालाबों, खुले थियटरों, खेल के दर्शक-स्थानों के लिये १७ विश्व विद्यालयों, १३ राज्य सरकारों एवं दो प्रशासित क्षेत्रों के लिये अनुदान की अन्यत्र किश्त के रूप में १९५८ ५९ में १६,९५,५०० रुपये सरकार द्वारा किये गये।[2]

हिन्दी का विकास

हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद दिये जाने के कारण केन्द्रीय सरकार हिन्दी के प्रचार एवं विकास सम्बन्धी विभिन्न परियोजनाओं को कार्यान्वित कर चुकी है। राज्य-सरकारों एवं केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों को १०४,८११ रुपयों तथा व्यक्तिगत संगठनों को १,०६,८०० रुपये का अनुदान किया जा चुका है।[3]

---

1. Youth Welfare
२. आजादी का बारहवां वर्ष, पृष्ठ ८२
३. वही, पृष्ठ ८३

प्राविधिक शब्दों के हिन्दी-निर्माण का कार्य शीघ्रतापूर्वक किया जा रहा है। फ़रवरी, १९५९ के अन्त तक लगभग १,४७००० प्राविधिक शब्दों का हिन्दी में सृजन किया जा चुका था। "वैज्ञानिक शब्द-निर्माण' बोर्ड द्वारा तैयार किये गये शब्दों का एक वैज्ञानिक एवं प्रावधिक शब्द-कोष तैयार करने के लिये केन्द्रीय मंत्रालय में एक 'शब्द-कोष यूनिट' स्थापित किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य कार्य अधोलिखित हैं:—

(१) हिन्दी शीघ्रलिपि की एक प्रामाणिक प्रणाली तैयार की जारही है जो १९६० के अन्त तक पूर्ण हो जायगी।

(२) आगरे का 'अखिल भारतीय हिन्दी महाविद्यालय' हिन्दी में शोध एवं अध्यापकों के प्रशिक्षण का कार्य करेगा।

(३) नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा १० खण्डों में हिन्दी विश्वकोष के संग्रह का कार्य शीघ्रता पूर्वक चल रहा है।

(४) हिन्दी की १४ प्रामाणिक रचनाओं की पारिभाषिक शब्दावली सम्बन्धी अनुक्रमणिकायें तैयार करने और १६ प्रसिद्ध लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया जा चुका है।

छात्रवृत्तियाँ

देश और विदेश में विभिन्न विषयों के अध्ययन के लिये छात्रवृत्तियों की योजना कार्यान्वित कर दी गई है। विदेशों में भारतीयों के अध्ययन के लिये भारत-सरकार की छात्रवृत्तियाँ एवं विभिन्न विदेशी सरकारों, संगठनों और विश्वविद्यालयों द्वारा दी गई छात्रवृत्तियों एवं फ़ैलोशिप्स की व्यवस्था है। देश में भारतीय छात्रों को सरकार द्वारा दी गई छात्रवृत्तियों में उल्लेखनीय छात्रवृत्तियाँ अहिन्दी-भाषी प्रदेशों के छात्रों को हिन्दी की उच्च कक्षाओं के लिये प्रदान की गई छात्रवृत्तियाँ, परिगणित जातियों, पिछड़ी जातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के छात्रों को दी जाने वाली छात्रवृत्तियाँ हैं। इसके अतिरिक्त १९५९-६० में राजनीतिक पीड़ितों के बालकों को छात्रवृत्ति एवं अन्य शिक्षा सुविधायें देने की योजना आरम्भ की जारही है।

यूनेस्को के कार्य

१९५८-५९ में शिक्षा, विज्ञान एवं संस्कृति के क्षेत्र में यूनेस्को की विभिन्न परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों की ओर सक्रिय ध्यान दिया गया है। भारत में यूनेस्को के दो महत्वपूर्ण क्षेत्रीय गोष्ठियों का उल्लेख किया जा सकता है जो नई दिल्ली में आयोजित की गईं थीं। इनमें से एक गोष्ठी 'दक्षिण-पूर्व एशिया

में शिक्षा सम्बन्धी सुधार' विषय पर एवं अन्य 'आधारभूत शिक्षा एवं सामुदायिक विकास में दृश्य-श्रव्य शिक्षा के महत्व' पर हुई थी।

डा० एस० राधाकृष्णन के नेतृत्व में भारत सरकार ने एक शिष्टमंडल यूनेस्को की दसवीं साधारण बैठक में भाग लेने के लिये, जो नवम्बर-दिसम्बर १९५८ में हुई थी, पेरिस भेजा।

सारांश

ग्रामीण उच्च शिक्षा—ग्रामीण उच्च शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। ग्रामीण जनता की उच्च शिक्षा के लिये केवल ३ विश्वविद्यालय और ६० कॉलेज हैं। 'विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग' ने अपनी रिपोर्ट में सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। 'ग्रामीण उच्चतर शिक्षा-परिषद्' ने ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं को 'रूरल इंस्टीट्यूट्स' में परिवर्तित करने की सिफ़ारिश की। १० संस्थाओं को 'रूरल इंस्टीट्यूट्स' में परिवर्तित कर दिया गया है।

प्रौढ़ अथवा समाज-शिक्षा—प्रौढ़ शिक्षा को समाज-शिक्षा का नाम देकर उसके रूप को अभिवृद्धित कर दिया गया है। निरक्षर वयस्कों में ज्ञान का प्रसार करने के लिये 'द्वादश सूत्रीय योजना' प्रस्तुत की गई है। समाज-शिक्षा के अन्तर्गत एक 'पंचसूत्री कार्य-क्रम' बनाया गया है।

स्त्री शिक्षा—स्त्री-शिक्षा के सभी क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति हुई है। 'स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय समिति' ने स्त्री-शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर उत्तम सुझाव दिये हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत लड़कियों की शिक्षा के विस्तार तथा अध्यापिकाओं की शिक्षा के लिये प्रारम्भ की गई योजना में उत्तम प्रगति हुई है।

पिछड़े वर्गों की शिक्षा—अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम-जातियों एवं पिछड़े वर्गों की शिक्षा की ओर सरकार विशेष ध्यान दे रही है। सभी संस्थाओं में इन वर्गों के छात्रों के लिये स्थान सुरक्षित कर दिये गये हैं और उन्हें छात्रवृत्तियाँ दी जा रही हैं।

विकलांगों की शिक्षा—स्वतन्त्रता प्राप्ति तक विकलांगों की शिक्षा की बहुत कम व्यवस्था थी। स्वतन्त्र भारत में 'भारतीय बाल-कल्याण परिषद्', 'समाज कल्याण बोर्ड' और 'राष्ट्रीय परामर्श परिषद्' इस दिशा में कार्य कर रहे हैं।

प्राविधिक शिक्षा—स्वतन्त्र भारत में प्राविधिक शिक्षा की समुचित

व्यवस्था कर दी गई है। प्राविधिक संस्थाओं के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये कई परियोजनायें आरम्भ की गई हैं।

चिकित्सा-शिक्षा—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश में कई नवीन मेडिकल कॉलेज खोले गये हैं। उपचारिकाओं और सहायक चिकित्सकों के प्रशिक्षण की उत्तम सुविधायें कर दी गई हैं।

कृषि शिक्षा—सरकार द्वारा कृषि-शिक्षा को महत्व दिया जा रहा है। कृषि के आर्थिक पहलुओं का चार कृषि अर्थ शोध-केन्द्रों में अध्ययन किया जा रहा है। कृषि-शिक्षा के लिये नये कॉलज स्थापित किये गये हैं।

शिक्षा की नवीनतम गतिविधियाँ—इतके अन्तर्गत शारीरिक शिक्षा, युवक-कल्याण, हिन्दी का विकास, छात्रवृत्तियाँ, यूनेस्को के कार्य आदि हैं।

TEST QUESTIONS

1. The idea of Rural Universities has recently gained much favour with the Indian leaders. Bearing in mind the recommendations of the Radhakrishnan Commission outline a scheme to make the idea a real success in the country.
2. Write a brief account of the progress of womens education or social education from 1947 to 1959.
3. Describe briefly the recent educational developments in India

—: ● :—

अध्याय २५

प्रथम पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

शताब्दियों से परतन्त्रता की शृङ्खलाओं से बन्दी भारत अगस्त १९४७ में मुक्त हुआ। परन्तु गत दो महायुद्धों, अंग्रेजों की शोषण-नीति तथा देश के विभाजन ने राष्ट्र के समक्ष अति जटिल समस्यायें उपस्थित कर दीं। उन समस्याओं का निवारण एवं देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थितियों का पुनर्संङ्गठन करके ही स्वाधीनता के चरम लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव थी। अतः विश्व के अनेक समृद्ध तथा सभ्य देशों के समान भारत ने भी अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित करने, एक निश्चित दिशा में अग्रसर होने और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास करने का अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से अप्रैल १९५१ में अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित की। इसमें अन्य विषयों के साथ-साथ शिक्षा को भी महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया।

लोकतन्त्र में शिक्षा का उद्देश्य

"देशवासियों की सहयोग भावना, व्यवस्थित नागरिक जीवन तथा आम जनता के सामाजिक कार्यों में बुद्धिमत्ता के साथ भाग लेने की योग्यता पर ही लोकतन्त्र राज्य की सफलता निर्भर है। इसलिये यह बहुत आवश्ययक है कि

शिक्षा ऐसी हो कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को अधिकारों से अधिक महत्त्व देने लगे और आलोचनात्मक प्रशंसा करने तथा ठीक तरह से सोचने विचारने की उसकी आदत पड़ जाय।"[1] इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा का पुनर्गठन अति आवश्यक था, क्योंकि विदेशियों द्वारा प्रचलित शिक्षा-प्रणाली पर्याप्त रूप से दोषपूर्ण थी। इसके अतिरिक्त जन-साधारण को शिक्षा की सुविधायें भी उपलब्ध नहीं थीं और अन्य देशों की अपेक्षा भारत में साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम था।

तत्कालीन भारतीय शिक्षा की स्थिति

१९५१ में भारतीय शिक्षा की स्थिति अति शोचनीय थी। अनेकों दोषों से युक्त होने के अतिरिक्त देश में साक्षरता का प्रतिशत केवल १७·२ था। इससे स्पष्ट है कि सभी व्यक्तियों को शिक्षा-सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध नहीं थीं। वस्तुतः ६-११ वर्ष की आयु के कुल ४० प्रतिशत, ११-१७ वर्ष की आयु के कुल १० प्रतिशत और १७-२३ वर्ष की आयु के ०·९ प्रतिशत व्यक्तियों को ही शिक्षा की सुविधायें प्राप्त थीं, जबकि यूरोप और अमेरिका के देशों में ८० से लेकर १०० प्रतिशत तक बालक-बालिकायें शिक्षा से लाभ उठा रहे थे। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा को अनावश्यक अधिक महत्त्व, टेकनिकल तथा व्यावसायिक शिक्षा का अभाव, नगरों एवं ग्रामों में शिक्षा-सुविधाओं की असमानता, स्त्री शिक्षा की उपेक्षा और प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी आदि कुछ ऐसे दोष थे, जिनका निवारण अनिवार्य था। अतः भारतीय शिक्षा को जनतन्त्र की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिये शिक्षा का पुनर्गठन अनिवार्य था। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस दिशा में क्रियात्मक पग उठाया गया।

शिक्षा पुनर्गठन के लिये सुझाव

योजना-आयोग ने भारतीय शिक्षा की तत्कालीन स्थिति पर अपने विचार व्यक्त करने के पश्चात् शिक्षा के पुनर्गठन के सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिये :—

१. शिक्षा के विभिन्न अङ्गों में सम्बन्ध एवं समन्वय स्थापित करना।
२. बेसिक एवं समाज-शिक्षा के क्षेत्रों का प्रसार करना।
३. माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय-शिक्षा को नवीन रूप देकर सुव्यवस्थित करना।
४. ग्रामीण क्षेत्रों के लिये उच्च शिक्षा की उपयुक्त प्रणाली को प्रचलित करना।

---

1. **पहली पंचवर्षीय योजना** (जनता संस्करण), पृष्ठ ३०१.

५. व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा को देश की आवश्यकताओं के अनुसार नवीन रूप प्रदान करना।

६. स्त्री-शिक्षा का विस्तार करना और ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री-शिक्षा को अधिक से अधिक प्रोत्साहन देना।

७. अध्यापकों के प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध करना।

८. स्त्री-शिक्षकों और बेसिक अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये विशेष रूप से व्यवस्था करना।

९. अध्यापकों के वेतन और उनके सेवा-प्रतिबन्धों (Conditions of Service) में सुधार करना।

१०. शिक्षा में पिछड़े हुए राज्यों को उदार सहायता-अनुदान देकर वहाँ शिक्षा का विकास एवं विस्तार करना।

शिक्षा पर व्यय

अनुमान लगाया गया कि प्रथम योजना-काल में ६–१४ वर्ष की आयु के शत प्रतिशत बच्चों को शिक्षा की सुविधायें प्रदान करने के लिये लगभग ४०० करोड़ रुपये प्रति वर्ष व्यय होंगे। इसके अतिरिक्त २०० करोड़ रुपये बेसिक और हाई स्कूल के अध्यापकों के प्रशिक्षण तथा २७२ करोड़ रुपये स्कूलों के भवनों के लिये आवश्यक थे। सरकार ने इतनी विशाल धन राशि व्यय करने के लिये अपने को असमर्थ पाया और योजना काल में १६९ करोड़ रुपये की स्वीकृति दी। इस धन में से ४४ करोड़ केन्द्र द्वारा और १२५ करोड़ राज्य सरकारों द्वारा व्यय किये गये[1]। यह धनराशि इतनी अल्प थी कि इससे देश की समस्त शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हो सकती थीं। अतः सरकार ने जनता से अपील की कि वह धन, धरती, सेवा और भवन देकर इस कार्य में हाथ बँटावे।

प्राथमिकता

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, प्रथम पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर व्यय किये जाने के लिये १६९ करोड़ रुपये की स्वीकृति दी गई। क्योंकि इस धन से शिक्षा के सभी अंगों का विकास किया जाना सम्भव नहीं था, अतः उनमें से कुछ को प्राथमिकता प्रदान की गई। योजना-आयोग का मत था कि प्राप्त सुविधाओं के संगठन और सुधार के अतिरिक्त आधुनिक अनुसंधान, परीक्षण एवं शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग और अध्यापकों के प्रशिक्षण तथा शिक्षकों,

१. दूसरी पंचवर्षीय योजना पृष्ठ, ४६८

वयस्कों और बच्चों के लिये उपयुक्त साहित्य की रचना आदि कार्यों को प्राथमिकता दी जाय। साथ ही बेसिक एवं समाज शिक्षा के लिये पर्याप्त सुविधायें जुटाई जायँ और टेकनिकल तथा व्यावसायिक शिक्षा की सुविधायें निम्न तथा उच्च दोनों कक्षाओं के छात्रों को प्रदान की जायँ। कुछ विशेष क्षेत्रों में उच्च कक्षाओं के छात्रों को प्राविधिक प्रशिक्षण की सुविधायें दी जायँ। जहाँ तक विश्वविद्यालय-शिक्षा का प्रश्न है, सर्व-प्रथम शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया जाय। साथ ही स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान कार्य में प्रत्येक सम्भव रीति से उन्नति की जाय।

योजना के शिक्षा-लक्ष्य

योजना-आयोग को आशा थी कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त तक निम्नांकित लक्ष्य प्राप्त हो जायेंगे:—

१. १९५६ से पूर्व ही ६-११ वर्ष की आयु के ६० प्रतिशत बालकों को शिक्षा की सुविधायें प्राप्त हो जायेंगी। १९५०-५१ में यह प्रतिशत ४४·५ था।

२. विद्यालयों में ६-११ वर्ष तक की आयु वाली बालिकाओं की संख्या १९५०-५१ में २३-३ प्रतिशत थी। १९५५-५६ में यह संख्या बढ़कर ४० प्रतिशत पहुँच जायगी।

३. योजना-काल में ६-१४ वर्ष की आयु के कुछ बच्चों को भी शिक्षा की सुविधायें प्राप्त हो जायँगी।

४. स्कूलों में माध्यमिक शिक्षा के लिये योग्य आयु के बच्चों की संख्या १५ प्रतिशत तक पहुँच जायगी एवं इन स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने वाली बालिकाओं की संख्या भी बढ़कर १० प्रतिशत हो जायगी।

५. समाज-शिक्षा के क्षेत्र में १४-४० वर्ष की आयु के स्त्री-पुरुषों को व्यावसायिक अर्थों में सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने की शिक्षा दी जायगी। इसमें भाग लेने वाले स्त्री एवं पुरुषों की संख्या कम से कम क्रमशः १० और २० प्रतिशत होगी।

इस योजना में विश्वविद्यालय-शिक्षा के विस्तार का कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया। कारण यह था कि विकास की अपेक्षा उच्च शिक्षा का पुनर्संगठन अधिक आवश्यक समझा कर उसी पर ध्यान केन्द्रित किया गया।

योजना का कार्य-क्रम

शिक्षा की योजनाओं का केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों में स्पष्ट विभाजन

कर दिया गया था। अखिल-भारतीय महत्त्व के शिक्षा-कार्य केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत रखे गये और राज्यों से सम्बन्ध रखने वाले शिक्षा-कार्य-क्रम को प्रतिपादित करने का उत्तरदायित्व राज्य-सरकारों पर रखा गया। परन्तु वस्तुतः इस विभाजन का सम्बन्ध केवल शिक्षा पर केन्द्र एवं राज्यों द्वारा किये जाने वाले व्यय से था। जहाँ तक शिक्षा-योजना को क्रियान्वित करने और सफल बनाने का प्रश्न था, इस कार्य में केन्द्रीय सरकार, राज्य-सरकारों एवं स्थानीय और व्यक्तिगत संस्थाओं सभी ने सहयोग दिया। विधान के अनुसार शिक्षा-प्रचार का समस्त उत्तरदायित्व राज्यों पर है। केन्द्र का कार्य केवल यह है कि वह राज्य के कार्यों में इतना सहयोग दे और उनकी इतनी देख-रेख रखे कि राष्ट्र द्वारा निर्धारित नीति का पालन होता रहे। परन्तु इसके बावजूद भी केन्द्रीय सरकार ने उन राज्यों को तत्परतापूर्वक सहायता दी, जिन्होंने अखिल भारतीय महत्व के कार्यों में सहयोग किया, यथा—प्रयोगात्मक योजनायें, कुछ चुने हुए व्यक्तियों का प्रशिक्षण, साहित्य-रचना एवं नवीनतम परीक्षण आदि। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत शिक्षा के विकास एवं पुनर्संङ्गठन का जो कार्य-क्रम रखा गया, उसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

बेसिक एवं प्राथमिक शिक्षा

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत-सरकार ने ६-१४ वर्ष की अवस्था वाले बच्चों के लिये बेसिक शिक्षा-प्रणाली को आदर्श मान लिया था। परन्तु प्रथम योजना कार्यान्वित किये जाने से पूर्व इस दिशा में थोड़ा ही कार्य किया गया था। अतः यह निश्चय किया गया कि योजनाकाल में बेसिक शिक्षा की विधियों एवं शिक्षा-प्रणाली का इस प्रकार विकास किया जाय कि अधिकांश अल्प शिक्षित अध्यापक इसे अपना सकें। इस अभिप्राय से 'क' और 'ख' भाग के राज्यों और 'ग' के राज्य दिल्ली में बेसिक स्कूलों के एक समूह को स्थापित करने की योजना बनाई गई। इस योजना में अनेकों पूर्व-बेसिक स्कूल, एक उत्तर-बेसिक स्कूल, एक अध्यापक-प्रशिक्षण स्कूल और एक अध्यापक-प्रशिक्षण कॉलिज की स्थापना की जानी थी। ग्रामों के समान नगरों में भी बेसिक स्कूल खोलने का निश्चय किया गया, जिससे नगरों की आवश्यकता के अनुसार बेसिक शिक्षा-प्रणाली को अपनाया जा सके। इस कार्य का भार राज्य सरकारों को सौंपा गया।

प्रथम योजना-काल में नवीन प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना का निश्चय

नहीं किया गया। इसके विपरीत, इस बात की चेष्टा की गई कि प्रचलित प्राथमिक विद्यालयों में सुधार किया जाय, बेसिक ढंग पर उनका रूपान्तर किया जाय और उन्हीं में कार्य करने वाले अध्यापकों की सेवाओं से लाभ उठाया जाय। अधिक संख्या में शिल्प में दक्ष अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध शीघ्र किया जाय और अधिक से अधिक प्राथमिक विद्यालयों में शिल्प की शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय।

बेसिक अध्यापकों का प्रशिक्षण

स्थापित किये जाने वाले बेसिक स्कूलों के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों की समस्या अत्यंत गम्भीर थी। अल्पकाल में अध्यापकों की वांछित संख्या को प्रशिक्षण देने का कार्य अति कठिन था। अतः केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों, गैर-सरकारी संस्थाओं, बेसिक शिक्षा के विशेषज्ञों एवं कृषि, पशु-पालन और सरकारी समितियों ने इस कार्य में सहयोग दिया। अध्यापक-प्रशिक्षण कार्य दो भागों में विभाजित किया गया और दोनों को एक-साथ चालू रखा गया। प्रथम भाग का कार्य बेसिक शिक्षा-प्रणाली को उन्नत करना था। द्वितीय भाग को प्रादेशिक क्षेत्रों में अधिक से अधिक संख्या में अध्यापकों के प्रशिक्षण का कार्य सौंपा गया।

माध्यमिक शिक्षा

प्रथम योजना-काल में माध्यमिक शिक्षा को पुनर्संगठित करने का निश्चय किया गया। इस बात पर बल दिया गया कि माध्यमिक शिक्षा की आधार-शिला सामान्य बेसिक शिक्षा हो अर्थात् उसका बेसिक शिक्षा से घनिष्ट सम्बन्ध हो, और जब कोई बच्चा बेसिक स्कूल से माध्यमिक स्कूल में आवे, तो उसे यह अनुभव न हो कि दोनों स्कूलों के पाठ्य-क्रम तथा शिक्षा-प्रणाली में आकाश-पाताल का अन्तर है।

मुदालियर कमीशन की सिफ़ारिशों का अनुमान लगाते हुए केन्द्रीय सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं पर शोध-कार्य करने के विचार से एक अनुसंधानशाला (Educational Research Bureau) स्थापित करने की योजना बनाई। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राज्य में कम से कम एक बहुउद्देशीय स्कूल की स्थापना, १४ से १८ वर्ष की अवस्था के छात्रों के लिये व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था, पब्लिक स्कूलों में निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने का प्रबन्ध, पुराने माध्यमिक स्कूलों का सुधार एवं नये विद्यालयों का शिला-न्यास तथा माध्यमिक पाठ्यक्रम में शारीरिक शिक्षा, सैनिक प्रशिक्षण, कृषि-विज्ञान, उद्यान-कला एवं सङ्गीत सम्मिलित करने का निश्चय किया गया।

विश्वविद्यालय शिक्षा

प्रथम योजना-काल में विश्वविद्यालय एवं कालेजीय शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस कार्य में होने वाले व्यय का अधिकांश भार केन्द्रीय सरकार ने उठाया, क्योंकि प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा का भार संभालने में राज्यों के साधनों पर पर्याप्त जोर पड़ रहा था। इस बात का ध्यान रखा गया कि पर्याप्त कोष के अभाव में कोई नवीन विश्वविद्यालय न स्थापित किया जाय। योजना-काल में विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों को आर्थिक सहायता एवं अनुसंधान और प्रशिक्षण के लिये विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं।

कॉलेजों में भयंकर रूप से बढ़ती हुई छात्रों की संख्या की समस्या का भी हल खोजने का प्रयास किया गया। सरकार के विचारानुसार इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही नहीं था कि कॉलेजों में प्रवेश प्राप्त करने के लिये विशेष योग्यता की परीक्षा में उत्तीर्ण होना एक सामान्य नियम बना दिया जाय जिससे ऐसे छात्र जिनके लिये कॉलेजीय शिक्षा व्यर्थ सिद्ध हो, विश्वविद्यालय में प्रवेश न पा सकें। इससे यह और भी अधिक आवश्यक हो जायगा कि माध्यमिक शिक्षा को सार्थक तथा पूर्ण बनाया जाय।

ग्रामीण विश्वविद्यालय

भारत-सरकार ने अनुभव किया कि ग्रामीण जनता को उच्च कोटि की शिक्षा की सुविधायें प्रदान करना आवश्यक है। अतः यह निश्चय किया गया कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के काल में ही केन्द्रीय सरकार को कम से कम एक ग्रामीण विश्वविद्यालय के संस्थापन में अवश्य सहयोग प्रदान करना चाहिये। इसका निर्माण ऐसे स्थान पर किया जाय, जहाँ प्राथमिक बेसिक शिक्षा कार्यान्वित हो चुकी हो। इस प्रकार का ग्रामीण विश्वविद्यालय जहाँ एक ओर ग्राम की सेवा करेगा, वहाँ दूसरी ओर आधुनिक विश्वविद्यालयों के लिये उपयुक्त सुझाव देने में उपयोगी सिद्ध होगा।

समाज-शिक्षा

प्रौढ़-शिक्षा के कार्य को केवल साक्षरता प्रचार तक ही सीमित नहीं माना गया, अपितु उसको विस्तृत करना आवश्यक समझा गया, जिससे वयस्कों के लिये स्वास्थ्य-रक्षा, अपने अवकाश के समय का सदुपयोग तथा नागरिकता की शिक्षा भी इसमें सम्मिलित कर ली जाय। इस नवीन अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिये 'प्रौढ़-शिक्षा' के स्थान में 'समाज-शिक्षा' शब्द का प्रयोग किया

गया। व्यापक रूप से इसके अन्तर्गत सामाजिक कल्याण के लिये सामाजिक रूप से किये गये समस्त कार्यों का समावेश हो जाता है। देश की अधिकांश जनता के अशिक्षित होने के कारण, राष्ट्र की उन्नति के लिये समाज-शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया। प्रथम योजना में समाज-शिक्षा के लिये ७·५ करोड रुपये की स्वीकृति दी गई। अनेकों राज्यों ने भी सामाजिक सेवा-कार्य की व्यवस्था की और कुछ ने तो अति उपयोगी कार्य भी किया। सार्वजनिक रूप से किये गये प्रत्येक कार्य में समाज-शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। उदाहरणार्थ—ग्राम पंचायतों, सहकारी समितियों (Cooperative Societies) एवं व्यावसायिक संघों (Trade Unions) आदि द्वारा किये गये कार्य।

सरकार द्वारा यह अधिक उपयोगी समझा गया कि समाज-शिक्षा के कार्य का परीक्षण एवं संगठन इस प्रकार किया जाय कि प्रत्येक क्षेत्र की अधिक आवश्यक आवश्यकताओं का कार्य पहिले प्रारम्भ किया जाय और इन कार्यों की सफलता से ही भविष्य के विकास-कार्य के लिये अधिक साधन एवं सुविधायें उत्पन्न की जायें। सहकारी प्रणाली पर चलाये गये आर्थिक उन्नति के कार्यों को समाज-शिक्षा का कार्य आरम्भ करने के लिये प्रायः अनुकूल पाया गया। प्रशिक्षित समाज-सेवा संचालकों से समाज-शिक्षा के कार्य में पर्याप्त सहयोग पाने की आशा की गई। प्रत्येक स्कूल एवं कॉलेज से अपील की गई कि वह अपने को समीपवर्ती क्षेत्र में समाज-शिक्षा तथा प्रचार-कार्य का साधन बनाये।

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त प्राविधिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया था। स्नातक-पूर्व शिक्षा की देश में पर्याप्त सुविधायें प्राप्त हो गईं थीं, परन्तु स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अनुसंधान के लिये इस प्रकार की सुविधायें नहीं थीं। अतः निश्चय किया गया कि 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइन्स' का विकास किया जाय, इंजीनियरिंग के १४ कॉलेज स्थापित किये जायँ, विशेष व्यावसायिक विषयों के शिक्षण की व्यवस्था की जाय, एवं व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के लिये 'परामर्शदाता केन्द्रों' की स्थापना की जाय। इसके अतिरिक्त नवीन प्राविधिक तथा व्यावसायिक स्कूलों की स्थापना, क्राफ़्ट स्कूलों का जूनियर टेकनिकल हाईस्कूलों में परिवर्तन, जूनियर बहुउद्योगीय स्कूलों का निर्माण, सामान्य माध्यमिक विद्यालयों का टेकनिकल हाई स्कूलों के रूप में विकास, औद्योगिक स्कूलों का शिलान्यास, पाठ्य-क्रमों में

कृषि-शिक्षा का उपयुक्त स्थान, वाणिज्य एवं प्राविधिक स्कूलों का कालेजों में रूपान्तर और विदेशों में उच्च शिक्षा के लिये छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की योजनाओं का निर्माण किया गया। कलाकारों एवं शिल्पकारों की प्रशिक्षण देने की अधिक सुविधाओं तथा ग्रामों में भी प्रशिक्षण केन्द्र खोलने की व्यवस्था की गई।

स्त्री-शिक्षा

योजना-आयोग ने स्वीकार किया कि यद्यपि स्त्रियाँ स्वाभाविक रूप से कुछ विशेष कार्यों, यथा, अध्यापन एवं उपचारण के लिये विशेष रूप से उपयुक्त हैं, तथापि उन्हें भी पुरुषों के सदृश ही शिक्षा की सुविधायें प्राप्त होनी चाहिये। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक समझा गया कि उन्हें ऐसे अवसर प्रदान किये जायँ, जिससे वे प्राइवेट रूप में उच्च परीक्षाओं में सम्मिलित हो सकें। यह व्यवस्था भी की जाय कि माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा इस प्रकार की हो कि वह व्यावसायिक महत्त्व रखे और उसमें स्त्रियों को किसी हस्तकार्य की शिक्षा देने पर बल दिया जाय।

अध्यापकों का वेतन एवं सेवा-प्रतिबन्ध

योजना आयोग के मतानुसार स्कूलों में शिक्षा का निम्न स्तर होने का एक कारण यह भी है कि अध्यापकों को अति अल्प वेतन मिलता है और उनके सेवा-प्रतिबन्ध अत्यन्त असंतोषजनक हैं। देश के उन भागों में जहाँ केन्द्रीय सरकार देख-भाल करती है, शिक्षकों की दशा में कुछ सुधार हुआ है, फिर भी सम्पूर्ण रूप से उनकी स्थिति अभी असंतोषजनक है। अतः यह निश्चय किया गया कि प्रत्येक राज्य अपने साधनों के अन्तर्गत शिक्षकों के वेतन का स्तर भी अन्य सरकारी नौकरियों के समकक्ष बनावे। अध्यापकों को अपनी अल्प आय में वृद्धि करने के लिये उन्हें इस बात की स्वतंत्रता दे दी जाय कि वे ग्रीष्मावकाश में अभिनवन पाठ्य-क्रम का प्रबन्ध एवं धन्धों में लगे हुए बच्चों के लिये सायंकालीन कक्षाओं की व्यवस्था और विश्वविद्यालय में विस्तार सेवाओं का आयोजन कर सकें।

शिक्षा-सम्बन्धी अन्य कार्य

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जिन अन्य शिक्षा-कार्यों को स्थान दिया गया, वे अग्रलिखित थे :—श्रव्य-दृश्य (Audio Visual) शिक्षा, शारीरिक शिक्षा, युवक-कल्याण (Youth Welfare), विकलांगों की शिक्षा,

सैनिक शिक्षा, भारतीय भाषाओं तथा साहित्य का विकास, प्राच्य शिक्षा तथा सांख्य-शास्त्र ऐसे विषयों को प्रोत्साहन, इत्यादि।

शिक्षा-योजना पर आलोचनात्मक दृष्टि

प्रथम पंचवर्षीय आयोजन के अन्तर्गत भारतीय शिक्षा के विकास, विस्तार एवं पुनर्गठन के लिये एक योजना का निर्माण करके अप्रैल १९५१ में उसे कार्यान्वित कर दिया गया। इस योजना में गुणों के साथ-साथ दोषों का अभाव ही नहीं प्रत्युत इसके अन्तर्गत भी अनेकों ऐसी बातें थीं जो दोषपूर्ण थीं। सर्वप्रथम, योजना में शिक्षा के जो लक्ष्य निर्धारित किये गये थे, उन्हें प्राप्त करने में सफलता न मिली। उदाहरणार्थ, प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित न किया जा सका, बहुउद्देशीय माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना केवल नाम-मात्र के लिये हुई, विश्वविद्यालय, व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा-क्षेत्रों में व्यापक विकास न किया जा सका और ६ से ११ वयवर्ग के बालकों में से केवल ५१ प्रतिशत को शिक्षा की सुविधायें प्राप्त हो सकीं।[1] इस वय-वर्ग के बालकों के सम्बन्ध में तो द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रगति को संतोषजनक माना गया है, परन्तु ११-१४ वय-वर्ग के बालकों की शिक्षा-प्रगति को बहुत धीमी स्वीकार किया गया है।[2]

शिक्षा-योजना का द्वितीय दोष यह है कि इसने अंग्रेजों द्वारा प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के दोषों का स्पष्ट उल्लेख करके भी उनके निवारण के लिये कोई रचनात्मक पग नहीं उठाया। उस शिक्षा-प्रणाली को पूर्ववत् चलने दिया गया। जब तक विदेशियों द्वारा भारत पर थोपी गई शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन नहीं किया जायगा, तब तक शिक्षा-प्रसार के जो भी कार्य-क्रम बनाये जायेंगे उनसे देश को किसी प्रकार का लाभ होने की सम्भावना न होगी। अतः आवश्यकता इस बात की है कि पहिले प्रचलित शिक्षा-प्रणाली को दोष मुक्त किया जाय और तदन्तर शिक्षा के विकास तथा विस्तार की योजनाओं को कार्यान्वित किया जाय। शिक्षा-योजना में इस सिद्धान्त के प्रतिकूल जिस नीति का अनुसरण किया गया, उसका असफल होना अवश्यम्भावी था।

तृतीय दोष यह है कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की ओर रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। यहाँ यह कहना युक्तियुक्त होगा कि यही शिक्षा देश के भावी नागरिकों के निर्माण की आधारशिला है। इस आधार को पुष्ट बना

१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ ४७१
२. वही

कर ही भावी नागरिकों के लिये शिक्षा के विशाल भवन का निर्माण किया जा सकता है।

चतुर्थ, योजना-आयोग ने शिक्षकों की असंतोषजनक स्थिति के प्रति सहानुभूति व्यक्त करके भी उनके आर्थिक हित तथा सामाजिक सम्मान के लिये जो प्रयास किये वे प्रायः नगण्य ही कहे जा सकते हैं। एक ओर तो योजना-आयोग ने यह इच्छा व्यक्त की कि "शिक्षा ऐसी हो कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों को अधिकारों से अधिक महत्त्व देने लगे", परन्तु दूसरी ओर जिन शिक्षकों पर "ऐसी शिक्षा" प्रदान करने का महान उत्तरदायित्व रखा गया उनकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिये कोई भी संतोषजनक व्यवस्था नहीं की गई। सम्भवतः शिक्षकों को आर्थिक कठिनाइयों में ग्रस्त और समाज में निम्नतमस्तर पर रख कर ही योजना-आयोग "ऐसी शिक्षा" के प्रसार का स्वर्णिम स्वप्न देख रहा था और सम्भवतः उसे पूर्ण रूप से आभास हो गया होगा कि उसका स्वप्न कोरा स्वप्न ही रह गया।

पंचम, सार्वजनिक शिक्षा को लोकतन्त्र के लिये आवश्यक बता कर भी आयोग ने पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के लिये इतनी अल्प धन राशि निर्धारित की जो लज्जा की बात कही जा सकती है। इतने विशाल देश की जनसंख्या को शिक्षा की सुविधायें प्रदान करने और विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का प्रसार करने के लिये केवल १६९ करोड़ रुपये व्यय किये गये।

शिक्षा-योजना का अन्तिम दोष यह है कि इसका संचालन सुचारु रूप से नहीं किया गया। लाखों रुपयों का दुरुपयोग किया गया। शिक्षा-सम्बन्धी अनेकों कार्य उत्साहपूर्वक प्रारम्भ किये जाने के पश्चात् तनिक सी बाधा उपस्थित होने पर स्थगित कर दिये गये, जिससे धन और शक्ति का भयंकर नाश हुआ। इन कार्यों को सम्पन्न करने का भार जिन व्यक्तियों पर रखा गया, उन्होंने निस्स्वार्थ सेवा, त्याग एवं परोपकार की भावनाओं का परिचय नहीं दिया।

उपरिलिखित दोषों के बावजूद भी भारतीय शिक्षा के इतिहास में शिक्षा के नियोजन का यह प्रथम प्रयास था। अनुभव मनुष्य का सर्वोत्तम शिक्षक है। योजनाकारों ने शिक्षा-योजना के दोषों तथा त्रुटियों से एक नवीन पाठ सीखा और उसके आधार पर द्वितीय योजना में उनसे मुक्त रह कर शिक्षा के प्रसार एवं पुनर्गठन का दृढ़ संकल्प किया। फलस्वरूप उन्हें प्रथम योजना की अपेक्षा द्वितीय योजना में अधिक सफलता हस्तगत हो रही है।

सारांश

स्वतन्त्र भारत ने अप्रैल १९५१ में अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित की। योजना में भारतीय शिक्षा के पुनर्गठन तथा प्रसार का कार्य भी प्रारम्भ किया गया। शिक्षा पर १६९ करोड़ रुपये व्यय किये गये।

योजना के शिक्षा-लक्ष्य—१९५६ से पूर्व ही ६-११ वर्ष की आयु के ६० प्रतिशत बालकों को शिक्षा की सुविधायें देना, १५ प्रतिशत बालकों और १० प्रतिशत बालिकाओं को माध्यमिक शिक्षा सुलभ बनाना और समाज-शिक्षा के क्षेत्र में १४-४० वर्ष की आयु के स्त्री-पुरुषों को सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने की शिक्षा देना, इत्यादि। योजना का कार्य क्रम निम्नलिखित था :—

१. **बेसिक एवं प्राथमिक शिक्षा**—बेसिक शिक्षा प्रणाली का विकास ग्रामों तथा नगरों में बेसिक स्कूलों की स्थापना, प्रचलित प्राथमिक विद्यालयों में सुधार और उनका बेसिक स्कूलों में परिवर्तन।

२. **बेसिक अध्यापकों का प्रशिक्षण**—बेसिक विद्यालयों के लिये अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था।

३. **माध्यमिक शिक्षा**—माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संङ्गठन और बेसिक शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना, बहुउद्देशीय स्कूलों का निर्माण और व्यावसायिक शिक्षा, कृषि-शिक्षा, शारीरिक शिक्षा तथा सैनिक शिक्षा की व्यवस्था।

४. **विश्वविद्यालय-शिक्षा**—नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना न करना, विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों एवं अनुसंधान और प्रशिक्षण के विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ।

५. **ग्रामीण विश्वविद्यालय**—ग्रामीण जनता को उच्च कोटि की शिक्षा की सुविधायें देने के लिये कम से कम एक ग्रामीण विश्वविद्यालय की स्थापना।

६. **समाज-शिक्षा**—वयस्कों को साक्षरता, स्वास्थ्य-रक्षा, नागरिकता और समय के सदुपयोग की शिक्षा। ग्राम-पंचायतों, सहकारी समितियों एवं व्यावसायिक संघों द्वारा समाज-शिक्षा-कार्य में सहयोग।

७. **प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा**—'इन्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइन्स' का विकास, १४ इंजीनियरिंग कॉलेजों की स्थापना, विशेष व्यावसायिक विषयों का शिक्षण, प्राविधिक एवं व्यावसायिक स्कूलों की स्थापना, जूनियर बहुद्योगीय स्कूलों का निर्माण, औद्योगिक स्कूलों का शिलान्यास आदि।

८. **स्त्री-शिक्षा**—पुरुषों के सदृश स्त्रियों को शिक्षा की सुविधायें और स्त्रियों के लिये प्राइवेट रूप में उच्च परीक्षाओं में सम्मिलित होने की व्यवस्था।

९. **अध्यापक**—अध्यापकों की वेतन-वृद्धि और उनके सेवा-प्रतिबन्धों में सुधार।

१०. **शिक्षा सम्बन्धी अन्य कार्य**—श्रव्य-दृश्य शिक्षा, विकलांगों की शिक्षा, शरीरिक शिक्षा, युवक-कल्याण, सैनिक शिक्षा आदि की व्यवस्था।

TEST QUESTIONS

1. Write a critical note on "Education in India under the First Five-Year Plan"
2. Discuss briefly the achievements in the following fields of education under the First Five-Year Plan :-(a)Primary and Basic Education; (b) Secondary Education; (c) Technical and Vocational Education; and (d) Social Education.

—: o :—

अध्याय २६

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

प्रथम पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य शिक्षा को लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुकूल बनाना और भारतीय शिक्षा प्रणाली में निहित दोषों का उन्मूलन करना था। इस प्रयास में केवल आंशिक सफलता प्राप्त हुई। योजना में जो अभाव थे उनकी ओर संकेत करते हुए श्री देशमुख ने अलंकारिक भाषा में कहा था : "तस्वीर में कुछ धब्बे भी हैं और धब्बों का होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि तस्वीर बहुत बड़ी बन रही है।" प्रथम योजना काल में शिक्षा के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति न हो सकी। इसी बात को ध्यान में रख कर द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के पुनर्गठन पर विशेष रूप से बल दिया गया।

शिक्षा योजना के उद्देश्य

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन के अन्तर्गत शिक्षा-योजना के उद्देश्य निम्नांकित हैं :—

१. बेसिक तथा प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करना।
२. माध्यमिक शिक्षा को बहुउद्देशीय बना कर उसका रूप परिवर्तन करना।

३. कॉलेज और विश्वविद्यालय के शिक्षा-स्तर में सुधार करके उसको ऊँचा करना।

४. प्राविधिक, प्रौद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा के लिये सुविधाओं का विस्तार करना।

५. समाज-शिक्षा एवं सांस्कृतिक विकास के कार्य-क्रमों को कार्यान्वित करना।

शिक्षा पर व्यय

प्रथम योजना में शिक्षा पर १६९ करोड़ रुपये व्यय किये गये थे। द्वितीय योजना में ३०७ करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गई, जिनमें से ९५ करोड़ केन्द्रीय सरकार द्वारा और २१२ करोड़ राज्य सरकारों द्वारा व्यय किये जाने हैं। दोनों योजनाओं में व्यय का विभाजन इस प्रकार है :—

शिक्षा का स्तर	व्यय करोड़ रुपयों में	
	प्रथम योजना १९५१-५६	द्वितीय योजना १९५६-६१
प्राथमिक शिक्षा	९३	८९
माध्यमिक शिक्षा	२२	५१
विश्वविद्यालय शिक्षा	१५	५७
प्रौद्योगिक व व्यावसायिक शिक्षा	२३	४८
समाज-शिक्षा	५	५
प्रशासन व विविध	११	५७
योग	१६९	३०७

ऊपर जिस व्यवस्था का उल्लेख किया गया है, उसके अतिरिक्त द्वितीय योजना में राष्ट्रीय विस्तार सेवा एवं सामुदायिक विकास-क्षेत्रों को शिक्षा-सम्बन्धी कार्य-क्रम में सामान्य शिक्षा पर १२ करोड़ और समाज-शिक्षा पर १० करोड़ रुपए व्यय करने की व्यवस्था की गई है। विकास के अन्य क्षेत्रों- कृषि, स्वास्थ्य, पिछड़े वर्गों का कल्याण, विस्थापित तथा अन्य व्यक्तियों का पुनर्वास आदि कार्य-क्रमों के अन्तर्गत भी शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाओं के विस्तार के निमित्त पर्याप्त धन-राशि निर्धारित की गई है।

शिक्षा-योजना के लक्ष्य

प्रथम योजना में शिक्षा के विविध क्षेत्रों में कितनी उन्नति हुई और द्वितीय योजना का क्या लक्ष्य है, इसका विवरण निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाता है :—

	१९५०–५१ योजना से पूर्व	१९५५–५६ प्रथम योजना	१९६०–६१ द्वितीय योजना
क. विभिन्न वय-वर्ग के बच्चों के लिये शिक्षा सुविधायें			
१. ६–११ वय वर्ग का प्रतिशत	४२.०	५१.०	६२.७
२. ११–१४ ,, ,,	१३.९	१९.२	२२.५
३. १४–१७ ,, ,,	६.४	९.४	११.७
ख. संस्थायें			
१. प्राथमिक बेसिक	२,०९,६७१	२,७४,०३८	३,२६,८००
२. पूर्व बेसिक	१,४००	८,३६०	३३,८००
३. मिडिल बेसिक	१३,५९६	१९,२७०	२२,७२५
४. उत्तर बेसिक	३५१	१,६४५	४,५७१
५. हाई—हायर सेंकडरी	७,२८८	१०,६००	१२,१२५
६. बहुउद्देशीय	—	२५०	१,१८७
७. हायर सेकेंडरी बना दिये जाने वाले हाईस्कूल	—	४७	१,१९७
८. विश्वविद्यालय	२६	३१	३८
ग. इंजीनियरिंग विद्यालय			
१. डिग्री देने वाले	४१	४५	५४
२. डिप्लोमा देने वाले	६४	८३	१०४
घ. टेकनोलोजी के विद्यालय			
१. डिग्री देने वाले	२५	२५	२८
२. डिप्लोमा देने वाले	३६	३६	३७

पूर्वोल्लिखित आंकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में पर्याप्त उन्नति हुई है और होने की आशा है। परन्तु अब भी ऐसे अनेक महान् कार्य हैं, जिनको पूर्ण किया जाना शेष है। उदाहरणार्थ भारतीय संविधान के एक निर्देशक सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्र का यह प्रयत्न होना चाहिये कि १९६१ तक १४ वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे के लिये शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य हो जाय। प्रथम योजना क्रियान्वित होने से पूर्व ६-१४ वय-वर्ग के बच्चों में से ३२ प्रतिशत के लिये शिक्षा की व्यवस्था थी। यह प्रतिशत प्रथम योजना के अन्त में ४० प्रतिशत हो गया और द्वितीय योजना के अन्त तक केवल ४९ प्रतिशत हो सकेगा, जब कि इसे १०० प्रतिशत हो जाना चाहिये।

प्राथमिक शिक्षा

योजना आयोग के अनुसार प्राथमिक शिक्षा की दो प्रमुख समस्यायें हैं :—(१) वर्तमान शिक्षा-सुविधाओं का विस्तार, और (२) प्राथमिक शिक्षा-पद्धति का बेसिक शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन। इनके अतिरिक्त प्रथम योजना की अवधि में कुछ अन्य कठिनाइयों का भी अनुभव किया गया, यथा :—प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय (Wastage) और अवरोधन (Stagnation), स्त्री-शिक्षा के प्रति जनता की उदासीनता, बालिका-विद्यालयों के लिये प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का अभाव, विद्यालयों के लिये भवनों की कमी और धन का अभाव।

जहाँ तक अपव्यय और अवरोधन का प्रश्न है, प्राथमिक शिक्षा इन असाध्य रोगों के पंजे में बुरी तरह जकड़ी हुई है। विद्यालयों की प्रथम कथा में प्रविष्ट होने वाले १०० बालकों में से केवल ५० चौथी कक्षा में पहुँच पाते हैं। शेष बालक इन चार वर्षों की समाप्ति से पूर्व ही विद्यालय छोड़ देते हैं। बालिकाओं के सम्बन्ध में यह अपव्यय और भी अधिक है। अपव्यय को रोकने के लिये आयोग ने सुझाव दिया है कि शिक्षा को शीघ्रातिशीघ्र अनिवार्य बनाया जाय, शिक्षा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का यथासम्भव प्रयत्न किया जाय, योग्य एवं प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति की जाय और अध्यापन विधि में सुधार किया जाय।

स्त्री-शिक्षा के प्रति जनता की उदासीनता का अन्त करने का आयोग के विचारानुसार सर्वोत्तम उपाय यह है कि स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में देश के प्रत्येक भाग में जनमत को जाग्रत किया जाय। जिन स्थानों में जनता सह-शिक्षा की विरोधी है, वहाँ या तो पृथक् विद्यालय स्थापित किये जायें या अन्तरिम उपाय

के रूप में पारी पद्धति (Shift System) को अपनाया जाय। एक पारी में बालकों को और दूसरी पारी में बालिकाओं को शिक्षा दी जाय।

बालिका-विद्यालयों के लिये अध्यापिकाओं का अत्यधिक अभाव है। १९५३–५४ में अध्यापिकाओं की संख्या, प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में नियुक्त समस्त अध्यापकों की संख्या की जोड़ की १७ प्रतिशत थी। अध्यापिकाओं के इस अभाव को दूर करने के लिये योजना-आयोग ने सिफ़ारिश की है कि अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण का कार्य अविलम्ब प्रारम्भ किया जाय, अध्यापिकाओं के लिये ग्रामों में आवास सुविधाओं की व्यवस्था की जाय और विवाहित स्त्रियों को अध्यापन वृत्ति की ओर आकृष्ट किया जाय।

धनाभाव के कारण निकट भविष्य में विद्यालयों के लिये नवीन भवनों का निर्माण नहीं किया जा सकता है। अतः योजना-आयोग के मतानुसार उपलब्ध भवनों का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये पारी-पद्धति को अनिवार्य बनाया जाय। त्रावंकोर-कोचीन और बम्बई राज्यों में इस पद्धति का सफलतापूर्वक परीक्षण किया जा चुका है। देश के अन्य भागों में भी इस पद्धति को अपनाया जा सकता है। स्कूल-भवनों के निर्माण में मितव्ययता के सिद्धान्त को अपनाया जाय। इस सम्बन्ध में आयोग का मत है—"स्कूल भवनों के लिये सस्ते नक्शों के परीक्षण किये जाने चाहिये। किसी गाँव में स्कूल खोलने के लिये किसी स्वीकृत मानदण्ड को पूरा करने की शर्त आवश्यक नहीं होनी चाहिये। किसी स्थान में तत्काल जो भी व्यवस्था सम्भव हो उसी के अधीन स्कूल खोला जा सकता है और गाँव का मन्दिर, पंचायत-घर आदि सार्वजनिक भवनों का उपयोग इसके लिये किया जा सकता है। एक बार स्कूल काम करना शुरू कर दे, तो फिर ज्योंही परिस्थिति अनुकूल हो और स्थानीय चन्दा एकत्र हो जाय, स्कूल का भवन बनना शुरू हो जायगा।"[१]

संविधान के अनुसार १४ वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जानी है। इस महान् कार्य का भार केवल सरकार नहीं सम्हाल सकती है। स्थानीय समाज को भी इस कार्य में हाथ बंटाना पड़ेगा। अतः आयोग का सुझाव है कि सरकार ऐसे अधिनियम बनावे जिनसे कि ग्राम पंचायत आदि के स्थानीय अधिकारी शिक्षा के लिये कर (Educational Cess) लगा सकें। इस शिक्षा-कर का मालगुजारी, सम्पत्ति कर आदि उचित राज्य एवं स्थानीय करों से ऐसा सम्बन्ध होना चाहिये कि समाज के सभी अङ्गों से कुछ न कुछ धन प्राप्त किया जा सके।

१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ ४७२

इस कर का फल यह होगा कि स्थानीय समाज शिक्षा के प्रति अपने उत्तर-दायित्व को समझने लगेगा और उसे यह बोध हो जायगा कि जो कुछ धन वह देता है, उसका उपयोग उसी के लाभ के लिये होता है।

बेसिक शिक्षा

भारत में बेसिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया जा चुका है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में बेसिक शिक्षा के कार्यक्रमों में आशातीत सफलता प्राप्त की गई। बेसिक शिक्षा की प्रगति और द्वितीय योजना में इसके निर्धारित लक्ष्य का विवरण निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जाता है:—

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१
स्कूल	१,७५१	१०,०००	३८,४००
विद्यार्थी	१,८५,०००	११,००,०००	४२,२४,०००
प्रशिक्षण स्कूल	११४	४४९	७२९

बेसिक शिक्षा के विस्तार के लिये प्रशासकीय दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया है कि शिक्षा-सम्बन्धी प्रशासन से सम्बद्ध व्यक्ति नवीन कार्यक्रम एवं उसकी पूर्ति के लिये अपेक्षित परिस्थितियों से पूर्णतया परिचित हों। अतः विद्यमान कर्मचारी मंडल को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की गई है। बेसिक शिक्षा की सफलता के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता है। अतः योजना-आयोग ने सुझाव दिया है कि शिक्षकों के प्रशिक्षण का उचित प्रबन्ध किया जाय। साथ ही गोष्ठियों, अभिनवन पाठ्य-क्रमों और अन्तर्वृत्ति प्रशिक्षण (Inservice Training) योजनाओं का संगठन किया जाय और स्नातकोत्तर बेसिक प्रशिक्षण कालेजों को विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता प्रदान की जाय, जिससे इनमें प्रशिक्षित स्नातक उच्च प्रशिक्षण प्राप्त करने के अधिकारी हो जायँ। बेसिक संस्थाओं के लिये साहित्य-निर्माण एवं बेसिक शिक्षा को प्रभावित करने वाली विविध समस्याओं के अनुसंधान का कार्य 'बेसिक शिक्षा की राष्ट्रीय संस्था'[1] को सौंप दिया गया है।

योजना-आयोग ने बेसिक शिक्षा के उत्पादक पहलू का समर्थन किया है।

1. National Council of Basic Education

आयोग के मतानुसार इस सम्बन्ध में उत्साहजनक परिणाम तभी उपलब्ध होंगे, जब कि राज्यों में ५ वीं कक्षा तक चलने वाले बेसिक स्कूलों के स्थान में ८ वीं कक्षा तक के सम्पूर्ण बेसिक विद्यालयों की स्थापना की जाय। यदि ऐसा सम्भव न हो तो कम से कम एक केन्द्रीय अष्टवर्षीय स्कूल अवश्य हो, जिसमें पंचवर्षीय स्कूलों की शिक्षा समाप्त करके छात्र प्रविष्ट हो सकें। ५ वीं कक्षा तक के बेसिक स्कूल व्यर्थ हैं, क्योंकि उनकी शिक्षा के उपरान्त विद्यार्थियों को सामान्य पाठ्य-क्रम का अध्ययन करना पड़ता है।

आयोग का विचार है कि कृषि, ग्राम एवं लघु उद्योग, सहकारिता विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा आदि सम्बद्ध कार्यक्रमों से सम्बन्ध स्थापित करके और इस प्रकार प्रत्येक जिले तथा ब्लाक की विकास-योजना में बेसिक शिक्षा की संस्थाओं को एक निश्चित स्थान प्रदान करके बेसिक शिक्षा के व्यावहारिक सम्मान और आर्थिक लाभ में वृद्धि की जा सकती है। बेसिक विद्यालयों को जन-जीवन केन्द्र के रूप में विकसित किया जाय, जहाँ ग्रामीण जनता को प्रेरणा प्राप्त हो सके। बेसिक शिक्षा के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए आयोग ने सिफ़ारिश की कि 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' के समान एक 'बेसिक तथा प्राथमिक शिक्षा परिषद्' की स्थापना की जाय।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा आयोग[1] ने अपने प्रतिवेदन में, जो उसने १९५३ में प्रस्तुत किया, इस बात की सिफ़ारिश की कि माध्यमिक शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन किया जाय। अतः आयोग ने शिक्षा-सम्बन्धी पाठ्य-क्रमों में अपेक्षाकृत अधिक विविधता एवं व्यापकता लाने और अधिक सर्वाङ्गपूर्ण पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करने के सुझाव दिये। आयोग ने बहुउद्देशीय स्कूलों, औद्योगिक विद्यालयों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि-शिक्षा के लिये विशेष सुविधा देने के प्रस्ताव रखे। इन सुझावों के आधार पर ही केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लिये कार्यक्रम निर्धारित किये। यह अनुभव किया गया कि आधुनिक ढंग से आर्थिक विकास के लिये ऐसी निर्दोष माध्यमिक शिक्षा-पद्धति का होना अनिवार्य है, जो अनेकों विभिन्न विषयों में प्रवेश करा सके।

'माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने शिक्षा का जो आदर्श प्रस्तुत किया उसको भारत सरकार ने एक अन्य कारण से भी सहर्ष स्वीकार किया। सरकार इस बात से पूर्णतया अवगत थी कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के कार्य-क्रमों को

1. Secondary Education commission.

कार्यान्वित करने के लिये बहुत बड़ी संख्या में विज्ञ कार्यकर्त्ताओं, टेकनीशियनों तथा विशेषज्ञों की आवश्यकता होगी। ये व्यक्ति ऐसे होने चाहिये जो प्राथमिक अथवा माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त किसी विशेष व्यवसाय की प्रौद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों की पूर्ति मुख्यतः १४–१७ वय-वर्ग में से की जाती है। अतः इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया गया कि माध्यमिक विद्यालयों में दस्तकारियों एवं विविध पाठ्य-क्रमों का समावेश किया जाय। विज्ञान के शिक्षण के लिये अपेक्षाकृत उत्तम सुविधाओं की व्यवस्था की जाय, बहुउद्देशीय तथा जूनियर टेकनिकल स्कूलों की स्थापना की जाय और हाईस्कूलों को उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तित कर दिया जाय।

'माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन का जो आदर्श प्रस्तुत किया, उसको कार्यान्वित करने के लिये प्रथम योजना में २२ करोड़ रुपये व्यय किये गये और द्वितीय योजना में ५१ करोड़ रुपये का व्यवस्था की गई है। अन्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त वर्तमान हाई स्कूलों को उच्चतर माध्यमिक एवं बहुउद्देशीय स्कूलों में परिणत करना है। प्रथम योजना में २५० बहुउद्देशीय स्कूल स्थापित किये गये। द्वितीय योजना-काल में इस संख्या को बढ़ाकर १,१८७ कर दिया जायगा। सामान्य हाईस्कूलों और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की संख्या को १०,६०० से बढ़ाकर द्वितीय योजना के अन्त तक १२,००० कर दिया जायगा। आशा की जाती है कि १,१५० हाई स्कूलों को भी उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिणत कर दिया जायगा। इस प्रकार उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की संख्या लगभग २,८०० तक पहुँच जायगी। ग्रामीण क्षेत्रों में माध्यमिक स्तर पर कृषि-शिक्षा के विकास के लिये २०० अतिरिक्त ग्रामीण माध्यमिक स्कूलों में कृषि-शिक्षा की उचित व्यवस्था की जायगी। द्वितीय योजना की अवधि में माध्यमिक स्कूलों में छात्रों की संख्या २३ लाख से बढ़कर ३१ लाख तक पहुँच जायगी।

माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों को किसी विशेष व्यवसाय का प्रशिक्षण देने के लिये ६० जूनियर टेकनिकल स्कूल खोले जायेंगे। इन स्कूलों में १४-१७ वय-वर्ग के बालकों को तीन वर्ष तक सामान्य एवं प्राविधिक शिक्षा और कारखाना सम्बन्धी प्रशिक्षण (Workshop Training) दिया जायगा।

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की गई है। प्रथम योजना के अन्त में ६० प्रतिशत अध्यापक प्रशिक्षित थे। आशा है

कि द्वितीय योजना के अन्त तक यह प्रतिशत ६८ हो जायगा । व्यावसायिक पाठ्य-क्रम के लिये माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण की योजना बनाई गई है; जिससे वे छात्रों को व्यावसायिक विषयों की शिक्षा कुशलतापूर्वक दे सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय ने ५०० डिग्री वाले और १,००० डिप्लोमा वाले अध्यापकों को बहुउद्देशीय और जूनियर टेकनिकल स्कूलों के लिये प्रशिक्षण देने के विचार से एक योजना तैयार की है।

राज्य-सरकारों ने हाई स्कूलों को उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिणत करने; प्रयोगशालाओं एवं पुस्तकालयों का सुधार करने, अध्यापकों को प्रशिक्षण देने, शिक्षण मानदण्ड में वृद्धि करने, शिक्षकों का वेतन बढ़ाने और शिक्षा एवं व्यवसाय सम्बन्धी पथप्रदर्शन (Educational and Vocational Guidance) सम्बन्धी योजनाओं का निर्माण किया है, जिन पर ४६ करोड़ रुपया व्यय किया जायगा।

भारत में माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा अत्यधिक पिछड़ी हुई दशा में है। १४-१७ वयवर्ग की बालिकाओं में से केवल ३ प्रतिशत माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करती हैं। द्वितीय योजना में राज्य-सरकारों ने बालिकाओं की शिक्षा के लिये पर्याप्त व्यवस्था नहीं की है। इसकी पुष्टि इस बात से हो जाती है कि लड़कियों के हाईस्कूलों की संख्या १,५०० से बढ़कर द्वितीय योजना के अन्त तक केवल १,७०० हो जाने की आशा है । योजना-आयोग ने लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये सिफ़ारिश की है कि जो लड़कियाँ ग्राम सेविकायें, उपचारिकायें, स्वास्थ्य निरीक्षिकायें, अध्यापिकायें आदि बनना चाहती हैं, उनको छात्रवृत्तियाँ प्रदान करके प्रोत्साहित किया जाय।

विश्वविद्यालय-शिक्षा

प्रथम योजना की अवधि में विश्वविद्यालय शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। परन्तु विश्वविद्यालयों और कालेजों में छात्रों की संख्या की द्रुत वृद्धि का शिक्षा के स्तर पर इतना दूषित प्रभाव पड़ा कि द्वितीय योजना में विश्वविद्यालय-शिक्षा की ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया। विश्वविद्यालय एवं कालेजीय शिक्षा के स्तर को ऊँचा बढ़ाने एवं शिक्षा में अपव्यय और अवरोधन को रोकने के लिये 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' अनेकों उपायों को अपना रहा है, यथा:—त्रिवर्षीय डिग्री पाठ्य-क्रम की स्थापना; प्रवचनों तथा गोष्ठियों का संगठन; भवनों, पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं में सुधार; छात्रावासों की सुविधा; योग्य विद्यार्थियों के लिये छात्र-

वृत्तियाँ; अनुसंधान-कार्य के लिये वज़ीफे; और विश्वविद्यालय के अध्यापकों के वेतन में वृद्धि। द्वितीय योजना की अवधि में ७ नवीन विश्वविद्यालयों का निर्माण किया जा रहा है।

विश्वविद्यालय-शिक्षा पर प्रभाव डालने वाली दो महत्त्वपूर्ण बातों पर विचार किया जा रहा है। प्रथम यह आशा की जा रही है कि माध्यमिक स्तर पर विविधतायुक्त (Diversified) पाठ्य-क्रम प्रारम्भ करने से सम्भवतः आर्ट्स कालेजों में विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या कम हो जायगी। द्वितीय, केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति इस विषय पर विचार कर रही है कि सार्वजनिक सेवाओं के लिये विश्वविद्यालय की डिग्री को अनिवार्य न रखा जाय। इससे भी आर्ट्स कालेजों में प्रवेश पाने की प्रवृत्ति पर बहुत कुछ नियन्त्रण हो जाना सम्भव होगा।

प्रथम योजना में विश्वविद्यालय-शिक्षा पर १५ करोड़ रुपया व्यय किया गया। द्वितीय योजना में ५७ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। इनमें से ३४ करोड़ ४० लाख केन्द्रीय सरकार द्वारा और २२ करोड़ ५० लाख राज्य सरकारों द्वारा व्यय किये जायेंगे। केन्द्रीय सरकार ने अपनी धन-राशि में से २७ करोड़ रु० 'विश्वविद्यालय अनुदान समिति' को व्यय करने के लिये दे दिया है। इसके अतिरिक्त १० करोड़ रुपये छात्रवृत्तियों, ४ करोड़ ६० लाख रुपये कृषि-शिक्षा, १० करोड़ रुपये स्वास्थ्य-शिक्षा और २० करोड़ रुपये वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान के लिये अलग से व्यय किये जायेंगे।

प्राविधिक शिक्षा

पंचवर्षीय योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य देश का बहुमुखी विकास करना है। विकास-कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो प्राविधिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हों, जिससे वे विभिन्न उद्योगों, कल-कारखानों आदि में कार्य कर सकें और मशीनों का निर्माण एवं प्रयोग कर सकें। यही कारण था कि प्रथम योजना में प्राविधिक शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया। डिग्री और डिप्लोमा पाठ्य-क्रमों के लिये सम्पूर्ण देश में अनेकों टेकनिकल संस्थाओं की स्थापना की गई और वर्त्तमान संस्थाओं का विकास किया गया। परिणामस्वरूप प्रथम योजना के अन्त में छात्रों की प्रवेश-संख्या और स्नातकों की प्रतिफल संख्या में १९४९-५० की अपेक्षा ५० प्रतिशत वृद्धि हुई। १९४७ की अपेक्षा तो यह वृद्धि तिगुनी थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में किये गये उपायों के अतिरिक्त, द्वितीय योजना में टेकनिकल कर्मचारियों की बढ़ती हुई माँग के कारण टेकनिकल शिक्षा के

विस्तार को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। इसी उद्देश्य से द्वितीय योजना में प्राविधिक शिक्षा के लिये ४८ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है, जबकि प्रथम योजना में यह धन-राशि कुल २३ करोड़ थी। द्वितीय योजना के लिये निर्धारित धन का कुछ भाग उन कार्य-क्रमों पर व्यय किया जायगा, जो प्रथम योजना में प्रारम्भ किये गये थे। इनके अन्तर्गत 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेकनोलौजी', खड़गपुर को स्नातक एवं स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए पूर्णतया विकसित कर दिया जायगा। प्रथम योजनाकाल में स्थापित किये गये प्राविधिक शिक्षा के अन्य केन्द्रों में भी स्नातकोत्तरकालीन पाठ्य-क्रमों एवं इंजीनियरिंग और टेकनोलौजी के अनुसंधान की व्यवस्था की जायगी। वर्तमान संस्थाओं को डिग्री और डिप्लोमा पाठ्य-क्रमों के लिए विकसित करने का जो कार्य-क्रम प्रथम योजना में प्रारम्भ किया गया था, उसे द्वितीय योजना में पूर्ण किया जायगा। शेष धन देश के पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिणी प्रदेशों में उच्चतर टेकनिकल संस्थाओं की स्थापना में व्यय किया जायगा। इनमें से दो संस्थाओं का निर्माण बम्बई और कानपुर में किया जायगा। तीसरी संस्था का स्थान अभी निश्चय नहीं किया गया है। पूर्ण रूप से विकसित हो जाने पर प्रत्येक संस्था में १,२०० प्राक्स्नातक और ६०० स्नातकोत्तर छात्र शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे।

द्वितीय योजना-काल में 'दिल्ली पॉलीटेकनीक संस्था' में इंजीनियरिंग एवं टेकनोलौजी की शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार किया जायगा। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में इञ्जीनियरिंग और टेकनोलौजी की शिक्षा प्रदान करने के लिये ९ संस्थायें डिग्री स्तर की और २१ संस्थायें डिप्लोमा स्तर की स्थापित की जायँगी। फोरमैनों के प्रशिक्षण की योजना को उद्योग-संस्थाओं के सहयोग से क्रियान्वित किया जायगा। छात्रवृत्तियों की संख्या को ६३३ से बढ़ाकर ८०० कर दिया जायगा। टेकनिकल शिक्षा-संस्थाओं में योग्य छात्रों के लिये कुछ निःशुल्क स्थान सुरक्षित रखे जायेंगे। १३,००० टेकनिकल छात्रों और ३,३०० जूनियर टेकनिकल स्कूलों के विद्यार्थियों के लिये अतिरिक्त छात्रावासों का निर्माण किया जायगा। मुद्रण शिल्प विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने के लिये एक संस्था का निर्माण किया जायगा। धनवाद के 'इंडियन स्कूल ऑफ साइन्स एण्ड ऐप्लाइड ज्योलौजी' का विस्तार किया जायगा, जिससे खान की इञ्जीनियरिंग एवं उससे सम्बद्ध विषयों में प्रशिक्षण की सुविधायें उपलब्ध हो जायेंगी। श्रम, लोहा तथा इस्पात और रेलवे मंत्रालय भी टेकनिकल स्कूलों की स्थापना का कार्यक्रम बना रहे हैं। इन समस्त प्रयासों के फलस्वरूप १९६०-६१ तक प्रति वर्ष ५,७०० स्नातक और ६,८०० डिप्लोमा

प्राप्त व्यक्ति उपलब्ध हुआ करेंगे। यह संस्था प्रथम योजना के अन्त में प्राप्त होने वाले स्नातकों तथा डिप्लोमा-प्राप्त व्यक्तियों से क्रमशः दुगनी और तिगुनी होगी।

समाज-शिक्षा

१९५१ की जनगणना के अनुसार भारत में ८३.४ प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर हैं। इस व्यापक निरक्षरता की उपस्थिति में देश की सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति होना सम्भव नहीं है। अतः योजना-आयोग ने समाज-शिक्षा का विस्तार करना देश के कल्याण एवं उत्थान के लिये आवश्यक समझा है। समाज-शिक्षा की योजनाओं के अन्तर्गत शिक्षा-प्रणालियों में प्रस्तावित सुधारों को कार्यान्वित करने के साथ-साथ विभिन्न स्तरों पर समाज-शिक्षा की कक्षाओं का विस्तार किया जायगा। राज्य-सरकारों ने साक्षरता एवं समाज-शिक्षा-केन्द्रों के उद्घाटन, समाज-शिक्षा कार्यकर्त्ताओं एव संगठनकर्त्ताओं के प्रशिक्षण, पुस्तकालय, साहित्य-प्रकाशन, दृश्य-श्रव्य शिक्षा की व्यवस्था और जनता कॉलेजों की स्थापना की योजनायें बनाई हैं।

द्वितीय योजना में समाज-शिक्षा के लिये ५ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त १० करोड़ रुपया राष्ट्रीय विस्तार एवं सामुदायिक विकास योजनाओं द्वारा समाज-शिक्षा पर व्यय किया जायगा। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय समाज-शिक्षा के सङ्गठन कर्त्ताओं के प्रशिक्षण के लिये एक प्रधान शिक्षा-केन्द्र स्थापित करने का विचार कर रहा है।

समाज-शिक्षा के अन्तर्गत साक्षरता के अतिरिक्त स्वास्थ्य शिक्षा, मनोरंजन, पारिवारिक जीवन की शिक्षा, आर्थिक गतिविधियाँ, ग्राम-सुधार और नागरिकता प्रशिक्षण की योजनायें भी सम्मिलित हैं।

उच्चतर ग्राम शिक्षा

'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' ने अपने प्रतिवेदन में उच्चतर ग्राम शिक्षा के सम्बन्ध में अनेकों सुदूरगामी सुझाव दिये थे। उसके उपरान्त 'उच्चतर ग्राम-शिक्षा समिति' ने इस समस्या पर पुनर्विचार करके ग्रामीण शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना का प्रस्ताव किया है। ये संस्थायें ग्रामीण समाज के लिये विभिन्न कार्यों के अतिरिक्त निम्नाङ्कित कार्यों की विशेष रूप से व्यवस्था करेंगी :—

१. उत्तर-बेसिक अथवा हायर सेकेंडरी शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों के लिये उच्चतर अध्ययन की सुविधायें प्रदान करना।

२. कृषि, ग्राम-स्वास्थ्य, ग्राम-इञ्जीनियरिंग एवं अन्य लघुतर पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था करना।

३. अध्यापन अनुसंधान-विस्तार के व्यापक कार्यक्रमों का प्रबन्ध करना।

द्वितीय योजना में १० ग्राम संस्थायें स्थापित की जायेंगी। इस कार्य में २ करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे।

अध्यापक

अध्यापक शिक्षा-प्रणाली के चक्र में सदैव धुरी-स्थान पर रहे हैं। अतः शिक्षा की प्रगति के लिये अध्यापकों की स्थिति में सुधार किया जाना आवश्यक है। ये सुधार अध्यापकों के प्रशिक्षण, अधिक वेतन एवं सेवा की उत्तम शर्तों के रूप में किये जा सकते हैं। इन तीनों कार्यों की दिशा में योजना-आयोग प्रयत्नशील है।

प्रथम योजना से पूर्व प्राथमिक विद्यालयों के ५९ प्रतिशत अध्यापक और माध्यमिक विद्यालयों के ५४ प्रतिशत अध्यापक प्रशिक्षित थे। प्रथम योजना के अन्त तक ये अङ्क क्रमशः ६४ और ५६ प्रतिशत हो गये। द्वितीय योजना की समाप्ति पर ये अङ्क क्रमशः ७९ और ६८ प्रतिशत हो जायेंगे। द्वितीय योजना में अध्यापकों के प्रशिक्षण की सुविधाओं में वृद्धि करने के लिये १७ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। इस धन से वर्तमान संस्थाओं का विकास और २३१ प्रतिशत स्कूलों तथा ३० प्रशिक्षण कॉलेजों का निर्माण किया जायगा।

अध्यापकों के वेतन वृद्धि के प्रश्न के महत्व को केन्द्रीय सरकार ने स्वीकार किया है। परन्तु उसका मत है कि वेतन-वृद्धि में अतिरिक्त व्यय का भार राज्य-सरकारों को वहन करना चाहिये, न कि केन्द्रीय सरकार को। तथापि, केन्द्रीय सरकार ने राज्यों की सहायता के लिये उस अतिरिक्त व्यय का ५० प्रतिशत देना स्वीकार कर लिया है, जो प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों का वेतन बढ़ाने में व्यय होगा। आयोग ने सुझाव दिया है कि अन्य अध्यापकों के वेतन में वृद्धि करने के लिये विभिन्न राज्यों द्वारा एक विशेष शिक्षा-कर लगाया जा सकता है।

छात्रवृत्तियाँ

निर्धन परन्तु योग्य छात्रों को शिक्षा की सुविधायें प्रदान करने के लिये प्रथम योजना में छात्रवृत्तियों के कुछ कार्यक्रम चालू किये गये थे। द्वितीय योजना में छात्रवृत्तियों के लिये लगभग १२ करोड़ रुपये की धनराशि निर्धारित की गई है। अन्य छात्रों के अतिरिक्त अनुसूचित आदिम जातियों, अनु-

सूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जायेंगी। मेट्रिक के बाद की छात्रवृत्तियों, शोध छात्रवृत्तियों, विदेशों में अध्ययन के लिये छात्रवृत्तियों एवं भारत में एशियाई, अफ्रीकी आदि विदेशी विद्यार्थियों के लिये भी सांस्कृतिक छात्रवृत्तियों की व्यवस्था है।

सांस्कृतिक एवं अन्य कार्य-क्रम

द्वितीय योजना में सांस्कृतिक विकास के लिये कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रम बनाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं :—हिन्दी एवं प्रादेशिक भाषाओं के विकास की व्यवस्था; कुरुक्षेत्र तथा बनारस में एक संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना की योजना; संस्कृत शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिये एक आयोग की नियुक्ति; कलाओं के विकास के लिये साहित्य अकादेमी, नृत्य-नाटक और संगीत अकादेमी तथा ललित कला अकादेमी का विकास, जिनकी स्थापना प्रथम योजना की अवधि में हुई थी; राष्ट्रीय बाल संग्रहालय एवं अन्य संग्रहालयों का विकास तथा पुनर्गठन; पुरातत्व विभाग, भारत के राष्ट्रीय अभिलेख भवन और मानव विज्ञान विभाग के विकास की व्यवस्था; और यूनेस्को के सहयोग से अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों की योजना बनाना।

शिक्षा—योजना पर आलोचनात्मक दृष्टि

द्वितीय योजना के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि भारत-सरकार ने इस योजना की अवधि के लिये शिक्षा-सम्बन्धी अनेक कार्य क्रम निश्चित किये हैं, जिनको राष्ट्र के भविष्य के लिये सम्पन्न किया जाना है। देश के औद्योगिक आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिये शिक्षा का पुनर्सङ्गठन किया जाना आवश्यक है। प्रथम योजना में इस दिशा में क्रियात्मक पग उठाये गये और उन पाँच वर्षों की त्रुटियों से अनुभव प्राप्त करके द्वितीय योजना में उनको दूर करने का निश्चय किया गया। परन्तु ऐसा करना सम्भव नहीं हो सका है। योजना की अवधि की अन्तिम तिथि निकट आ गई है परन्तु प्रथम योजना के दोष तथा त्रुटियाँ अब भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहे हैं। वास्तविकता यह है कि विश्व के अन्य विकसित राष्ट्रों—रूस, चीन और अमेरिका के समान हमारी योजना के अभिप्राय को न तो स्पष्ट रूप से समझा गया है और न उसके कार्यक्रमों को ही निर्धारित किया जा सका है। इस योजना की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कोई निश्चित योजना नहीं है। केवल थोड़े से विद्यालयों की स्थापना करने, विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने, पाठ्य-क्रमों में अधिक विषयों का समावेश करने और कुछ स्थानों पर शिक्षा की अधिक सुविधायें प्रदान करने से शिक्षा को न तो पुनर्सङ्गठित किया जा सकता है और न इन

कार्यों को योजना की संज्ञा ही दी जा सकती है। तथ्य यह है कि योजनाकारों ने शिक्षा के विकास एवं विस्तार के अर्थ को रंच मात्र भी नहीं समझा है। फिर आर्थिक विकास को पूर्ण रूप से जनता की भलाई का साधन बनाने के लिए शिक्षा के कार्यक्रमों को आर्थिक योजनाओं की अपेक्षा प्राथमिकता नहीं दी गई है। आर्थिक योजनाओं का स्थान सर्वोपरि है और शिक्षा-सम्बन्धी योजनाओं को गौण स्थान प्रदान किया गया है। देश के सभी कुशल कार्य-कर्त्ताओं का ध्यान आर्थिक विकास पर केन्द्रित है। शिक्षा के क्षेत्र में जो व्यक्ति कार्य कर रहे हैं उनमें न तो पर्याप्त कार्य-क्षमता है और न कार्य-पटुता। ऐसी दशा में शिक्षा के कार्य-क्रमों का असफल होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। शिक्षा में नियोजन की आवश्यकता है, पर किस स्तर पर और किस सीमा तक; इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सका है। यही कारण है कि शिक्षा को आर्थिक और औद्योगिक विकास के नये सांचे में ढालकर परिस्थितियों के अनुकूल बनाये जाने का प्रयास किया जा रहा है।

उपरोक्त के अतिरिक्त योजना के आलोचकों ने कुछ अन्य दोषों की ओर भी संकेत किया है। उनका कथन है कि द्वितीय योजना में जन-शिक्षा को तिरस्कृत करके माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को प्रतिष्ठित पद प्रदान किया गया है। यही कारण है कि सरकार ने प्राथमिक' शिक्षा के व्यय को ९३ करोड़ से कम करके ८९ करोड़ कर दिया है, जब कि माध्यमिक शिक्षा के व्यय को २२ करोड़ से बढ़ा कर ५१ करोड़ और विश्वविद्यालय शिक्षा के व्यय को १५ करोड़ से बढ़ा कर ५७ करोड़ कर दिया है। यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकार करनी पड़ेगी कि धन का यह असमान वितरण सार्वजनिक शिक्षा के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। भारतीय संविधान के अनुसार १९६१ तक १४ वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिये अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था हो जानी चाहिये। परन्तु योजना के निर्माताओं ने इसकी ओर ध्यान न देकर अपना ध्यान समाज के कुछ व्यक्तियों की शिक्षा पर ही केन्द्रित किया है। यदि सरकार देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करना चाहती है, तो प्राथमिक शिक्षा के प्रति इस प्रकार का अन्याय किया जाना सर्वथा अनुचित है।

योजना का एक अन्य दोष यह है कि प्रशासन पर होने वाला व्यय ५७ करोड़ निश्चय किया गया है, जब कि प्रथम योजना में यह व्यय केवल ११ करोड़ था। प्रथम और द्वितीय योजनाओं में शिक्षा पर होने वाला कुल व्यय क्रमशः १६९ करोड़ और ३०७ करोड़ है, अर्थात् द्वितीय योजना में प्रथम योजना की अपेक्षा १३८ करोड़ रुपया अधिक व्यय किया जा रहा है। इस धन में से लगभग आधा रुपया प्रशासन पर व्यय किया जायगा। यह बात

बुद्धि की समझ से परे है कि आखिर ऐसा क्यों किया गया है। इसका अभिप्राय तो अप्रत्यक्ष रूप से यही प्रतीत होता है कि जनता के धन से प्रशासकों की जेबों को भर दिया जाय।

योजना-आयोग ने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि शिक्षा-प्रणाली को सफल बनाने के लिये अध्यापकों को वेतन में वृद्धि और उनके सेवा-प्रतिबन्धों में सुधार किया जाना अति आवश्यक है। परन्तु खेद का विषय है कि यद्यपि योजना समाप्त होने को है तथापि अध्यापकों के लिये अभी तक कुछ भी नहीं किया गया है। भारत-सरकार ने अति अल्प काल में जीवन-बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया, परन्तु १० वर्ष की लम्बी अवधि में भी शिक्षकों की दयनीय दशा में सुधार करने के लिये कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया है। शिक्षकों के प्रति सरकार की सहानुभूति वास्तविक न होकर केवल कागज पर ही अङ्कित होकर रह गई है।

शिक्षा-योजना पर एक अन्य दोषारोपण यह किया गया है कि इसमें निरक्षरता का नाश करने के लिये कोई सक्रिय प्रयास नहीं किया गया है। हम पहिले उल्लेख कर चुके हैं कि १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत में ८३·४ प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर हैं। इतनी विशाल जनसंख्या को साक्षर बनाने के लिये केवल ५ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि यह धन-राशि केवल अपर्याप्त ही नहीं, अपितु लज्जाप्रद भी है। लोकतंत्र की सफलता के लिये शिक्षा-प्रसार के सिद्धान्त का समर्थन करने वाली सरकार के लिये यह बात सर्वथा हास्यास्पद प्रतीत होती है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि कोटि-कोटि कंठों से शिक्षा में नियोजन की आवश्यकता की पुकार सुन कर भी भारत-सरकार इस ओर पूर्णतया उदासीन है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि शिक्षा में नियोजन करके भी सरकार शिक्षा के रूप को यथावत् बनाये रखना चाहती है। संतोष केवल इस बात से है कि शिक्षा में नियोजन का श्रीगणेश हो गया है और सम्भवतः भविष्य में एक दिन ऐसा आये, जब शिक्षा को वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप बनाकर उसका रूप-परिवर्तन कर दिया जाय। यदि ऐसा न हुआ तो इस नियोजन से अधिक निराशाजनक बात कुछ और न होगी।

सारांश

अप्रैल १९५६ में द्वितीय पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित की गई। इसके अन्तर्गत शिक्षा के विभिन्न कार्य-क्रम बनाये गये हैं, जिन पर ३०७ करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे। शिक्षा-योजना के कार्यक्रम निम्नलिखित हैं :—

प्राथमिक शिक्षा—वर्तमान शिक्षा सुविधाओं का विस्तार, प्राथमिक शिक्षा-पद्धति का बेसिक शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन, अपव्यय और अवरोधन को रोकना, स्त्री-शिक्षा का विस्तार और अध्यापिकाओं के अभाव की पूर्ति।

बेसिक शिक्षा—वर्तमान कर्मचारी मंडल का प्रशिक्षण, अध्यापकों का प्रशिक्षण, बेसिक शिक्षा के उत्पादक पहलू का समर्थन, और कक्षा ८ तक के सम्पूर्ण बेसिक विद्यालयों की स्थापना।

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा में आमूल परिवर्तन, बहुउद्देशीय तथा जूनियर टेकनिकल स्कूलों की स्थापना, हाई स्कूलों का उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तन और ग्रामीण माध्यमिक स्कूलों में कृषि-शिक्षा की व्यवस्था।

विश्वविद्यालय-शिक्षा—विश्वविद्यालय एवं कालेजीय शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना, शिक्षा में अपव्यय और अवरोधन को कम करना, त्रि-वर्षीय डिग्री पाठ्य-क्रम की स्थापना और भवनों, पुस्तकालयों तथा प्रयोगशालाओं में सुधार।

प्राविधिक शिक्षा—प्रथम योजना में स्थापित शिक्षा-संस्थाओं का विकास, स्नातकोत्तर कालीन पाठ्यक्रमों एवं इंजीनियरिंग और टेकनोलौजी के अनुसंधान की व्यवस्था, तीन उच्चतर टेकनिकल संस्थाओं की स्थापना और डिग्री स्तर की ६ संस्थाओं तथा डिप्लोमा स्तर की २१ संस्थाओं का निर्माण।

समाज शिक्षा—साक्षरता एवं समाज-शिक्षा-केन्द्रों का उद्घाटन, समाज-शिक्षा कार्यकर्त्ताओं एवं संगठनकर्त्ताओं का प्रशिक्षण और पुस्तकालय, साहित्य-प्रकाशन आदि की व्यवस्था।

उच्चतर ग्राम शिक्षा—१० ग्राम संस्थाओं की स्थापना। इन संस्थाओं में उच्चतर शिक्षा की सुविधायें।

अध्यापक—अध्यापकों की वेतन-वृद्धि और उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था।

छात्रवृत्तियाँ—छात्रवृत्तियों के लिये १२ करोड़ रुपये की व्यवस्था।

सांस्कृतिक एवं अन्य कार्य-क्रम—हिंदी एवं प्रादेशिक भाषाओं का विकास, कलाओं का विकास, अभिलेख भवन और मानव-विज्ञान विभाग का विकास और यूनेस्को के सहयोग से सांस्कृतिक कार्य-क्रमों का निर्माण।

TEST QUESTIONS

1. Write a critical note on "Education in India under the Second Five-Year Plan."
2. Discuss briefly the achievements in the following fields of education under the Second Five-Year Plan:—(a) University Education; (b) Technical Education; (c) Secondary Education.

—: • :—

परिशिष्ट

उत्तरप्रदेश में शिक्षा (१९३९-१९५९)

सिंहावलोकन

हम पिछले अध्यायों में उत्तर प्रदेश की सामान्य शिक्षा का वर्णन कर चुके हैं। १८४२ तक यह प्रान्त बंगाल का अङ्ग था, परन्तु उस वर्ष इसे पृथक् अस्तित्व प्रदान किया गया। १८४३ में जेम्स टॉमसन इस नवनिर्मित प्रान्त का गवर्नर नियुक्त हुआ और उसने जन-शिक्षा प्रसार के लिये अभिनन्दनीय कार्य किये। १८५१ में मथुरा के कलक्टर अलैक्जैन्डर ने 'हल्काबन्दी स्कूल प्रणाली' के नाम से एक योजना बनाकर शिक्षा के प्रसार में सराहनीय योग दिया। १८५४ तक इस प्रान्त में उच्च शिक्षा के लिये कॉलेजों की स्थापना की जा चुकी थी और रुड़की के इंजीनियरिंग कॉलेज का शिलान्यास हो चुका था। १९ वीं शताब्दी के अन्त तक उत्तरप्रदेश में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की सन्तोषजनक प्रगति हो चुकी थी।

१९१३ में प्रान्त की सरकार ने प्राथमिक शिक्षा में सुधार करने के विचार से 'पिगट समिति' की नियुक्ति की। समिति के सुझावों के अनुसार अपर प्राइमरी तथा लोअर प्राइमरी स्कूल खोले गये और पाठ्य-क्रम में सुधार किये गये। १९१९ में एक अधिनियम पारित करके प्राथमिक शिक्षा को नगर-

पालिकाओं के क्षेत्रों में निवास करने वाले बालकों एवं बालिकाओं के लिये अनिवार्य बना दिया गया।

१९२१ में प्रान्तीन शिक्षा को जनप्रिय मन्त्रियों को हस्तान्तरित कर दिया गया। फलस्वरूप शिक्षा की आशातीत प्रगति हुई। १९२६ में ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों के लिये प्राथमिक शिक्षा को एक अधिनियम द्वारा अनिवार्य बना दिया गया। हर्टाग समिति (१९२९) के प्रस्तावों से प्रभावित होकर उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन को दूर करने का निश्चय किया। १९३०-३१ के विश्व-व्यापी आर्थिक संकट का प्रभाव प्रान्त पर भी पड़ा और शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय को कम कर दिया गया। फलतः कुशलता के साधनों में कमी हो गई और शिक्षा का स्तर गिर गया। यह देखकर सरकार ने शिक्षा की समस्याओं की जांच करने के लिये 'वियर समिति' की नियुक्ति की। समिति ने १९३३ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, और सुझाव दिया कि ऐसे स्कूलों को भङ्ग कर दिया जाय, जिनके पास धन, योग्य अध्यापकों, उपयुक्त भवनों और पर्याप्त शिक्षण-सामग्री का अभाव है। सरकार ने 'वियर समिति' के सुझावों को स्वीकार किया, जिसके फलस्वरूप प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्रों में अनेकों महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये।

१९३७ में उत्तर प्रदेश का शासनसूत्र कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने सम्हाला। लोकप्रिय मंत्रियों ने प्रान्तीय शिक्षा के विकास एवं विस्तार की ओर ध्यान दिया। उनके सुझाव पर सरकार ने १९३९ में शिक्षा के पुनर्सङ्गठन के लिये 'आचार्य नरेन्द्रदेव समिति' की नियुक्ति की। १९५२ में 'द्वितीय आचार्य नरेन्द्रदेव समिति' नियुक्त की गई। हम इन समितियों एवं शिक्षा के विभिन्न अवयवों का अध्ययन नीचे यथास्थान करेंगे।

प्रथम आचार्य नरेन्द्रदेव समिति, १९३९

नियुक्ति—उत्तर प्रदेश की सरकार ने १९३९ में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। समिति को प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन करके उसको पुनर्सङ्गठित करने के लिये सुझाव देने का कार्य सौंपा गया। समिति के प्रमुख सदस्यों में डा० जाकिर हुसेन, आर० एस० पंडित, केन, धूलेकर, उमा नेहरू, जुगलकिशोर, मुहम्मद इस्माइल खाँ, बेगम अज़ीज़ुल रसूल, राम उग्रहसिंह, कुमारी विलियम्स और वियर थे। समिति ने अथक परिश्रम के उपरान्त अपनी रिपोर्ट तैयार की। समिति

ने शिक्षा के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

समिति के सुझाव

१. वर्तमान शिक्षा प्रणाली का प्रमुख दोष यह है कि इसमें बालक का सर्वाङ्गीण विकास करने की क्षमता नहीं है।

२. वर्तमान शिक्षा में जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने की व्यवस्था नहीं है। यह शिक्षा रोजगार की समस्या को हल करने में असमर्थ है।

३. माध्यमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय शिक्षा प्राप्त करने के लिये योग्य बनाना है।

४. माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली बिल्कुल ठोस होनी चाहिये और पाठ्य-क्रम पूर्ण एवं स्वतन्त्र होना चाहिये।

५. माध्यमिक शिक्षा की अवधि १२ वर्ष से १८ वर्ष तक होनी चाहिये।

६. समस्त माध्यमिक शिक्षा-संस्थाओं को 'कालेज' की संज्ञा दी जाय और उनका शिक्षा-स्तर प्रचलित इन्टर कालेजों से ऊँचा रखा जाय।

७. नवीन कॉलेजों के प्रथम दो वर्षों का पाठ्य-क्रम वही रखा जाय, जो बेसिक प्राथमिक विद्यालयों की दो उच्चतम कक्षाओं का हो। अंग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाय और हस्तकला पर कम बल दिया जाय।

८. कॉलेजों के पाठ्य-क्रम में ये विषय सम्मिलित किये जायँ :—(१) भाषा, साहित्य एवं समाज विज्ञान, (२) प्राकृतिक विज्ञान एवं गणित, (३) कला, (४) वाणिज्य, (५) टेकनिकल और व्यावसायिक विषय तथा (६) गृह विज्ञान (केवल बालिकाओं के लिये)

९. कॉलेजों में केवल उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाय, जो 'बेसिक प्राथमिक परीक्षा' में उत्तीर्ण हो चुके हों या ७ वर्षीय पाठ्य-क्रम समाप्त कर चुके हों।

१०. 'हाई स्कूल' एवं 'इन्टरमीडिएट' नामों को हटा दिया जाय।

११. शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी रखा जाय।

१२. पाठ्य-क्रम वास्तविक एवं व्यावहारिक हो और वह विशेषज्ञों द्वारा देश तथा काल की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर बनाया जाय।

१३. अंग्रेजी, शरीर विज्ञान और सामान्य ज्ञान की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाय।

१४. प्रत्येक प्रकार के कॉलेज की स्थापना के लिये 'परामर्शदाता बोर्ड' की स्थापना की जाय। बोर्ड पाठ्य-क्रम के विषय में सरकार को परामर्श दे, प्रयोगात्मक प्रशिक्षण का प्रबन्ध करे और कॉलेजों के लिये धन का संचय करे।

१५. बालिकाओं के लिये गृह-विज्ञान के कॉलेज स्थापित किये जायँ।

१६. प्रत्येक कॉलेज में सुसमृद्ध पुस्तकालय होना अनिवार्य कर दिया जाय।

१७. छात्रों के चारित्रिक उत्थान और उनमें राष्ट्र प्रेम, नागरिकता, आत्मनिर्भरता, समाज-सेवा तथा स्वावलम्बन की भावनायें उत्पन्न करने के लिये अतिरिक्त कार्य-क्रमों (Extra Curricular Activities) की सुन्दर व्यवस्था की जाय। कॉलेजों में स्काउटिंग, वाद-विवाद परिषद्, सहकारी समिति, उपभोक्ता भंडार, समाज-सेवा, प्राथमिक चिकित्सा आदि का पूर्ण रूप से संगठन किया जाय।

समिति के अन्य सुझाव

१. स्त्री-शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाय और उनके लिये उचित व्यवस्था की जाय।

२. अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाय। उनकी दशा में सुधार किया जाय और नौकरी करते समय उनसे संविदा-पत्र (Agreement-Form) भरवाया जाय।

३. पाठ्य-पुस्तकों, परीक्षा-प्रणाली एवं शिक्षा संगठन में शीघ्रातिशीघ्र सुधार किये जायँ।

४. प्रान्त में एक 'केन्द्रीय पैडागॉजिकल इंस्टीट्यूट' खोला जाय, जिसके साथ एक पुस्तकालय सम्बद्ध हो।[1]

प्रान्त की जनता ने 'आचार्य नरेन्द्र देव समिति' के सुझावों का स्वागत किया। सरकार ने उन्हें मान्यता प्रदान की और उनको कार्यान्वित करना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु प्रान्त के दुर्भाग्य से द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने के समय काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने अपना पद त्याग दिया। परिणामतः समिति के सुझाव कागज़ पर ही लिखे रह गये।

पूर्व-प्राथमिक अथवा शिशु शिक्षा[2]

प्राथमिक विद्यालयों में बच्चे साधारणतया ५ या ६ वर्ष की आयु में प्रवेश

1. *Report of the U. P. Primary and Secondary Reorganisation Committee, pp.* 129-147.
2. Nursery Education.

करते हैं। शिक्षा-विदों के मतानुसार बच्चे की शिक्षा ३ वर्ष की आयु में प्रारम्भ हो जानी चाहिये। इसी आशय से प्रगतिशील देशों में ३ से ५ वर्ष के बच्चों के लिये शिशु-शिक्षा की समुचित व्यवस्था की गई है। हमारा देश इस बात में अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। हम अपने प्रदेश के सम्बन्ध में भी यही बात कह सकते हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व शिशु-शिक्षा के लिये बहुत ही कम संस्थायें थीं। फिर छात्रों की संख्या सीमित होने तथा व्यय अधिक होने के कारण सर्व-साधारण के बच्चों का उनमें प्रवेश पाना सम्भव नहीं था।

सर्व प्रथम 'आचार्य नरेन्द्र देव समिति' ने शिशुओं की शिक्षा के लिये किंडरगार्टन पाठशालाओं का निर्माण करने का सुझाव दिया। परन्तु सरकार ने इस सुझाव की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। सार्जेन्ट रिपोर्ट ने 'आचार्य नरेन्द्र देव समिति' के सुझाव का समर्थन किया और सिफ़ारिश की कि शिशु-शिक्षा की व्यवस्था की जानी आवश्यक है। सरकार ने इस बार भी इस सिफ़ारिश की अवहेलना की और शिशु-शिक्षा का उत्तरदायित्व ग़ैर-सरकारी संस्थाओं पर ही रखा। अतः कुछ उत्साही समाज-सेवकों ने इस दिशा में कदम उठाया। फलस्वरूप आज प्रदेश के विभिन्न नगरों में शिशुओं की शिक्षा के लिये शिशु मन्दिर, बाल-निकेतन, मान्टेसरी स्कूल, किंडरगार्टन स्कूल एवं नर्सरी स्कूल आदि दृष्टिगोचर होने लगे हैं। इन विद्यालयों के लिये अध्यापिकाओं को प्रशिक्षित करने के लिये सरकार ने १९५१ में इलाहाबाद में एक 'नर्सरी प्रशिक्षण महाविद्यालय' स्थापित किया। इसमें दो वर्ष का पाठ्य-क्रम है और उत्तीर्ण होने वालों को जे० टी० सी० का प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाता है। उत्तर प्रदेश की द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर किये जाने वाले कुल व्यय का ४९ प्रतिशत पूर्व-प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किया जायगा।[1]

इन विद्यालयों में बच्चों को स्वयं कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। पाठ्य-क्रम में खेलों का विशेष स्थान होता है। छात्रों को लिखना, पढ़ना, संगीत और कला आदि की शिक्षा मांटेसरी, नर्सरी और गतिविधि प्रणाली (Activity Method) द्वारा दी जाती है। साथ ही उन्हें स्वस्थ तथा स्वच्छ रहने की भी शिक्षा दी जाती है।

प्राथमिक एवं बेसिक शिक्षा

जब १९३७ में उत्तर प्रदेश में कांग्रेसी मंत्रिमंडल का निर्माण हुआ, तभी से जनप्रिय मन्त्री शिक्षा-प्रसार के कार्य की ओर अग्रसर हुए। परन्तु १९३९

१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना (उत्तर प्रदेश सरकार) पृष्ठ ३६

में मंत्रियों के पद त्याग एवं विदेशी शासकों की उदासीनता के कारण प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की वांछनीय प्रगति न हो सकी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् स्थिति पूर्णतया परिवर्तित हो गई। फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा की आशातीत उन्नति हुई है।

जुलाई, १९४७ में उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में बेसिक शिक्षा को स्थान दिया। प्रत्येक प्राथमिक विद्यालय में इस पाठ्यक्रम को कार्यान्वित कर दिया गया और प्रत्येक ग्राम में एक प्राथमिक विद्यालय स्थापित करने की योजना बनाई गई। १९४५-४६ में प्राथमिक स्कूलों की संख्या १९,०२७ और उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या १३,७० लाख थी। १९५५-५६ में यह संख्या क्रमशः ३१,६१९ और २७,८० लाख हो गई।[1] आर्थिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के विचार से राज्य सरकार ने बोर्डों की सहायता ७५ प्रतिशत कर दी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उत्तर प्रदेश सरकार प्राथमिक शिक्षा पर कुल व्यय का २६.६४ प्रतिशत व्यय कर रही है। अखिल भारतीय आधार पर विद्यालय जाने वाले ६–११ वर्ष के ऐसे बच्चों का अनुपात ५० प्रतिशत है। आशा है कि द्वितीय आयोजन-काल में यह अनुपात ६० प्रतिशत तक पहुँच जायगा। हमारे राज्य में ६–११ वर्ष के बच्चों की संख्या लगभग ३४ प्रतिशत है और द्वितीय आयोजन-अवधि में ४०.५ प्रतिशत तक बढ़ जाने की आशा है। जहाँ तक ११-१४ वर्ष की अवस्था वाले बच्चों का प्रश्न है, यह आशा की जाती है कि ५ वी से ८ वीं कक्षाओं का प्रवेश लगभग १५ प्रतिशत और बढ़ जायगा। द्वितीय योजना-काल में १९५९ तक २५० नये बेसिक प्रारम्भिक स्कूल खोले जा चुके हैं।[2]

राज्य सरकार अनिवार्य शिक्षा का भी प्रबन्ध कर रही है। १९४६ में २४ नगरपालिकायें अनिवार्य शिक्षा दे रही थीं। १९५४ में यह संख्या बढ़ कर ८६ हो गई। द्वितीय योजना की अवधि में १५ अन्य नगरपालिकाओं में अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था कर दी जायगी। योजना के अन्त तक बच्चों की अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा योजना राज्य की १३० नगरपालिकाओं में से ११० में कार्यान्वित हो जायगी। बालिकाओं की अनिवार्य शिक्षा-योजना नगरपालिकाओं में पूर्ण रूप से आरम्भ हो जायगी, २ नई नगरपालिकाओं में यह योजना प्रथम बार कार्यान्वित की जायगी और २ नगरपालिकाओं में योजना को अंशतः कार्यान्वित किया जायगा। अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा

१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ ३५
२. उत्तर प्रदेश में नियोजित विकास, पृष्ठ १७

को राज्य में कार्यान्वित करने पर बल दिया जायगा और इस दिशा में १९५६ —५७ से प्राथमिक विद्यालयों का शुल्क कम करके कार्यारम्भ भी किया जा चुका है।

ग्रामों में भी प्राथमिक विद्यालयों के निर्माण का कार्य उत्साह पूर्वक चल रहा है। इस कार्य में ग्राम पंचायतें विशेष सहयोग दे रही हैं, वे विद्यालयों के भवनों का निर्माण सरकारी सहायता स्वयं की आय तथा श्रमदान से कर रही हैं। १९५७ तक २,२०० ग्रामों में प्राथमिक विद्यालय स्थापित किये जा चुके हैं। यह कार्य अब भी यथावत् चल रहा है। द्वितीय योजना-काल में ५,००० नये प्राथमिक विद्यालय ग्रामों तथा नगरों में खोले जायेंगे। इन विद्यालयों का निर्माण हो जाने पर प्राथमिक विद्यालयों की यौगिक संख्या ३७,००० हो जायगी।

इन विद्यालयों के लिये १५,००० नये अध्यापकों की आवश्यकता का अनुमान लगाया गया है। अतः राज्य की सरकार ने उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था की है। योजनाकाल में प्राथमिक पाठशालाओं के लगभग ४,००० अध्यापकों को प्रशिक्षित कर लिया जायगा। इनके अतिरिक्त अध्यापन कार्य करते हुये भी अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण की विशेष व्यवस्था की गई है। इस समय प्राथमिक विद्यालयों से शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिये ४३ सरकारी एच० टी० सी० कॉलेज एवं ५ जे० टी० सी० कॉलेज हैं। इसी प्रकार अध्यापिकाओं के लिये ९ सरकार एच० टी० सी० कॉलेज तथा १ जे०टी०सी० कॉलेज है। इनके अतिरिक्त राज्य में २० गैरसरकारी शिक्षण-संस्थायें भी हैं। द्वितीय योजना के अन्त तक पुरुषों के लिये ४१ एच० टी० सी० और १५ जे० टी० सी० कॉलेज एवम् स्त्रियों के लिये १० एच० टी० सी० और ५ जे० टी० सी० कॉलेज हो जायेंगे।

शिक्षा-पुनर्व्यवस्था के लिये राज्य-सरकार को केन्द्रीय सरकार से उदार आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है। बेसिक शिक्षा को कार्यान्वित करने एवं प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिणत करने के लिये भी पर्याप्त धन मिला है। प्राथमिक विद्यालयों में बेसिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम ५ वर्ष का कर दिया गया है। पाठ्य-क्रम में और भी कुछ परिवर्तन किये गये हैं। अभी तक पाठ्य-क्रम पुराने ढंग का था और उसमें केवल पुस्तकीय ज्ञान पर बल दिया जाता था। अब क्रियात्मक विषयों पर अधिक बल दिया जाता है। लड़कों को कृषि-शिक्षा और लड़कियों को सीने-पिरोने की शिक्षा विशेष रूप से प्रदान की जाती है। बालकों और बालिकाओं दोनों को भाषा सीखने पर बल दिया जाता है। उन्हें रामायण, महाभारत, पुराण और इतिहास की

कहानियाँ भी पढ़ाई जाती हैं। इस प्रकार पाठ्य-क्रम में परिवर्तन करके उसको अधिक व्यावहारिक एवं जीवनोपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है।

जूनियर माध्यमिक शिक्षा

१९४७ तक हमारे प्रान्त में दो प्रकार के मिडिल स्कूल थे:—(१) वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल; और (२) ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल। प्रथम प्रकार के स्कूलों में अंग्रेजी की शिक्षा नहीं दी जाती थी और ये स्कूल मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में ही स्थित थे। १९४८ में उत्तरप्रदेश की सरकार ने माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संङ्गठन किया। इस योजना के अन्तर्गत वर्नाक्यूलर और ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलों का भेद समाप्त कर दिया और सभी मिडिल स्कूलों को जूनियर हाई स्कूल की संज्ञा दे दी गई। इन स्कूलों में ३ वर्ष का पाठ्य-क्रम है और इनमें ६ से ८ तक की कक्षायें होती हैं। पहिले वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल से ऐंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल में जाने वाले छात्रों के दो वर्ष नष्ट होते थे, क्योंकि उन्हें 'स्पेशल' कक्षा में प्रवेश लेकर दो वर्ष तक अंग्रेज़ी का अध्ययन करना पड़ता था। इस कक्षा को कक्षा ६ के समकक्ष माना जाता था। अब कोई भी छात्र जूनियर हाईस्कूल की कक्षा ८ पास करके ९ वीं कक्षा में प्रवेश ले सकता है।

जूनियर हाई स्कूल की कक्षा ६ में वे विद्यार्थी प्रवेश पा सकते हैं जो बेसिक शिक्षा समाप्त कर चुके हों। इन कक्षाओं के साथ दो में से एक प्रकार की कक्षायें रखी जा सकती हैं:—(१) प्राथमिक अथवा जूनियर बेसिक कक्षायें; या (२) उच्चतर माध्यमिक कक्षायें। दोनों प्रकार की कक्षाओं को एक साथ नहीं रखा जा सकता है। जूनियर हाईस्कूल के ३ वर्ष के पाठ्य-क्रम के उपरान्त जिला शिक्षा-निरीक्षक के नियन्त्रण में एक सार्वजनिक परीक्षा होती है। यह परीक्षा वैकल्पिक है और इसके लिये अंग्रेज़ी अनिवार्य विषय नहीं है।

१९४८ तक वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलों में नार्मल पास अध्यापक कार्य करते थे, परन्तु उस वर्ष से जूनियर हाईस्कूलों के अध्यापकों के लिये जे० टी० सी० नामक एक नवीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आरम्भ किया गया। राज्य के ८ सरकारी नार्मल स्कूलों को जूनियर ट्रेनिंग कॉलेजों में परिवर्तित कर दिया गया। कुछ ग़ैर सरकारी शिक्षा संस्थाओं को भी जे० टी० सी० कक्षायें खोलने की अनुमति प्रदान कर दी गई। राज्य में अध्यापकों के लिये जो सी० टी० प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चल रहा था, उसका अन्त कर दिया गया।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने जुलाई १९५४ में जूनियर हाई स्कूलों के लिये

एक नवीन योजना कार्यान्वित की है । इसको 'शिक्षा-पुनर्व्यवस्था योजना' कहते हैं । हम इसका परिचय नीचे दे रहे हैं ।

शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना[1]

योजना की आवश्यकता

उत्तर प्रदेश एक कृषि-प्रधान राज्य है । यहाँ की अधिकांश जनता कृषि से ही अपने जीवन का निर्वाह करती है । अतः शिक्षा में कृषि को महत्वपूर्ण स्थान देना निश्चय किया गया । इसके अतिरिक्त यह भी अनुभव किया गया कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पुस्तकीय ज्ञान पर अधिक बल देने के कारण बालकों के लिये सामान्यतः निरर्थक सिद्ध होती है । जिस ज्ञान का अर्जन बालक विद्यालय में करते हैं, उसका व्यावहारिक जीवन में कोई उपयोग नहीं किया जा सकता है । यही कारण है कि वे शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त किसी भी प्रकार का उत्पादन कार्य करने में अपने को असमर्थ पाते हैं । ऐसी परिस्थिति में शिक्षा में यदि कृषि उद्योग अथवा कलाओं को उपयुक्त स्थान प्रदान कर दिया जाय, तो शिक्षा वास्तविक जीवन में अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकती है । इसके अतिरिक्त बेसिक शिक्षा को राज्य द्वारा प्राथमिक शिक्षा के रूप में अपनाया जा चुका है । बालक प्राथमिक बेसिक विद्यालयों में कोई न कोई हस्तकला सीख लेते हैं । अतः प्राथमिक शिक्षा का उच्च शिक्षा से साम्य स्थापित करना आवश्यक माना गया । इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित होकर हमारे राज्य की सरकार ने जुलाई, १९५४ में शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना कार्यान्वित की । राज्य के ग्रामों का आधार कृषि है । इसीलिये इस योजना में कृषि को बालक की शिक्षा का केन्द्र रखा गया है । यह योजना प्रारम्भ में केवल जूनियर हाई स्कूलों में क्रियान्वित की गई, पर शनैःशनैः इसे माध्यमिक विद्यालयों में भी लागू किये जाने का निश्चय किया गया है ।

योजना की रूप-रेखा

'शिक्षा-पुनर्व्यवस्था योजना' के अनुसार प्रत्येक जूनियर हाई स्कूल तथा हायर सेकेन्डरी स्कूल को ५ से १० एकड़ तक का एक फार्म रखना पड़ेगा । इस भूमि को ग्रामनिवासियों से दानस्वरूप प्राप्त किया जायगा । जहाँ इस प्रकार की भूमि प्राप्त न की जा सकेगी और जहाँ कोई कुटीर-उद्योग अथवा

1. Reorientation of Education Scheme.

हस्तकार्य अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता होगा, वहाँ उस कुटीर-उद्योग अथवा हस्तकार्य को शिक्षा का केन्द्र बनाया जायगा।

स्कूल के फार्म पर छात्र प्रतिदिन २ घन्टे कार्य करके कृषि का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करेंगे। इस प्रकार छात्रों में श्रम के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न की जायगी। कृषि के अन्तर्गत पशु-पालन, उद्यान-कला एवं वन-विज्ञान की शिक्षा की भी व्यवस्था होगी। पर्वतीय प्रदेशों में उद्यान-कला एवं मधु-मक्खी-पालन अध्ययन के मुख्य विषय होंगे। स्कूल के छात्र अपने परिश्रम से जो उत्पादन करेंगे, उसका २५ प्रतिशत सरकार लेगी और शेष भाग विद्यार्थियों को प्राप्त होगा। साथ ही छात्र शारीरिक श्रम, सामाजिक जीवन तथा स्वावलम्बन की शिक्षा ग्रहण करेंगे। स्कूलों के कार्यों में कृषि-शिक्षण के अतिरिक्त आधुनिक कृषि-विधियों का प्रदर्शन भी किया जायगा, जिससे ग्रामीण जनता को प्रेरणा प्राप्त हो सके। शनैः-शनैः कार्यों को ग्राम-विकास का केन्द्र बना दिया जायगा और वे ग्रामीणों के समक्ष कृषि के सर्वोत्तम आदर्श उपस्थित करेंगे। इस प्रकार ये फार्म ग्रामों की आर्थिक, सामाजिक तथा कृषि-सम्बन्धी उन्नति में महत्वपूर्ण योग प्रदान करेंगे।

सरकार की यह भी योजना है कि स्कूल के छात्रों को कृषि से सम्बन्धित किसी कार्य की बाहर से सहायता न लेनी पड़े। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रत्येक स्कूल में एक छोटा सा कारखाना (Workshop) होगा। इसमें कृषि में प्रयोग किये जाने वाले औज़ारों की मरम्मत की जायगी और छात्र लकड़ी, लोहे तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यों को सीख सकेंगे। कारखाने में समय-समय पर कृषि के नवीनतम औज़ारों की प्रदर्शिनी भी की जायगी, जिससे ग्राम-निवासी उनको देख और समझ कर उनका प्रयोग कर सकें।

स्कूल के छात्रों के लिये मनोरंजन की भी व्यवस्था की गई है। उनके लिये पुस्तकों और समाचार-पत्रों का प्रबन्ध किया जायगा। समय-समय पर नाटक, लोकगीत, लोक नृत्य, भजन, कीर्तन आदि का आयोजन किया जायगा। इनसे विद्यार्थियों के साथ-साथ ग्रामीण जनता का भी मनोरंजन होगा। इसके अतिरिक्त ग्रामीण समाज का सांस्कृतिक, सामाजिक एवं मानसिक उत्थान भी होगा। सप्ताह में कुछ दिन निश्चित किये जायेंगे जब छात्र ग्राम में जाकर वहाँ के निवासियों को स्वच्छता की शिक्षा देंगे और स्वयं गन्दे स्थानों को साफ़ करके उनके समक्ष एक सुन्दर उदाहरण उपस्थित करेंगे।

छात्रों में नेतृत्व के गुणों को विकसित करने की भी योजना बनाई गई है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये स्कूल एवं ग्राम के युवकों का एक 'युवक-दल' बनाया जायगा। इसका अध्यक्ष अथवा नेता स्कूल का एक छात्र

होगा। स्कूल का प्रसार-शिक्षक इस दल का परामर्शदाता होगा। ग्राम के कुछ अन्य व्यक्ति भी सलाहकारों के रूप में इस दल के सदस्य होंगे। दल के कार्य अग्रांकित होंगे:—ग्रामों की सफ़ाई; सड़क, नाली और पुल बनाना; वृक्ष लगाना, पशु और मधुमक्खी पालना तथा इसी प्रकार के अन्य सामूहिक कार्य। दल के सदस्यों को आग बुझाने, फ़सलों के कीड़ों को नष्ट करने, टिड्डियों को मारने और अन्य सामाजिक हित के कार्यों की शिक्षा दी जायगी।

'युवक-दल' की बैठक एक माह में एक बार होगी, जिसमें भविष्य के लिये कार्य-क्रम बनाया जायगा। कभी-कभी समीपवर्ती ग्राम-विद्यालयों के 'युवक-दल' सम्मिलित रूप से अपना कार्य-क्रम निर्धारित करेंगे। विशेष खेल-कूद, अभिनय, मनोरंजन के अन्य कार्य तथा सामूहिक कार्य सम्मिलित रूप से किये जायेंगे। दलों के कार्यों में शिक्षक, अभिभावक और ग्राम-निवासी सभी सहयोग देंगे और इस प्रकार छात्रों के सर्वाङ्गीण विकास में हाथ बटायेंगे।

स्कूल के कृषि-अध्यापक ग्राम के कुशल कृषकों तथा लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों की एक 'कृषि-समिति' बनायेंगे। इस समिति का कार्य कृषि-सम्बन्धी मामलों में परामर्श देना, और कृषि-प्रदर्शनियों, कृषि-प्रतियोगिताओं तथा सार्वजनिक क्षेत्रों का आयोजन करना होगा।

योजना के उद्देश्य

हमने 'शिक्षा-पुनर्व्यवस्था योजना' की जो रूपरेखा ऊपर प्रस्तुत की है, उसके आधार पर इस योजना के उद्देश्य निम्नांकित हैं:—

१. कृषि, उद्योग एवं हस्तकार्यों को शिक्षा में स्थान देकर उसे वास्तविक, व्यावहारिक तथा उपयोगी बनाना।
२. शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा प्रयोगात्मक ज्ञान पर अधिक बल देना।
३. छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना।
४. छात्रों में समाज-सेवा, स्वावलम्बन और शारीरिक श्रम की भावनाओं को जागृत करना।
५. युवक-दलों द्वारा छात्रों को नेतृत्व का प्रशिक्षण देना।
६. शिक्षा को प्रत्येक स्तर पर उत्पादक बनाकर जीवनोपयोगी बनाना।
७. स्कूल को ग्राम के उत्थान एवं विकास में योग देने के लिये एक महत्व-पूर्ण इकाई बनाना।
८. स्कूल फ़ार्म पर कृषि की उन्नति में योग देना।

योजना की प्रगति

'शिक्षा-पुनर्व्यवस्था योजना' जुलाई, १९५४ में कार्यान्वित की गई। योजना को सफल बनाने के लिये २,४०० शिक्षकों की नियुक्ति की गई और स्कूलों में भेजे जाने से पूर्व इनको अभिनवन पाठ्य-क्रमों द्वारा कृषि की व्यावहारिक शिक्षा का प्रशिक्षण दिया गया। इस समय तक यह योजना राज्य के लगभग ३,००० जूनियर एवं हायर सेकेंडरी स्कूलों में संचालित की जा चुकी है। इनमें से लगभग २,५०० स्कूलों को फ़ार्म के लिये ५ से १० एकड़ तक भूमि मिल चुकी है। प्रथम वर्ष में ही अधिकांश भूमि को तोड़कर कृषि के योग्य बना दिया गया। जिन स्कूलों को भूमि नहीं मिल सकी है, उनमें किसी स्थानीय हस्तकला में प्रशिक्षण दिया जा रहा है। ग्रामीण जनता ने इस योजना को सफल बनाने में सराहनीय योग दिया है। उनसे कृषि के औज़ारों के लिये लगभग २५ लाख रुपये चन्दे के रूप में मिल चुके हैं। शिक्षा-विभाग ने भी औज़ारों के लिये आर्थिक सहायता दी है। १९५५-५६ में ६०० विद्यालयों को कृषि के लिये बैल भी दे दिये गये।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में जूनियर हाई स्कूलों में कृषि और दस्तकारी को अनिवार्य विषय बना दिया गया और २४,००० एकड़ से भी अधिक भूमि जनता से विद्यालयों के लिए प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त जनता ने योजना को आंशिक रूप से कार्यान्वित करने के लिये ३० लाख रुपये से भी अधिक की धनराशि एकत्रित की। इस योजना के अधीन लगभग ३,००० शिक्षित बेकारों को कुछ-न-कुछ काम मिल गया है। द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में जूनियर हाई स्कूलों पर कुल व्यय का ११·२० प्रतिशत धन व्यय किया जायगा।[1]

योजना का व्यय

अनुमान लगाया गया था कि योजना को कार्यान्वित करने में स्थायी व्यय ४१·३२ लाख रुपया वार्षिक एवं अस्थायी व्यय ३१ लाख रुपया वार्षिक होगा। अतः उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्रथम धनराशि आवर्तक-अनुदान के रूप में और द्वितीय अनावर्तक-अनुदान के रूप में प्रदान की। १९५५—५६ में सरकार ने फिर ४९,४८,६०० रुपये तथा १२,४७,५०० रुपये क्रमशः आवर्तक और अनावर्तक अनुदान के रूप में दिये। इसके अतिरिक्त प्रधानमन्त्री के नाम से एक शिक्षा-कोष है जिसके लिये ३०,८६,९८२ रुपये जनता से चन्दे में प्राप्त हो चुके हैं। यह धनराशि आवश्यक कार्यों के लिये सुरक्षित है।

---

१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना (उत्तर प्रदेश सरकार), पृष्ठ, ३६

शिक्षकों का प्रशिक्षण

किसी भी शिक्षा-योजना को सफल बनाने के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों का होना अनिवार्य है। अतः प्रसाराध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिये गोरखपुर, बलिया, हरदोई, प्रतापगढ़, आगरा और झांसी में प्रशिक्षण-केन्द्रों की व्यवस्था की गई। पर्वतीय क्षेत्रो के लिये अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध रानीखेत के निकट चौबटिया नामक स्थान पर किया गया। इसके अतिरिक्त प्रतापगढ़, भीमताल और रुद्रपुर के कृषि-फार्मों पर भी प्रसाराध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई।

योजना का संचालन

योजना के संचालन के लिये एक 'राज्य शिक्षा-परिषद्' की स्थापना की जा चुकी है। यह परिषद् योजना के सम्बन्ध में परामर्श देती है एवं नीतियों को निर्धारित तथा कार्यान्वित करती है। परिषद् के अध्यक्ष प्रधानमंत्री और उपाध्यक्ष शिक्षा-मंत्री हैं। अन्य मंत्री इसके सदस्य हैं।

'राज्य शिक्षा-परिषद्' के अधीन प्रत्येक ज़िले में एक 'ज़िला नियोजन समिति' कार्य करती है। इसका अध्यक्ष ज़िलाधीश और उपाध्यक्ष ज़िला बोर्ड का अध्यक्ष होता है। ज़िले के विधान सभा के सदस्य, ज़िला नियोजन अधिकारी, ज़िला विद्यालय निरीक्षक तथा ज़िला कृषि-अधिकारी इसके सदस्य होते हैं।

ज़िले के समस्त विद्यालय 'ज़िला नियोजन समिति' की देख-रेख में कार्य करते हैं। समिति की सहायता के लिये प्रत्येक विद्यालय की एक 'विद्यालय-समिति' है। इसका अध्यक्ष ग्राम का प्रधान होता है। ग्राम का मुखिया एवं ग्रामीणों के प्रतिनिधि इस समिति के सदस्य और प्रसार-शिक्षक इसका मंत्री होता है।

योजना का मूल्यांकन

'शिक्षा पुनर्व्यवस्था-योजना' की कुछ व्यक्तियों द्वारा मुक्त कंठ से प्रशंसा की गई है, परन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं, जिन्होंने इसकी अति कटु आलोचना की है। अतः निष्पक्ष रूप से इसके विषय में अपना मत निर्धारित करने के लिये इसके गुण-दोषों पर विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा।

गुण

'शिक्षा पुनर्व्यवस्था-योजना' के प्रमुख गुण निम्नाङ्कित हैं :—

१. विदेशियों द्वारा प्रचलित शिक्षा-प्रणाली स्वतन्त्र भारत के लिये सर्वथा

अनुपयुक्त है। इस शिक्षा-पद्धति का मुख्य उद्देश्य पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करके एक ऐसा 'बाबू वर्ग' तैयार करना है, जो सरकारी दफ्तरों एवं अन्य कार्यालयों में कुर्सी पर बैठ कर काग़ज़ घिसने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं कर सकता है। नवीन योजना शिक्षा के इस महान् दोष का उन्मूलन कर देगी। साथ ही वह बालकों के व्यक्तित्व का समन्वित विकास करेगी और उन्हें समाज के उत्पादक अङ्ग तथा देश के योग्य नागरिक बनायेगी।

२. योजना में शारीरिक श्रम, समाज-सेवा और सहकारिता पर अत्यधिक बल दिया गया है। अतः वह बालकों में इन भावनाओं को जागृत करेगी।

३. नेतृत्व का प्रशिक्षण प्राप्त करके छात्र, जीवन में प्रवेश करने पर अपने कार्य का सुचारु रूप से संचालन कर सकेंगे। नेतृत्व के प्रशिक्षण से देश में कर्मठ नेताओं का अभाव नहीं रहेगा।

४. योजना में कृषि को शिक्षा का केन्द्र बनाया गया है। अतः यह स्वाभाविक है कि ग्रामीण बालक इस शिक्षा को प्राप्त करके कृषि-कार्य में संलग्न हो जायेंगे और कृषि का पर्याप्त ज्ञान अर्जन कर लेने के कारण उसकी उन्नति में योग देंगे। फलस्वरूप देश की खाद्य-समस्या बहुत बड़ी सीमा तक हल हो जायगी। छात्रों को अध्ययन के उपरान्त नगरों को जीविकोपार्जन का साधन खोजने के लिये नहीं दौड़ना पड़ेगा, जसा कि वे आजकल करते हुए पाये जाते हैं। अपने ग्राम से उनका अटूट सम्बन्ध स्थापित हो जायगा और उसके विकास के लिये वे कोई कसर न उठा रखेंगे। ऐसी दशा में हमारे ग्रामों की उन्नति होना स्वाभाविक है।

५. योजना के अन्तर्गत स्कूलों को फार्मों के लिये अधिकांश रूप से ऐसी भूमि प्राप्त हुई है, जो अभी तक बंजर और व्यर्थ पड़ी हुई थी। छात्रों ने अनवरत परिश्रम करके उस भूमि को उपजाऊ बना लिया है। फलस्वरूप देश के उत्पादन में वृद्धि हो रही है।

६. फार्मों में उत्पादित वस्तुओं का ७५ प्रतिशत भाग छात्रों को और २५ प्रतिशत सरकार को मिलता है। इससे प्रत्यक्ष रूप से दोनों को लाभ होगा। छात्रों को स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा प्राप्त होगी और सरकार इस अतिरिक्त धन को देश की अन्य विकास योजनाओं में या स्वयं शिक्षा पर व्यय कर सकेगी।

७. विद्यालयों को ग्रामीण जनता के निकट सम्पर्क में रखने का प्रयास किया

गया है। इसका परिणाम यह होगा कि विद्यालय सामुदायिक केन्द्र का रूप ग्रहण करेंगे। कालान्तर में इन विद्यालयों का ऐसे केन्द्रों के रूप में विकास हो जायगा, जो ग्रामीण समाज की सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक उत्कर्ष के दृढ़ स्तम्भ बन जायेंगे।

दोष

उपरिलिखित गुणों के होते हुए भी इस योजना पर आक्षेप किया गया है और इसके निम्नलिखित दोषों की ओर जनता तथा सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया है :—

१. यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों के लिये है। इसका परिणाम यह होगा कि देश के समस्त बच्चों के लिये समान शिक्षा-व्यवस्था न होगी। ग्रामीण बालक उस शिक्षा से बंचित रह जायेंगे, जो नगर के बालकों को प्राप्त होगी। फलतः ग्रामीण बालकों का मानसिक विकास उस स्तर पर नहीं पहुँच सकेगा, जिस पर नगर के बालकों का पहुँचेगा। इससे ग्रामीण बालकों का स्पष्ट रूप से अहित होगा, क्योंकि वे सार्वजनिक सेवाओं की परीक्षाओं में नगर के बालकों से प्रतियोगिता करने में असफल होंगे।

२. नगर और ग्राम के विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में अन्तर हो जाने से दोनों स्थानों के समाज एक दूसरे से दूर होते चले जायेंगे। इस भेदभाव के फलस्वरूप देश में एकता स्थापित करना असम्भव हो जायगा।

३. ग्रामीण समाज यों ही पिछड़ा हुआ है। यह योजना उसको और पीछे फेंक देगी। यही कारण है कि कुछ उग्रवादी यह कहने में संकोच नहीं करते हैं कि सरकार ग्राम निवासियों को नगर-निवासियों से पीछे रखने के लिये ही इस योजना को कार्यान्वित कर रही है।

४. इस योजना से शिक्षा का स्तर गिर जायगा। छात्रों को अपना अधिकांश समय कृषि को देना पड़ेगा। अतः उनके पास अन्य विषयों के अध्ययन के लिये बहुत कम समय शेष रह जायगा। ऐसी दशा में शिक्षा का मानदण्ड गिर जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी।

५. अभिभावक योजना के उद्देश्य को भली प्रकार न समझ सकने के कारण उसके प्रति उदासीन हैं। उनका कहना है कि कृषि-कार्य की शिक्षा तो वे ही अपने बालकों को दे सकते हैं, फिर इसे सीखने के लिये उन्हें स्कूल भेजने की क्या आवश्यकता है। उनका यह कथन तर्क रहित है, क्योंकि हमारे देश की कृषि-प्रणाली आधुनिक ढंग की नहीं है।

६. कोई भी कार्य हो उसे सफलता पूर्वक तभी किया जा सकता है, जब

उसकी एक निश्चित योजना हो। 'शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना' पूर्व नियोजित नहीं है। यही कारण है कि इसको कार्यान्वित करने में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

७. विद्यालयों के प्रसाराध्यापकों में बहुत थोड़े से कृषिस्नातक हैं। शेष शिक्षकों को ३ माह का प्रशिक्षण दे दिया गया है। कहना व्यर्थ है कि इस अल्प समय में उन्हें कृषि का अल्प ज्ञान ही प्राप्त हुआ होगा।

८. योजना के अन्तर्गत जो उच्च अधिकारी कार्य कर रहे हैं, उन्हें योजना को संचालित करने का कोई विशेष ज्ञान तथा अनुभव नहीं है। अतः वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान नहीं कर पाते हैं।

९. स्कूलों को जो भूमि मिली है, उसमें से अधिकांश बंजर है। उसको उत्पादक बनाने में इतने धन और साधन की आवश्यकता है कि सरकार जुटाने में असमर्थ है।

१०. प्रसाराध्यापकों को इतने अधिक कार्य सौंप दिये गये हैं कि उन्हें फार्म पर जाने के लिये अवकाश ही नहीं मिलता है।

११. योजना को ग्राम-निवासियों की सहानुभूति नहीं प्राप्त है। अतः प्रसाराध्यापकों को व्यावहारिक जीवन में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनके समक्ष हल, बैल, बीज आदि की कठिनाइयाँ भी उपस्थित होती हैं।

१२. अनेकों फ़ार्म ऐसे स्थानों पर हैं जहाँ किसी प्रकार के सिंचाई के साधन उपलब्ध नही हैं।

१३. इस योजना में बालिकाओं की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। जब संविधान में पुरुषों और स्त्रियों को समान अधिकार प्रदान किये गये हैं, तो बालिकाओं को शिक्षा के लाभ से क्यों बंचित रखा जा रहा है।

निष्कर्ष

'शिक्षा पुनर्व्यवस्था-योजना' के जिन गुण-दोषों का विवेचन ऊपर किया गया है उनके आधार पर हम कह सकते हैं कि योजना में गुण कम हैं और दोष अधिक। ये दोष वस्तुतः योजना के कार्यान्वयन से सम्बन्धित हैं, न कि स्वयं योजना से। यदि इन दोषों का निराकरण कर दिया जाय, तो योजना देश के लिये अवश्य लाभदायक सिद्ध हो सकेगी अन्यथा नहीं।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा अंग्रेज शासकों की देन है। इस शिक्षा का मुख्य उद्देश्य भारतीयों को राजकीय पदों के लिये तैयार करना था। केवल थोड़े से व्यक्ति ही जो नगरों में निवास करते हैं, इस शिक्षा से लाभ उठा पाते हैं। माध्यमिक शिक्षा प्रदान करने के लिए सरकारी और ग़ैर-सरकारी दोनों प्रकार की शिक्षा संस्थायें हैं। समय की गति के साथ यह शिक्षा अनेकों दोषों से युक्त हो गई। इसका अध्ययन काल १२ वर्ष का है और इसमें छात्रों को पुस्तकीय ज्ञान का अर्जन और परीक्षायें उत्तीर्ण करने में ही अपनी समस्त योग्यता का प्रदर्शन करना पड़ता है। इतने दीर्घ काल तक परिश्रम करने के उपरान्त भी जब छात्र व्यावहारिक जीवन में प्रवेश करते हैं, तब वे अपनी जीविका की समस्या का समाधान करना अति कठिन पाते हैं। इस शिक्षा के दो अति भयंकर परिणाम निकले हैं। देश में बेकार व्यक्तियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती चली जा रही है, और इसके फलस्वरूप शिक्षित व्यक्ति समाज के अनुत्पादक अङ्ग बन गये हैं। विदेशी शासकों ने इन बातों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। सौभाग्य से १९३७ में उत्तर प्रदेश में कांग्रेसी मंत्रिमंडल का निर्माण हुआ और उसने माध्यमिक शिक्षा की जाँच करने के लिये १९३९ में 'प्रथम आचार्य नरेन्द्र देव समिति' की नियुक्ति की। समिति ने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन के लिये अत्युत्तम सुझाव दिये, परन्तु कांग्रेसी मंत्रिमंडल के पदत्याग के कारण उनको पूर्णरूप से कार्यान्वित न किया जा सका। अगस्त १९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ और उसके शीघ्र उपरान्त ही उत्तर प्रदेश की सरकार ने माध्यमिक शिक्षा को पुनर्संगठित करने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से जुलाई, १९४८ 'में 'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना' कार्यान्वित की गई। हम इसका अध्ययन नीचे करेंगे।

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है इस योजना को उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिये जुलाई, १९४८ में कार्यान्वित किया गया। योजना में 'प्रथम आचार्य नरेन्द्र देव समिति' के कतिपय सुझावों को स्वीकार करके देश की शिक्षा को स्वतन्त्र राष्ट्र के लिये अधिक उपयुक्त बनाने के विचार से उसे राज्य के सभी माध्यमिक विद्यालयों के लिये लागू कर दिया गया। योजना की मुख्य-मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :—

१. माध्यमिक शिक्षा को २ भागों में विभाजित किया गया :—

(अ) जूनियर—यह शिक्षा जूनियर हाई स्कूलों में प्रदान की जायगी,

जिनमें कक्षा ६, ७ और ८ होंगी इन स्कूलों का वर्णन पहिले किया जा चुका है।

(ब) हायर—यह शिक्षा हायर सेकेंडरी स्कूलों में दी जायगी। इनमें कक्षा ९, १० ११ और १२ होंगीं।

२. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों की विभिन्न अभिरुचियों एवं योग्यताओं को ध्यान में रखकर पाठ्य-क्रम में विविध विषयों को सम्मिलित किया जायगा। अतः पाठ्य क्रम को अग्रांकित ५ वर्गों में विभाजित किया जायगा :—

(क) **साहित्यिक**—इसमें केवल साहित्यिक विषय होंगे।

(ख) **वैज्ञानिक**—इसमें विज्ञान अनिवार्य विषय होगा।

(ग) **व्यावसायिक**—इसमें वाणिज्य सम्बन्धी विषय होंगे।

(घ) **रचनात्मक**—इसमें हस्तकला से सम्बन्धित विषय होंगे, यथा—पुस्तक कला, काष्ठ कला आदि।

(ङ) **कलात्मक**—इसमें चित्रकला, संगीत, आदि विषय होंगे।

३. अधिकांश माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्य-क्रम बहुमुखी (Multi-lateral) होगा, परन्तु कुछ विद्यालय एकमुखी एवं द्विमुखी भी होंगे।

४. वर्तमान हाई स्कूलों एवं इन्टरमीडिएट कॉलेजों को उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में परिणत कर दिया जायगा। इन विद्यालयों में कक्षा ३,४ और ५ नहीं रहेंगी, परन्तु यदि वे चाहें तो जूनियर हाई स्कूल की कक्षाओं को रख सकते हैं।

५. परिवर्तन काल में माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर ३ सार्वजनिक परीक्षायें होंगी:—जूनियर हाई स्कूल परीक्षा, हाई स्कूल परीक्षा और इन्टरमीडिएट।

६. साहित्यिक एवं वैज्ञानिक वर्ग लेने वाले छात्रों को अंग्रेज़ी का अध्ययन अनिवार्य रूप से करना पड़ेगा। शेष वर्गों में वैकल्पिक विषयों की संख्या अधिक रहेगी।

योजना का मूल्यांकन

'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना' को राज्य की सरकार ने अति उत्साह से कार्यान्वित किया। सभी हाई स्कूलों को हायर सेकेंडरी स्कूलों की संज्ञा दे दी गई। स्कूलों में विभिन्न प्रकार के पाठ्य-क्रमों के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाने लगी, जिससे छात्रों को अपनी रुचियों तथा योग्यताओं के अनुसार विभिन्न विषयों का चयन करने का अवसर प्राप्त हुआ। फलस्वरूप छात्रों की

अधिक मानसिक उन्नति और उनके व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास होना सम्भव होगया। इस योजना से एक लाभ यह हुआ कि प्राथमिक विद्यालयों के महत्त्व में वृद्धि हो गई, क्योंकि ३, ४, और ५ कक्षाओं को उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों से हटा दिया गया। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में विविधता आजाने से छात्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती चली गई, जिसके कारण राज्य में अनेकों नवीन विद्यालयों की स्थापना करनी पड़ी। १९४६-४७ में सेकेंडरी स्कूलों की संख्या ५०६ और उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या २,०३,२२५ थी। १९५५-५६ में ये संख्यायें क्रमशः १,४७४ और ६,४४,१२५ होगईं।[1]

योजना में उपरिकथित गुणों के बावजूद भी उसे सफलता नहीं प्राप्त हुई। इसके लिये योजना के दोष ही उत्तरदायी हैं। पाठ्य-क्रम में विविधता अवश्य कर दी गई, परन्तु इससे माध्यमिक शिक्षा में उपस्थित अति दीर्घकाल से चले आते एक प्रमुख दोष का निराकरण न हो सका। शिक्षा में पूर्व के समान पुस्तकीय ज्ञान पर ही अधिक बल दिया जाता रहा। विद्यालयों के छात्रों को परामर्श देने के लिये कोई व्यवस्था नहीं की गई। अतः अधिकांश छात्र साहित्यिक वर्ग को ही लेते रहे, क्योंकि अन्य वर्गों की अपेक्षा उसमें उत्तीर्ण होना सरल था। वैज्ञानिक वर्ग को भी विद्यार्थियों ने चुना। परन्तु अन्य वर्गों ने छात्रों को आकर्षित नहीं किया। इसका मुख्य कारण यह था कि उन वर्गों के विषयों की शिक्षा के लिये विद्यालयों में उचित व्यवस्था न की जा सकी।

इस योजना का एक अन्य दोष यह था कि विषयों को अनिवार्य, सहायक और गौण में विभक्त करके उनको इतना पेचीदा बना दिया कि छात्रों, शिक्षकों तथा अभिभावकों को उन्हें सरलतापूर्वक समझना कठिन हो गया। वार्षिक परीक्षाओं में सहायक विषय के प्रश्न-पत्र के स्थान पर गौण विषय के प्रश्न-पत्र देना एक साधारण बात हो गई। इससे छात्रों तथा उनके अभिभावकों का महान् अहित हुआ। फलस्वरूप सर्वत्र योजना पर दोषारोपण किया जाने लगा और सरकार का ध्यान विषयों के इस प्रकार के अनुचित विभाजन की ओर आकृष्ट किया गया। सरकार इस दोष का निवारण करने का उपाय सोच ही रही थी कि उसके समक्ष एक अन्य गम्भीर समस्या उपस्थित हो गई। विद्यालयों की संख्या में इतनी द्रुतगति से वृद्धि हो रही थी कि सरकार उनको अपने उचित नियंत्रण में न रख सकी। फलतः योजना को सुचारु रूप

1. *Education in India* (1955-56) pp: 124 & 130.

से कार्यान्वित करना असम्भव हो गया। ऐसी परिस्थिति में सरकार ने माध्यमिक शिक्षा और अपनी योजना की जाँच करने के लिये एक समिति नियुक्त करने का निश्चय किया।

द्वितीय आचार्य नरेन्द्र देव समिति (१९५२-५३)

अपने निश्चय के अनुसार उत्तर प्रदेश की सरकार ने मार्च, १९५२ में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक 'माध्यमिक शिक्षा पुनर्संङ्गठन समिति'[1] की नियुक्ति की। अध्यक्ष के नाम पर इस समिति को 'आचार्य नरेन्द्र-देव समिति' के नाम से भी पुकारा जाता है।

समिति का जाँच-क्षेत्र

समिति को अधोलिखित विषयों की जाँच करने का कार्य सौंपा गया :—

१. १९४८ में कार्यान्वित की गई 'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा-योजना, को कितनी सफलता प्राप्त हुई है।
२. साहित्यिक, वैज्ञानिक, व्यावसायिक, रचनात्मक तथा कलात्मक वर्गों की छात्रों के लिये योजना की क्या उपादेयता है और उन वर्गों की वास्तविक स्थिति क्या है।
३. रचनात्मक तथा कलात्मक वर्गों की शिक्षा के लिये उचित व्यवस्था है या नहीं और वे छात्रों के लिये कितने उपयोगी सिद्ध हुए हैं।
४. यह जाँच करना कि छात्रों ने अपनी रुचियों तथा योग्यताओं के अनुसार विषयों का चुनाव किया है या नहीं।
५. व्यावसायिक एवं औद्योगिक विषय लेने वाले छात्रों की जीविकोपार्जन की समस्या हल हुई है या नहीं।
६. सामान्य तथा टेकनिकल शिक्षा में समन्वय स्थापित करने के लिये सुझाव देना।
७. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना को सफल बनाने के लिये प्रस्ताव देना।

कुछ समय उपरान्त समिति के जाँच-क्षेत्र में विस्तार कर दिया गया और उसको अग्रांकित अन्य विषयों की जाँच करने का भी उत्तरदायित्व दे दिया गया :—पाठ्य-पुस्तक, परीक्षा एवं विद्यालयों की प्रबन्ध समितियाँ, अवकाश तथा अध्ययन के घंटे, इलाहाबाद का मनोविज्ञान केन्द्र एवं गृह-विज्ञान कॉलिज, विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता, संस्कृत तथा अँग्रेजी को

1. Secondary Education Reorganisation Committee.

अनिवार्य विषय बनाना, विद्यालयों में धार्मिक और नैतिक शिक्षा देने का प्रश्न।

समिति ने १४ माह के कठिन परिश्रम के पश्चात् मई, १९५३ में अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। रिपोर्ट में समिति ने अपनी जाँच के परिणामों तथा माध्यमिक शिक्षा को पुनर्संगठित करने के लिये अनेकों सुदूर-गामी सुझाव दिये। समिति ने विशेष रूप से 'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना की त्रुटियों की ओर संकेत किया और उनके निराकरण के लिये बहुमूल्य प्रस्ताव रखे। हम उन पर नीचे दृष्टिपात कर रहे हैं।

शिक्षा योजना की त्रुटियाँ—

समिति ने १९४८ में कार्यान्वित की गई 'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा-योजना' में निम्नलिखित त्रुटियाँ बताईं :—

१. योजना पूर्व-नियोजित नहीं है। कार्यान्वित करने के पूर्व उसका परीक्षण नहीं किया गया। यही कारण है कि उसके मार्ग में अनेकों समस्यायें तथा कठिनाइयाँ उपस्थित हो रही हैं।

२. विविध समस्याओं एवं कठिनाइयों के परिणामस्वरूप योजना को अत्यल्प सफलता प्राप्त हुई है।

३. विषयों का अनिवार्य, सहायक और गौण में विभाजन कर देने से छात्रों के समक्ष एक गम्भीर समस्या खड़ी हो गई है। परीक्षा-भवन में वे प्रश्न-पत्रों का चुनाव नहीं कर पाते हैं, जिससे उनका एक वर्ष का परिश्रम व्यर्थ चला जाता है।

४. सामान्य विज्ञान को अनिवार्य विषय बना देने में छात्रों का कोई हित नहीं हुआ है।

५. हिन्दी को प्रारम्भिक हिन्दी का नाम देकर अनिवार्य विषय तो बना दिया गया है, परन्तु उसके अङ्क परीक्षा-फल में अन्य विषयों के साथ नहीं जोड़े जाते हैं। परिणामतः हिन्दी की उपेक्षा की जा रही है और उसे वह सम्मान नहीं दिया जा रहा है, जो राष्ट्र-भाषा को दिया जाना चाहिये।

६. योजना में इस बात का उल्लेख किया गया है कि छात्रों को परामर्श तथा पथ-प्रदर्शन की सुविधा प्रदान की जायगी, परन्तु इस दिशा में कोई सक्रिय पग नहीं उठाया गया है।

७. योजना के अनुसार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय कक्षा ३, ४ और ५ नहीं रख सकते हैं। परिणामस्वरूप अनेकों अभिभावक अपने बच्चों को

कक्षा ५ तक की घर पर शिक्षा देने के उपरान्त कक्षा ६ में उनका प्रवेश करा देते हैं। इससे बच्चों की नींव कमजोर रह जाती है।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

योजना की त्रुटियों पर प्रकाश डालने के उपरान्त समिति ने अपनी रिपोर्ट में माध्यमिक शिक्षा के निम्नलिखित दोषों की ओर संकेत किया :—

१. माध्यमिक विद्यालयों और छात्रों की संख्या में इतनी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है कि सरकार उन पर अपना अंकुश रखने में असमर्थ है।
२. विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव है।
३. अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिये नवीन प्रशिक्षण-कॉलेजों का निर्माण किया जा रहा है, परन्तु इनमें प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। फलस्वरूप अध्यापकों का प्रशिक्षण उचित प्रकार से नहीं हो पाता है।
४. विद्यालयों का शिक्षा-स्तर निम्न हो गया है। इसके लिये अप्रशिक्षित अध्यापक, उचित प्रकार से प्रशिक्षित न किये गए शिक्षक एवं विद्यालयों में शिक्षण-सामग्री का अभाव मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं।
५. विद्यालयों के पास उपयुक्त भवन, उत्तम पुस्तकालय तथा प्रयोगशालायें नहीं हैं।
६. विद्यालयों के अध्यापकों की दशा अच्छी नहीं है। उन्हें कम वेतन और वह भी समय पर नहीं दिया जाता है। उनके स्थान सुरक्षित नहीं हैं, क्योंकि विद्यालयों की प्रबन्ध-समितियाँ उन्हें अपनी इच्छानुसार चाहे जब हटा देती हैं।

समिति के सुझाव

'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना' की त्रुटियों और माध्यमिक शिक्षा के दोषों का निराकरण करने के लिये समिति ने जो सुझाव दिये, उनमें महत्वपूर्ण अधोलिखित हैं :—

(१) **सामान्य शिक्षा**—हिन्दी के साथ संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाय। संस्कृत की शिक्षा ८ वीं कक्षा से १२ वीं कक्षा तक दी जाय। हिन्दी के ३ प्रश्न-पत्र होने चाहिये। तीसरे प्रश्न पत्र में संस्कृत का पाठ्य-क्रम रखा जाना चाहिये। हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य भारतीय भाषा की अथवा विदेशी भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाय। कक्षा ९ और १० में गणित को अनिवार्य विषय बना दिया जाय और कक्षा ११ और १२ में उसे वैकल्पिक रखा जाय। कक्षा ९ और १० में बालकों और बालिकाओं दोनों के लिये गणित अनिवार्य हो। बालिकाओं के लिए गृह-विज्ञान एक अनिवार्य

विषय बना दिया जाय। कक्षा ९ और १०में ६ विषय तथा कक्षा ११ और १२ में ५ विषयों की शिक्षा दी जाय। इनके अतिरिक्त कुछ वैकल्पिक विषय भी रखे जायँ। विषयों का मुख्य और गौण में जो विभाजन किया गया है, उसका अन्त कर दिया जाय। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को मान्यता तभी प्रदान की जाय, जब उनके पास आवश्यक विषयों की शिक्षा देने के लिये उचित एवं पर्याप्त साधन हों। माध्यमिक शिक्षा में सुधार करने के लिये यह आवश्यक है कि प्राथमिक, बेसिक और जूनियर हाई स्कूलों के पाठ्य-क्रमों में सुधार किया जाय। सभी स्तरों पर पाठ्य-क्रमों में समन्वय स्थापित करना वांछनीय है।

(२) **टेकनिकल शिक्षा**—टेकनिकल शिक्षा के साथ-साथ सामान्य शिक्षा की भी व्यवस्था की जाय। इन स्कूलों को शिक्षा-विभाग के नियन्त्रण में रखा जाय। नवीन टेकनिकल स्कूलों की स्थापना करते समय स्थान की भौगोलिक उपयुक्तता पर विशेष रूप से विचार कर लिया जाय। राज्य में अधिक से अधिक टेकनिकल संस्थाओं का निर्माण किया जाय। इनमें से कुछ को पॉली-टेकनीक (Polytechnic) का रूप प्रदान किया जाय। प्रत्येक जिले में कम से कम १ ऐसा स्कूल अवश्य हो। टेकनिकल विद्यालयों के अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिये उचित व्यवस्था की जाय। टेकनिकल शिक्षा को आकर्षक बनाने के लिये उसे निःशुल्क कर दिया जाय।

(३) **छात्रों की मनोवैज्ञानिक जाँच**—छात्रों में इतनी योग्यता नहीं होती है कि वे अध्ययन के विषयों का चुनाव स्वयं कर लें। अतः यह आवश्यक है कि उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिये प्रत्येक जिले में एक मनोवैज्ञानिक केन्द्र स्थापित किया जाय। इस केन्द्र में अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाय। प्रत्येक विद्यालय में इस प्रकार का एक प्रशिक्षित अध्यापक अवश्य होना चाहिये। यह अध्यापक छात्रों की रुचियों का पता लगा कर उनको विषयों के चयन करने में सहायता दे। वह विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक जाँच करके उनका सम्पूर्ण लेखा अपने पास रखे। राज्य में एक 'मनोवैज्ञानिक शिक्षा-परिषद्' स्थापित की जाय। इसमें मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के टेस्ट (Test) तैयार किये जायँ जिनके द्वारा छात्रों की मनोवैज्ञानिक जांच की जाय। इलाहाबाद में 'मनोविज्ञान शिक्षा-केन्द्र' में सुधार करके उसमें प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय। प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को १ वर्ष के कोर्स के पश्चात् 'प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक' का प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाय। प्रशिक्षण कालेजों के पाठ्यक्रम में सुधार किया जाय और उनमें मनोवैज्ञानिक जाँच तथा मार्गदर्शन के ऊपर विशेष रूप से जोर दिया जाय।

(४) परीक्षाएं—इन्टरमीडिएट कक्षाओं को तोड़ कर उनकी १२ वीं कक्षा को डिग्री कोर्स को साथ मिला दिया जाय और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में ९, १० और ११ कक्षायें रखी जायँ। ११ वीं कक्षा के अन्त में उच्चतर माध्यमिक परीक्षा की व्यवस्था की जाय। १६ वर्ष से कम आयु वाले छात्रों को उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में सम्मिलित होने की आज्ञा न प्रदान की जाय। परीक्षा में वे ही छात्र बैठने दिये जायँ, जिनकी उपस्थिति ७५ प्रतिशत हो। कक्षा ८ के पश्चात् एक छात्रवृत्ति परीक्षा ली जाय। उसमें उत्तीर्ण होने वाले योग्य विद्यार्थियों को दो वर्ष तक छात्रवृत्ति दी जाय। छात्रों को विद्यालय की तीन परीक्षाओं में प्राप्त अङ्कों के आधार पर एक कक्षा से दूसरी कक्षा में उन्नति दी जाय।

(५) कार्य-दिवस एवं अवकाश—प्रत्येक विद्यालय में २०० कार्य-दिवस अथवा ४०० बैठकें अवश्य होनी चाहिये। कोई भी स्कूल २३५ दिन से अधिक अध्यापन का कार्य न करे। ग्रीष्म अथवा शरद् ऋतु की छुट्टियाँ ६ या ७ सप्ताह से अधिक नहीं होनी चाहिये। इनके अतिरिक्त १ वर्ष में केवल ३१ दिन की छुट्टियाँ और दी जायँ। प्रधानाध्यापक को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार छुट्टियाँ देने का अधिकार होना चाहिये।

(६) नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा—नैतिक एवं मानवीय गुणों का विकास करना शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य है। अतः विद्यालयों में नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य रूप से दी जाय। प्रत्येक विद्यालय अपना कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व १० मिनट प्रार्थना करे। छात्रों को विभिन्न धर्मों के मूल सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाय। समय-समय पर महान् पुरुषों के जीवन-चरित्र पर व्याख्यान दिये जायँ।

(७) अनुशासन—अनुशासन में सुधार करने के लिये छात्रों तथा अध्यापकों में निकट सम्पर्क स्थापित किया जाना आवश्यक है। अतः विद्यालय के छात्रों को २० से ३० तक के दलों में विभाजित किया जाय और प्रत्येक दल के ऊपर एक शिक्षक-संरक्षक (Guardian Tutor) हो। जिन शिक्षा-शालाओं का अनुशासन अच्छा हो उन्हें पुरस्कार दिया जाय। शिक्षकों तथा अभिभावकों में सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया जाय। बालकों के समक्ष शारीरिक श्रम तथा सामाजिक कार्य का आदर्श उपस्थित किया जाय और उनको सिनेमा देखने तथा अश्लील गाने सुनने से दूर रखा जाय। बालकों को शिक्षाप्रद चित्र दिखाने का प्रबन्ध किया जाय। प्रत्येक स्कूल में एक रेडियो रखा जाय, जिसे बालकों के हितार्थ मध्यावकाश के समय चालू कर दिया

जाय। इन सब बातों के अतिरिक्त अनुशासन सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि प्रधानाध्यापक के अधिकारों में वृद्धि की जाय।

(८) विद्यालयों की प्रबन्ध-समितियाँ—विद्यालयों की प्रबन्ध-समितियों में अविलम्ब सुधार किया जाय। जब तक इनमें सुधार नहीं किया जायगा, तब तक विद्यालयों की दशा में सुधार करना सम्भव नही होगा। जो प्रबन्ध समितियाँ संतोषजनक कार्य कर रही हैं, उन्हें चलने दिया जाय। शेष को भंग करके उनके स्थान पर सरकारी प्रशासकों की नियुक्ति कर दी जाय। प्रबन्ध समिति में अधिक से अधिक १२ सदस्य होने चाहिये और उनका निर्वाचन प्रति तीन वर्ष के उपरान्त पुनः होना चाहिये। प्रत्येक प्रबन्ध-समिति में विद्यालय का प्रधानाध्यापक और अध्यापकों का प्रतिनिधि होना चाहिये। प्रबन्ध समितियों का निर्माण धर्म और जाति के आधार पर न किया जाय।

(९) अध्यापक—अध्यापकों की नियुक्ति ५ व्यक्तियों की एक उपसमिति द्वारा की जानी चाहिये। विद्यालय का प्रधानाध्यापक इस उपसमिति में अवश्य होना चाहिये। प्रत्येक शिक्षक की नियुक्ति की स्वीकृति जिला-विद्यालय निरीक्षक से प्राप्त की जानी चाहिये। नियुक्त हो जाने के ४ माह के अन्दर ही शिक्षक से संविदापत्र (Agreement Form) भरवा लेना चाहिये। अध्यापकों और प्रबन्ध-समितियों के झगड़ों का निर्णय करने के लिये एक 'पंच फैसला-बोर्ड' (Arbitration Board) का निर्माण किया जाय। इस बोर्ड का निर्णय अन्तिम होगा और अध्यापकों तथा प्रबन्ध-समितियों को उसे स्वीकार करना आवश्यक होगा। उनको इसके लिये बाध्य करने का उत्तरदायित्व शिक्षा-विभाग पर होगा। यदि कोई प्रबन्ध-समिति निर्णय को स्वीकार न करे; तो उसके द्वारा संचालित विद्यालय का सहायता-अनुदान कम या बन्द कर दिया जाय। शिक्षकों के वेतन तथा कार्य की दशाओं में सुधार करने के विषय में भी समिति ने सुझाव दिये और कहा कि गैर-सरकारी स्कूलों के अध्यापकों के स्थानान्तरण के लिये 'स्थानान्तरण बोर्ड' का निर्माण किया जाय।

(१०) पाठ्य-पुस्तकें—पाठ्य-पुस्तकों को स्वीकार करने की प्रचलित विधि इतनी दोषपूर्ण है कि उसे शीघ्रातिशीघ्र समाप्त कर देना चाहिये। कक्षा ९ से १२ तक के लिये केवल पाठ्य-क्रम निर्धारित कर दिया जाय और किसी विषय के लिये कोई पुस्तक स्वीकार न की जाय। विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों को अधिकार दे दिया जाय कि वे विषयाध्यापकों के परामर्श से विभिन्न विषयों के लिये पाठ्य-पुस्तकों का चुनाव कर लें। उनकी सहायता के लिये शिक्षा-

विभाग द्वारा उपर्युक्त पुस्तकों की एक सूची प्रकाशित की जाय, जिसमें विभिन्न विषयों की सर्वोत्तम पुस्तकों का उल्लेख हो।

पाठ्य पुस्तकों की रचना तथा प्रकाशन विशेष समितियों तथा संस्थाओं द्वारा किया जाय, जैसा कि इंगलैण्ड और अमेरिका ऐसे प्रगतिशील देशों में किया जाता है। पुस्तकें सरकार द्वारा न प्रकाशित की जायँ। जो पुस्तक एक बार चुन ली जाय, उसे कम-से-कम तीन वर्ष तक न बदला जाय।

समिति के सुझावों पर आलोचनात्मक दृष्टिपात

'आचार्य नरेन्द्रदेव समिति' द्वारा माध्यमिक शिक्षा के विषय में दिये गये सुझाव न केवल उत्तर प्रदेश के लिये अपितु सम्पूर्ण देश के लिये महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इस स्तर पर शिक्षा की समस्यायें प्रायः सभी राज्यों में समान हैं। समिति ने पाठ्य-क्रम को व्यावहारिक रूप देकर और उसको बालकों की रुचियों के अनुकूल बना कर उसमें निहित दोषों को दूर करने का सराहनीय प्रयास किया है। छात्रों के मार्ग-प्रदर्शन एवं उनकी मनोवैज्ञानिक जाँच के सम्बन्ध में दिये गये सुझाव अत्यन्त उपयोगी हैं। समिति का यह सुझाव कि टेकनिकल शिक्षा का प्रसार किया जाय देश की वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर दिया गया है।

प्रबन्ध-समितियों के विषय में दिये गये सुझाव अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रबन्ध समितियाँ ही अध्यापकों की शोचनीय दशा और शिक्षा के निम्नस्तर के लिये उत्तरदायी हैं। अतः जैसा कि समिति ने अपनी रिपोर्ट में अङ्कित किया है प्रबन्ध-समितियों में सुधार करना अति आवश्यक है।

पाठ्य-पुस्तक सम्बन्धी सुझाव भी सुदूरगामी हैं। यदि पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण तथा प्रकाशन का कार्य विशेष संस्थाओं को सौंप दिया, तो छात्रों को उत्तम कोटि की पुस्तकें प्राप्त होंगी, न कि निम्नकोटि की और अशुद्धियों से भरी हुई, जैसी कि उनको आज-कल उपलब्ध होती हैं। पाठ्य-पुस्तकों को तीन वर्ष तक न बदले जाने का सुझाव भी छात्रों और उनके अभिभावकों के हित में है।

यद्यपि 'आचार्य नरेन्द्रदेव समिति' की रिपोर्ट में अनेकों गुण सन्निहित हैं, तथापि उसमें बहुत-सी बातों का अभाव बुरी तरह खटकता है। समिति ने 'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा-योजना' के अन्तर्गत कार्यान्वित किये गये पाठ्य-क्रम की केवल पुनरावृत्ति की और कोई नया तथा ठोस सुझाव नहीं दिया। इसी प्रकार प्रबन्ध समितियों के विषय में दिये गये सुझाव मौलिक न होकर 'रघु-तिलक समिति' के सुझावों पर आधारित हैं।

समिति शिक्षकों के वेतन और उनके सेवा-प्रतिबन्धों के विषय में पूर्णतः मौन है। समिति ने यह कहने का साहस नहीं किया है कि शिक्षा-विभाग और उसके अधिकारियों की निर्बलता तथा अयोग्यता के कारण शिक्षकों के अधिकारों को सुरक्षित नहीं रखा जा सका है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि समिति के सुझावों में दोषों की अपेक्षा गुण अधिक हैं। दुख केवल इस बात का है कि सरकार ने समिति के सभी सुझावों को कार्यान्वित नहीं किया। समिति द्वारा 'पंच-फैसला बोर्ड' के निर्माण के लिये दिया गया सुझाव अध्यापकों के लिये अति हितकर है। सरकार ने बोर्ड का निर्माण तो कर दिया पर जैसा समिति ने लिखा था उसके निर्णय को स्वीकार करने के लिये शिक्षा-विभाग प्रबन्ध-समितियों को बाध्य नहीं कर सका। इसके लिये दोषारोपण शिक्षा-विभाग पर किया जाना चाहिये न कि समिति पर। समिति द्वारा पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन के सम्बन्ध में दिया गया सुझाव सरकार द्वारा अभी तक क्रियान्वित नहीं किया गया है। यदि ऐसा कर दिया गया होता, तो आज पाठ्य-पुस्तकें निर्धारित करने में शिक्षा-विभाग के कर्मचारियों द्वारा अपने अधिकारों का जो दुरुपयोग किया जा रहा है, उसका अन्त हो जाता। अधिक उत्तम तो यह हुआ होता कि समिति ने सरकार द्वारा पुस्तकों को प्रकाशित किये जाने का सुझाव दिया होता। परन्तु यह समिति ने नहीं किया। इसके लिये उस पर दोषारोपण करना व्यर्थ है। इङ्गलैन्ड और अमेरिका में पुस्तकों का प्रकाशन विशेष संस्थाओं द्वारा सफलता पूर्वक किया जा रहा है। उसी प्रकार का कार्य हमारे देश में भी किया जा सकता है।

सारांश में हम कह सकते हैं कि समिति के प्रायः सभी सुझाव अत्यन्त व्यावहारिक, उपयोगी और मूल्यवान हैं। यदि सरकार दृढ़ता पूर्वक उनको कार्यान्वित कर दे, तो माध्यमिक शिक्षा का कायाकल्प हो जायगा और उसका कलेवर एक नवीन तथा सुन्दर रूप धारण करेगा।

उच्च शिक्षा

उत्तर प्रदेश का उच्च शिक्षा का वर्णन पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। यहाँ हम उसका क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। इस समय हमारे राज्य में ८ विश्वविद्यालय हैं। इनके अतिरिक्त लगभग ८० डिग्री कॉलेज हैं, जिनमें उच्च शिक्षा की उत्तम व्यवस्था है। इन विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में ८० हज़ार से अधिक छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। शिक्षा की इन उच्च संस्थाओं में आर्ट्स, विज्ञान, वाणिज्य, क़ानून और कृषि के शिक्षण का समुचित प्रबन्ध है।

अलीगढ़ और बनारस विश्वविद्यालयों पर केन्द्रीय सरकार का तथा रुड़की और वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालयों पर उत्तर प्रदेश की सरकार का नियंत्रण है। शेष राजकीय सहायता प्राप्त स्वायत्त-सत्ता-सम्पन्न विश्वविद्यालय हैं। अलीगढ़ और बनारस विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त सभी का कुलपति राज्य का गवर्नर है।

कुछ समय से विश्वविद्यालयों का वातावरण विषाक्त होता जा रहा है; उनमें दलबन्दी, भ्रष्टाचार, अनैतिकता तथा पक्षपात के अनेकों दोष आ गये हैं। अतः राज्य की सरकार उनको दोषमुक्त करने एवं उनके आदर्शों को ऊँचा उठाने के लिये प्रयत्नशील है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय राज्य का सर्वोत्तम विश्वविद्यालय माना जाता है, परन्तु वह भी उपरोक्त दोषों से मुक्त न रह सका और उसकी आर्थिक स्थिति उत्तरोत्तर निर्बल होती चली गई। राज्य सरकार का ध्यान विश्वविद्यालय की पतनोन्मुख दशा की ओर आकर्षित हुआ और उसने उसमें सुधार करने के लिये १७ दिसम्बर, १९५१ में हाईकोर्ट के न्यायाधीश मूथम की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की। समिति ने विश्वविद्यालय के प्रशासन, संगठन-व्यय और शिक्षण की सूक्ष्म छानबीन करने के उपरान्त फरवरी, १९५३ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट में विश्वविद्यालय में व्याप्त सभी बुराइयों पर प्रकाश डाला गया और उनको दूर करने के लिये सुझाव दिये गये। सरकार ने 'मूथम रिपोर्ट' से प्रभावित होकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विधान में आवश्यक संशोधन करके उसकी स्वतन्त्रता पर पर्याप्त अंकुश लगा दिया। साथ ही इलाहाबाद नगर में स्थित कुछ इन्टर कॉलेजों को डिग्री कक्षायें खोलने की अनुमति प्रदान करके उन्हें 'एसोशिएट कॉलेजों' की संज्ञा देकर विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिया। राज्य सरकार ने अनावर्तक सहायता अनुदान देकर विश्वविद्यालय की आर्थिक दशा में सुधार किया। इसके अतिरिक्त कार्यकारिणी तथा सीनेट के अधिकारों का स्पष्टीकरण किया गया और विश्वविद्यालय में शिक्षण एवं अनुसंधान का मानदण्ड ऊँचा उठाने का प्रयास किया गया।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उपरान्त राज्य की सरकार ने आगरा विश्वविद्यालय की ओर ध्यान दिया। १९५३ में विधान सभा में आगरा विश्वविद्यालय के अधिनियम में आवश्यक संशोधन कर दिये गये। इस प्रकार विश्वविद्यालय के दोषों का निराकरण कर दिया गया। यह स्पष्ट कर दिया गया कि उपकुलपति की सरकार द्वारा नियुक्ति की जायगी और उसका निर्वाचन नहीं होगा। इसके अतिरिक्त कार्यकारिणी तथा सीनेट के सदस्यों के निर्वाचन परीक्षाओं, परीक्षकों की नियुक्ति, अध्यापकों की नियुक्ति और वेतन, तथा

नौकरी पेशा लोगों के लिये डिग्री कक्षायें खोलने के नियम बना दिये गये। इन सब बातों का विश्वविद्यालय के प्रशासन तथा संगठन पर स्वस्थ प्रभाव पड़ा है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के विधान में भी उपयोगी संशोधन कर दिये गये हैं, जिससे उसके ऊपर सरकार का पर्याप्त नियन्त्रण स्थापित हो गया है। नगर के एसोशियेट कॉलेज विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिये गये हैं।

सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में उच्च व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा की भी सुन्दर व्यवस्था है। चिकित्सा-शिक्षा के लिये लखनऊ, कानपुर और आगरा में आधुनिक ढंग पर पाश्चात्य चिकित्सा-शिक्षा प्रदान करने के लिये मेडिकल कॉलेज हैं। पशु-चिकित्सा-शिक्षा के लिये मथुरा में राज्य की ओर से 'पशु-चिकित्सा-विज्ञान कॉलेज' संचालित है। वन-विज्ञान की शिक्षा के लिये देहरादून में एक कॉलेज कार्य कर रहा है। कानपुर के 'हारकोर्ट बटलर टेकनोलौजिकल इंस्टीट्यूट' में टेकनोलौजी की शिक्षा की व्यवस्था है। इंजीनियरिंग की शिक्षा रुड़की और बनारस विश्वविद्यालयों में प्रदान की जाती है। भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार शिक्षा देने के लिये भी संस्थायें हैं, यथा :—कांगड़ी और वृन्दावन के गुरुकुल; काशी विद्यापीठ; संस्कृत कॉलेज, बनारस; महिला विद्यापीठ, प्रयाग; संगीत विद्यापीठ, लखनऊ एवं दारुलउलूम, आज़मगढ़।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उत्तर प्रदेश की सरकार शिक्षा पर होने वाले कुल व्यय का विश्वविद्यालयों पर १०.६० प्रतिशत और उच्च व्यावसायिक तथा टेकनोलौजिकल संस्थाओं पर १.९४ प्रतिशत व्यय कर रही है। योजना में इंजीनियरिंग प्रशिक्षण के लिये २०९.९५ लाख रुपये की व्यवस्था की गई है।

शिक्षक-प्रशिक्षण

हमारे राज्य में शिक्षक-प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है, क्योंकि शिक्षा के सभी स्तरों पर प्रशिक्षित अध्यापकों की माँग रहती है, यथा—प्राथमिक स्कूल, जूनियर हाई स्कूल और उच्चतर माध्यमिक स्कूल। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सभी प्रकार के विद्यालयों में इतनी तीव्र गति से वृद्धि हुई कि सरकार को शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना अनिवार्य हो गया।

प्राथमिक विद्यालयों और जूनियर हाई स्कूलों के लिये शिक्षकों का प्रशिक्षण नार्मल स्कूलों में होता है। प्रत्येक ज़िले में एक नार्मल स्कूल है जिसमें प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले अध्यापकों को एच० टी० सी० का सर्टिफ़िकेट दिया

जाता है। १९४६ से पूर्व इसके स्थान पर वी० टी० सी० और पी० टी० सी० के प्रमाण पत्र दिये जाते थे।

उपर्युक्त से उच्चतर प्रशिक्षण हाई स्कूल तथा इन्टर पास छात्रों को दिया जाता है। पहले इन छात्रों को सी० टी० का सर्टिफ़िकेट दिया जाता था। अब लड़कों के लिये सी० टी० कक्षायें समाप्त करके जे० टी० सी० की व्यवस्था कर दी गई है। लड़कियों के लिये अब भी सी० टी० के प्रशिक्षण का प्रबन्ध है।

माध्यमिक विद्यालयों के लिये शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिये ट्रेनिंग कॉलेज है। इन कॉलेजों में ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट विद्यार्थी ही प्रवेश पा सकते हैं। १९४६ तक उत्तर प्रदेश में केवल ४ ट्रेनिंग कॉलेज थे—इलाहाबाद में राजकीय प्रशिक्षण कॉलेज, लखनऊ में स्त्रियों के प्रशिक्षण के लिये सरकारी कॉलेज और बनारस तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालयों द्वारा संचालित बी० टी० ट्रेनिंग कॉलेज। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त विद्यालयों की संख्या में आश्चर्यजनक गति से वृद्धि हुई। जिससे नये प्रशिक्षण कॉलेज खोलना आवश्यक हो गया। अतः शिक्षा-विभाग ने व्यक्तिगत शिक्षा-संस्थाओं को प्रशिक्षण कक्षायें प्रारम्भ करने की आज्ञा दे दी। फलस्वरूप १९४७-४८ में दयालबाग, बलवन्त राजपूत कॉलेज आगरा और लखनऊ विश्वविद्यालय में स्नातकों के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। इनके अतिरिक्त कानपुर, लखनऊ, आगरा, इलाहाबाद, फ़तेहपुर और गोरखपुर में सी० टी० कॉलेजों की स्थापना हुई। अगली वर्ष ३ सी० टी० कॉलेजों और ४ एल० टी० कॉलेज और स्थापित किये गये। इन कॉलेजों की संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि होती चली गई। १९५१-५२ में ३१ ट्रेनिंग कॉलेज थे, जिनमें से २४ पुरुषों के लिये और ७ स्त्रियों के लिये थे। इनके अतिरिक्त ८० ट्रेनिङ्ग स्कूल भी थे, जिनमें ५६ पुरुषों के लिये और २४ महिलाओं के प्रशिक्षण के लिये थे।

इस समय राज्य के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में बी० टी० या बी० एड० की शिक्षा का प्रबन्ध है। आगरा, अलीगढ़, बनारस, लखनऊ और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों में एम० एड० का पाठ्य-क्रम चालू कर दिया गया है। शिक्षा विभाग द्वारा एल० टी० कॉलेजों के पाठ्य-क्रम में सामूहिक काम (community work) सम्मिलित कर दिया गया है, जिसके अनुसार छात्राध्यापकों को ग्रामों में कुछ समय तक समाज कल्याण का कार्य करना आवश्यक हो गया है।

राज्य में कुछ विशेष प्रकार के प्रशिक्षण विद्यालय भी हैं, यथा :—

(१) रचनात्मक एवं बेसिक ट्रेनिंग कालेज[1] लखनऊ—इस कॉलेज

1. Basic-Cum Constructive Training College.

की स्थापना १९४८ में इलाहाबाद में की गई थी, परन्तु अब इसको लखनऊ ले आया गया है। इसमें विभिन्न प्रकार की हस्तकलाओं का प्रशिक्षण देकर अध्यापकों को रचनात्मक वर्ग और बहुमुखी पाठ्य-क्रम का शिक्षण देने के लिये तैयार किया जाता है। इसमें रचनात्मक पाठ्य-क्रम २ वर्ष का और बेसिक प्रशिक्षण १ वर्ष का है, जिसके बाद छात्रों को एल० टी० की उपाधि प्रदान की जाती है।

(२) **नर्सरी ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद**—इस कॉलेज का शिलान्यास १९५१ में किया गया। इसमें उन व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया जाता है, जो नर्सरी स्कूलों में अध्यापन का कार्य करना चाहते हैं। कॉलेज का पाठ्यक्रम २ वर्ष का है, जिसको समाप्त करने पर सी० टी० का प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाता है।

(३) **शारीरिक प्रशिक्षण कालेज, लखनऊ**—इस कॉलेज मे पुरुष और स्त्री स्नातक तथा उपस्नातक प्रवेश लेकर शारीरिक व्यायामों का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं।

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा

हमारे राज्य में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्रों में अभिनन्दनीय प्रगति हुई हैं। हम उच्च शिक्षा का वर्णन करते समय चिकित्सा-शिक्षा, पशु-चिकित्सा-शिक्षा, वन-विज्ञान-शिक्षा और इंजीनियरिंग तथा टेकनोलॉजी की उच्च शिक्षा का उल्लेख कर चुके हैं। हम यह भी लिख चुके हैं कि विश्वविद्यालयों द्वारा कृषि, वाणिज्य, विज्ञान आदि की उच्च शिक्षा प्रदान की जा रही है। इस समय राज्य में तीन प्रकार की प्राविधिक तथा व्यावसायिक संस्थायें शिक्षण-कार्य में संलग्न हैं :—

१. **प्रारम्भिक व्यावसायिक शिक्षा संस्थायें**—इन संस्थाओं में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त छात्रों को कताई, बुनाई, रंगाई, धुलाई, सिलाई, छपाई, उद्यानकला, काष्ठकला और चर्मकारी की शिक्षा प्रदान की जाती है। ये संस्थायें जूनियर हाई स्कूलों के समकक्ष मानी जाती हैं।

२. **उच्चतर माध्यमिक व्यावसायिक शिक्षा संस्थायें**—इन संस्थाओं में जूनियर हाई स्कूल पास छात्रों के लिये व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था है। इनका पाठ्यक्रम ४ वर्ष का है और इनमें उपरोक्त विषयों की शिक्षा उच्चतर स्तर पर प्रदान की जाती है।

३. **उच्च व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा-संस्थाएँ**—इनमें सरकारी और गैर-सरकारी सहायता-अनुदान प्राप्त दोनों प्रकार की संस्थायें राज्य

में संचालित हैं। व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा की कुछ संस्थायें विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित हैं एवं कुछ विश्वविद्यालयों में इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करने के लिये पृथक् विभाग हैं। इन संस्थाओं में रचनात्मक विषयों के अतिरिक्त समाज सेवा (Social Science), पत्र-सम्पादन (Journalism), युद्ध-विज्ञान (MilitaryScience) तथा जन-प्रशासन (Public Administration) के पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था कर दी गई है।

उत्तर-प्रदेश की सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा के पुनस्सङ्गठन की ओर विशेष ध्यान दिया गया। द्वितीय योजना में वर्तमान औद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा पुनस्सङ्गठन कार्य जारी रखा जायगा और इस पर ४ करोड़ ६४ लाख रुपया व्यय किया जायगा। एक 'प्राविधिक शिक्षा-मंडल' की स्थापना की जायगी। साथ ही डिप्लोमा-स्तर की एक नई प्रशिक्षण संस्था स्थापित करने तथा लखनऊ और गोरखपुर की वर्तमान संस्थाओं में मेकेनिकल इंजीनियरिंग के प्रशिक्षण के लिए एक डिप्लोमा कोर्स प्रारम्भ करने का विचार है। इसके अतिरिक्त सर्टिफ़िकेट पाठ्यक्रम के लिये ३ नये टेकनिकल हाई स्कूल स्थापित किये जायेंगे। इलाहाबाद में एक प्रिंटिंग टेकनिलौजी संस्था स्थापित किये जाने का विचार है। ओवरसियरों के लिये २ नये स्कूल और कम्प्यूटरों तथा पर्वेक्षकों के प्रशिक्षण के लिये योजना-काल में एक संस्था खोली जा चुकी है।

इस समय राज्य में व्यावसायिक, औद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा के लिये ६४ संस्थायें हैं, जिनमें से ५७ स्नातकोत्तर स्तर पर और ३७ सर्टिफिकेट तथा डिप्लोमा स्तर पर प्रशिक्षण देने का कार्य कर रही हैं।

प्रौढ़ एवं समाज-शिक्षा

हम उत्तर प्रदेश में प्रौढ़ एवं समाज शिक्षा का थोड़ा सा वर्णन पहिले कर चुके हैं। इस प्रदेश में प्रौढ़ शिक्षा के कार्य का श्रीगणेश १६२१ में हुआ। शिक्षा के इस क्षेत्र में सर्वप्रथम व्यक्तिगत प्रयास ही किये गये। कुछ गैर-सरकारी संस्थाओं ने भी इस कार्य में योग प्रदान किया। १६२७ में प्रान्त की सरकार ने प्रौढ़ शिक्षा के कार्य-क्रम को अपनी शिक्षा-योजनाओं के अन्तर्गत स्थान प्रदान किया। सरकार ने प्रौढ़ों के लिये पाठशालायें स्थापित कीं, जिनमें मध्याह्न के उपरान्त एवं रात्रि को प्रौढ़ एवं निरक्षर तथा स्त्रियों को लिखने-पढ़ने और गणित की शिक्षा दी जाती थी। दुर्भाग्यवश सरकार की रुचि इस कार्य में शनैःशनैः कम होती गई और प्रौढ़-शिक्षा का प्रवाह मन्द पड़ गया।

१६३७ में प्रान्त में कांग्रेसी मंत्रिमंडल का निर्माण हुआ, जिसने प्रौढ़-

शिक्षा में नवजीवन का संचार कर दिया। इस कार्य को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार ने एक शिक्षा-प्रसार अधिकारी की नियुक्ति की। जनता ने भी सरकार का अनुकरण करके इस कार्य में योग दिया और स्थान-स्थान पर प्रौढ़-शिक्षा के लिये गैर-सरकारी संस्थाओं की स्थापना हो गई।

१९३९-४० में साक्षरता-प्रसार आन्दोलन अति उत्साह से प्रारम्भ किया गया और निरक्षरों को बहुत बड़ी संख्या में साक्षर बनाया जाने लगा। लाखों व्यक्तियों से प्रतिज्ञा ली गई कि वे कम से कम एक व्यक्ति को अवश्य साक्षर बनायेंगे। स्कूलों और कॉलिजों से प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार करने की अपील की गई। उन्होंने साक्षरता दिवस एवं साक्षरता-सप्ताह मनाये। छात्रों की टोलियों ने नगर के विभिन्न भागों और निकटवर्ती ग्रामों में परिभ्रमण करके निरक्षरों को साक्षर बनाया। इस प्रकार समस्त प्रान्त में साक्षरता-आन्दोलन जोर से कार्य करने लगा।

१९३९-४० में प्रान्त में २,६८९ प्रौढ़-पाठशालायें थीं, जिनमें ८२,५९० निरक्षर प्रौढ़ों को साक्षर बनाया गया। इनके अतिरिक्त अनेक गैर-सरकारी संस्थायें भी थीं। ग्रामों के स्कूलों तथा अन्य उपयुक्त स्थानों में पुस्तकालय एवं वाचनालय की व्यवस्था की गई। 'चन्द-पुस्तकालयों' की योजना भी कार्यान्वित की गई। १९४० में सरकार ने 'प्रौढ़-शिक्षा विभाग' स्थापित करके उसको प्रौढ़-शिक्षा-प्रसार का कार्य सौंप दिया। विभाग की अध्यक्षता में प्रौढ़ों के लिये उपयुक्त साहित्य का प्रकाशन किया गया।

द्वितीय-युद्ध काल में काँग्रेसी मंत्रिमंडल के पद-त्याग करने से प्रौढ़-शिक्षा के कार्य में शिथिलता आ गई। परन्तु १९४५ में अपने पर पुनः आरूढ़ होकर काँग्रेसी मंत्रिमंडल ने प्रौढ़-शिक्षा के कार्य में जान डाल दी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त देश की सरकार ने प्रौढ़ शिक्षा का नाम बदलकर समाज-शिक्षा रख दिया। इसका उद्देश्य न केवल निरक्षर प्रौढ़ों को साक्षर बनाना है, अपितु आर्थिक, मानसिक तथा नैतिक विकास करके देश के सुयोग्य नागरिक भी बनाना है।

उत्तर-प्रदेश की सरकार ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत समाज-शिक्षा को विशेष स्थान प्रदान किया है और इसके प्रसार के लिये एक पृथक् विभाग स्थापित कर दिया है। सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत भी समाज-शिक्षा को स्थान दिया गया है। प्रौढ़ों के लिये राजकीय वयस्क विद्यालयों, वाचनालयों और पुस्तकालयों का प्रबन्ध किया गया है। प्रौढ़ों को कुटीर उद्योग-धन्धों का प्रशिक्षण देना आरम्भ कर दिया गया है। उनके लिये खेल-

कूद; पर्यटन और समाज-कल्याण-कार्य की सुविधाओं का भी प्रबन्ध कर दिया गया है।

यद्यपि राज्य की सरकार समाज-शिक्षा के प्रसार के लिये अनवरत परिश्रम कर रही है, तथापि अभी तक इसमें विशेष सफलता हस्तगत नहीं हुई है। इसका प्रमुख कारण जनता और स्वयं प्रौढ़ों की उदासीनता है। इस कार्य को सफल बनाने के लिये जनता का हार्दिक सहयोग अनिवार्य है।

स्त्री-शिक्षा

हमारे राज्य में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण देश में स्त्री-शिक्षा की अति दीर्घ काल से उपेक्षा की जा रही है, यही कारण है कि स्त्री-शिक्षा इतनी पिछड़ी हुई और शोचनीय स्थिति में है। स्त्री-शिक्षा के विकास में योग देने का प्रमुख श्रेय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को प्राप्त है। स्वतन्त्रतासंग्राम में स्त्रियों ने जो बलिदान किये, उनके कारण जनता के नेत्र खुले और वह समझने लगी कि स्त्रियाँ पुरुषों से किसी प्रकार भी पीछे नहीं हैं। स्वयं स्त्रियों में जागृति आविर्भूत हुई और उन्होंने अपने शिक्षा के अधिकार की मांग की। देश के समाज-सेवी नेताओं ने इस योग का स्वागत किया और स्त्री-शिक्षा के लिये सुविधायें प्रदान की जाने लगीं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से इन सुविधाओं में निरन्तर वृद्धि की जा रही है।

हमारे राज्य की बालिकायें प्राथमिक शिक्षा साधारणतया बालकों के ही विद्यालयों में प्राप्त करती हैं, परन्तु कुछ स्थानों पर पृथक् बालिका-विद्यालय भी हैं। बालिकाओं के लिये सरकारी और गैर-सरकारी जूनियर हाई स्कूल हैं; जिनमें गृह-विज्ञान तथा हस्तकला की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है। नगरों में बालिकाओं के लिये उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हैं, परन्तु ग्रामीण बालिकाओं को अभी तक यह सुविधा सामान्यतः नहीं प्रदान की गई है। यही कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं में माध्यमिक शिक्षा लोकप्रिय नहीं हो पाई है। बालिका माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्त्रियों के लिये कुछ उपयोगी विषयों की व्यवस्था की गई है, यथा-चित्रकला, संगीत, गृह-विज्ञान और मातृत्व-शिक्षा। हाई स्कूल की परीक्षा के लिये गृह-विज्ञान को अनिवार्य विषय बना दिया गया है। जहाँ तक उच्च शिक्षा का प्रश्न है, अभी प्रत्येक नगर में लड़कियों के लिये पृथक कॉलेजों की स्थापना नहीं हो पाई है। लखनऊ, इलाहाबाद, मेरठ आदि कुछ प्रमुख नगरों में पृथक् कॉलेजों का अवश्य निर्माण कर दिया गया है। परन्तु लड़कों के कॉलेजों में लड़कियाँ

बिना किसी प्रतिबन्ध के प्रवेश प्राप्त कर सकती हैं। अनेकों नगरों के कॉलेजों में सह-शिक्षा की पद्धति वर्तमान है।

'आचार्य नरेन्द्र देव समिति' ने स्त्री-शिक्षा के विषय में अनेकों मूल्यवान सुझाव दिये जिनमें से मुख्य-मुख्य अग्रांकित हैं—बालिका-विद्यालयों के लिये स्त्री निरीक्षिकाओं की नियुक्ति, अध्यापिकाओं की वेतन-वृद्धि और उनके लिये निवास स्थान की सुफ्त व्यवस्था, सह-शिक्षा वाले प्राथमिक विद्यालयों में पुरुष अध्यापकों के साथ-साथ स्त्री अध्यापिकाओं की नियुक्ति और गृह-विज्ञान के शिक्षण का समुचित प्रबन्ध।

इस समय राज्य में केवल लड़कियों के लिये लगभग २०० हाई स्कूल, १०० इन्टर कॉलेज और ८ डिग्री कॉलेज हैं। विश्वविद्यालयों में सह-शिक्षा की पद्धति प्रचलित है। अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण के लिये राजकीय नार्मल स्कूल और ट्रेनिंग कॉलेज हैं। आगरा, लखनऊ और कानपुर के मेडिकल कॉलेजों में लड़कियों के लिये स्थान सुरक्षित हैं। कुछ लड़कियाँ क़ानून की शिक्षा की ओर भी अग्रसर हुई हैं। उपचारिकाओं के प्रशिक्षण के लिये मेडिकल कॉलेजों तथा अन्य केन्द्रों में व्यवस्था कर दी गई है।

यद्यपि स्त्री-शिक्षा का दिन-प्रति-दिन प्रसार हो रहा है, परन्तु उसको संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। सरकार और व्यक्तिगत संस्थायें स्त्री-शिक्षा की सुविधाओं की वृद्धि करने के लिये क्रियाशील हैं, परन्तु वे स्त्री-शिक्षा की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति करने में असफल सिद्ध हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी सभी प्रयास नगरों की बालिकाओं के लिये किये जा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली लड़कियों के लिये किये गये प्रयत्न प्रायः नगण्य ही हैं। अतः यह आवश्यक है कि सरकार और जनता ग्रामों में स्त्री-शिक्षा की सुविधायें उपस्थित करें, क्योंकि वहीं इनकी अधिक आवश्यकता है। वहीं की लड़कियाँ शिक्षा में अधिक पिछड़ी हुई हैं और वहीं देश की अधिक लड़कियाँ निवास करती हैं।

विकलांगों की शिक्षा

सम्पूर्ण भारत के विकलांगों की शिक्षा के प्रसंग में उत्तरप्रदेश में भी इस शिक्षा का वर्णन पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से हमारी राज्य की सरकार ने इन वर्गों की शिक्षा के प्रति विशेष रुचि व्यक्त की है और उनके लिये शिक्षा-संस्थाओं का निर्माण किया है। कुछ ग़ैर सरकारी संस्थायें भी विकलांगों की शिक्षा में अपने उत्साह का परिचय दे रही हैं। लखनऊ, इलाहाबाद, गोरखपुर और आगरा नगरों में मूक तथा

बधिर बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध राज्य द्वारा कर दिया गया है। अंधों के लिये देहरादून, अलीगढ़, मैनपुरी, लखनऊ, बनारस और नैनी में विद्यालय हैं। देहरादून में ब्रेल-लिपि द्वारा अंधों को पढ़ना सिखाया जाता है। प्रायः सभी विद्यालयों में विकलांग बालकों तथा बालिकाओं को किसी न किसी हस्तकला की शिक्षा प्रदान की जाती है, जिससे वे अपने जीवन का निर्वाह करने के योग्य बन सकें। ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को राज्य-सरकार आर्थिक सहायता देती है।

सारांश

उत्तर प्रदेश अन्य राज्यों की अपेक्षा शिक्षा में आगे बढ़ा हुआ है। यहाँ की सरकार ने शिक्षा के विकास के लिये समितियाँ नियुक्त की हैं, शिक्षा की योजनायें कार्यान्वित की हैं और शिक्षा के सभी अंगों का विकास करने का प्रयत्न किया है।

प्रथम आचार्य नरेन्द्र देव समिति, १९३९—इसकी नियुक्ति प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा का पुनस्संङ्गठन करने के लिये हुई। समिति ने प्रचलित शिक्षाप्रणाली के दोषों पर प्रकाश डाला और उनका निराकरण करने के लिये अनेकों उत्तम सुझाव दिये। समिति ने स्त्री-शिक्षा, टेकनिकल शिक्षा और शिक्षक-प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया।

शिशु-शिक्षा—'आचार्य नरेन्द्र देव समिति' ने शिशुओं की शिक्षा की व्यवस्था किये जाने की सिफ़ारिश की। 'सार्जेंट रिपोर्ट' में इस सिफ़ारिश को दोहराया गया। फलस्वरूप सरकार ने शिशु-शिक्षा की ओर कुछ ध्यान दिया। राज्य में अनेकों ग़ैर-सरकारी संस्थायें शिशुओं की शिक्षा के लिये संचालित हैं।

प्राथमिक एवं बेसिक शिक्षा—राज्य की सरकार प्राथमिक एवं बेसिक शिक्षा के प्रसार के लिये सक्रिय है। प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित किया जा रहा है। अनेकों नगरपालिकाओं में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध है। द्वितीय योजना के अन्त तक ऐसी नगरपालिकाओं की संख्या ११० हो जायगी। नगरों के समान ग्रामों में भी प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण किया जा रहा है। प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण-विद्यालय स्थापित किये जा रहे हैं।

जूनियर माध्यमिक शिक्षा—स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व दो प्रकार के मिडिल स्कूल थे—वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल और ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल।

अब इनका स्थान जूनियर हाई स्कूलों ने ले लिया है। इसमें कक्षा ६, ७ और ८ होती हैं।

शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना—यह योजना जूनियर हाई स्कूल और हायर सेकेन्डरी स्कूल के लिये है। प्रत्येक स्कूल से सम्बन्धित ५ से १० एकड़ का एक फार्म होता है। योजना के उद्देश्य हैं :—(१) बालकों को कृषि, उद्योग एवं हस्तकार्य की शिक्षा, (२) पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा प्रयोगात्मक ज्ञान पर अधिक बल देना, (३) छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना, (४) उनमें समाज-सेवा, स्वावलम्बन, व शारीरिक श्रम की भावनाओं को जाग्रत करना, (५) छात्रों को नेतृत्व का प्रशिक्षण देना, (६) शिक्षा को प्रत्येक स्तर पर उत्पादक बनाना, (७) ग्रामों के विकास और कृषि की उन्नति में योग देना।

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा योजना—इस योजना को जुलाई, १९४८ में कार्यान्वित किया गया। इसकी मुख्य बातें हैं :— (१) माध्यमिक शिक्षा को जूनियर तथा हायर भागों में विभक्त करना, (२) उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में विविध पाठ्य-क्रम की व्यवस्था करना और (३) अधिकांश विद्यालयों का पाठ्य-क्रम बहुमुखी बनाना।

द्वितीय आचार्य नरेन्द्र देव समिति, १९५२-५३—इस समिति की नियुक्ति माध्यमिक शिक्षा को पुनर्संङ्गठित करने के लिये की गई। समिति ने 'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा-योजना' में अनेक दोष बताये। साथ ही माध्यमिक शिक्षा के दोषों पर प्रकाश डाला। समिति ने अग्रांकित विषयों पर उत्तम सुझाव दिये :—(१) सामान्य शिक्षा, (२) टेकनिकल शिक्षा, (३) छात्रों की मनोवैज्ञानिक जांच, (४) परीक्षायें, (५) कार्य-दिवस एवं अवकाश, (६) नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा, (७) अनुशासन, (८) विद्यालयों की प्रबन्ध-समितियाँ, (९) अध्यापक, और (१०) पाठ्य-पुस्तकें।

उच्च शिक्षा—राज्य में ८ विश्वविद्यालय और लगभग ८० डिग्री कालेज हैं। विश्वविद्यालयों का वातावरण विषाक्त होता जा रहा था, अतः सरकार ने इलाहाबाद, आगरा और लखनऊ विश्वविद्यालयों के विधानों में संशोधन करके उनकी शक्तियों को सीमित कर दिया है।

शिक्षक-प्रशिक्षण—स्वातन्त्र्योत्तर-काल में शिक्षक-प्रशिक्षण की विशेष व्यवस्था कर दी गई है। एल० टी० के राजकीय विद्यालयों के अतिरिक्त विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित बी० टी० कॉलेज भी चल रहे हैं। राज्य में नार्मल स्कूल और जे० टी० सी० कॉलेज भी हैं। राज्य में १ रचनात्मक एवं

बेसिक ट्रेनिंग कॉलेज १ नर्सरी ट्रेनिंग कालेज एवं १ शारीरिक प्रशिक्षण कॉलेज भी है।

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा—इस शिक्षा के लिये तीन प्रकार की शिक्षा-संस्थायें हैं:—(१) प्रारम्भिक व्यावसायिक शिक्षा-संस्थायें, (२) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा संस्थायें, और (३) उच्च व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा-संस्थायें।

प्रौढ़ एवं समाज शिक्षा—१९२७ में सरकार ने प्रौढ़-शिक्षा का भार अपने ऊपर लिया। १९३९-४० में सम्पूर्ण राज्य में साक्षरता प्रसार आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त प्रौढ़ शिक्षा का नाम बदलकर समाज शिक्षा कर दिया गया। प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के साथ-साथ उनको राज्य के उत्तम तथा लाभप्रद नागरिक बनने की शिक्षा दी जा रही है।

स्त्री-शिक्षा—राज्य में स्त्री-शिक्षा का प्रसार अति तीव्र गति से हो रहा है। इस समय उत्तरप्रदेश में लड़कियों के लिये लगभग २०० हाई स्कूल, १०० इन्टर कॉलेज और ८ डिग्री कॉलेज हैं। अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण के लिये नार्मल स्कूल और ट्रेनिंग कॉलेज हैं। मेडिकल कॉलेजों में लड़कियों के लिये स्थान सुरक्षित हैं। अभी तक ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

विकलांगों की शिक्षा—राज्य में मूक, बधिर और अंधे बालकों तथा बालिकाओं के लिये राज्य की ओर से निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था है। कुछ गैर-सरकारी संस्थायें भी इस दिशा में कार्य कर रही हैं।

TEST QUESTIONS

1. How does the "New Organisational Pattern of Secondary Education" as envisaged in the Second Narendra Deva Secondary Educational Reorganisation Committee Report, 1953, differ from :—(a) The existing pattern in Uttar-Pradesh ? (b) The pattern recommended in the Report of the Secondary Education Commission (popularly known as the Mudaliar Commission) ?
2. What steps have been taken in Uttar Pradesh for Adult Education during the last ten years ? How far have these

been successful and what difficulties have been experienced ?

3. Describe the reorientation scheme of education recently introduced in Uttar Pradesh and its impact on girl's education.

4. Describe and assess the value of the measures that have been taken in Uttar Pradesh for bringing the school into dynamic relationship with the community.

5. Write short notes on :—(a) Girls' education in U. P. (b) Nursery Education in U. P., (c) Technical and Vocational Education in U. P., and (d) Junior High School.

—: o :—

अनुक्रमणिका

अ

अध्यापकों का प्रशिक्षण (Training of Teachers) ११६, १३५, २१४, २२१, २३०, ३२६-३३०, ३५४-३५५, ३८४, ४५०, ५०५-५०६

अध्यापक ३१२, ४७०

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा (Compulsory Primary Education) ३४६

अपराधी जातियों की शिक्षा (Education of criminal tribes) २३८

अलीगढ़ विश्वविद्यालय (Aligarh University) २१७

आ

आँकलेड का विवरण-पत्र एवं प्राच्य-पाश्चात्य विवाद का अन्त ६०

आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों की शिक्षा (Education of the Aboriginal and Hill Tribes) १२६, १४६, १६६, २३८

आयोग, भारतीय विश्वविद्यालय (Indian Universities Commission) १७६-१७७

आशुतोष मुकर्जी (Asutosh Mookerji) २११

इ

इंजीनियरिङ्ग की शिक्षा (Engineering Education) ७६-७७, ११७, १६८, २६३, २६३, ४१४

ई

ईस्ट इण्डिया कम्पनी (East India Company) २५-२६

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (Ishwar Chandra Vidyasagar) १६३

उ

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा (Higher Secondary Education) ४६३-४६६

उच्चतर ग्राम शिक्षा ४६६-४७०

उच्च शिक्षा (Higher Education) ११-१२, ७४-७५, १३८-१३६, १५८-१६२, २१६-२१६, २४७-२५२, २८७-२८८, ५०३

उसमानिया विश्वविद्यालय (Osmania University) २१७

ए

एडम (Adam) ६-११

एलफिस्टन (Mount Stuart Elphinston) ४२-४३

ऐलेनबरा का आदेश-पत्र (Lord Ellenborough's Despatch) १००

ओ

अँग्रेजी शिक्षा के लाभ ३३६

अँग्रेजी शिक्षा की हानियाँ ३४१

औद्योगिक शिक्षा (Industrial Education) ११८-११६, २६५-२६६

क

कृषि की शिक्षा (Agriculture Education) ११८, १६६, २६४-२६५, २६३, ४१३, ४३६-४४०

कर्जन, लार्ड (Lord Curzon) १७३-१६६

कलकत्ता मदरसा (Calcutta Madrassah) २८

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (Calcutta University Commission) २१०-२१६

कला की शिक्षा (Art Education) ११८, १६६-१७०, २६४, २६३

कानून की शिक्षा (Legal Education) ७७, ११७, १६७-१६८, २६२, ४१५

कुर्ग (Coorg) १०७

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा कार्य २८२

केन्द्रीय सरकार एवं माध्यमिक शिक्षा ३६४

केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रगति में योग ३५२

ग

गुरुकुल विश्वविद्यालय (Gurukul University) २७५

गुरुदास वनर्जी (Gurudas Banerji) २०४

गोपाल कृष्ण गोखले (Gopal Krishna Gokhale) २२३-२२७

च

चार्ल्स ग्रांट (Charles Grant) ३२-३३

चिकित्सा शिक्षा (Medical Education) ११७, १६८, २६३, २६२, ४१५, ४३८-४३६

ज

जाकिर हुसेन (Zakir Husain) ३०६-३१०

जामिया मीलिया इस्लामिया (Jamia Milia Islamia) २७४, २०५

जियाउद्दीन अहमद, डा० (Dr. Ziaudin Ahmad) २११

जीगेनबल्ग (Ziegenbalg) २२

जूनियर माध्यमिक शिक्षा (Education in Junior Highschool) ४८४-४८५

ट

टामसन, जेम्स (James Thomason) ७२

टैगोर, रवीन्द्रनाथ (Rabindranath Tagore) २७४

ड

डंकन, जोनेथन (Jonathan Duncan) २६

डच (Dutch) २१

डलहौजी, लार्ड (Lord Dalhougie) ६७

डेन (The people of Denmark) २१

ढ

ढाका विश्वविद्यालय (Dacca University) २१७

त

तकनीकी शिक्षा (Technical Education) ११८, १७०, २६५, २६३, ४६६

द

दारुल-उलूम, देवबन्द (Darul-Uloom, Deaband) २७५

दिल्ली विश्वविद्यालय (Delhi University) २४७-२४८
द्वितीय पंच वर्षीय योजना (Second Five-year-Plan) ४५८-४७५
देशी शिक्षा (Indigenous Education) १३-१४, १३६-१३७
द्वैध शासन में शिक्षा की प्रगति (Improvement of Education during Diarchy) २४३-२८०

ध

धर्म प्रचारक १९-२०
धार्मिक शिक्षा (Religious Education) १४४-१४५, ४१६

न

नरेन्द्र देव समिति प्रथम ४७८-४८०, द्वितीय (१९५२-१९५३) ४९६-५०३
नागपुर विश्वविद्यालय (Nagpur University) २४८
निस्यन्दन-सिद्धान्त (Downward Filtration Theory) ६२-६४
नैतिक शिक्षा (Moral Education) १९१, ५००

प

पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा (Education under the Five-year-plans) ४४५-४७५
पंजाब (Punjab) ७४, १०७, २२९, २९९, ३५३
प्रथम पंचवर्षीय योजना (First Five-year-Plan) ४४५-४५७
प्राथमिक शिक्षा (Primary Education) ६-११, १०५-११०, १३३-१३६, १५५-१५७, २२१-२३४, २५६-२६२, २९०-२९२, ३४८-३५०, ४८१-४८४
प्राच्यवादी (Orientatists) ५३-५४
प्रौद्योगिक शिक्षा (Technological Education) २१४-२१५, ३२९, ४३६-४३८, ४६१-४६३, ४६७-४६९
प्रौढ़-शिक्षा (Adult Education) २७५-२७७, २९६-३०१, ४३०-४३२
पटना विश्वविद्यालय (Patna University) २१६
परीक्षाएँ (Examinations) ४१८-४१९, ५००
पश्चिमोत्तर प्रान्त (N. W. Province) ७२-७४ १०७
पशु-चिकित्सा-शिक्षा (Veterinary Education) ११७, १६९, २६३-२६४
पाठ्यक्रम (Curriculum) ८३, १३४ २११, ३११, ४१०
पिछड़ी जातियाँ एवं हरिजनों की शिक्षा (Education of the Backward Class and Harijans) १२५-१२६, १४९, १६४-१६६, २३५-२३८, २७१-२७३, २९५-२९६
पुर्तगाली (Portuguese) १९-२०
पूर्व-प्राथमिक अथवा शिशु शिक्षा (Nursery Education) ४८०

फ

फर्ग्यूसन कॉलेज (Fergusson College) १६०
फ्रान्सिस जेवियर (St. Francis Xavier) १९
फ्रान्सीसी (French) २०-२१
फोर्ट विलियम कालिज (Fort William College) ३०

ब-व

बन-विज्ञान-शिक्षा (Forestry Education) ११८, १६९, २६४
बनारस संस्कृत कॉलिज (Banaras Sanskrit College) २९-३०

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (Banaras Hindu University) २१७
बङ्गाल (Bengal) ९-१०, ११-१२ ४०-४२, ४६, ४८-४९, ६६-६८, ७५, ७६, १०६-१०७, २५६, २२९ २९८
बम्बई (Bombay) ८, १२, २७, ४२-४३, ४६-४७, ४९-५०, ६८-७१, ७५-७६, ७७-७८, १०६, २२९, २५६, २९८-२९९, ३५३
बरार (Berar) १०७
वाणिज्य शिक्षा १७०, २६४, २९३, ४१३
व्यावसायिक शिक्षा (Professional and Vocational Education) ७५-७८, ८८-८९, ११६-११९, १६७, २१५, २३९, २६२-२६७, ४१२, ४५२, ५०७-५०८
विकलाङ्गों की शिक्षा (Education of the Handicapped) ४३५-४३६, ५११-५१२
बिहार (Bihar) १०७, २२९, २९८, ३५३
विश्वविद्यालय शिक्षा (University Education) २४८, २५२, ३२८, ३९०-४०३, ४५१, ४६६-४६७
विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (University Education Commission) ३६३-३६४, ४०४-४०६
बेसिक शिक्षा (Basic Education) ३०४-३२४, ३२६-३२७, ३५०-३६१, ४६२-४६४, ४८१-४८४

भ

भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम (Indian Universities Act) १७७-१८१
भारत में प्राचीन शिक्षा व्यवस्था २-३

म

मद्रास (Madras) ६, १२, २६-२७, ४३-४५, ४७, ५०, ७१-७२, ७५, ७७, २२९
महादेव गोविन्द रानाडे (Mahadev Govind Ranadey) १६३
माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education) ११०-११२, १३७-१३८, १५७-१५८, २१९-२२०, २५२-२५६ ३६३-३७२, ३७३-३८९, ४५०, ४६४-४६६, ४९३
माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission) ३६४, ३७३
मुदालियर कमीशन (Mudaliar Commission) ३७३
मुसलमानों की शिक्षा (Education of Muslims) १२३-१२५, १४५-१४७, १६४, २३४, २७०-२७२, २९४-२९५
मैकॉले (Lord Macaulay) ५४-५७, ५८-६१
मैसूर विश्वविद्यालय (Mysore University) २१६

र

राजपूताना विश्वविद्यालय (Rajasthan University) २८८
राधाकृष्णन कमीशन (Radhakrishnan Commission) ४०४, ४२३-४२४
राबर्ट डी नोबिली (Robert de Nobili) १९
राष्ट्रीय शिक्षा (National Education) २७४-२७५
राष्ट्रीय शिक्षा का विकास (Development of National Education) १९८-२००

ल

लखनऊ विश्वविद्यालय (Lucknow University) २१७,
लार्ड लैन्सडाउन (Lord Lansdowne) १६१

श

शिक्षा व्यवसाय (Teaching Profession) ४१४

शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (Government Resolution on Education Policy) १८१-१८३, २०७-२१०
शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना (Reorientation of Education Scheme) ४८५-४९२
शिक्षा विभाग १३९-१४०
शिमला शिक्षा-सम्मेलन (Simla Education Conference) १७४-१७५

स

स्वामी विवेकानन्द (Swami Vivekananda) ३०४
स्टैनले का आदेशपत्र(Lord Stanley's Despatch) १००
समाज-शिक्षा ४५१-४५२, ४६९
सागर विश्वविद्यालय (Sagar University) २८८
सार्जेण्ट जान ,सर (Sir John Sargent) ३२५
सार्जेण्ट योजना (Sargent Scheme) ३२५-३२६
स्त्रियों की शिक्षा (Education of Women) ८८, १२०-१२३, १४७-१४९, १६२-१६४,२१४, २३१-२३४ २६७-२७०,२९४,४२१-४२२,४३३-४३५,४५३,५१०-५११

ह

हंसराज भाटिया(Hans Raj Bhatia) ३१६
हार्टांग समिति (Hartong Committee) २४६-२४७, २५०-२५२, २५४-२५६, २५७-२५८
हार्डिज, लार्ड (Lord Hardinge) ६६

BIBLIOGRAPHY

(Reports and Pamphlets, official and non-official)

1. *Sharp, H. W.* : Selections from Educational Records, Part I (1781-1839), Calcutta, 1920.
2. *Richey, J. A.* : Selections from Educational Records, Part II (1840-1859), Calcutta, 1922.
3. *Basu, A. N.* : Reports of the State of Education in Bengal by W. Adam, 1835 and 1838 (University of Calcutta) 1941.
4. Report from the Select-Committee on the Indian Territories together with the Proceedings of the Committee, Minutes of Evidence and Appendix, London, 1853.
5. Correspondence Relating to the Educational Despatch of 19th July 1854, London, 1858.
6. A collection of Despatches from the Home Government on the Subject of Education in India, 1865-66.
7. Howell, A. P. : Education in India, 1867-68.
8. Howell, A. P. : Education in British India, Prior to 1854, and in 1870-71.

The following quinquennial Reviews of the Progress of Education in India.

(a) The First Review, 1886.

(b) The Second Review, 1887-92.
(c) The Third Review 1892-97.
(d) The Fourth Review, 1897-1902.
(e) The Fifth Review, 1902-07.
(f) The Sixth Review, 1907-12.
(g) The Seventh Review, 1912-17.
(h) The Eigth Review, 1917-22.
(i) The Ninth Review, 1922-27.
(j) The Tenth Review 1927-32.
(k) The Eleventh Review, 1932-37.
(l) Progress of Education in India, 1947-52.

9. Report of the Indian Universities Commission 1902.
10. Government of India Resolution on Educational Policy 1913.
11. Report of the Calcutta University Commission, 1917-19.
12. Report of the Hartog Committee, 1929.
13. Report of the Central Advisory Board of Education on Post-war-Education Development in India, 1944.
14. *Wood and Abbott* : Report on Vocational Education in India 1937.
15. Various Report and Pamphlets published by the Bureau of Education, Government of India from time to time. Report of the University Education Commission, 1948-49.
16. Report of the Zakir Hussain Committee, (Hindusthani Talimi Sangh)
17. Report of the Secondary Education Commission (1952-53).
18. Proceedings of the All-India Education Conference since 1925.
19. Education in Universities in India, 1947-48.
20. Education in Universities in India, 1948-49.
21. Basic and Social Education, Pamphlet No. 58, (Bureau of Education)
22. Selections from the Government of Madras, No. II.
23. Adam's Report—Calcutta Edition.
24. *Elphinstone's* Minute on Education.
25. *Macaulay's* Minute.
26. *Prinsep's* Note.
27. Wood's Despatch.
28. Progress of Education, Poona, July 1941.
29. Lord Stanley's Despatch of 1859.

30. Lord Ellenborough's Despatch of 1858.
31. Report of the Indian Education Commission. Quinquennial Review of the Progress of Education in India, (Relevent years).
32. Resolution appointing the Hunter Commission Report of the Indian Industrial Commission, 1916-18.
33. Government Resolution on Educational Policy, 1904 & 1913.
34. The Gazetteer of the Baroda State.
35. The Report of the Committee on Indian Students in England.
36. Report of the Adult Education Committee, (1939).
37. Census Report, 1931.
38. Educational Reconstruction, Hindustani Talimi Sangh.
39. Syllabus for Basic Schools, Ministry of Education, Government of India.
40. Report of the Committee of the C. A. B. E. appointed to consider the Wardha Scheme of Education.
41. Report of the Second Wardha Education Committee of C. A. B. E. 1939, together with the Decisions of Board threon.
42. Article 45 of the Constitution Adopted by Free India on Janvary 26, 1950.
43. Education in India 1955-56, (Ministry of Education)
44 India, 1958, Government of India.
45. Hindustan year Book, 1960.
46. Seven Years of Freedom, Ministry of Education.
47. University Grants Commission Act, 1956.

BOOKS

1. *Altekar. A.S.* : Education in Ancient India, (Indian Book-Shop, Banaras), 1934.
2. *Arbuthnod, Alexander* : Major General Sir Thomas Munro—A Memoir.
3. *Ambedkar, B. R.* : What Gandhi and his Congress have done to the untouchables.
4. *Basu, A. N.* : Primary Education in India. Its Future, (Indian Associated Publishing Co., Calcutta), 1946.
5. *Basu, A. N.* : (Editor) Indian Education in Parliamentary Papers, Part I, (Asia Publishing House, Bombay), 1952.
6. *Basu, A. N.* : University Education in India Past and Present, (The Book Emporium Ltd., Calcutta), 1944.
7. *Bhagwan Dayal* : The Development of Modern Indian Education.
8. *Basu, B. D.* : History of Education in India.
9. Bhatia, Hans Raj : What Basic Education Means.
10. *Chaturvedi, S. N.* : History of Rural Education
11. *Evans Brothers* (Publisher) : Year Books of Education (Relevant Portions only).
12. *Fisher, T.* : Memoirs (Reproduced in Indian Education in Parliamentary Papers edited by A. N. Basu mentioned above).

13. *Gandhi, Mahatma* : Autobiography.
14. *Gandhi, Mahatma.* : Harijan, 1937.
15. *Gandhi, Mahatma* : Young India (1919-22) 1924
16. *Gokhale, G. K.* : Speeches, (Madras), 1920.
17. *Gokhule B. G·* : Ancient India.
18. *Gleig, G. R.* : Life of Sir Thomas Munro.
19. *Hampton, H. V.* : Biographical studies in Modern Indian Education, (Oxford University Press), 1946.
20. *Hartog. Sir Philip* : Some Aspects of Indian Education —Past and Present, (Oxford University Press), 1939.
21. *Howell* : Note on Educatian in India.
22. *Iyengar, K. R. S.* : A New Deal for Our Universities.
23. *James, H. R.* : Education and Statesmanship in India 1797-1910, (Longmans), 1917.
24. *Jhingran and Sharma* : Report on Indian Education.
25. *Law, N, N.* : The Promotion of Learning In India During Mohammadan Rule, (Longmans)1916. Lord Curzon in India, Vol. I & II.
26. *Mazumdar, D.* : Nai Talim in the Crucible
27. *Mukerji, S. N.* : Education in India Today and Tomorrow.
28. *Majumdar, R. C., Raychaudhuri, H. C., and Datta, K.:* An Advanced History of India, (Macmillan and Co., Ltd. London), 1926.
29. *Mayhew, Arthur* : The Education of India (Faber and Gwyer), 1926.
30. *Mukerji, S. N.* : History of Education in India (Modern Period), (Acharya Book Depot, Baroda), 1951.
31. *Mukerji, Radha Kumud* : Ancient Indian Education.
32. *Mill, J. S.* : History of British India, Vol. I.
33. *Mahmood, Syed* : History of Education in India.
34. *Nurullah, S. and Naik, J. P.* : History of Education in India, (During the British Period), (Macmillan), 1951.
35. *Nurullah, S., and Naik, J. P.* : A Student's History of Education In India (1800-1947), (Macmillan), 1951.
36. *Nadvi* : Muslim Thought and Its Source.
37. *Newman, Cardinal* : The Scope and Nature of University Education.
38. O 'Malley, L. S. S. : Modern India and the West, (Oxford University Press), 1941.

39. *Pannikar, K. M.*: Essays on Educational Reconstruction in India, (Ganeshan, Madras) 1920.
40. *Paranjpe, M. R.* : A Source Book of Modern Indian Education in the 1797-1902, (Macmillan), 1938.
41. *Parulekar, R. V.* : Survey of Indigenous Education in the Province of Bombay, 1820-1830, (Asia Publishing House, Bombay), 1951.
42. *Parulekar, R. V.* : Literacy in India, (Macmillan), 1939.
43. *Parulekar, R. V.* : A Source Book of History of Education, (The Bombay Book Depot, Bombay).
44. *Pattabhi, Sitarammayya:* History of the Indian National Congress, Vols. I and II, (Pandma Publications Ltd., Bombay), 1946 and 1947.
45. *Prendergast, G. L.* : Evidence of 1832. Problem of National Education in India.
46. *Patel, M S.* : The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi.
47. *Richter. J. A.* : History of Missions in India, 1908.
48. *Robert, P. E.* : British Kalin Bharat Ka Itihas. Ronaldshay, Lord : The Life of Lord Curzon, Vols. I. & II.
49. *Sen, J. M.* : History of Elementary Education in India, Book Company, (Calcutta), 1944.
50 *Siqueira, T. N.* : The Education of India, (Oxford University Press), 1943.
51. *Siqueira, T. N.* : Education of India.
52. *Singh, R. K.* : Our Universities.
53. *Saiyidain, K. G.* : Education, Culture and Social Order.
54. *Thomas, F. W.*: History and Prospects of British Eduation in India (George Bell and Sons), 1891.
55. *Trevelyan, G. M.* : English Social History.
56. *Trevelyan, C. E.* : On the Education of the People of India.
57. *Tendulkar, D. G.* & Others : Gandhiji, His life and Work.
58. *Vakil, K S.* : Education in India, (T. C. E. Journals and Publications, Lucknow), 1948.
59. *Vivekanand, Swami* : Lectures from Colombo to Almora.
60. *Wilder, R. G.* : Mission Schools in India.
61. Zellner, A. A. : Education in India.

ERRATA

Page		Read		For	
Page	1	Read	'had'	For	'ahd'.
,,	22	,,	'Ziegenbalg'	,,	'Zigenbalg.'
,,	31	,,	'Marshman'	,,	'Mahslman'.
,,	83	,,	'Servants'	,,	'Servans'.
,,	95	,,	'Defence'	,,	'Deference'.
,,	161	,,	'Are'	,,	'Were'.
,,	174	,,	'Educational'	,,	'Education'
,,	201	,,	'Literature'	,,	'Litrature'.
,,	271	,,	'Communities'	,,	'Commnuties'.
,,	272	,,	'And'	,,	'Aad'.
,,	274	,,	'Academy'	,,	'Acadamy'
,,	333	,,	'Position'	,,	'Positon'.
,,	367	,,	'Their'	,,	'Thier'.
,,	372	,,	'Comment'	,,	'Government'
,,	396	,,	'Cannot'	,,	'Canot'.
,,	421	,,	'Proctorial'	,,	'Procterial'
,,	428	,,	'Committee'	,,	'Commission'